योगवसिष्ठ (२)

खं०३ निर्वाण प्रकरण
२४५ पत्रक॥ ल० अ० ३१ पं० प्र० पृ०

A. no. 341

॥ॐम् श्रीमल्लेखारूपगुरुवे नमः॥ श्रीपरमा
त्मने नमः॥ अथ निर्वाणप्रकर्ण लिख्यते
॥वाल्मीकोवाच॥ हे भारद्वाज उपशमप्र
कर्ण के अनंतर तूं निर्वाणप्रकर्ण सुण॥ जि
सकौं जाणकर निर्वाणपदकौं प्राप्त होवहिगा
बटे उतम वचन जो मुनिनाइक रामजी प्रति
कहे हैं॥ सो रामजी कैंसे हैं॥ जो मुनीश्वर वाक्य
अर्थ कहा है॥ सभ अऔर तें मन कुं खैंचकर ति
सी विषे जिसनें स्थापन कीया है॥ अरु अवर
नी जो राजे अरु लोक थे॥ सो सभी निस्पंद हो रहे
मानो कागत उपर मूर्त्ती लिखी होती हैं॥ ऐसे होके
र वशिष्टजी के वचनों कौं विचारते हैं॥ अरु कंठ
कौं हलावते हैं॥ अरु नौंवों कौं फेरते हैं सिर सा
हित॥ अरु विस्मय आश्चर्य कुं प्राप्त होवहिं॥
तिस कर प्राप्त हूया जो है प्रकास॥ तिस कर स्वप्र
सन्नता कौं प्राप्त होवहिं॥ जो इह जगत सत जान
कर क्या विचरते थे॥ हम जो हैं ही नहीं॥ ऐसे आश्च
र्य विषे आश्चर्य होवहिं॥ तब दिन का चतुर्थ भाग
आन रहा॥ अरु सूर्य स्थिति हूया॥ मानो वशिष्टजी
के वचन सुण कर इस कुं फल लागा है॥ जो दा
हिक तेज छीण हो गया है॥ अरु सीतलता आन
प्राप्त भई है॥ अरु स्वर्ग तें जो सिध देवता आये थे
तिन के गले विषे मंदारादिक वृक्षों के फूल थे
पवन के चलणे कर सभ स्थान सुगंधित होत भ
ये॥ अरु भौंमर फूलों पर गुंजार शब्द करहिं॥
अरु झरोखे के मार्ग कर सूर्य की किरणें आवहि
तिन कर कमलफूल चंद्रमुखी राजे अरु देवतों

मान

वो॰ नि॰
६

केसीसऊपरजोथेसोसुकचणेलागे॥ जैसेमन
सेंजगतकीसत्तानिवर्त्तहोवे॥ अरबतसुक
चतीजातीहे॥ तैसेसुकचतेजांवें॥ अरबालिकजो
सत्ताविषेबैठेथे॥ अरपिंजरेंविषेपंषीबैठेथेल
ये तें॥ तिनकेनेत्रजनकासमाहूया॥ बालकोंकेनेत्र
ननमितमातानउठीयां॥ अरचौथेपहरराजाकेनौ
बतनगारेछोटणेसरनांईनेरीबाजणेलागीयां॥
वशिष्टजीजोबडीऊचीसुरसाथकहताथा॥ ति
सकाशब्दनगारेंबाजंत्रीयोंकरआछादीयागया॥
जैसेवरषाकालकामेघगर्जताहे॥ अरमोरतुष्णी
होजातेहैं॥ तैसेवशिष्टजीतुष्णीहोगये॥ ऐसाशब्द
हूया॥ तिसकरआकाश अरपृथ्वीसनदिशान
रगाई॥ पिंजरोंविषेपंषीपंषोंकोंपसारकरनड
नडशब्दकरणेलागे॥ जैसेभूकंपआयेतेंशब्दक
रतेहैं॥ तैसेपंछीशब्दकरणेलागे॥ बालिकथेसोमा
ताकेत्वचासाथमिलगये॥ बडाशब्दहूया॥ तिसके
अनंतरमुनसारदूलवशिष्टजीसभाकेमध्यबो
ले॥ हेनिहपापरघुनाथमैंतेरेचित्तरूपीपंखीके
फसावणेनमित्तअपणेवाक्यरूपीजालकोंपसा
राहे॥ तिसतेंअपणेचित्तकोंवसकरकेंआतम
पदविषेजोड॥ हेरामजीइहजोमैंतुजकोंउपदेश
कीयाहे॥ तिसकाजोसारहे॥ तिसविषेदुरबुधकों
त्यागकरचित्तकोंलगावो॥ जैसेहंसजलकोंत्याग
करदूधकोंपानकरतेहैं॥ तैसेसनउपदेशआदितें
लेकरअंतपर्यंतवारंवारविचारकरसारकोंअंगी
कारकरि॥ इसप्रकारसंसाररूपसमुद्रतेंउत्तिरक
रपरमपदकोंप्राप्तहोवहिंगा॥ अन्यथानहोवहिंगा
हेरामजीजोइनवचनोंकोंअंगीकारकरेंगा॥ तब
संसारसमुद्रकोंतरजावहिंगा॥ अरजोअंगीकारन

करैंगा॥ तब नीच गति कों पावहिंगा। जैसे वंध्याचल
पर्वत की षात विषे हस्ती गिड़्या कष्ट कों पावता है॥
तैसे संसार विषे कष्ट पावैंगा। हे रामजी इह जो मेरे व
चन हैं॥ जो तेरी बुधि इन कों ग्रहण न करेगी॥ तब अ
धह कों गिडैंगा॥ जैसे पंथी हाथ तें दीपक त्याग कर
रात्र के समे टोये विषे गिड़ता है॥ तैसे गिडैंगा॥ अरु
जो असंग होइ कर विवहार विषें विचरेंगा॥ तब आ
तम सिधता कों पावैंगा॥ इह जो मैं तुझ कों ग्यान मह्ता
न अरु मनो नास वासनां छय कहा है॥ इस अभ्यास
कर सिधता कों पावैंगा॥ इह ग्रंथ का सिधांत है॥ हे
सभा हे महाराजो राम लछमन भूपतो जो कछु मैं
तुझ कों कहा है॥ तिस कों तुम विचारो॥ अरु अवर जो
कछु कहणा है सो प्रातह काल कों कहौंगा॥ बाल
मीकोवाच॥ हे साध इस प्रकार मुनीस्वर जब क
हा। तब सर्व सभा उठ षडी हूई॥ अरु वसिष्ट जी के व
चनों कों पाइ कर सभ नहीं षिड़ आये॥ जैसे सूरिज के
किरणों कों पाइ कर कमल षिड़ आवते हैं॥ तैसे स
भ षिड़ आये॥ अरु वसिष्ट विस्वामित्र दोनों एकठे उ
ठे॥ वसिष्ट जी विस्वामित्र कों अपणे आश्रम लेग
ये॥ अरु आकासचारी जो देवते थे अरु सिध थे
सो वसिष्ट जी कों नमस्कार कर कें अपणे अप
णे स्थानों कों गये॥ राजा दसरथ अरघपाद
कर के वसिष्ट जी कों पूजत भया॥ पूजा कर अप विषे
णे अंतहपुर गया॥ अवर स्रोते भी आग्या लेक
र अपणे स्थानों कों गये॥ राजकुमार अपणे
मंडल कों गये॥ मुनीस्वर वन कों गये॥ रामल
छमण सत्रघन वसिष्ट जी के साथ आश्रम
कों गये॥ पूजा कर कें अपणे ग्रह मों आये॥ तब
सभ स्रोता अपणे अपणे स्थानों कों जाय कर

वा॰नि॰
२

2

स्नानसंध्यादिककर्मकर्तेभये॥ बहुडपितरदेव
ताकोंपूजतेभये॥ बहुडब्राह्मणोंतेंलेकरभाटप
र्यंतसभनकोंभोजनकराया॥ आपभीभाईमित्रों
साथभोजनकीया॥ बहुडयथाशक्तिआपभीवन
आश्रमकेधर्मकोंसाधतेभये॥ तबसूरिजभग
वानअस्तभये॥ दिनकीक्रियानिवर्तहोगई॥ रात्र
आनप्राप्तभई॥ निसाचरआनविचरणेलागे॥ त
बभूचरअरराजरिषब्रह्मरिषराजपुत्रजेतेक
छुभयेथे॥ सोरात्रकोंएकांतबैठकरआपणी
सिजाविछायकरविचारतेभये॥ राजकुमारआ
पणेवस्त्रस्थानोंपरविछायबैठे॥ ब्राह्मणतपस्वी
कुशादिकविछायकरविचारतेभये॥ जोसंसार
केतरणेकाउपायक्यावचनवशिष्टजीकहेहैं॥
तिसविबेकजीप्रकारचित्तकोंएकाग्रकरतेभये
एकप्रहरभलीप्रकारविचारकरनिद्राकोंप्राप्त
भये॥ जैसेसूर्यअस्तहूयेतेंपद्ममंदेजातेहैं॥ तैसे
सुखेंनसुखपतकोंप्राप्तभये॥ अररामजलछमण
शत्रघनतीनपहरवशिष्टजीकेउपदेशकोंविचा
रतेभये॥ अर्धप्रहरसोयेबहुडउठे॥ इसीप्रका
रसभनेंहीविचारपूर्वकरात्रिकोंबीतावतेभये॥ प्रा
तःकालहोवणेआया॥ सूरिजकेप्रकाशहोवणेक
रचंद्रमाकीकांतजातीरही॥ चंद्रमुखीकमलमंदे
गये॥ ॥इतिश्रीनिर्वाणप्रकरणेदिवसव्याप
रवर्ननंनामसर्गः॥ १॥ बाल्मीकोवाच॥ हेसा
धइसप्रकाररात्रिव्यतीतभई॥ तमकापटलनिव
र्तहूया॥ तबरामजलछमणशत्रघनउठकरस्नान
कर्तेभये॥ संध्यादिककर्मकीये॥ बहुडवशिष्टजीके
आश्रमकोंगये॥ तहांजाइस्थितभये॥ बहुडवशिष्ट
जीसंध्यादिककर्मकरकेअग्निहोत्रकरणेलागे
जबकरचुके॥ तबरामजीआदिकवशिष्टजीकोंप्र

र्घपादकरकेपूजतभये॥चवँरीपरभलीप्रकारमस्त
कराथा॥जबरामजीगयेथे॥तबवशिष्टजीकेद्वा
रेपरमौनथी॥एकघडीविषेकेईसहस्रजीवआ
नप्राप्तभये॥राजकुमारब्राह्मणमुनीश्वरहस्ती
घोडारथबहुतआनप्राप्तभये॥तबवशिष्टजी
रामजीआदिकोंकोसाथलेकरराजादशरथकेग
हविषेआये॥तबराजादशरथकेनाइकमारिंग
आगेलेवणेकोआये॥अरवशिष्टजीकाआदरसा
थपूजनकर्तभये॥अवरलोकोंनीबहुतपूजनकी
या॥इसप्रकारसभाविषेआनप्राप्तहूये॥तबन
नचरअरभूचरजेतेकछुश्रोताथेसोसभनेहीआन
प्राप्तहूये॥सभाविषेनमस्कारकरकेबैठगये॥
जेतेकछुसभाकेलोकथे॥सोनिस्पंदएकाग्रहोकर
स्थितभये॥जैंसेनिस्पंदवायुकरकमलोंकीषाण
अचलहोतीहे॥तैंसेस्थितभये॥भाटजनजोउस्तति
करनेवालेथे॥सोएकओरस्थितभये॥तबसूरिज
कीकिरनोंझरोषेकेमारिगतेंआनप्राप्तभई॥मानों
किरनोंभीवशिष्टजीकेवचनकोश्रवनकरनेंआ
इहें॥तबवशिष्टजीकीओररामजीदेषतभये॥जैं
सेस्वामकार्त्तिकसंकरकीओरदेषे॥जैंसेकचबृ
हस्पतिकीओरदेषे॥जैंसेप्रल्हादशुक्रकीओरदे
षे॥जैंसेगरुडविष्णुकीओरदेखे॥तैंसेवशिष्टजी
कीओररामजीदेषतेभये॥जैंसेभ्रमराअमृतामृ
मताआकाशमारिंगतेंकमलऊपरआइबैठताहे
तैंसेरामजीकीदृष्टभवरोंकोदेषतेदेषतेवशिष्ट
जीऊपरआनइस्थितभई॥अरवशिष्टजीरामजी
कीओरदेषताभया॥देषकरबोलताभया॥श्रीव
शिष्टोवाच॥हेरघुनंदनमैंतुजकोंजोउपदेशकी
याहे॥तुमकछुसुमरणकीयाजोइहवचनकहेहैं
कैंसेवचनहैं॥जोपरमारथबोधकाकारणअति

दितमहागंभीरवचनकहेहैं ॥ अरअवरभीबोध
काकारण अरअज्ञानअंधकारकेनाशकर्त्ताइंदुमण श्री
वचनहैं ॥ तिनकोंसुण ॥ आत्मसिधांतनिरंतरश्र
वणतुजकोंकहताहों ॥ हेरामजीवैराग्यअरअभ्यास
अरतत्वकावीचारइसकरकेसंसारसमुद्रकोंतरी
ताहै ॥ सम्यकततकेबोधकरदुर्बोधनिवर्त्तहोजा
ताहै ॥ तबवासनांकाअवेशनष्टहोजाताहै ॥ अर
निरदुःखपदकोंप्रापुतहोताहै ॥ कैसापदहै ॥ देशका
लवस्तुकेपरछेदतेंरहितहै ॥ सोईब्रह्मजगतरूप
होकरस्थितभयाहै ॥ अरभ्रमकरकेद्वैतकीन्याई
भासताहै ॥ जोसर्वभावकरकेअ विछिंन्नहै ॥ सर्वत्र
ब्रह्महैसत्तासमानहै ॥ इसप्रकारमहतस्वरूपजाण
करशांतिवानहोताहै ॥ हेरामजीकेवलब्रह्मअप
णेआपविषेस्थितहै ॥ नकछुचित्तहै नअविद्याहै ॥
नमनहै नजीवहै एसेकलनांब्रह्मविषेभ्रमकर
केपडीफुरतीहै ॥ जोजोस्पंदफुरनाइरूपहै अरचित्त
है ॥ सोकलनांरूपसत्तब्रह्महै ॥ ब्रह्मतेंइतरपदारथ
कोउनहीं ॥ हेरामजीस्वर्गपातालमृत्युलोकविषेस
दाशिवतेंआदिलेकर ॥ अरतृणपर्यंतजोकछुदृश्य
है ॥ सोसत्तपरब्रह्महै ॥ चिद्रूपतेंभिन्नअन्यकछु नहीं ॥
उदासीनअरमित्रबांधवतेंआदिलेकरसत्तब्रह्महै
जबलगअज्ञानकलनाकरजागतविषेवस्तबुधहै
अरब्रह्मभावनांनहीं ॥ तबलगचिंतादिककजनां
होतीहै ॥ जबलगदेहविषेअहंभावहै ॥ अनात्मदृश्य
विषेममत्वहै ॥ तबलगचिंतादिकभ्रमहोताहै ॥ जब
लगसंतजनअरसतशास्त्रोंकरउंचेपदकोंनहींप्रा
पुतभया ॥ अरमूर्खतानहींछीणभई ॥ तबलगचि
तादिकभ्रमहोताहै ॥ हेरामजीजबलगदेहाभिमान
शिथलतांकोंनहींप्रापतभया ॥ अरसंसारकीभावना
नहींमिटी ॥ अरसम्यकज्ञानकरस्थितनहींपाई ॥ तब

लग चिंतादिक प्रगट हैं ॥ जब लग अज्ञानक कैं अं
धहे ॥ तब लग विषयों की आसा के आवेश कर मू
र्छित है ॥ जब लग मोह मूर्छा तें उठ्या नहीं ॥ तब लग
चिंतादिक कलनां होती है ॥ हे रामजी जब लग आ
सारूपी विषकी गंध रिदयरूपी बन विषे होती है ॥
तब लग विचाररूपी चकोर तहां नहीं प्राप्त होता ॥ ज
ब लग भोगवासना नहीं मिटती ॥ तब लग रिदा सीत
ल नहीं होता ॥ जब भोगों की आसा मिट जावे ॥ तब सत
सीतलता अर संतुष्टता रिदे विषे आन प्राप्त होवें ॥ त
बा चित्तरूपी भ्रम निवर्त हो जाता है ॥ जब मोह तें रमां
निवर्त करीये ॥ अर नित्य प्रीत जस सेवित होवे ॥ तब चि
तरूं ति भूमिका कों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी जिस पुरु
षकी स्थित स्वरूप विषे भई है ॥ सो आपकों देह तें दूर
देषता है ॥ तिस सम्यकदर्शी के चित्त की भूमिका कही
है ॥ जब अनंत चैतन्य की भावना होती है ॥ अरु दृस्य
कों त्याग कर आत्मस्वरूप कों प्राप्त होता है ॥ तब उह पु
रुष सभ जगत कों अपंने अंग ही देषता है ॥ अर्थ इह
जो सभ आपनां रूप देषता है ॥ जैसे जो आत्मरूप दे
षता है ॥ तिस कों जीवन आदिक नाम कहा है ॥ जब भ्र
म अज्ञान निवर्त होता है ॥ तब परम अद्वैत पद उदय हो
ता है ॥ जैसे रात्र के क्षीण हूये सूर्य उदे होता है ॥ तैसे मो
ह के निवर्त हूये आतम तत्व का साक्षात्कार होता है
जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है ॥ तब चित्त नष्ट हो
जाता है ॥ जैसे सूका पत्र अग्नि विषे दग्ध होता है ॥ तैसे
ज्ञानवान का चित्त नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी जीवन्मु
क्ति जो महात्मा पुरुष हैं ॥ अर परावरदर्शी हैं ॥ सर्व ब्रह्म
जिस कों दृष्ट आया है ॥ तिस का चित्त सतपद कों प्राप्त
होता है ॥ सो चित्त सत कहीता है ॥ अरु तिस विषे वासनां
नी दृष्ट आवती है ॥ सो चैतन्य मन है ॥ उह चित्त सतपद
कों प्राप्त भया है ॥ इह जगत ज्ञानवान कों लीलामात्र भा

वा॰नि॰
४

4 सत्ता है॥ विवहार कर्त्ता है॥ पर अंतर तें शांतरूप है॥
नित्यतृप्त है॥ सर्वदा उसकों आतम जो तन्मासती है॥ वि
वेक करके उसके चित्त सों जगत की सत्ता निवर्त हो गई
है॥ अर स्वरूप विषे स्थित पाई है॥ सो चित्तसत कहीता
है॥ बहुड़ उह कर्म चेष्टा कर्त्ता भी दृष्ट आवता है॥ पर
मोह कों नहीं प्राप्त होता॥ जैसे भुनां बीज उगमता नहीं
तैसे ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं॥ अर जो अ
ज्ञानी है॥ तिस की वासना मोह संयुक्त है॥ जैसे कचा बी
ज बहुड़ बहुड़ उगमता है॥ तैसे अज्ञानी वासना कर
के बहुड़ बहुड़ जन्म लेता है॥ जिस चित्त सों आसक्त
ता निवर्त भई है॥ सो तिस की वासना जन्म का कारण न
हीं॥ उह चित्तसत कहीता है॥ हे रामजी जिस पुरुष
उह पावने योग्य पद पाया है॥ अर ज्ञान अग्नि कर
चित्तकूं दग्ध कीया है॥ उह पुरुष बहुड़ जन्म नहीं लेता॥ जेता क
छु जगत है॥ सो तिस कों सम ब्रह्मरूप है॥ जैसे वृछ अ
रु तरु नाममात्र दो हैं॥ वस्तु एक ही है॥ तैसे ब्रह्म अर ज
गत नाममात्र दो हैं वस्तु एक ही है॥ जैसे जल विषे तर
ग बुदबुदे जलरूप हैं॥ तैसे ब्रह्म विषे जगत ब्रह्मरू
प है॥ चैतन्य आत्मरूपी सर्व है॥ अर जगत रूपी ती
हणता है॥ हे रामजी सो ऐसा ब्रह्म तूं हैं॥ अर जो तूं क
हे मैं चैतन्य नहीं॥ तो कछु तो मानता जानता हैं॥ किं उ
जो तूं कहे मैं जड हों॥ तो तूं आकाशवत हूया॥ तेरे वि
षे कलना का उद्वेष कैसे होवे॥ अर जो चैतन्य हैं॥ तो
तूं एक किस का कर्त्ता हैं॥ अर जो चिन्मय हैं॥ तो निरा
निरयतन
या सों आदि अंत तें रहित हूया॥ सर्व तूं ही हैं॥ अपने
स्वरूप कों स्मरण कर॥ तब शांति कों प्राप्त होवहिगा
जो सर्वे ना व विषे स्थित है॥ अर सम कों उदे करणे हा
रा है॥ सो तूं ही हैं॥ शांतिरूप हैं॥ तूं चैतन्य ब्रह्मरूप हैं॥
हे रामजी ऐसी जो चैतन्य रूपी सिला है॥ तिस के उदर
विषे वासना रूपी फुरणां के होवे॥ उह तो महाघ

नरूपहै॥हेरामजीजोतूंहैं॥सोसोईहै॥उसअरतेरे
विषेभेदकछुनहीं॥सोईसतअरअसतरूपहोक
रभासताहै॥सर्वपदार्थजिसकेअंतरहैं॥अरनान
त्वजिसविषेकछुनहीं॥अहंत्वं।अरततताकल
नाजिसविषेकछुनहीं॥ऐसाजोअस्तिरूपचि
दघनआतमाहै॥तिसकोनमस्कारहै॥हेरामजी
तेरीजयहै॥कैसाहैंतूं।आदिअरअंततेंरहितवि
शालहैं॥अरसिलाकेअंतरवतचिदघनरूपहैं
आकाशवतनिर्मलहैं॥जैसेसमुद्रविषेतरंगाहैं
तैसेतेरेविषेजगतहै॥सोईलीलामात्रहैं॥तूंअ
पलोघनस्वरूपविषेस्थितिहै॥ ॥इतिश्री
निर्वाणप्रकरणेविश्रामघडीकर्णानामसर्गः
॥२ ॥श्रीवसिष्ठोवाच॥हेनिहपापरामजी
जिसचैतन्यरूपीसमुद्रविषेजगतरूपीतरंगप
डेफुरतेहैं॥अरलीनहोइजातेहैं॥ऐसाअनंत
आतमातूंहैं॥नेवकीभावनातेंमुक्तिहै॥अरभा
वअभावतेंरहितहैं॥ऐसाजोचिदात्मातेरास्व
रूपहै।सोसतजगतइहीरूपहै।तोवासनांआ
दिकअनेकहांहैं।जीवअरवासनांसभआ
तमाकाकंचनहै॥दूसरीवस्तकछूनहीं।तोअव
रकथाप्रसंगकैसेहोइ॥हेरामजीमहातरंगानी
रप्रकासरूपजोचैतन्यसमुद्रहै।सोतेरास्वरूपहै
अररामरूपीएकतरंगफुरयाहै।सोसमुद्ररूप
तेंहैं॥ऐसाजोआतमतत्वहै॥सोईजगतरूपहोय
करव्यापारीभासताहै॥जैसेअग्नितेंउष्णताभिन्न
नहीं।अरजैसेफूलतेंसुगंधताभिन्ननहीं।जैसेक
ज्जलतेंकृष्णताभिन्ननहीं॥अरबरफतेंजैसेसुक्ल
ताभिन्ननहीं।जैसेगानेतेंमधुरताभिन्ननहीं।जैं
सेसूर्यतेंप्रकाशभिन्ननहीं॥तैसेब्रह्मतेंअनुभवा
भिन्ननहीं।अनन्यरूपहैं।अरअनुभवतेंअहंभि

नहीं। अहं तें जीव भिन्न नहीं। जीव तें मन भिन्न नहीं
मन तें इंद्रीयां भिन्न नहीं। इंद्रीयों तें देह भिन्न नहीं
शरीर तें जगत भिन्न नहीं। इस प्रकार महा चक्रव
र्त्ति की न्यांई क्रूया है। सो कछु प्रवर्त्तया नहीं॥ न अ
प्रवर्त्तया है॥ न चिरं काल प्रवर्त्तया है। न कोऊ ऊ
न है। न अधिक है। सर्वदा एक अखंडित सत्ताप्र
मित है। जैसे आकाश विषे आकाश स्थित है॥ तै
सें ही सत्ताव जोन्नत होय कर स्थिति है॥ उही पूरण हो
य कर स्थिति है। इतर द्वैत कल्पना कछु नहीं॥ ऐसे

तैसे छूममतारूप हो आपविषे इ स्थित है

आपणे स्वरूप विषे जो पुरुष स्थित है। सोई जीवन
मुक्ति है॥ ऐसा जो ज्ञानवान है। सोई मन इंद्रीयां श
रीर की चेष्टा भी कर्त्ता है। पर उसकों कर्तृत्व का लेप
कछु नहीं लागता। हे रामजी ज्ञानवान कों न कछु त्या
ग ले जो गरहता है। न ग्रहण कर्णे योग रहता है॥
सर्व पदार्थों तें निर्लेप रहता है। जब लग इसकों ग्र
हण अरु त्याग की बुधि होती है॥ तब लग संसार के सु
ख दुःख का भागी होता है॥ हेय उपादेय का जिसकौं
अभाव है। सो सुख दुख का भागी नहीं होता॥ हे रामजी
जेता कछु जगत है॥ सो एक अद्वैत आत्मसत्व है॥ ना
नत्व कछु नहीं। जैसे घट मट की उपाध कर आकास
नाना प्रकार भासता है॥ जैसे समुद्र तरंगों कर अने
क रूप भासता है॥ पर नानत्व भाव कों नहीं प्राप्त होता
तैसें आत्मा विषे नाना प्रकार का जगत भासता है॥ प
र नानत्व को नहीं प्राप्त होता॥ ऐसें स्वरूप को जाण क
र तिस विषे स्थिति हो॥ अर बाह्य तें आपले वर्णाश्रम
का विवहार कर॥ हे रामजी अंतर आकाश की न्यांई
निर्मल स्थिति हो। काष्ट पाषाण की न्यांई अंतर हर्ष
शोक तें रहित स्थिति हो वऊ॥ संवित मात्र आतमा कों
जो आपणा स्वरूप देषता है। सोई सम्यक दर्शी है॥ ति
सका अज्ञान अरु मोह नष्ट हो जाता है॥ जैसे नदी का

वेग मूल सहित वृक्ष कों काटता है॥ तैसे आत्मज्ञान
अज्ञान सहित मोह कों काटता है॥ सुहृदता अरु वैर
हर्ष अरु शोक राग अरु द्वेषादिक जो विकार हैं॥ सो
चित्त विषे रहते हैं॥ सो चित्त उसका नष्ट हो जाता है॥ हे रा
मजी ज्ञानी सो वर्तता भी इष्ट आवता है॥ पर सो वर्तता कदा
चित नहीं॥ जिसको अनात्मा विषे अहंभाव निवर्त भया
है॥ अरु बुधि जिसकी लिपायमान नहीं होती॥ सो पुरु
ष इस लोकों कों मारे भी तो न उसको मारता है॥ अर
न उह बंधायमान होता है॥ हे रामजी जो वस्तु होवे नहीं
अरु भासे॥ तिसको माया मात्र जाणीये॥ उह जाण्ये तें न
ष्ट हो जावेगी॥ जैसे तेल विना दीपक शांति हो जाता है॥ तै
से ज्ञान कर वासना क्षय होती है॥ चित्त अचित्त हो जाता
है॥ जिसकों सुख दुख विषे ग्रहण त्याग नहीं॥ सो जीवन
मुक्ति आत्मा विषे स्थित है॥ ॥इति श्री निर्वाणप्रक
रणे ब्रह्मएक प्रतिपादने नाम सर्गः॥ २ ॥ श्रीवशि
ष्ठोवाच॥ हे रामजी मन बुधि चित्त अहंकार इंद्रीयां
आदिक जो दृश्य रूप है॥ सो सत् अचेत चिन्मात्र है॥ अरु
जीव तिस अभिन्न रूप है॥ जैसे स्वर्ण अरु भूषण विषे भेद
नहीं कछु॥ तैसे चिन्मात्र अरु जीवादिक अभिन्न हैं॥ ज
ब लग चित्त अज्ञान मैं होता है॥ तब लग जगत का कार
ण होता है॥ जब अज्ञान नष्ट हो जाता है॥ तब चित्तादिकों
का अभाव हो जाता है॥ अध्यात्म विद्या जो वेदांत शास्त्र है
तिसके अभ्यास कर अज्ञान नष्ट हो जाता है॥ जैसे अग्नि
के तेज कर सीत का अभाव हो जाता है॥ तैसे अध्यात्म वि
द्या के अभ्यास अरु विचार तें अज्ञान नष्ट हो जाता है॥ ज
ब लग अज्ञान का कारण त्रिष्णा उपशम कों प्राप्त नहीं
भई॥ तब लग अज्ञान है॥ जब त्रिष्णा नाश होवे॥ तब जा
णीये जो अज्ञान का अभाव भया है॥ हे रामजी त्रिष्णा रू
पी विसूचका रोग है॥ तिसके नाश करणे का मंत्र अध्या
त्म शास्त्र है॥ तिसके अभ्यास कर त्रिष्णा क्षीण हो जाती

है॥ जैसे सरतकाल विषे कुहिड नष्ट होजाता है॥
तैसे आत्म अभ्यास कर चित्त शांति होजाता है॥ जै
से सरतकाल विषे मेघ नष्ट होजाते हैं॥ तैसे विचा
रकर मूर्खता नष्ट होजाती है॥ जब चित्त अचित
ताको प्राप्त होता है॥ तब वासनां नाम क्षीण होजा
ती है॥ जैसे तागे साथ मोती परोये होते हैं॥ अर ता
गेके टूटेतें मोती भिन्न भिन्न होजाते हैं॥ तैसे अ
ज्ञानके नष्ट हूये मनन आदिक सभ नष्ट होजाते
हैं॥ अर जे पुरुष अध्यात्म शास्त्रको नहीं धारते
अर प्रीत नहीं करते॥ सो सांप कीटादिक योनी
को प्राप्त होवहिंगे॥ हे कमलनयन तेरे विषे जो
मूर्षता चंचलता थी सो नष्ट होगई है॥ जैसे पव
नके रहितें जल अचल होजाता है॥ तैसे तूं स्थि
रताको प्राप्त भया हैं॥ भाव अभाव तें रहित परमे
आकाशवत निर्मल पदको प्राप्त भया हैं॥ हे रा
मजी मैं ऐसे मानता हों॥ जो मेरे वचनों कर तूं बो
धको प्राप्त हूया हैं॥ अर विस्तृत अज्ञानरूप नि
द्रा तें जाग्या हैं॥ समान जीव भी हमारी बाणी कर
जाग आवते हैं॥ तूं तो अति उदार बुद्धि हैं॥ तेरे जा
गणे विषे क्या आश्चर्य है॥ हे रामजी जो गुरु भी शु
द्ध होता है॥ अर शिष्य भी शुध पात्र होता है॥ तब गु
रुके वचन उसके अंतर प्रवेश करते हैं॥ सो मैं
गुरु भी समर्थ हों॥ जो मुज को आपणा स्वरूप सदा
प्रतक्ष है॥ अर सत शास्त्रों के अनुसार मैं वचन
कहे हैं॥ अर तेरा रिदा शुध है॥ तिस विषे प्रवेश क
र गये हैं॥ जैसे तप्त पृथ्वीके षेत्र विषे जल प्रवेश
कर जाता है॥ तैसे तेरे विषे वचनों प्रवेश कीया है॥
हे रघुनाथ हम महानुभाव रघुवंश कुलके ब
डे गुरों के गुरु हैं॥ हमारे वचन तुम को धारणे आ

वर्त्ते हैं ॥ अरु भेद तें रहित होकर आपणे प्रकित्ती
आचार कों करहु ॥ वाल्मीकोवाच ॥ इस प्र
कार मुनीश्वर जब कहा ॥ तब सूरिज अस्त होणे
लागा ॥ सभ ही सभा परस्पर नमस्कार करके अ
पणे स्थानों कों गये ॥ रात्रि के व्यतीत हूये सूरिज की
किरनों साथ बहुड़ आइ बैठे ॥ ॥ इति निर
वाण प्रकरणे चित्त भावाभाव वर्णनं नाम सर्गः
॥ ४ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे मुनीश्वर मैं परम स्वस्थता
कों प्राप्त भया हों ॥ अब अपणे आप विषे स्थित
भया हों ॥ अरु तुमारे वचनों कर जगत जाल स्थित
हूये भी मुझ कों शांति होइ गई है ॥ अरु आतमानंद
कर त्रिप्त भया हों ॥ जैसे वडी वरषा कर पृथवी तृ
प्त होती है ॥ तैसे मैं तप्त शीतल भया हों ॥ अरु सुखसा
थ प्रसन्नता कों पाइ कर स्थित हों ॥ अरु सर्व ओर
तें केवल आतमरूप मुझ कों भासता है ॥ नानत्व का
अभाव भया है ॥ जैसे कुहीड तें रहित दिशा अरु आ
काश निर्मल भासता है ॥ तैसे सम्यक ज्ञान कर मुझ
कों सुध आतमा भासता है ॥ अरु मोह निवर्त होगया
है ॥ मोहरूपी जो जंगल है ॥ तिस विषे तृष्णारूपी मृग
था ॥ अरु रागद्वेषादिक धूड कुहीड थी ॥ सो सब नि
वर्त होगये हैं ॥ अब मैं आतमानंद कों प्राप्त भया हों
जो आदि अरु अंत तें रहित है अरु अमृत है ॥ अरु
अमृत का स्वाद भी तिस के आगे तुछ भासता है ॥ ऐ
से आनंद आपणे स्वभाव कों प्राप्त भया हों ॥ मैं राम हों
अर्थ इह जो सभ विषे रमणे हारा हों ॥ मेरा मुझ कों न
मस्कार है ॥ अब मैं सर्व संदेह तें रहित हों ॥ सभ संश
य अरु विकार मेरे नष्ट भये हैं ॥ जैसे प्रातह काल
कर त्रिसूना चरवेता लोभादिक निवृत्त होजाते हैं ॥ तैं
से मेरे रागद्वेषादिक का अभाव भया है ॥ निर्मल वि
स्तीर्ण हिम की नियांई हृदा कमल है ॥ तिस विषे
स्थित हों ॥ जैसे भ्रमर फिरता फिरता कमल विषे

६

7 आन स्थित होता है॥ तैसे मैं आतमरूपी सार विषे
स्थित हों॥ अविद्यारूपी कलंक आतमा कों कहां था
मैं तो तिसको कर निर्मलता कों प्राप्त भया हों। जैसे सूर्य
के उदे हूये तम का अभाव होता है॥ तैसे मेरे संशय
अविद्या नाश भई है॥ सर्व आतमा भासता है॥ अर
कलना कोऊ नहीं॥ भाव तें अकार अपणे स्वरूप कों
प्राप्त भया हों॥ पूर्व अकिर्त कों देष कर हसता हों॥ जो
क्या जाणता था अर कर्त्ता था॥ मैं तो नित्य शुध जिउ का
तिं उ आदि अंत तें रहित हों॥ हे मुनीश्वर तेरे वचन रू
पी अमृत के समुद्र विषे मैं स्नान कीया है॥ तिस कर
अजर अमर आनंद पद कों प्राप्त भया हों॥ अर स
र्यतें तीत जु ते पद कों प्राप्त भया हों॥ अर वीतशोक हो
य कर। परमें शुधता समता सीतलता अनुभव अद्वै
त कों प्राप्त भया हों॥ ॥इति राघव विश्रांत वर्न
नं नाम सर्गः॥ ५ ॥श्रीवसिष्ठ उवाच॥ हे महाबा
हो बडभागी मेरे परम वचन सुण॥ तेरे हित की कामनां
कर कें कहता हों मैं॥ अध्यात्म पद कों तूं प्राप्त भया हैं।
पर बोध की ध्रडता निमित्त बहुड सुण। जिसके श्र
वण कर अल्प बुधि भी आनंद पद कों प्राप्त होवहिं
हे रामजी जिसकों अनात्मा विषे आतम अभिमान
है॥ अर आत्म ज्ञान नहीं॥ तिसकों इंद्रीयां रूपी शत्रु
दुख देते हैं॥ जैसे निर्बल पुरुष कों चोर दुष देते हैं॥
तैसे अज्ञानी कों इंद्रीयां दुष देती हैं॥ अर जिसकों आ
त्मपद विषे स्थित भई है॥ तिसकों इंद्रीयां दुष नहीं
देती॥ जैसे ध्रड राजा के शत्रु भी मित्र हो जाते हैं॥ तैसे
ज्ञानवान की इंद्रीगण मित्र हो जाते हैं॥ अर जिस पु
रुष कों देह विषे स्थित बुधि है॥ अर इंद्रीयों के वि
षयों की सेवना करता है॥ तिस कुं उवर्ड दुष प्राप्त होते
हैं॥ हे रामजी आतमा अर शरीर का संबंध कछु नहीं
है परस्पर विलक्षण स्वभाव हैं॥ जैसे तम अर प्र

काष्ठ विलक्षण स्वभाव हैं॥ तैसे आत्मा अरु देह का प-
रस्पर विलक्षण स्वभाव है॥ आतमा सर्व विकारों तें र-
हित नित्य मुक्ति है॥ अरु उदय अस्त तें रहित सभ सों
निर्लेप है॥ अरु जिउं का तिउं प्रकाश रूप भगवान आ-
तमा सतरूप है॥ तिसका संबंध किस साथ होवे॥ देह
जड अरु असत अज्ञान रूप तुच्छ विनासी अरु [illegible]
रूप है॥ तिसका संयोग किस भांति होवे॥ आतमा चेतन
स्वज्ञान सत्य प्रकाश रूप है॥ तिसका देह साथ कैसे सं-
योग होवे॥ अज्ञान करके देह अरु आत्मा का संयोग भा-
सता है॥ सम्यक ज्ञान करके संयोग का अभाव भासता
है॥ हे रामजी इह मैं निपुण (चतुर) वचन कहे हैं॥ तिसका वारं-
वार अभ्यास करें॥ तो संसार मोह का अभाव हो जावे॥
जब संसार का कारण मोह निवर्त हूया॥ तब बहुड़ इस-
दा भाव न होवेगा॥ अज्ञान रूपी निद्रा तें जब लग दृढ़ हो-
य कर नहीं जागता॥ तब लग बहुड़ आवर्ण हो जाता है॥
जैसे निद्रा तें जागे बहुड़ निद्रा घेर लेती है॥ जब दृढ़
कर जागे॥ तब बहुड़ नहीं घेरती॥ तैसे दृढ़ अभ्यास क-
र अज्ञान निवर्त हूया॥ बहुड़ आवर्ण न होवेगा॥ तां ते
मोह दुख निवर्त के अर्थ दृढ़ अभ्यास करउ॥ हे रामजी
आतमा देह के गुण कों अंगीकार नहीं करता॥ जो देह
के गुण ग्रहण करे॥ तब आतमा भी जड हो जावे॥ सो तो स-
दा ज्ञान रूप है॥ अरु देह जो आतमा का गुण परमारथ
तें अंगीकार करे॥ तब देह भी चेतन्य हो जावे॥ सो तो जड
ही रूप है॥ इसकों अपणा ज्ञान कछु नहीं॥ जब जिउं का
तिउं इसका ज्ञान न होवे॥ तब शरीर तुच्छ जड भासे॥ हे राम
जी आतमा अरु देह का संयोग संबंध नहीं॥ बहुड़ इससा-
थ मिल कर खपा दुख कों ग्रहण करणा॥ इसतें अवर मू-
र्खता क्या है॥ एही मूर्खता है॥ जो कछु भी इनका समान
लक्षण होवे॥ तो संबंध भी होवे॥ जिसका समान लछण
कछु न होवे॥ तिनका संबंध कैसे होवे॥ आतमा चेतन्य है

8 देह जड है ॥ आत्मा सतस्वरूप है ॥ देह असतरूप है ॥ आ
त्मा प्रकाशरूप है ॥ देह तमरूप है ॥ आत्मा निराकार
है ॥ देह साकार है ॥ आतमा सूक्ष्म है ॥ देह स्थूल है ॥ बडु
ड आत्मा अर देह का संबंध कैसे होवे ॥ जो संयोग न
दुःष ही तो किसका होवे ॥ जैसे सूक्ष्म स्थूल का संयोग नहीं
होता ॥ जैसे दिन अर रात्रि का संयोग नहीं होता ॥ जैसे ज्ञा
न अर अज्ञान का संयोग नहीं होता ॥ जैसे धूप अर छा
या का मिलाप नहीं होता ॥ जैसे सत अर असत का सं
योग नहीं होता ॥ तैसे आतमा अर देह का संयोग नहीं
होता ॥ अज्ञान करके तदात्मिक मिल्ये हूये भासते हैं ॥
पर संबंध कछु नहीं ॥ जैसे वायु अर आकाश का संयो
ग नहीं होता ॥ तैसे इन का संयोग नहीं होता ॥ देह के सु
ख दुख कर आत्मा को सुखी दुखी जानना मिथ्या भ्रम
है ॥ जरा मरण सुख दुख भाव अभाव आत्मा विषे रं
चक मात्र भी नहीं ॥ जब देह विषे अभिमान होता है
तब ऊंच अर नीच जन्मों को पावता है ॥ वास्तव तें क
छु नहीं ॥ केवल ब्रह्म सत्ता अपणे आप विषे स्थित है
तिस विषे विकार कोऊ नहीं ॥ जैसे सूर्य का प्रतिबिंब
जल विषे होता है ॥ अर जल के हलणे कर प्रतिबिंब
हलता भासता है ॥ तैसे देह के सुख दुख कर आत्मा वि
षे सुख दुःख विकार मूर्ख देखते हैं ॥ पर आत्मा सदा
निर्लेप है ॥ अर जब सम्यक यथार्थ आत्मज्ञान हो
वे ॥ तब देह विषे स्थित भी भ्रम कों न प्राप्त होवे ॥ हे राम
जी जब यथार्थ ज्ञान होता है ॥ तब सत कों सत जा
णता है ॥ अर असत कों असत जाणता है ॥ जैसे दी
पक हाथ विषे होता है ॥ तब सत असत पदार्थ भास
आवते हैं ॥ तैसे ज्ञान कर सत असत पदार्थ जाणी
ता है ॥ अर अज्ञान कर मोह विषे भ्रमता है ॥ जैसे वायु
विषे आम्र कूया पत्र पड़ा भ्रमता है ॥ तैसे मोहरूपी वा
यु कर अज्ञानी जीव भ्रमता है ॥ स्थ्य कदाचित नहीं

होता॥ अर जैसे यंत्र की पुतली तागे कर के पडी चे
ष्टा करती है॥ तैसे अज्ञानी जीव प्राणों रूपी तागे क
र पडे चेष्टा करते हैं॥ जैसे नट्या अनेक स्वांगों कों
धारता है॥ तैसे कर्मों कर जीव अनेक शरीरों कों
धारता है॥ जैसे पेषणे की पुतली त्रिण काष्ट फला
दिक कों लेती त्यागती है॥ अर तिर्नन करती है॥
तैसे इह प्राणी पडे चेष्टा करते हैं॥ शब्द स्पर्श रूप
रस गंध कों ग्रहण करते हैं॥ जैसे पुतलीयां जड हैं
तैसे इह जड हैं॥ अर जो कहीये इन कूं विषेशण
हैं॥ तो जैसे लुहार की षल होती उह स्वासों कों लेती
त्यागती है॥ तैसे इह जीवनी पडे चेष्टा करते हैं॥ हे
राम जी अपणा आप जो वास्तव स्वरूप है॥ सो आ
प्त है॥ तिस के प्रमाद मोह कर कै स्वपणे ता कों प्रा
प्त होते हैं॥ जैसे लुहार की षल वृथा स्वासों कों ले
ती है॥ तैसे इन की चेष्टा व्यर्थ है॥ इन की चेष्टा अ
र बोलणा अनर्थ के निमित्त है॥ जैसे धनुष तें जो बा
ण निकसता है॥ सो हिंसा के निमित्त है॥ अवर कछु
कारिज सिध नहीं होता॥ तैसे अज्ञानी की चेष्टा अ
र बोलणा जो है॥ सो अनर्थ दुष के निमित्त है॥ सुष
के निमित नहीं॥ तिन की संगत भी कल्याण के नि
मित नहीं॥ जैसे जंगल का टुंडा वृक्ष होता है॥ तिन
की छाया अर फल की इच्छा करणी व्यर्थ है॥ तिस
तें कछु फल प्राप्त नहीं होता॥ अर विश्राम के निमि
त्त छाया भी नहीं प्राप्त होती॥ तैसे अज्ञानी जीवों की
संगत तें सुष नहीं प्राप्त होता॥ तिन कों देवणा भी व्य
र्थ है॥ जैसे चिकड विषे घृत पाया व्यर्थ होता है॥
तैसे मूरिष कों दान दीया व्यर्थ होता है॥ अर तिन के
साथ बोलणा भी व्यर्थ है॥ जैसे जंगल विषे स्वान को
बुलावणा निफल है॥ तैसे उन के साथ बोलणा नि

१
बुध

फलहै ॥ हे रामजी जो अज्ञानी जीव हैं ॥ सो संसारसमुद्र
विषे आवते जन्मते मरते हैं ॥ शरीर विषे आस्था क
रते हैं ॥ अरु तिसके संबंधी पुत्र दारा बांधव बधू नादि
कों विषे ममत्व करते हैं ॥ इस मिथ्या दृष्टि करके दुष
पावते हैं ॥ मुक्ति कदाचित नहीं होते ॥ काहे तें जो अना
त्मा विषे आत्मबुध कों त्याग नहीं करते ॥ अरु मम
त्व बुध विषे बंधे रहते हैं ॥ इसी तें मुक्ति नहीं होते ॥ हे
रामजी जो अज्ञानी हैं ॥ सो अवस्तु पदारथ कों देष
ते हैं ॥ अरु स्वस्वरूप को ओर तें अंध हैं ॥ इस कर पर
मारथ धन तें बेमुष रहते हैं ॥ नर्क का सार जो इस्त्री
आदिक हैं ॥ तिन विषे प्रीत करते हैं ॥ अरु तिन कों देष
कर प्रसन्न होते हैं ॥ जो नर्क का साधन है ॥ जैसे मेघ कों
देषकर मोर प्रसंन होता है ॥ तैसे इस्त्री आदिक कों
देषकर प्रसंन होते हैं ॥ हे रामजी मूरिष के मारणे नमि
त स्त्रीरूपी विष की बली है ॥ अरु नेत्ररूपी तिसके फ
ल हैं ॥ अरु होठरूपी पत्र हैं ॥ स्तनरूपी तिसके गुछे हैं ॥
अरु अज्ञानीरूपी भवरे तहां विराजमान होते हैं ॥ अ
रु नाश कों पावते हैं ॥ अरु मत्सरीरूपी तलाव है ॥ अरु
हर्षरूपी तिस विषे कमल हैं ॥ अरु चित्तरूपी भ्रमर
तहां सदा रहता है ॥ अरु अज्ञानरूपी नदी है ॥ इषरू
पी तिस विषे लहरी हैं ॥ अरु त्रिस्नारूपी बुदबुदे हैं ॥ ऐ
सी जो नदी है ॥ सो बडवारूपी मरण अग्नि विषे जा पडे
गी ॥ हे रामजी जब जन्म लेता है ॥ तब महां गर्भ अग्नि तें
जलता हूया निकसता है ॥ तब बालिक महां मूरिष अ
वस्था निसत्ते दुषी होता है ॥ अरु जब जोबन अवस्था
कों प्राप्त होता है ॥ तब विषयऊं कों सेवता है ॥ सो भी दुष
का कारण होता है ॥ बहुड़ वृध अवस्था कों प्राप्त होता
है ॥ तब शरीर निरसकत हो जाता है ॥ अरु अंतर तें तृ
ष्णां पडी जलावती है ॥ इस प्रकार जन्ममरण अवस्था
विषे पडे भटकते हैं ॥ हे रामजी संसाररूपी कूप है ॥ ति

सविषेमोहरूपीमाला है॥ ऽऽअरतृष्णांवासनां
रूपीरस्सडीहै॥ तिससाथजीवरूपीघटबांध्ये
कूप्येऽऽअर्धऽऽअरऊर्धकोंभ्रमतेहैं॥ ऽऽअरज्ञानवा
नकोंसंसारकोऊडुषनहींदेता॥ गोपदकीन्यां
ईतुछहोजाताहै॥ ऽऽअज्ञानीकोंसमुद्रवततरणा
कठनहोताहै॥ ऽऽअपणेऽऽअंतरआत्मकोंदेषताहै
तिकसनहींसकता॥ थोडाभीउसकोंबडूतहो
जाताहै॥ जैसेपंखेरूकोंपिंजरेविषेबंधमारि
गाहोताहै॥ ऽऽअरूजैसेकोलूकेबलदकोंघरवि
षेबंधमाविंगहोताहै॥ तैसेऽऽअज्ञानीकोंतुछसं
सारबंधहोभासताहै॥ हेरामजीजिसजगतकों
रमणीकजाणकरपदारथोंकीइछाकरताहै
सोसभपंचभूतकपदार्थहैं॥ मोहककेंतिनकों
सुंदरजानताहै॥ ऽऽअरतिनविषेप्रीतकरताहै॥
स्थिरजाणताहै॥ सोऽऽअनर्थकेनमितहोतेहैं॥ हे
रामजीऽऽअज्ञानरूपीचंद्रमाउदेहूयाहै॥ तिस
करलोगरूपीवृछपुष्पहोतेहैं॥ जन्मकीपरंपरा
रसकोंपावतेहैं॥ ऽऽअरकर्मरूपीजलकरसंचीते
हैं॥ पुन्यऽऽअरपापरूपीमंजरीहोताहै॥ ऽऽअरऽऽअज्ञा
नरूपीचंद्रमाहै॥ ऽऽअरवासनारूपीजलसोईन
याऽऽअंमृत ऽऽआसारूपीचकोरतिसकोंदेषक
रप्रसंनहोताहै॥ ऽऽआसारूपीकमलनीहै॥ ऽऽअज्ञा
नीरूपीभ्रमरेतिसऊपरबैठकरप्रसंनहोते
हैं॥ तातैंसभजगतऽऽअज्ञानकरकेंरमणीकभा
सताहै॥ हेरामजीइहजगतसभऽऽअज्ञानककें
स्थितहै॥ तिसऽऽअज्ञानकाजोप्रवाहहै॥ सोसुण
ऽऽअज्ञानरूपीचंद्रमापूरणहोकरस्थितहोता
है॥ तबकामनारूपीषीरसमुद्रउछलताहै॥
ऽऽअरऽऽअनेकतरंगोंकोंपसारताहै॥ तिसकेरस

करत्रिश्नारूपीमंजरीपुष्टहोतीहै ॥ अरकामक्रोध
लोभमोहरूपीचकोरतिसकोंदेषकरप्रसन्नहोते
हैं ॥ अरदेहअभिमानरूपीरात्रकेनिवर्तहूये ॥ अरु
विवेकरूपीसूर्यकेउदेहूये ॥ अज्ञानरूपीचंद्रमाका
प्रकाशनिवर्तहोजाताहै ॥ हेरामजीअज्ञानकरकेइ
हजीवभ्रमतेहैं ॥ अरचेष्टाइनकीविपर्यैहोगईहै ॥ जो
तुच्छनीचदुषरूपपदारथहैं ॥ तिनकोंदेषकरसुषदा
इकरमणीकजाणताहै ॥ स्त्रीकोंदेषकरप्रसंनहोताहै
कवीसरकहतेहैं ॥ इसकेकपोलकमलवतहैं ॥ अर
नेत्रभ्रमरवतहैं ॥ होठहसलेवालेहैं ॥ अरवलीकीन्यां
ईभुजाहैं ॥ अरकंचनकेकलसवतस्तनहैं ॥ उदरवक्षा
स्थलबहुतसुंदरहैं ॥ उरुजंगास्थलकेलेकेथंभवत
हैं ॥ इत्यादिकजिसकीउस्ततकरतेहैं ॥ सोइस्त्रीरक्तमां
सकीपुतलीहै ॥ कपोलभीरक्तमांसहैं ॥ होठभीरक्तमां
सहैं ॥ भुजाविषकेवहेटासवतहैं ॥ स्तनभीरक्तमांसहैं
अवरभीसर्वसरीररक्तमांसअस्थिकापूर्णएकबुत
बणाहै ॥ इसकोंजोरमणीकजाणतेहैं ॥ सोमोहकरमू
रषमोहितभएहैं ॥ अपणेनासकेनमितइसकीइछा
करतेहैं ॥ जैसेसर्पणीसाथकोउहितकरेगा ॥ सोनास
ताकोंप्राप्तहोवेगा ॥ तैसेइससाथहितकीयेंनासहोवे
गा ॥ जैसेकदलीवनकाहस्तीमहाबलीकामकरकेनी
चगतिकोंपावताहै ॥ अभिमानकोंप्राप्तहोताहै ॥ अंकुश
कोंसहताहै ॥ अरसंगलपडतेहैं ॥ सोएकहस्तनीकेहि
तकरऐसीगतिकोंप्राप्तहोताहै ॥ तैसेइहजीवइस्त्रीकी
इछाकरकेअनेकदुषोंकोंप्राप्तहोतेहैं ॥ जैसेदीपककों
पतंगरमणीकजाणकरतिसमोंप्रवेशकरताहै ॥ अर
नासकोंप्राप्तहोताहै ॥ तैसेइहजीवइस्त्रीकीइछाकरताहै
तिसकेसंगकरनासकोंप्राप्तहोताहै ॥ अरलछमीकों
आश्रयकरकेजोसुषकीइछाकरतेहैं ॥ सोभीसुषीन
होवेगा ॥ जैसेपहाडदूरतेंसुंदरलागताहै ॥ तैसेइहभी

सुंदर देषणेमात्र लागती है॥ जैसें ऊंगकों आका
यककें पार ऊया चाहे॥ सो न होवेगा॥ तैसें लक्ष्मी
कों आश्रयक कें सुषकी इछा करै सो न होवेगा
अंत दुषकों प्राप्त होवेगा॥ जब लक्ष्मी प्राप्त होती
है॥ तब अनर्थ पापों कों करणे लागता है॥ अरुः
षऊ का पात्र होती है॥ जब जाती है तब दुषों कों दे
जाती है॥ तिसकर जलतार हता है॥ हे रामजी जग
त विषे जो सुषों की इछा करै॥ सो न होवैगा॥ प्रथम
जन्म लेता है॥ तो नीडष साथ जन्म लेता है॥ बऊड
जन्म कर मूत्रि विष नीच बालिक अवस्था कें प्राप्त हो
ता है॥ तिस विषे विचार कछु नहीं होता॥ तिसकर
दुष पावता है॥ अर शक्ति कछु नहीं होती॥ जब यौ
वन अवस्था रूपी रात्रि आवती है॥ तब तिस विषे
काम क्रोध लोभ मोह रूपी निशाचर आन विचर
ते हैं॥ अर त्रिष्णा रूपी पिशाचनी आन विचरती है
विवेक रूपी चंद्रमा उदे नहीं होता॥ तब अंधकार
विषे क्रीडा करते हैं॥ हे रामजी जोबन अवस्था रूपी
वरषाकाल है॥ तिस विषे बुधादिक नदीयां मलि
न भाव कों प्रापुत होतीयां हैं॥ अर काम रूपी मेघ गा
र्जता है॥ अर तृष्णा रूपी मोरनी तिसकों देषकर प्रस
न्न होती है॥ अर नृत्य करती है॥ अर लोभ रूपी दादु
र जाग आवता है॥ अर शब्द करता है॥ इत्यादिक अ
नर्थों का बीज होता है॥ बहुड जोबन अवस्था रूपी
चहे कों जरा रूपी बिल्ली भोजन कर जाती है॥ अंगम
हा जरजरीभूत हो जाते हैं॥ शरीर अशक्ति हो जाता
है॥ त्रिष्णा बढ जाती है॥ अंतर तें पडा जलता है॥ बहु
ड मृतु रूपी सिंह जरा रूपी हरण कों भोजन कर ले
ता है॥ इस प्रकार उपजता अर मरता है॥ काल रूपी नि
यांमक की वेलनी कर के आसा रूपी रससी साथ बां
धा ऊया घटी यंत्र की नियांई परा लटकता है॥ कब
ऊं अधह कों जाता है॥ कब ऊं ऊर्ध कों जाता है॥ भ्रांति कों

॥ कदाचित नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ब्रह्मंड रूपी एक रू
क्ष है ॥ अरु जीव रूपी तिस कों पत्र लागे हैं ॥ सो कर्म
रूपी वायु कर हलते हैं ॥ अरु अज्ञान रूपी तिस विषे
जडता है ॥ अरु चित रूपी एक उचा वृक्ष है ॥ तिस ऊप
र लोभादिक रूपी घुघू आन बैठते हैं ॥ अरु जगत
रूपी ताल है ॥ तिस विषे शरीर रूपी कमल हैं ॥ तिन
ऊ विषे जीव रूपी भ्रमरे आन बैठते हैं ॥ अरु काल
रूपी तिन कों आइ कर भोजन कर जाते हैं ॥ हे रामजी
जनता रूपी हिरण पंखी है ॥ आसा रूपी फासी साथ
बांधे हूये हैं ॥ वासना रूपी सीषा विषे पडे हैं ॥ रागद्वे
ष रूपी अग्नि साथ पके हूये काल रूपी पुरुष के
मुष विषे डाला करते हैं ॥ अरु जनता रूपी पंषी उ
डते फिरते हैं ॥ सो कोऊ दिन हैं ॥ जब काल रूपी बधि
क जाल पसारेगा ॥ तब फसा लेवैगा ॥ हे रामजी संसार
रूपी ताल है ॥ अरु जीव रूपी तिस विषे मछी हैं ॥ काल
रूपी बगला तिन कों भोजन पडा करता है ॥ अरु काल
रूपी कुंभार है ॥ जनता रूपी मृतका के बासन करती
है ॥ बडे डबी ग्रही फट जाते हैं ॥ अरु जीव रूपी नदी
है ॥ कर्म रूपी तरंगों कों पसारती है ॥ सो काल रूपी बा
डवाग्नि महि जाइ पडती है ॥ अरु जगत रूप हस्ती
है ॥ जीव रूपी मोती तिस के मस्तक विषे हैं ॥ तिस हस्ती
कों काल रूपी सिंह भोजन कर जावैगा ॥ सो काल महा
बलष्ठक है ॥ जिस ने ब्रह्मंडों कों भोजन कीया है ॥ अरु क
रता है ॥ अरु त्रिप्त नहीं होता ॥ जैसे अग्नि घृत कों अंगीकू
ती करत त्रिप्त नहीं होता ॥ तैसे काल जीवों के भोजन कर
त्रिप्त कदाचित नहीं होता ॥ हे रामजी एक निमेष विषे
उपजे हैं ॥ अरु उन्मेष विषे लीन हो जाते हैं ॥ सभन के अ
भाव हूये जो शेष रहता है ॥ सो कहे है ॥ बडे डरुढ़ नाति
वृत्त हो जाता है ॥ सभन के पाछे एक परम तत्व ब्रह्म सत्ता र
हिता है ॥ हे रामजी जनता कछु जानता है ॥ सो अज्ञान कर के
नासता है ॥ जन्म मरण बालिक जोबन बृधादिक विका

हस्ती

रअज्ञान ही कर भासते हैं ॥ अज्ञान के नष्ट हूयें सब
नष्ट होजाते हैं ॥ अरु जबलग आत्मविचार नहीं प्रा
प्त भया ॥ तबलग अज्ञान रहिता है ॥ जब आत्मवि
चार उपजता है ॥ तब अज्ञानरूपी रात्रि निवर्त्त होजा
ती है ॥ केवल ब्रह्मपद भासता है ॥ ॥ इति श्री निर
वाणप्रकर्णे अज्ञानमहातमवर्णनं नाम सर्गः
॥ ६ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह जो संसार
बन है ॥ सो चैतन्यरूपी पर्वत के सिंहर ऊपर स्थित है ॥ ति
स विषे अविद्यारूपी वल्ली बढी है ॥ अरु बिगास को प्राप्त
भई है ॥ वहे पर्वत वल्ली विषे गांडी हैं ॥ अरु सुख दुख भावा
भावना अज्ञान इस के पत्र हैं ॥ अरु फूल फल हैं ॥ जहां
अविद्या सुखरूप होइ कर स्थित भई है ॥ तहां ऊंचे सुख
को भुगावती है ॥ तिसी के सत भाव को प्राप्त होती है ॥ अ
रु जहां दुखरूप होय कर स्थित होती है ॥ तहां दुखरूप भा
सती है ॥ सोई सुख दुख इस के फल गुछे हैं ॥ दिनरूपी फ
ल हैं ॥ अरु रात्रिरूपी भमर हैं ॥ जन्मरूपी अंकुर हैं ॥ अ
रु भोगरूपी रस कर पूरण हैं ॥ जब विचाररूपी घुण
अविद्यारूपी वृक्ष को षाणे लागता है ॥ तब नष्ट होजा
ती है ॥ जबलग विचाररूपी घुण नहीं लागा ॥ तबलग
दिन दिन बढती जाती है ॥ अरु दृढ होती है ॥ हे रामजी
अविद्यारूपी वल्ली है ॥ अरु मूल इस का संवित फुरणा है ॥
तिस ही कर पसर रही है ॥ ताना गाए इस के किसी ओर
फूल हैं ॥ चंद्रमा सूर्य इस का प्रकाश है ॥ दुरुत कर्मरूपी
नरक इस साथ कंटक हैं ॥ अरु पुन्यरूपी कर्म स्वर्ग इस
के फुल प्रकाशते हैं ॥ अरु सुख दुखरूपी फल लागते हैं ॥
जीवरूपी इस के पत्र हैं ॥ अरु कालरूपी वाइ कर रहजते
हैं ॥ केई जीर्ण होय कर गिड पडते हैं ॥ पृथिवीरूपी त्वचा
है ॥ पर्वत गांडी हैं ॥ मर्णरूपी इस के छिद्र हैं ॥ जन्मरूपी अं
कुर हैं ॥ मोहरूपी कलीयां महासुंदर गोर अंगना हैं ॥ तिस
कर जीव मोहित होते हैं ॥ जैसे इस्त्रीयों को देखकर मोहित
होते हैं ॥ अरु सप्त समुद्रों के जल कर रस पीवती है ॥ तिस क

12 रंपुष्ट होती है ॥ तिस बल्ली विषे एक विषकर भरी
सर्पणी रहती है ॥ जो कोऊ इसके निकिट जाता
है ॥ तिसको दंसती है ॥ तब उह मूर्छी होयकर गिड़
पड़ता है ॥ संसार रूपी मूर्छा कों देवणहारी त्रिष्णा
रूपी सर्पणी है ॥ सो बल्ली अन्यथा नष्ट नहीं होती
जबे विचार रूपी घुण इसकों लागे ॥ तब नष्ट हो जा
ती है ॥ हे रामजी जेता कछु तुजकों प्रपंच भासता
है ॥ सो अविद्या रूप है ॥ कहूं इह अविद्या जलरूप
हूई है ॥ कहूं पहाड़ पर्वत ॥ कहूं दैत्य कहूं पृथिवी
हूई है ॥ कहूं चंद्रमा कहूं सूर्य ॥ कहूं तारे ॥ कहूं तम
कहूं प्रकाश ॥ कहूं तेज अरूप वेद हूई है ॥ कहूं ते
जतम तें रहित है ॥ कहूं पाप कहूं पुंन्य ॥ कहूं स्थावर
मूढ रूप ॥ कहूं अज्ञान कर पीनता होती है ॥ कहूं
ज्ञान कर आपही छीण हो जाती है ॥ कहूं तप दाना
दिकों कर छीण हो जाती है ॥ पापादिकों कर [illegible] वृ
ध हो जाती है ॥ कहूं सूर्य होयकर प्रकाशती है ॥ क
हूं स्थाणुरूप होती है ॥ कहूं नर्क विषे लीन है ॥ क
हूं स्वर्ग निवासनी है ॥ कहूं देवता होती है ॥ कहूं रु
म होती है ॥ कहूं विष्णुरूप होकर स्थित भई है ॥ क
हूं ब्रह्मारूप होयकर स्थित भई है ॥ कहूं रुद्ररूप
हूई है ॥ कहूं अग्निरूप ॥ कहूं पृथ्वीरूप भई है ॥ क
हूं आकाश ॥ कहूं काल भूत भविष्यत वर्तमान
भई है ॥ हे रामजी जो कछु देषणे मों आवता है ॥ सो म
हामहिमा इसी की है ॥ ईश्वर तें आदि तृणपर्यंत सर्व
अविद्यारूप है ॥ जो इहु जगजाल तें प्रतीत है ॥ तिसकों
आतमज्ञानी जाण ॥ ॥ इति श्री निर्वाण प्रकर्णे
अविद्यालताविलासवर्ननं नाम सर्गः ॥ ७ ॥ श्री
रामोवाच ॥ हे ब्राह्मण हरि विष्णु अरु हर रुद्र वा दि
क तो अष्य अकार आकाश जानत हैं ॥ इनको अविद्या

कतुम कैसे कहते हो ॥ इह सुण कर मुझ कों संश
य उत्पति भया है ॥ **श्रीवशिष्ठोवाच** ॥ हे रामजी
प्रथम अविद्या अर तत्त्व श्रवण कर ॥ जो किस कों
कहते हैं ॥ जो अविद्यमान होवे ॥ अर विद्यमान भा
से सो अविद्या है ॥ अर जो सदा विद्यमान है ॥ तिस
कों तत्त कहते हैं ॥ हे रामजी शुध संवित कलनां
तें रहित चिन्मात्र आत्मसत्ता है ॥ सो तत्त है ॥ तिस वि
षे अहं उल्लेख कर जो संवेदन कलनां फुरणरूप
फुरता है ॥ सो चिन्मात्र संवित का आभास है ॥ सोई फु
रकर सूक्ष्म स्थूल जंगम स्थावर भाव कों आप्त भई है ॥ स्थान
भेद कर बहुड बेऊड डुही थड स्पंद ककै मनत्व
भाव कों आप्त भई है ॥ अर सातिक राजस तामसी ती
नों उसके आकार हूये हैं ॥ सो अविद्या त्रिगुण प्रकि
तें धर्मणी होत भई ॥ अर तीन गुन जो तुझ कों कहे हैं
सो भी एक एक गुण तीन प्रकार हूया है ॥ अविद्या के
गुण नव प्रकार के भेद कों आप्त भये हैं ॥ जेतीक बहु तु
झ कों द्रस्य भासती है ॥ सो अविद्या के नवऊं गुणों वि
षे हैं ॥ रिषीश्वर मुनीश्वर सिध भाग विद्याधर देव
ता जो हैं ॥ सो अविद्या का सातक भाग हैं ॥ तिस साति
क के विभाग विषे भाग सातिक तामसी हैं ॥ अर वि
द्याधर सिध देवता मुनीश्वर इह अविद्या के साति
क भाग विषे सातिक राजस हैं ॥ अर हरि हरादिकू
सातिक सातिकी हैं ॥ हे रामजी सातिक जोग कि र्त
भाग है ॥ तिसकर तत्वज्ञ जो हूये हैं ॥ सो मोह कों नहीं
प्राप्त होते मुक्ति होते हैं ॥ सो हरि हरादिक हैं शुध सा
त्विक सदा मुक्तिरूप होकर जगत विषे स्थित हैं ॥ ज
बलग जगत विषे हैं ॥ तबलग जीवन्मुक्ति हैं ॥ जब
विदेहमुक्ति हूये ॥ तब परमेश्वररूप होते हैं ॥ हे रा
मजी एक अविद्या के दो रूप हैं ॥ एक अविद्यारूप

अघटित घटना पटीयसी

बढ़ड तें ही विद्यारूप होती है॥ जैसे बीजहीं फलता
कों प्राप्त होता है॥ ऽअर बीजहीं फलंभावकों प्राप्त
होता है॥ जैसे जलतें बुदबुदा उठता है॥ तैसे ऽअवि
द्यातें विद्या उपजती है॥ ऽअर विद्याकर ऽअविद्या ली
न होती है॥ जैसे काष्टतें ऽअग्नि उपज कर काष्ट कों द
ग्ध करती है॥ तैसे विद्या ऽअविद्यातें उपज कर ऽअविद्या
कों नास करती है॥ ऽअर वास्तव तें सत्चिदाकाश है॥
जैसे जल बिषे तरंग कल्पना मात्र हैं॥ तैसे विद्या ऽअवि
द्या भावना मात्र है॥ इसकों त्याग कर सेष ऽआत्मसत्ता
रहती है॥ विद्या ऽअर ऽअविद्या ऽआपस मों प्रतियोगी हैं॥
जैसे तम ऽअर प्रकाश होता है॥ तैसे इन दोनों कों त्या
ग कर ऽआत्मसत्ता बिषे स्थित हो॥ विद्या ऽअर ऽअविद्या
कल्पना मात्र हैं॥ विद्या के ऽअभाव का नाम ऽअविद्या है॥
ऽअर ऽअविद्या के ऽअभाव का नाम विद्या है॥ इह प्रतियो
गी मिथ्या कल्पना उठी है॥ जब विद्या उपजती है॥ त
ब ऽअविद्या कों नाश करती है॥ पाछे ऽआप भी लीन हो
जाती है॥ जैसे काष्टतें उपजी ऽअग्नि काष्ट कों जलाय
कर ऽआप भी शांति हो जाती है॥ तैसे ऽअविद्या कों नाश
कर के विद्या ऽआप भी लीन हो जाती है॥ तिसतें शेष
रहता है॥ सो ऽअशब्द पद है॥ सो सर्वव्यापी है॥ जैसे ब
ट बीज बिषे पत्र फल फलदास होते हैं॥ तैसे सर्व वि
षे एक ऽअनस्यूत सत्ता व्यापी है॥ सो ब्रह्मतत्व सर्वश
क्ति है॥ सर्वशक्ती का संपन्न है॥ ऽअर ऽआकाशतें भी सू
क्ष्म है॥ जैसे सूर्य की कांति बिषे ऽअग्नि होती है॥ जैसे दूध
बिषे घृत होता है॥ तैसे सब जगत बिषे ब्रह्म व्यापि रहा
है॥ जैसे दूध कों मथे बिनां घृत नहीं निकसता॥ तैसे
विचार बिनां ऽआतमा नहीं भासता॥ जैसे ऽअग्नि तें चि
णगारे निकसते हैं॥ ऽअर सूर्य तें किरणों निकसती
हैं॥ तैसे इह जगत ऽआतमा का कंचनरूप है॥ जैसे घट
के नास हूये घटाकास ऽअविनासी है॥ तैसे जगत के
ऽअभाव तें भी ऽआतमा ऽअविनासी है॥ हे रामजी जैसे

चंबक पथर की सत्ता करके जड लोहा चेष्टा करता
है॥ पर चंबक सदा अकरता ही है॥ तैसे आतमा की
सत्ता करके जगत देहादिक चेष्टा करते हैं॥ चेतन
होते हैं॥ पर आतमा सदा अकरता है॥ इस जगत का
बीज चैतन्य आत्मसत्ता है॥ तिस विषे संवित संवे
दनादिक शब्द भी कल्पनामात्र हैं॥ जैसे जल कों कही
ये बुद्बुद समुंदर है चंचल है॥ सो जल ही जल है॥ तैसे
संवेदनादिक सब चैतन्यरूप हैं॥ जहां न किंचिन है
न अकिंचिन है॥ सो तेरा सरूप है॥ ॥इति श्री वि
र्वाण प्रकरणे अविद्या निराकरणं नाम सर्ग
॥८॥ ॥श्री वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी स्थावर जंगम
जेता कछु जगत तुजकों भासता है॥ सो अधिभौत
कताकों नहीं प्राप्त भया॥ सच्चिदाकाशरूप है॥ ति
स विषे कछु भाव अभाव की कल्पना नहीं॥ अर जी
वादिक भेद भी नहीं॥ हमकों तो भेद कल्पना कछु न
ही भासती॥ जैसे जेवडी विषे सर्प का अभाव है॥ तैसे
ब्रह्म विषे भेद कल्पना का अभाव है॥ हे रामजी आ
तमा के अज्ञान कर भेद कल्पना भासती है॥ आत
मा के ज्ञान तें भेद कल्पना मिट जाती है॥ सो सर्व संप
दा का अंत है॥ अर शुद्ध चैतन्य विषे चित का संबंध
होता है॥ तब इसी का नाम अविद्या है॥ जो पुरुष चित
को उपाध तें रहित चितनमात्र है॥ सो सरीर के नास कूं
ये नाश नहीं होता॥ अर शरीर के उपजे तें उपजता न
ही॥ शरीर के उपजले अर विनसले विषे सदा एक
रस ज्यों का त्यों स्थित है॥ जैसे घट के उपजले अर वि
नसले विषे आकाश ज्यों का त्यों होता है॥ तैसे शरीर
के भावाभाव विषे आतमा ज्यों का त्यों है॥ जैसे बालिक
दौडता है॥ तिसकों सूरज भी दौडता भासता है॥ अर
सूरज ज्यों का त्यों स्थित है॥ अर सूरज ज्यों का
त्यों स्थित होले विषे स्थित भासता है॥ तैसे चित की चंचलता करके सूरिज आतमा
कों व्याकुल देषते हैं॥ अर चित की अचलता विषे अ
चलता देषते हैं॥ पर आतमा सदा ज्यों का त्यों है॥ जैसे

बबूहाऽअपणीतंतकरकेऽआपवेष्टितहोताहै॥
तिकसनहींसकता॥तैसेइहजीवऽआपणीवास
नाकरकेऽआपबंधमानहोताहै॥श्रीरामोवाच
॥हेभगवनऽअत्यंतमूढताकौंप्राप्तहोकर
स्थावरादिकतनकौंपाइघनस्थितहूयेहैं॥ति
नकीवासनाकैसेहोतीहै॥वशिष्ठोवाच॥हे
रामजीस्थावरजोजीवहैं॥सोऽगमनसत्ताकोंनहीं
प्राप्तहूये॥ऽरकेवलमनेऽअवस्थाविषेभीतिष्टि
तनहीं॥मध्यऽअवस्थाविषेहैं॥उनकीपुर्यष्टकासु
षुप्तरूपहै॥सोकेवलदुषकाकारणहै॥उनकामू
ननष्टनहींहूया॥सुषुप्तअवस्थाविषेजडहूये
स्थितहैं॥सोकालकरजागेंगे॥ऽअबउनकीसत्ता
मूकजडहोयकरस्थितहै॥सत्तामात्रस्थितहै॥
श्रीरामोवाच॥हेदेवदेवसोंविषेश्रेष्टजोउन
कीसत्ताऽअद्वैतरूपहोकरस्थावरविषेस्थितहै
तोमुक्तिऽअवस्थातिनकेनिकटहूई॥एहीसिध
हूया॥श्रीवशिष्ठोवाच॥हेरामजीमुक्तिकैसेनि
कटहोतीहै॥मुक्ततबहोताहै॥जोबुधपूर्वकवस्त
कौंविचारीये॥जबयथार्थअर्थदृष्टऽआवे॥ज
बसत्तासमानकाबोधहोवे॥तबकेवलऽआत्मप
दकोंप्राप्तहोवे॥हेरामजीजबज्योंकात्योंपदारथ
जाणकरवासनाकौंत्यागकरे॥सोउत्तमहै॥तब
सत्तासमानपदप्राप्तहोवे॥प्रथमऽअध्यातमशास्त्र
कौंविचारे॥तिसविषेजोसारहै॥तिसकौंवारंवार
भावनाकरे॥तिसकरजोप्राप्तहोवे॥सोसत्तासमा
नपरब्रह्मकहीताहै॥उनकेऽअंतरवासनाहै॥ऽअर
बाह्यदृष्टनहींऽआवती॥काहेतेजोसुषुप्तवासना
है॥ऽअरजैसेबीजविषेअंकुरहोताहै॥बडउगम
ताहै॥तैसेउनकौंजन्महोवेंगे॥ऽअरवासनाजागेंगी
जोउनकेऽअंतरज्ञानकीसत्ताहै॥ऽअरबाह्यनहीं
दृष्टनहींऽआवती॥सुषुप्तवतजडधर्माहैं॥बडउ

अनंतजन्मोंकादुषपावेंगे॥ हेरामजीस्थावरजोअव
जडधर्मसुषुप्तपदविषेस्थितहैं॥ सोवारंवारजन्मों
कोंपावेंगे॥ जैसेबीजविषेपत्रफूलफलटासस्थित
होतेहैं॥ जैसेमृतकाविषेघटशक्तिस्थितहोतीहै॥ तैं
सेस्थावरोंविषेवासनास्थितहैं॥ जहांवासनारूपीबी
जहै॥ सोसुषुप्तरूपकहीताहै॥ सोसिधताजोमुक्तिहै
तिसकोंनहींप्राप्तकरती॥ अरजहांनिरबीजवासना
है॥ सोतुर्यापदहै॥ सोसिधताकोंप्रापुतकरतीहै॥ हे
रामजीजबचितशक्तिवासनासाथमिलीहोतीहै॥ त
बस्थावरजोनहोतीहै॥ सोबडेडजागतीहै॥ जैसेको
ऊकर्मकर्तासोइजाताहै॥ सुषपततेंउठकरबडे
डतेहीकर्मकरणेलागताहै॥ कर्मरूपीवासनाति
सकेअंतररहतीहै॥ तैंसेस्थावरवासनाकेकेबडेड
जन्मोंकोंपावेंगे॥ जबउहवासनाअंतरतेंदग्धहोइ
जावें॥ तबजन्मकाकारणनहीहोती॥ अरुआत्मसत्ता
तासमाननकरकेघटपटादिसर्वपदार्थोंविषेस्थि
तहै॥ जैसेवर्षाकालकामेघएकहीनानारूपहोक
रस्थितहोताहै॥ तैसेआत्मसत्ताहीएकसर्वपदार्थों
विषेस्थितहोतीहै॥ तातेसर्वआत्माहीव्यापरहाहै॥
जैंसीदृष्टतेंजोरहितहै॥ तिसकोंविपर्ययदृष्टकहतेहैं
यतीहोतीहै॥ जबआत्मदृष्टप्राप्तहोतीहै॥ तबसर्व
दुषनासहोजातेहैं॥ हेरामजीआसम्यकदृष्टकानाम
अविद्याबुधीश्वरकहतेहैं॥ सोअविद्याजगतकाका
रणहै॥ तिसीकरसंसारपसाराहोताहै॥ तिसतेंरहितजो
आपणास्वरूपजानै॥ तबअविद्यानष्टहोतीहै॥ जैंसे
बरफकाकणकाधूपकरनाशहोजाताहै॥ तैसेशु
धस्वरूपकेअभ्यासकरकेअविद्यानष्टहोजातीहै
जैसेस्वप्नेतेंरहितजबअपनास्वरूपदेषताहै॥ तब
बडेडस्वप्नेकीओरनहींजाता॥ तैसेशुधस्वरूपकेअ
भ्यासकरसंपूरनभ्रमनिवर्तहोजाताहै॥ हेरामजीज
बवस्तकोंवस्तजाणीताहै॥ तबअविद्यानष्टहोजातीहै

जैसे प्रकाश करके अंधकार नष्ट होजाता है॥ दीपक को
हाथ ले कर देषीये॥ तब अंधकार की मूर्ति भी दृष्ट न
हीं आवती॥ जैसे उष्णता कर घृत का पिंड गल जा
ता है॥ तैसे आत्मा के दर्शन करके अविद्या नहीं रहती॥
और वास्तव तें अविद्या कछु वस्त नहीं॥ अविचारित
सिद्ध है॥ विचार कीये तें नष्ट होजाती है॥ जैसे प्रकाश क
र तम लीन होजाता है॥ तैसे विचार के अविद्या लीन
होजाती है॥ अज्ञान करके अविद्या की प्रतीत होती है॥ ज
बे लग आतमतत्त्व कों नहीं देषीया॥ तब लग अविद्या
की प्रतीत होती है॥ जब आतमा कों देषीया॥ तब अभा
व होजाती है॥ प्रथम इह विचार करै॥ जो रक्त मांस अ
स्थि का ये त्रबण्या शरीर है॥ तिस विषे मैं क्या वस्त हों
सत क्या है॥ और असत क्या है॥ तिस विषे जिस का अ
भाव होवै॥ सो असत है॥ और जिस का अभाव होता
नहीं॥ सो सत है॥ बहुड़ अन्वय विवेक कर विचारै॥ जो
कारिज कल्पित के होतें भी होवै॥ सो अन्वय सत है॥ जै
से देहादिक के नाश विषे भी आतम अधिष्टान है॥ इ
न के अभाव विषे भी निरुपाधि सिद्ध है॥ सो सत है॥ अ
र देहादिक वितरेक असत हैं॥ ऐसे विचार कर के आ
तम तत्त्व का अभ्यास करे॥ और असत देहादि कों तें वै
राग्य करे॥ तब विवेक कर के अविद्या लीन होजाती है॥ का
हे तें जो वास्तव नहीं॥ असत रूप है॥ तिस के नष्ट हूये जो
शेष रहे॥ सो निहकेवल चेतन रूप है॥ सो सत है॥ ब्रह्म
निरंतर है॥ सो तत्त्व वस्त उपादेय करने कों योग्य है॥ हेय
म जा॥ ऐसे विचार कर के अविद्या नष्ट होजाती है॥ जैसे
गन्ने को रस जिह्वा साथ लागती है॥ तब अवस्य स्वाद
भी आवता है॥ तैसे आत्मा के विचार कर अविद्या नष्ट
होजाती है॥ अवस्य॥ और जो वास्तव तें कहें॥ तो अविद्या
भी कछु भिन्न वस्त नहीं॥ सर्व एक अखंड आत्म तत्त्व ही
है॥ घट पट इत्यादिक जेते कछु पदारथ हैं॥ जिस को
भिन्न भिन्न भासते हैं॥ तिस कों अविद्या जान॥ और जिस

कोंसर्वविशेषएकजलहींकीभावनाहे॥तिसकों
विद्याजाणे॥इसविद्याकरअविद्यानष्टहोजा
वेगा॥=॥इतिनिरवाणप्रकरणेअविद्याचि
कित्सावर्ननंनामसर्गः॥९॥श्रीवशिष्टोवाच
॥हेरामजीबोधकेनमितमैंतुजकोंवारंवारसा
रकहताहों॥जोआतमसाक्षातकारभावनाअ
भ्यासबिनांनहोवेगा॥इहजोअज्ञानअविद्याहे
सोअनंतजन्मोंकाधृडभयाहे॥सोअंतरबाहिर
करकेदिषाईदेताहे॥आतमाशरीरइंद्रीयोंतें अ
गोचरहे॥जबमनसहितषट्इंद्रीयोंकाअभा
वहोजावे॥तबकेवलशांतिकोप्राप्तहोताहै॥हे
रामजीजेतीकछुवसबाहिरमुषफुरतीहे॥सो
अविद्याहे॥काहेतेंजोआतमतत्वतेंइतरजाणक
रफुरतीहे॥सोअविद्याहे॥अरजोअंतरमुषीआ
तमाकीओरफुरतीहे॥सोविद्याहे॥सोविद्याअवि
द्याकोंनाशकरेगी॥अविद्याकेदोरूपहें॥एकप्र
धानरूपहे॥एकनिःकृष्टरूपहे॥तिसअविद्यातें
उपजकरविद्याअविद्याकोंनाशकरतीहे॥बडु
डेआपत्तीनाशहोजातीहे॥जैसेबांसतेंअग्निउप
जतीहे॥अरबांसकोंजलाकरआपत्तीशांतिहोजा
तीहे॥जोअंतरमुषहे॥सोप्रधानविद्याहे॥अरजो
बाह्यमुषहे॥सोअविद्यानिकृष्टरूपहे॥तातेंअ
विद्याजालकोंनाशकर॥हेरामजीअभ्यासबिनांक
छुसिधनहींहोता॥जोकछुकिसीकोंप्राप्तहोताहे
सोअभ्यासरूपीवृक्षकाफलहे॥चिरकालजोअवि
द्याकाधृडअभ्यासहूयाहे॥सोअविद्याधृडभईहे
जबआत्मज्ञानकेनमित्तयत्नकरधृडअभ्यासक
रेगा॥तबनाशहोजावेगी॥हेरामजीहृदयरूपीवृक्ष
हे॥तिससाथअविद्यारूपीबुरीलताधृडहोरही
हे॥तिसकौंज्ञानरूपीषडगकरकाटो॥अरजोकछु

आपनां प्रकिर्त आचार है॥ तिसकों करो॥ तब तुजकों
दुष कोउ न होवेगा॥ जैंसे जनक राजा ज्ञानतें येहोय
कर विवहारकों कर्तनया है॥ तैंसे आत्मज्ञानका
अभ्यासक कर्कें तूं भी विचिर॥ हे रामजी जैंसे निष्ठाकों
धारकर पवन॥ कार्य अकार्य विषे विचरता है॥ अर
जैंसा निष्ठा विष्णुजीकों स्वरूप विषे है॥ अर सन्नका
र्यकरता है॥ अर जैंसा निष्ठा सदाशिवका है॥ जो
गौरी अर्धंगार हिती है॥ अर कदाचित चोभकों नहीं
प्राप्त होता॥ सदा सांतरूप है॥ अर जैंसा निष्ठा ब्रह्मा
का है॥ जो बाह्य रागद्वेष दृष्ट आवता है॥ अर राग
द्वेष अंतर कछु नहीं॥ अर जो निष्ठा ब्रहस्पति देव
त्यों के गुरुका है॥ जो निष्ठा चंद्रमा अर अग्निका है
जो निष्ठा नारिद पुलह पुलस्त्य अंगिरा नृगका है
अर अत्र सुषदेवका है॥ क्षत्रीयों आदिक ज्ञानतें
यका निष्ठा है॥ सो तुजकों प्राप्त होवे॥ श्रीरामोवाच
॥ हे ब्राह्मण जिस निष्ठाकर्कें बुधिवान विशोक
होयकर स्थित भये हैं॥ सो मुजकों कहो॥ श्रीवशि
ष्ठोवाच॥ हे रामजी जैंसे संपूर्ण ज्ञानवानों का निष्ठा
है॥ अर विवहार विषे समर रहिते हैं सो सुण॥ विस्ता
ररूप जेता कछु जगत जाल तुजकों भासता है॥ सो
निर्मल ब्रह्मसत्ता आपणी महिमा विषे स्थित है॥ जैं
से तरंग समुद्र विषे स्थित होते हैं॥ अर नाना प्रकार
कास्थित होते हैं॥ अर नाना प्रकारके उत्पति होते हैं
सो एक जलही के रूप हैं॥ जलतें इतर कछु नहीं॥ तैं
ते जेते कछु पदारथ जाल भासते हैं॥ सो सर्व ब्रह्मरू
प हैं॥ जो ग्रहण करणें योग्य है सो ब्रह्म है॥ अर जिसकों
भोजन कर्ता है सो भी ब्रह्म है॥ मित्र भी ब्रह्म है॥ शत्रु भी
ब्रह्म है॥ ब्रह्म ही आपणें आप विषे स्थित है॥ इह नि
हैं ष्ठा ज्ञानवानकों सदा रहता है॥ बडुड कैंसे ब्रह्मकों
ब्रह्म स्पर्श कर्ता है॥ तो किसनें कोंकों स्पर्श कीया॥ हे

रामजी जिसको सदाएही निष्कार रहता है॥ तिनको राग
द्वेष दुष कछु नहीं दे सकता॥ ब्रह्म ही ब्रह्म विषे स
फुरता है॥ भावरूप भी ब्रह्म है॥ अभावरूप भी ब्रह्म है
इतर कछु नहीं॥ बहुड़ रागद्वेष कलना कैसे होवे॥ ब्र
ह्म ही ब्रह्म को चेतता है॥ ब्रह्म ही ब्रह्म विषे स्थित है॥
ब्रह्म ही अहं अस्मि है॥ ब्रह्म ही नाहं अस्मि है॥ ब्रह्म ही
अंतर आत्मा है॥ घट भी ब्रह्म है॥ पट भी ब्रह्म है॥ ब्रह्म ही
विस्तार को प्राप्त भया है॥ हे रामजी जो सर्वत्र ब्रह्म ही है
तो राग विराग कैसे कलना होवे॥ मरनां भी ब्रह्म है॥ श
रीर भी ब्रह्म है॥ मरता भी ब्रह्म है॥ मारता भी ब्रह्म है॥ जैं
से जेवडी विषे सर्प भ्रम करके भासता है॥ तैसे आतमा
विषे सुष दुष मिथ्या हैं॥ भोग भी ब्रह्म है॥ भोगणेवाला
भी ब्रह्म है॥ भोक्ता देह भी ब्रह्म है॥ सर्वत्र ब्रह्म ही है॥ जैं
से समुद्र विषे तरंग होते हैं॥ उपजते हैं अरु मिट जाते
हैं सो जल तें इतर कछु नहीं॥ तैसे शरीर उपजते हैं अ
रु मिट जाते हैं॥ सो ब्रह्म ही ब्रह्म विषे स्थित है॥ हे रामजी
जल का तरंग जो मृतक मत्य को प्राप्त होता है॥ सो क्या
कु
काल
हूया॥ जल ही जल है॥ तैसे मृत्यु डाल जो देह मृत्यु ब्रह्म
को मारता॥ तो कवन मूया॥ अरु कवन मारता॥ जैसे एक
तरंग तें उपजा॥ अरु दूसरे तरंग साथ मिल गया॥ दोनों
एक होयकर मिट गये॥ सो जल ही जल है॥ तहां मैं तं
दूसरा कछु नहीं॥ तैसे आतमा विषे जगत है॥ सो आ
तमा आपले आप विषे स्थित है॥ तैसे आतमा में भिन्न क
छु नहीं॥ जैसे जल विषे तरंग होते हैं॥ सो अभेद रूप हैं
तैसे ब्रह्म अरु जगत विषे भेद कछु नहीं॥ हे रामजी जे
पुरुष यथार्थदर्शी हैं॥ तिनको सदाएही निष्कार रह
ता है॥ अरु जिनको सम्यक ज्ञान नहीं प्राप्त हूया॥ तिन
को विपर्यय रूप अवर का अवर भासता है॥ वास्तव
सदा एक रूप है॥ पर ज्ञान अरु अज्ञान का भेद है॥ जैसे
जेवडी एक ही होती है॥ पर जिसको सम्यक ज्ञान हो

नता मता

ताहै। तिसकों जेवडी ही भासती है। अर जिसकों सम्य
क ज्ञान नहीं। तिसकों सर्प होइ भासता है। तैसे जो
ज्ञानवान पुरुष हैं। तिसकों सर्व ब्रह्म सत्ता भासती
है। अर जो अज्ञानी हैं। तिसको जगतरूप भासता
है। तिसकों नाना प्रकार का जगत दुषदाई होता
है। अर जो ज्ञानवान हैं। तिसकों सुषरूप है। जैसे अं
धकों सर्व ओर अंध भासता है। अरु चक्षुवानकों
प्रकाशरूप होता है। तैसे सर्व जगत आतमरूप है
पर ज्ञानीकं आतमसत्ता सदा सुषरूप भासती है।
अर अज्ञानी कों दुषदाई है। जैसे बालिक कों अप
ने पिछावें विषे पिशाच बुधि होती है। तिसकर भ
य कों प्राप्त होता है। अर बुधिवान निर्भय होता है।
तैसे अज्ञानी कों जगत दुषदाई है। ज्ञानी कों सुषरू
प है। अर जो मेरा निश्चा पूछें तो अैसे है। कि मैं ब्रह्म
हों। नित्य शुध सर्व विषे स्थित हों। न कोऊ मरता है
न कोऊ उपजता है। जैसे जल विषे तरंग है। सो न क
छु उपजता है। न बिनसता है। जल ही जल है। तैसे न
त भी आतमा विषे है। जगत भी आतमरूप है। आत
मा ब्रह्म अपने आप विषे स्थित है। शरीर के नाश
हूयें भी आतमा का नाश नहीं होता। मस्तुरूप भी ब्र
ह्म है। शरीर भी ब्रह्म है। ब्रह्म ही अनेक रूप होय क
र भासता है। ब्रह्म तें भिन्न शरीरादिक कछु सिध न
ही होते। तैसे देह कलनां इंद्रीयां इछा द्वेषादिक स
न ब्रह्मरूप है। ब्रह्म ही ब्रह्म विषे स्थित है। जैसे स्वर्ण
तें भूषण भिन्न नहीं होता। स्वर्न ही भूषणरूप होता
है। तैसे ब्रह्म तें इतर जगत नहीं होता। ब्रह्म ही जगत
रूप है। जो मूढ हैं तिनकों द्वैतकलनां की भावनां होती
है। हे रामजी मन बुधि अहंकार तनमात्रा इंद्रीयां सभ
ब्रह्म ही के नाम हैं। अवर सुष दुष कछु पाईता नहीं

जैसे तरंग फेन बुदबुदे जलरूप हैं

ग्रहं॥ ऐसे जो शब्द है॥ अरु इन विषे भिन्न भिन्न भाव
ना है सो व्यर्थ है॥ अपणा अनुभव ही अन्य की न्याई हो
भासता है॥ जैसे पहाड विषे शब्द करीता है॥ तिस कर
प्रति शब्द का भास होता है॥ सो अपणा ही शब्द है॥ ति
स विषे अवर की कल्पना मिथ्या है॥ जैसे स्वप्ने विषे अ
पणे सिर का कटा देखता है॥ सो व्यर्थ है॥ सोई भास आव
ता है॥ जिसका सम्यक ज्ञान होता है॥ हे रामजी ब्रह्म सर्व
शक्ति है॥ तिस विषे जैसी भावना होती है॥ सोई भास आ
वती है॥ जिसको सम्यक ज्ञान होता है॥ सो निर्हंकार रच
प्रकाश सर्व शक्ति देखता है॥ कर्त्ता कर्म कर्ण संप्रदान
उपादान अधिकर्ण। एह जो षट कारिक बुध हैं॥ सो स
म ब्रह्म ही देखता है॥ ब्रह्म अर्पण। ब्रह्म हव। ब्रह्म अ
ग्नि। ब्रह्म हुत। ब्रह्म हुत लेवाला। ब्रह्म ही फल। ऐसे
देखता है॥ ऐसे जानणे का नाम ज्ञान है॥ ऐसे न जाणे तें
अज्ञानी है॥ ऐसे जानणे वाले का नाम ब्रह्मवेत्ता है॥ हे
रामजी जो चिरकाल का बांधव होवे॥ अरु उसको देखी
चेत बजाणीये जो बांधव है॥ अरु जो देखणे मों न आया
उसका अध्यास दूर होगया॥ तब बांधव भी अबांधव
की न्याई हो जाता है॥ तैसे अपणा ब्रह्म स्वरूप है॥ जब भा
वना होती है॥ तब ऐसे भास आवता है॥ जो मैं ब्रह्म हों॥
अरु द्वैत कल्पना भी लीन हो जाती है॥ सर्व ब्रह्म ही भास
ता है॥ जैसे जिसने अमृत पान कीया है॥ सो अमृतमय
होवेगा॥ अरु जिसने नहीं पान कीया। सो अमृतमय न
होवेगा॥ तैसे जिस जाण्या है जो मैं ब्रह्म हों॥ सो ब्रह्म ही
होवेगा॥ जिस नाहीं जाण्या॥ तिसकों नानत्व कल्पना ज
न्ममरन भासेगा॥ अरु ब्रह्म आगाश की न्याई भासेगा॥ हे
रामजी जिसकों ब्रह्म भावना का अभ्यास जाग्या है॥ सो
अभ्यास के बल कर शीघ्र ही ब्रह्म होता है॥ ब्रह्मरूप
बद्ध दर्पण बिषे जैसी कोई भावना करता है॥ तैसा रूप
हो भासता है॥ सत भावना मात्र है॥ दुर्वासना कर के इस

१८

18

कासरूप आवर्न भया है । जब वासनां नष्ट होती है । तब
ही निहकलंक आत्मतत्व भासता है । जैसे सुध वस्त्र
ऊपर केसर का रंग शीघ्र ही चड जाता है । तैसे वासनां ते
रहित चित विषे ब्रह्मसरूप भास आवता है । हे रामजी
आतमा सर्व कल्पनां ते अतीत है । अरतीतों का जो वि
षे नित्य सुध सम सांत रूप है । जिसको ज्ञान होता है सो
ऐसे जाणता है जो मैं ब्रह्म हौं । सर्वदा काल सर्व विषे स
र्व प्रकार सर्व घटपटादिक जो जगत जाल है । सो मैं ही
ब्रह्म आकाशवत सर्व विषे व्याप रहा हौं । न कोऊ मुझ
को दुष है । न कर्म है । न किसी का त्याग कर्ता हौं । न किसी
की वांछा करता हौं । अर सर्व कलनां ते रहित हौं । निरा
मय हौं । मैं ही रक्त हौं । मैं ही पीत हौं । मैं स्वेत हौं । मैं स्याम
हौं । रक्त मांस अस्थि का वपु भी मैं हौं । घटपटादिक ज
गत भी मैं ही हौं । तृण वल्ली गुछे फल मैं ही हौं । वन पर्वत
समुद्र नदीयां मैं ही हौं । ग्रहण करणे त्याग करणे सुक
चणे । न तत्वाक्लिसन मैं ही हौं । विस्तार को प्राप्त भया हौं ।
वृक्ष वल्ली फल गुछे जिसके आश्रय फुरते हैं । सो चिदात्मा
मैं ही हौं । सन विषे रस रूप मैं ही हौं । जिस विषे इह सर्व है
जिसतें इह सर्व है । जो सर्व है । जिसको सर्व है ऐसा जो चि
दात्मा ब्रह्म है सो मैं ही हौं । चैतन्य आत्मा ब्रह्म सत अन
न्त ज्ञान रूप इत्यादिक जिसके नाम है । ऐसा सर्व शक्ति
चिन्मात्र चेतते रहित मैं हौं । प्रकासमात्र निर्मल सर्व भू
तों का प्रकाशक मैं ही हौं । मन बुधि इंद्रीयों का स्वामी मैं
ही हौं । जेती कछु भेद कल्पनां है सो इन्हों कर रथी । अब
इन की कलनां को त्याग कर अपणे प्रकाश विषे स्थित
हौं । चैतन्य ब्रह्म निर्दुष हौं । शब्द स्पर्श रूप रस गंध सन ज
गत का कारण है । तिन सभन्यों का चैतन्य आत्म रूप ब्रह्म
निरामय मैं ही हौं । अविनाशी हौं । निरंतर स्वच्छ आत्मा प्र
काश रूप मनन के उथान ते रहित मौन रूप मैं ही हौं । परम
अमृत निरंतर सर्व भूतों के सत रूप कर्के मैं ही स्थित हौं
सदा अलेपक साक्षी सुषुप्त की न्यांई हौं । द्वैत कलनां

तें रहित अछुभित रूप अनभव में ही हों॥ शांति रूप स
न जागत विषे में ही पसिर रहा हों॥ वासनों सर्व तें रहित अ
छुभित रूप अनभव में ही हों॥ सभ स्वादों का जिस कर
अनभव होता है॥ ऐसा चैतन्य ब्रह्म आत्मा मैं ही हों॥ स्त्री
विषे आसक्त है चित जिसका॥ अर चंद्रमा की कौतक
प्रसनता
र मुदता अधिक है जिसको॥ स्त्री का स्पर्श अर मुदता को
जिसकर अनभव होता है॥ ऐसा चैतन्य ब्रह्म मैं ही हों॥
पृथिवी विषे स्थित जो पुरुष है॥ तिसकी दृष्ट जो चंद्रमा के
मंडल मों जाइ लागती है॥ तिसका अनभव जिस विषे होता
है॥ सो मैं ही हों॥ सुष दुष की कलनां तें रहित अमन सं अ
नभव रूप जो आत्मा है॥ सो चैतन्य रूप आतमा ब्रह्म मैं ही
हों॥ षजूर अर निंबादिक विषे स्वाद रूप मैं ही हों॥ वेद अ
र आनंदता लान भर अलान भुजकों तुल्य है॥ जाग्रत स्व
प्न सुषोपति तुरीय रूप आदि अर अंत तें रहित चैतन्य ब्र
ह्म निर्माय मैं हों॥ जैसे गन्नों के षेत्र विषे एक ही रस होती
है॥ तैसे अनेक मूर्ती विषे एक ब्रह्म सत्ता स्थित है॥ सो सत
शुध सम सांत रूप है॥ सो सर्वज्ञ है॥ शक्ति जो सत्य है॥ ति
सका प्रकासिक है॥ सूर्य की न्याई प्रकाश्य रूप ब्रह्म मैं ही हों॥
स तन्नारों विषे आप रहा हों॥ जैसे मोतीयों विषे तंत गु
प्त होती है॥ जिस विषे मोती परोये हैं॥ तैसे मोती रूपी श
रीरों विषे तंत रूप गुप्त मैं ही हों॥ अर जगत रूपी दृध वि
षे ब्रह्म रूपी घृत मैं ही हों॥ हे रामजी जैसे स्वर्न विषे नाना
प्रकार के भूषण बणते हैं॥ सो स्वर्ण तें इतर कछु नहीं
तैसे सर्व पदार्थ आतमा विषे स्थित हैं॥ आतमा तें इतर
कछु नहीं॥ पर्वत समुद्र नदीयों विषे सत्ता रूप आत्मा ही
है॥ सर्व संकल्प्य दृ का फल दाता॥ अर सर्व पदार्थों का प्र
कासिक आत्मा ही है॥ अर सर्व पावणे योग पदार्थों का
अंत है॥ तिस आतमा की उपासनां हम करते हैं॥ घट पट
तट कंध विषे स्थित है॥ अर जाग्रत विषे सुषुप्त रूप है
जिस विषे फुरणां उथान कोऊ नहीं॥ ऐसे चैतन्य रूप आ
त्मा की हम उपासनां करते हैं॥ मधुकर विषे जो मधुरता
है॥ तो लूण विषे तीक्षणता है॥ अर जागत विषे चलनाकृ

किहै॥ तिसचैतन्यआत्माकोहमउपासनांकरतेहैं॥ जा
ग्रतस्वप्नसुषोपततुर्याअरतुर्यातीतविषेजोसमतत
है॥ तिसकोहमउपासनांकरतेहैं॥ त्रिलोकीकेदेहरू
पीजोमोतीहैं॥ तिनकोंविषेजोतंतकीन्यांईअनस्यूतहै॥
अरपसारलेसंकोचणेकाकारणहै॥ तिसचैतन्यरूपआ
त्माकोहमउपासनांकरतेहैं॥ जोषोडशकलासंयुक्ति
अरषोडशकलातेंरहितहै॥ अरअकिंचिनकिंचिन
रूपहै॥ तिसचैतन्यआत्माकोहमउपासनांकरतेहैं॥ चै
तन्यरूपअंमृतहै॥ जोक्षीरसमुद्रतेंनिकसयाहैनही
नचंद्रमाकेमंडलविषेरहताहै॥ ऐसाजोस्वतहसिध
अंमृतहै॥ जिसकोपाइकरकदाचितमृतुनहोवै॥ तिस
चैतन्यअंमृतकोहमउपासनांकर्तेहैं॥ जोअषंडप्रका
शहै॥ अरसर्वभूतोंकोंसुंदरकर्ताहै॥ तिसचिदात्माकों
हमउपासतेहैं॥ शब्दस्पर्शरूपरसगंधजिसकरप्रका
सतेहैं॥ अरआपइनतेंरहितहै॥ तिसचैतन्यआत्माको
हमउपासनांकर्तेहैं॥ सर्वमैंहों॥ अरमेंसर्वनहीं॥ अवर
भीकोउनहीं॥ इसप्रकारविदित(वेद्य)जोएकरूपअपणेअ
द्वैतरूपविषेविगतज्वरहोयकरास्थितिहोतेहैं॥ एहीनि
श्चाज्ञातात्मवानोंकाहै॥ ॥इतिश्रीनिर्वाणप्रकरणेजी
वन्मुक्तिनिश्चाउपदेशोनामसर्गः॥ १० ॥श्रीवशिष्ठो
वाच॥ हेरामजीजोनिहपापपुरुषहैं॥ तिनकोंएही
निश्चैरहताहै॥ जोसतरूपआतमततहै॥ इहपरण
बोधवानकानिश्चैहै॥ तिनकोंनकिसीविषेरागहोता
है॥ नदोषहोताहै॥ जीवणेअरमरणेउसकोंसुषदुषन
हींदेता॥ एकसमानरहताहै॥ सोविष्णुनाराइणकाअं
गहै॥ अर्थइहजोआनंदरहताहै॥ सदाअचलहै॥ जैसे
सुमेरपर्वतवाइकरनहींचलायमानहोता॥ तैसेउह
दुषकरचलायमाननहींहोता॥ ऐसेजोज्ञानवानपु
रुषहैं॥ सोवनविषेभीविचरतेहैं॥ नगरोंविषेदीपडूं
विषेभीफिरतेहैं॥ नानाप्रकारकेस्थानोंविषेफिरतेहैं॥
केईपर्वतकीकंदराविषेरहतेहैं॥ केईराजकर्तेहैं॥ शत्रु

रु कों मारकर सिरपर चमर डुलावते हैं ॥ केई श्रुति
स्मृति के अनुसार कर्म पडे करते हैं ॥ केई भोग प
डे करते हैं ॥ केई विरक्त होयकर स्थित हैं ॥ केई त
प दान ध्यान यज्ञादिक कर्म करते हैं ॥ केई स्त्री सा
थ लीला पडे करते हैं ॥ कई गीत पडे सुणते हैं ॥ क
ई नंदन बन विषे गंधर्व गायन करते हैं ॥ केई गृ
ह विषे स्थित हैं ॥ केई तीरथ यात्रा करते हैं ॥ केई नौ
बत निगारे तुरीयां सुनते हैं ॥ इत्यादिक नाना प्रका
र के स्थानों विषे रहते हैं ॥ पर आसक्त कई नहीं
होते ॥ जैसे सुमेर पर्वत ताल विषे दूबता नहीं ॥ तैं
से ज्ञानवान किसी पदार्थ विषे बंधायमान नहीं
होता ॥ इष्ट कों पाकर हर्षमान नहीं होता ॥ अर अनि
ष्ट कर दुषी नहीं होता ॥ आपदा अर संपदा विषे तुल्य
रहता है ॥ उहगाकि तें आचार कर्म कों करता है ॥ पर
अंतर सर्व आरंभ तें रहित है ॥ हे राघव इसी दृष्ट कों
आश्रय करके तुम भी विचरो ॥ इह दृष्ट सर्व पापों की
नाश करती है ॥ अहंकार तें रहित होय कर जो इछा
होवे सो करो ॥ जब यथार्थ तदरसी हूये ॥ तब निर्बं
धन हूये ॥ जो कछु प्रत्ति प्रवाह कर आन प्राप्त होवे
तिस विषे तुम सुमेर की न्याई अचल रहोगे ॥ हे राम
जी इह सब जगत चिन्मात्र है ॥ न कछु सत्त है ॥ न अस
त है ॥ तुही इस आकार होयकर भासता है ॥ इस दृष्ट कों
आश्रय करके अवस्तु दृष्ट कों त्यागो ॥ हे रामजी अ
संसक्ति बुधि होयकर सर्व भाव अभाव विषे स्थिति
होयकर राग द्वेष तें चलायमान न होवेंगा ॥ श्रीरा=
मोवाच ॥ बडा आश्चर्य है ॥ हे भगवन मैं तुमारे प्रसा
द करके जानणे योग पद जाण्या है ॥ अर प्रबुध हू
या हूं ॥ जैसे सूर्य की किरणों कर कमल प्रफुलित हो
ता है ॥ तैसे प्रफुलित हूया हों ॥ जैसे सरत काल विषे कु
हीड नष्ट होजाता है ॥ तैसे तुमारे वचनों कर मेरा सं

देह नष्ट हूया है ॥ मान मोह मद मत्सर नष्ट होगये हैं ॥
मैं अब सर्व द्वैत तें रहित शांति कों प्राप्त भया हों ॥
॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे जीवन मुक्ति निह चा
वर्नन नाम सर्गः ॥ ११ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन्
सम्यक ज्ञान विलास कर वासनों लय कीउदे होती है
सो जीवन्मुक्ति पद विषे किस प्रकार शांति पाई ये इ
ह कहो ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी संसार के तरणे
कों जो युक्त है ॥ सो जोग नाम्नी है ॥ सो युक्त दो प्रकार की
है ॥ एक चित उपशम करणा है आत्म ज्ञान करकें ॥ और
दुतीय प्राणों के रोकणे करकै ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे
भगवन इन दोनों विषे सुगम कौन है ॥ जिस कर दुष
भी न प्राप्त होवे ॥ और बहुड़ ज्ञो भनी न होवे ॥ श्रीव
शिष्ठोवाच ॥ हे रामजी दोनों प्रकार योग शब्द कर क
हीता है ॥ तो भी योग नाम प्राणों के रोकणे का है ॥ और
संसार के तरणे को योग और ज्ञान दोनों उपाय हैं ॥ इ
न दोनों का फल एक ही सदा शिवनें कहा है ॥ हे रामजी
किसी को योग करणा कठन है ॥ और ज्ञान निश्चा सुगु
म है ॥ किसी कों ज्ञान का निश्चा असाध्य है ॥ और योग
करणा सुगम है ॥ और जो मुज सों पूछें ॥ तो दोनों विषे
ज्ञान सुगम है ॥ इस विषे यत्न कष्ट थोडा है ॥ जानणे यो
ग जो पदार्थ है ॥ तिसको जाण्या हूया बहुड़ स्वप्ने विषे
भी नमन होवैगा ॥ साक्षी भूत होय कर दृष्ट देषता है ॥
और जो बुधिवान योगेश्वर हैं ॥ तिन कों यत्न कछु न
हीं ॥ स्वभाविक चल्ये जाते हैं ॥ तिनकी एक युक्ति सम
झ कर चित शांति हो जाता है ॥ हे रामजी दोनों कों सत
ता अभ्यास यत्न कर सिध होता है ॥ अभ्यास बिनां प्राप्त
कछु नहीं होता ॥ सो ज्ञान तो मैं तुज कों कहा है ॥ जो रिदय
विषे विराजमान ज्ञेय है ॥ तिसकों जानणा ज्ञान है ॥ अ
र प्राण अपान के रथ ऊपर जो आरूढ है ॥ रिदय रूपी
गुहा विषे स्थित है ॥ हे रामजी तिस योग का भी क्रम सुण

अनंतसिधताके नमितहै ॥ प्राणवाइजोनासकाअर
मुषकेमार्गतें पडीआवतीजावतीहै ॥ तिसकेरोकणें
काक्रमकहीताहै ॥ तिसकर चित्तउपशमहोजावेगा
॥ ॥ इतिश्रीनिरवाणप्रकर्णेज्ञानज्ञेयविचारोना
मसर्गः ॥ १२ ॥ श्रीवसिष्टोवाच ॥ हेरामजी ब्रह्मरू
पजोआकाशहै ॥ तिसकेकिसीकोणविषेजगतरू
पीस्पंदआभासहूयाहै ॥ जैसेमारुथलविषेसूर्यकी
किरणोंकरमृगत्रिष्णाकाजलफुरआवताहै ॥ तैसेज
गतब्रह्मतेंफुरआयाहै ॥ तिसजगतकेजोकारणभाव
कोंप्राप्तहूयाहै ॥ अरब्रह्मकेनाभकमलतेंहेउत्पति
जिसकी ॥ अरपितामहनामकेकहीताहै ॥ अरतिसका कर
मानसीपुत्रश्रेष्टहै आचारजिसका ॥ ऐसाजोमैंवसि
ष्टहों ॥ अरनक्षत्रताराचक्रविषेमेरानिवासहै ॥ युग
युगपर्यंतमैंतहांरहताहों ॥ सोमैंजबनक्षत्रचक्रतेंउ
तर्या तबइंद्रकीसभाविषेआया ॥ उहांरिषीश्वरमुनी
श्वरबैठेथे ॥ जबनारदादिकोंविषेचिरंजीवीयोंकी
कथाकाप्रसंगचल्या ॥ तबतहांशांततपानामाएकरि
षीश्वरथा ॥ सोकैसाथामौनअरमानकरणेकोंयोगथा
बुधवानथा ॥ उहकहतभया ॥ किहेसाधोसभनोंविषे
चिरंजीवहैसोएकहै ॥ सुमेरपर्वतकीजोकंदराहै ॥ ति
सकीकोणविषेपद्मरागनाम्नीकंदराकाशिषरति
सऊपरएककल्पवृक्षहै ॥ सोमहासुंदरहै ॥ अपणी
सोभाकरपूरणहै ॥ तिसवृक्षकेजोदक्षिणदिशाटास
हैं ॥ तहांपंछीरहतेहैं ॥ तिनपंछीयोंविषेमहांअभिमान
कोंयारहताहै ॥ बसुंड तिसकानामहै ॥ सोकैसाहैवी
तरागअरबुधवानउहऊहांरहिताहै ॥ उसकाआ
लेणाकल्पवृक्षकेटासऊपरबण्याहूयाहै ॥ जैसेब्र
ह्माजीनाभकमलविषेरहताहै ॥ तैसेउहआलेणेविषे
रहताहै ॥ जैसेउहजीव्याहै ॥ तैसेनकोऊजीव्याहै ॥ नजी
वेगा ॥ वडीउसकीआरबलाहै ॥ अरअभिमानमहाबुधि
वानविश्रांतवानशांतिरूप अरकालकावेताऐसा
उहहै ॥ हेसाधोबहुतजीवणेंनीतिसीकासफलहै

अर पुन्यवान भी उहां है ॥ जिसकों आतमपद विषे विश्रा
म भई है ॥ अर संसार कों आस्या जाती रही है ॥ ऐसा जो पु
रुष है सो उहां है ॥ ऐसे गुणोंकर संपन तिसका नाम बसुं
द है ॥ इस प्रकार जब उस देवतों के देव कहा संपूरण सं
ना विषे ॥ तब रिषीस्वरों इस री वार पुछा जो उसका वृतां
त बडुंई कहो ॥ तब उस बडुंई वर्नन कीया ॥ तिस काल मों
स मे आस्चर्य कों प्रापत भये ॥ जब ऐसे कथा वारता हो चु
की ॥ तब सब तहां से ना उठ बडी हूई ॥ अपणे अपणे आश्र
म कों गये ॥ अर मैं जो था सो आस्चर्यमान हूया ॥ जो ऐसे प
छी कों किसी प्रकार देषों ॥ ऐसे विचार कर कै सुमेर पर्वत
की कंदरा के सनमुष हूया ॥ अर चलया ॥ तब एक षिण वि
षे जाय प्राप्त हूया ॥ क्या देषों जो महा प्रकाश रूप कंदरा का
सिषर है ॥ रत्नें अर मणी कर पूर्ण है ॥ अर गेरा की न्याई रं
ग है ॥ जैसे अग्नि की ज्वाला होती है ॥ तैसे प्रकास रूप है ॥ मा
नों प्रलै काल की अग्नि की ज्वाला पडी जागती है ॥ ऐसे म
णी अर रत्नों का प्रकाश हूआ है ॥ अर बीच जो नील मणी हैं ॥ सो धू
म्र के समान हैं ॥ मानो धूंयां पडा निकसता है ॥ अर सर्व रंगो
की षाण है ॥ अर जेते कछु संध्या के बदल लाल होते हैं ॥ सो
मानो एकठे आन हूये हैं ॥ मानो योगेश्वरों के अंतरंग तें अ
ग्नी निकसी यां एकठी आन हूई है ॥ जब रागनी एकठी आ
न भई हैं ॥ मानों बडवाग्नि तिस समुद्र तें निकसकर मेघ हूं के
गहणे के निमित आन स्थित भई है ॥ महा सुंदर रचना ब
णी हूई है ॥ फलों अर रत्न मणी संयुक्त प्रकास मान है ॥ उ
परि गंगा जी का प्रवाह चला जाता है ॥ सो यज्ञोपवीत पडा हू
या है ॥ गंधर्व गीत पडे गावते हैं ॥ देवतायों के रहणे के स्थान हैं
हर्ष के उपजावणे कों महा सुंदर लीला का स्थान विधाता
रचा है ॥ तिसकों मैं देषत भया ॥ ॥ इति निर्वाण प्रकरणे
भुसुंडोपाख्याने सुमेर सिषर लीला वर्ननं नाम सर्गः
॥ १३ ॥ श्री वसिष्ठ उवाच ॥ हे राम जी ऐसे सिषर ऊपर क
ल्पवृक्षों कों मैं देषत भया ॥ जो महा सुंदर फलों कर पूर्ण र
त्न मणी के गुच्छे लागे हैं ॥ स्वर्न की बल्ली लागी हूई है ॥ अर ता

रतों सों डुलते फूल दृष्ट आवते हैं ॥ अर मेघ के बदलों तें डुलते
पत्र दृष्ट आवते हैं ॥ अर सूर्य की किरणों तें डुली तिवरी
यों भासती हैं ॥ अर बिद्युजी की न्याई चमत्कार है ॥ अर
पत्रों ऊपर देवता अर किंनर आन कर बैठते हैं ॥ विद्या
धर देवीयां आन बैठते हैं ॥ अपसरा आन कर निर्त क अपसरा
ती हैं ॥ अर गाइन करती हैं ॥ जैसे भ्रमरे गुंजते हैं ॥ अर
भ्रमते हैं ॥ हे रामजी तहां रत्नों के गुछे नीरंभ कलीयां नी
नीरंभ पत्र फल भी नीरंभ मणी के गुछे नीरंभ समन नीरं
भ ही दृष्ट आवें ॥ अर सम स्थान फल फल गुछे कर पूर्ण
अर षट रित के फूल फल तहां पाईये हैं ॥ महां बिचित्र र
चना बनी हूई है ॥ तिस के एक टास ऊपर पंछी बैठे हैं ॥ मे
ह बैठे षाते हैं ॥ कहूं फूल फलादिक षाते हैं ॥ कहूं ब्रह्मा
जी के हंस बैठे हैं ॥ कहूं अग्नि के वाहन तोते बैठे हैं ॥ अर
कहूं अश्विनीकुमार अर भगवती के मोर सिषा वाले हैं
कहूं बगले कहूं कबूतर कहूं गरड बैठे हैं ॥ अर जैसे रा
छ करते हैं ॥ मानों ब्रह्मा पद्म तें उपजा हूया ॥ हुंकार का उच्चा
र करता है ॥ कै पंछी ऐसे हैं ॥ जो दो दो उनको चुंच हैं ॥ तहां
मैं देष कर आगें दक्षिण की कोण को गया ॥ जहां उवहां का
टास था ॥ तहां कोये अनेक बैठे हैं ॥ जैसे महाप्रलय काल
विषे मेघ जो कालो क पर्वत पर आन बैठते हैं ॥ तैसे ऊहां को
ये बैठे हैं ॥ अर अचल आकार बैठे हैं ॥ सोम सूर्य इंद्र वरुण
कुबेर इन के नाषीपत की ऊहां तेले वलो वाले हैं ॥ अर पुं
ष्पबान स्त्रीयों को प्रसन्नता देवणे हारे नर्षी देस देस पऊं
चावणे वाले हैं ॥ सो ऊहां बैठे हैं ॥ तिनकों मैं देषत भया ॥ ति भुसुंड
न के मध्य विषे महाअभिमान भुसुंड बैठा है ॥ ऊंची ग्रीवा
कीयें हूयें ॥ अर ऊंची चोंच है ॥ जैसे नीलमणि चिमकती है
तैसे उसकी ग्रीवा चिमकती है ॥ अर पूर्णमन अर मानी
अर्थ इह ॥ जो मान करणे के योग्य ॥ अर स्याम सर्व अंग अ
र सुंदर ॥ अर प्राणों के स्पंद कों जीतणे हारा ॥ नित्य अंतर्मुष
अर नित्य ही सुषी ॥ अर चिरंजीवी पुरुष तहां बैठा है ॥ ज
गत विषे दीर्घ आयु ॥ जगत की आगमा पाई जिसनें देष
त्यें देषत्यें बहुत कल्पों कों स्मरण कीया है ॥ अर इंद्रों की

केईपरंपरा देषीहे। लोकपालजवलीकुबेरयमादिकके ईजन्म देषेहें। देवतेसिधोंकेकेईजन्मइसपुरूषदेषे हें। प्रसन्नअरगंभीरहे।अंतहकर्नजिसका। अरसुंदर स्निग्धहेवाणीजिसकी। अरविकृततातेंरहितनिर्ममति हैंकारसत्तकासुहृदमित्रहे। बंदीयोंकोंटहलायेकीन्यां ईहे। जोपितासमानहें तिनकोंपुत्रकीन्यांईहोताहे। अर जोपुत्रोंकेसमानहें। तिनकोंउपदेशकर्णेकेनमित पि ताअरगुरहूकीन्यांईसमर्थहोताहे। अरसर्वथासर्वप्रका रसर्वकालसर्वविषेसमरहे। अरप्रसन्नमहामतिरिद यपुंडरीकब्यवहारकावेता। अरगंभीरगंगेसासांतसरू पमहां। अरशांतहेयपुरूषकोंमेंदेषतभया॥ ॥इतिश्री निरवाणप्रकरणेबसुंडदर्शननामसर्गः॥१४॥श्री वशिष्टोवाच॥ हेरामजीतिसकेअनंतरमेंआकाशमा र्गतेंउहांआनपडा। महातेजवानदीपकवतप्रकाश वानमेराशरीर। जबमेंगिडातबजोकछुपंछीबेठेथे सोक्षोभकोंप्राप्तहूये इहक्याहूया। कमलवतजिस कापिवाहे। सोक्षोभकोंप्राप्तभये जैसेवाइकरकमलों कीषाणक्षोभकोंप्राप्तहोताहे जैसेभूकंपकरसमुद्रक्षो भकोंप्राप्तहोताहे तैसेपंछीक्षोभकोंप्रापुतहूये तिन केमध्यविषेजोबसुंडथा सोमुजकोंदेषतभया मेंकें साथा। जोअकसमात्रथाजिसकाआवणा सोमेंअकस मात्रतेंआया। तोभीमुजकोंउसजाणलीया जोइहव शिष्टहे। अैसेदेषकरउठषडाहूया अरकहतभयाहे मुनीश्वरस्वस्थहेकिंउ अरकुशलहेकिंउ हेरामजी। जैसेकहिकरसंकल्पकेहाथरचे। तिनसाथमेराअर्ध पादकीया। नावसंयुक्तपूजनकर्तभया। अरटहलों होंकेंदूरकरकेआपहीवृछोकेपत्रलीयेबेठे। तिनका आसनरचकरमुजकोंबेठाया। अरकहतभया। बसुं डोवाच॥ अहोआश्चर्यहे हेभगवनतुमबडीकृपाक रदर्शनदीयाहे। चिरपर्यंतप्रसन्नताकेनमितदर्शनरू पीअंम्रतकरहमवृक्षसहितपूर्णहोरहेहैं। हेभगवन

न मेरे जो पुंस्मरण कछे नए थे॥ तो इकछे होयकर तुम
को घेर लेगए हैं॥ हे मुनीश्वर देवते पूजणे योग हैं॥
तिनके भी तुम पूज हो॥ सो तुमारा आवणा किस निमि
त हूया है॥ इस संसार मोह रूपतें तुम रहित हो॥ अ
रु अखंड सत्ता समान विषे तुम स्थित हो॥ अरु सदा
पावन रूप हो॥ अनीष्ट गमण हैं जो तुमारा आ
वना किस निमित हूया है॥ इह मुज को कहो॥ क्या क
दार्थ न्हो है॥ अर्थ इह जो तुम को क्या इछा है॥ इह क
हो॥ अरु तेरे चर्नों के दर्शन करके मैं तो सन कछु जा
ण्या है॥ जिस निमित तुमारा आवणा हूया है॥ स्वर्ग
की सभा विषे चिरंजीवों का प्रसंग चल्या था॥ तब मैं
स्मरण विषे आया था॥ तिस कर तुम मुज को पवि
त्र करणे आये हो॥ इह तुमारे चर्नों के प्रताप मैं जा
ण्या है॥ पर प्रश्नों के जो अमृत रूपी वचन हैं॥ तिसके
स्वाद की मुज को इछा है॥ इस निमित मैं प्रश्नों के मुख
तें सुणता हों॥ हे रामजी इस प्रकार ब्रसुंड पंषी नामा
चिरंजीव मुज को कहा॥ तब मैं कहत भया॥ वशिष्टो
वाच॥ हे पंछीयों के महाराजा जो कछु तुम कहा
है॥ सो सत्य कहा है॥ मैं अब आगत तेरे आश्रम इसी नि
मित्त आया हों॥ जो चिरंजीवों की कथा चली थी॥ सो तं
मुज को शीतल चित दृष्ट आवता हैं॥ अरु कुछ तुम
रत हैं॥ अरु संसार रूपी जाल तें निकस्या हूया दृष्ट
आवता हैं॥ तां ते मेरे संशय को दूर कर॥ जो किस का
ल विषे तें जन्म्या है॥ अरु तात ज्ञेय कैसे नया हैं॥ अ
रु तेरी आयु केतीइक है॥ अरु कवन कवन वृतांत
तुम देख्या हूया स्मरण है॥ अरु किस कारण एई हां नि
वास कीया है॥ ब्रसुंडोवाच॥ हे मुनीश्वर जो कछु
तुम पूछा है॥ सो सब वही कहता हों॥ सुनें सुनें तूं श्रवणा
कर॥ तुम जो हो सो साक्षात त्रिलोकी के पूज हो॥ अ
रु त्रिकाल दर्शी हो॥ पर जो कछु तुम आज्ञा करी है॥
सो मानणे जोग है॥ तुम सारषे जो महात्मा पुरुष हैं॥

तिन के विद्यमान कहे हूये भी [illegible] अपणे विषे जो
कछु तप्त होता है ॥ सो निवृत्त हो जाती है ॥ जैसे मेघ के
आगें आये हूंये सूर्य की तप्त मिट जाती है ॥ तैसे
तुमारे आगें कहिणे कर तप्त निवृत्त होती है ॥ ॥ इ
ति निर्वाण प्रकरणे बसुंद समागम नाम सर्ग
॥ १५ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी ऐसे कहि कर
बसुंद मुज कौं कहत भया ॥ कैसा बसुंद है सर्वांग अ
रु सुंदर अरु समता संयुक्त ॥ सो स्निग्ध अरु गंभीर वा
णी कर कहत भया ॥ कैसा बसुंद है मानो चक्र की विषे
तिस ब्रह्मांड तें ज छोड्या है ॥ अरु जगत तिस कों त्रिण
की न्यांई तुछ भासता है ॥ काहे तें जो जीवों की उत्पत्ति
अरु प्रलय उस बहुत देखा है ॥ अरु चित्त की वृत्ति किसी
विषे लगाई नहीं ॥ जैसे क्षीर समुद्र तें निकस्यें मंदराच
ल क्षीर समुद्र परपरण सम शुध है ॥ तैसे उन का मन
शुध है ॥ जैसे क्षीर समुद्र उजल है ॥ तैसे आतम पद विषे
विश्राम पाइ कर उह आनंद सों पूरण है ॥ अरु जगत
के उत्पत्ति विनास जिस देखे हैं ॥ ऐसा जोगेश्वर मुज कौं
मधुर अरु उचित (सौम्य) कूं देओगम वाणी कर कहत भया ॥
॥ बसुंदोवाच ॥ हे मुनीश्वर इस जगत विषे जो वन है
सो सदाशिव सभ का नाइक देवतों विषे देवतों का दे
व है ॥ अरु अरधंगी पारवती नागवती गौरी कों शरीर वि
षे धारता है ॥ महा सुंदर मूरत अरु त्रिनेत्र है ॥ वहीं जटा है
अरु मस्तक पर चंद्रमा है ॥ अमृत जिस तें स्रवता है ॥ अ
मृता के नमित्त ॥ अरु गंगा जी जिस की जटा के चौफेर स्रव
ती है ॥ जैसे फूलों की माला कंठ विषे होती है ॥ तैसे च
लती है ॥ अरु नीलकंठ है ॥ कालकूट विष के भोजन कर
उह विषम सने होगई है ॥ अरु कंठ विषे रुद्रों की माला
है ॥ अरु सर्व और तें नम्र लगाई हूई है ॥ अरु दिशा ही जि
स के वस्त्र हैं ॥ अरु मसाणों विषे है घर जिस का ॥ अरु म
हा गणों तिरूप विचरता है ॥ अरु साधु जो सन्त है सो तिस
के महात्म या निकाश्राकार है ॥ किसी के तोरड की न्याई

तीन नेत्र हैं ॥ अरु किसीका तोते का मुष है ॥ किसीकाउ-
वका मुष है ॥ किसीका गर्दभ का मुष है ॥ किसीका सिं-
हका मुष है ॥ किसीका बलद का मुष है ॥ अंतविचरने
हारे हैं ॥ केई जीवों के अंतर प्रवेश्य कर जाणे हारे हैं ॥
रक्त मांस के भोजन करणे वाले जिस के साथ फिरते
हैं ॥ पहारों विषे रहते हैं ॥ केई बनों विषे ॥ केई कंदरावि-
षे ॥ मसाणों विषे ॥ इत्यादिक स्थानों विषे उनका निवा-
स होता है ॥ अरु साध्य देवीभी ऐसी हैं ॥ तिनका महान
यांतिक चेष्टा आचार है ॥ तिन देवीयों विषे जो मुष देवीयां
हैं ॥ तिनका जिस जिस दिसा विषे निवास है ॥ सो सुण
जया अरु विजया अरु जयंती अरु अपराजिता वामदि-
सा की ओर तुंबरु रुद्र के आश्रित हैं ॥ सो सर्व देवीयों के
मध्य विषे इह अष्ट नाइक हैं ॥ अवर त्रा तिस हस्रा दे-
वीयां हैं ॥ सौडी अरु वैष्णवी अरु ब्रह्माणी अरु वाराही
अरु वायवी अरु कुमारी अरु वासवी अरु सौरी ॥ इ-
त्यादिक त्रा तिस हस्र देवीयां हैं ॥ इनकूं साथ मिल्या हूंयां
अकाश विषे उत्तम देव किंनर गंधर्व पुरुष (दैत्य) असुर सं-
नवतीयां हैं ॥ तिनकूं साथ मिल्या हूंयां हैं ॥ भूचर पृथि-
वी विषे को रहें ॥ नाना प्रकार रूप नाम धारणे हारीयां
पृथवी विषे जीवों कों भोजन करती हैं ॥ किनकूं के वाह-
न उंठ हैं ॥ किनकूं के गधे ॥ किनकूं के काक ॥ किनकूं के
बीतर हैं ॥ किनकूं के वाहन तोते हैं ॥ इत्यादिक वाहन
तिनके तीनों जगतों विषे रहते हैं ॥ तिनकूं देवीयों विषे
केई पशुधर्मणी हैं ॥ जो दुष्ट कर्मों विषे स्थित हैं ॥
अरु केई विदित वेद्य जीवन्मुक्ति पद विषे स्थित हैं ॥ ति-
नके मध्य विषे नाइक अलंबुसा देवी है ॥ तिसका वा-
हन काक है ॥ जैसे विष्णुजी का वाहन गरुड है ॥ तैसे देवी
का वाहन काक है ॥ सो देवी अष्ट सिधी के ऐश्वर्य संयु-
क्त है ॥ सो देवीयां एक काल में समागम कर्ते भयां अरु
इह विचार कर्ते भयां ॥ जगत के पूजते बरु अरु भैरव को
पूजते भयां ॥ अरु विचार कीया जो सदाशिव हमारे सा-
थ नाव संयुक्त नहीं बोलता ॥ अरु हम कों तुछ जानता

अरु किया अरु मुख का
अर रकता अरु उत्तला
भैरव रुद्र के आश्रित हैं

प्रक्रम कर कहै बल

हे॥ हम इसकों कछु अपनां प्रभाव दिखावें॥ अनावदि
खाये बिनां कोउ किसी कों नहीं जानता॥ ऐसें बिचार क
र उमा कों बस करकें चुराय ले गये॥ अर उहां उत्साह रच
या। मद मांसादिक भोजन कीया। अर माया के छल क
र के पारबती कों मार कर चावलौं की न्याई रीधा॥ अर ति
नि करणे लागीयां। कछु इक अंगा उसके रीधे हूये सदा
शिव कों आन दीये॥ तब सदाशिव जाणीया। जो मेरी प्या
री पार्बती इन्हों मारी है॥ ऐसें निश्चै करकें कुपणे लागा। त
ब उन्हों देवीयां अपणे अपणे अंगातें उसके अंगनि का
रूप॥ गौरी नेत्रनि कालरूप। कुमारी नासिका तें काली। इसी
प्रकार अपणें अपणें अंगनि का सकर तैसी ही पार्वती
की मूर्ति आन दई। अर नौतन बिवाह कर दीया। तब सदा
शिव प्रसन्न भये। सर्व औरउ तस व आनंद कीया॥ तब सर्व
देवीयां अपणें अपणें स्थानों कों गईयां। अर चंदना
मा काक जो अले बसा देवी का वाहन था। सो ब्रह्माणी के
हंसणीयां साथ क्रीडा करतं भया। क्रमकर के सन एपें सा
थ रमण क्रीडा करी॥ तब सब न्यों ही कों गर्भ गाभ भया। अ
र हंसणीयां ब्रह्माणी के निकट गईयां। तब ब्रह्माणी क
हा॥ अब तुम कों मेरे चावणे कों शक्ति नहीं। तुम गर्भवंती
यां भई हो। जहां तुमारी इच्छा होइ। तहां जावो। बहुड फिर
आवणा॥ हे मुनीश्वर ऐसें कहि कर ब्रह्माणी निर्विकल्प
समाधि बिषे स्थित भई॥ अर नाम सरोवर जो ब्रह्माजी
का उत्पति स्थान है। तहां जाइ स्थित भई। तिस ताल के क
मल पत्र ऊपर आन निवास कीया। जब तहां केताइक
काल ब्यतीत भया॥ तब उन हंसणीयों तीन तीन अंडे दी
ये॥ जैसें बल्लीतें अंकुर उत्पति होता है। तैसें उनतें एक विं
शति अंडे क्रम कर उत्पन भये। तिन कों फोड तन भईयां
जैसें ब्रह्मांड खपर कों फोडाये। तिन अंडों तें हमारे अं
ग उत्पति भये। क्रमकर के हम बधे उडणे जोग हूये॥
तब माता हम कों ब्रह्माणी पास ले गईयां। तिस के आगें
मस्तक टेक्या हम। तब ब्रह्माणी समाधि तें उतरी थी। उ
स हम कों देख कर रूपा की दृष्टि धारी॥ अर हमारे सीस

रूप रहा थ्रा था॥ उसके हाथ राष लोसा वह मारी अ
विद्या नष्ट होगई॥ अरु हमारा मन विश्रांति होगया
अरु जीवन्मुक्ति पद विषे स्थिति भये॥ तब हमको एह
वृत्ति फुरआई॥ जो हम किसी प्रकार एकांत ध्यान विषे
स्थिति होवें॥ देवीजी आग्या करी॥ अब तुम जावो॥ तब
देवीजी दी आज्ञा कर हम पिता पास आए॥ पिता हम
कों कंठ लगाया॥ अरु मस्तक चुंबन कीया॥ तब हम
अलेबसा देवी की पूजा करते भये॥ तब पिता हम कों
कहा॥ हे पुत्रो तुम संसार रूपी जाल विषे तो नहीं फस्ये
किंतु॥ वासना रूपी तागे गंडी है जिस विषे॥ अरु जो नि
कस्ये नहीं फस्ये हो॥ तो मैं नैवती देवीजी की प्रार्थना क
री हो॥ उह भक्तों पर दयाल है॥ जैसे तुम ज्ञान को प्राप्त
होवोगे॥ तैसे तुम को प्राप्त करेगा॥ हे मुनीश्वर तब ह
मों कहा॥ हे पिता हम तो ज्ञात ज्ञेय हूए हैं॥ जो कछु जा
नणे योग्य है सो जाण्या है॥ अरु जो पावणे जोग था॥
सो पाया है॥ ब्रह्माणी देवी के प्रसाद करके॥ अब हम
कौं एकांत स्थान की इछा है॥ जहां एकांत होवै॥ तहां जा
इ इस्थित होवैं॥ तब चंद्र पिता कहा॥ हे पुत्र एकांत स्था
न सुणउ॥ निर्दोष महा पावन सुंदर आलणा बणाया
हूया॥ निर्भय निर्मोह सर्व त्रोनतैं रहित जहां कोऊ
दुष नहीं॥ ऐसा एकांत स्थान है॥ अरु सर्व रत्नों की षा
णि है॥ अरु सर्व देवतों का आश्रय रूप है॥ सुमेर नाम
जो पर्वत है॥ सूर्य चंद्रमा उसके दीपक हैं॥ चौफेर पडे
फिरते हैं॥ ब्रह्मांड रूपी मंडप का उह थंभा है॥ अरु स्व
र्ग का है॥ चंद्र सूर्य तिसके नेत्र हैं॥ अरु तारे कंठ विषै
माला है॥ दसो दिसा तिसके वस्त्र हैं॥ रत्नमणी के भू
षण पहिरे हूये हैं॥ वृक्ष वल्ली तिनके रोमावली हैं
त्रिलोकी विषे तिसकी पूजा है॥ चौउरासी सहस्र योज

न पाताल विषे है॥ तहां नागदेवता इसकी पूजा करते हैं
अर चौरासी सहस्र योजन ऊर्ध कों है॥ तहां गंधर्व देव
ता किंनर राक्षस मानुष इसका पूजा करते हैं॥ ऐ
सा पर्वत जंबूदीप के एक स्थान विषे स्थित है॥ चौद
स प्रकार के रतन जात उसके आश्रे रहते हैं॥ बडा ऊंचा
पर्वत है॥ तिस पर्वत का एक पद्मराग मणि सिषर है॥
मानों सूर्य आन उदे हूया है॥ ऐसा प्रकास रूप है॥ ति
स सिषर ऊपर एक वृक्ष कल्पवृक्ष है॥ मानों जगत के
वी सिषर का प्रतिबिंब आन पडा है॥ तिस कल्पवृक्ष
के दक्षिण ओर जो डास है॥ तिसके महारत्नों के गुछे हैं
अर स्वर्न के पत्र हैं॥ अर चंद्रमा के बिंबवत जिसके फ
ल हैं॥ अर घन मणों के गुछे लागे हैं॥ तहां एक आलणा
बण्या हूया है॥ उहां मैं भी आगे रहि आया हों॥ जब देवी
जी समाधि विषे स्थिति भई थी॥ तब मैं तहां आलणा ब
णाय कर स्थिति भया था॥ चिंतामणी की उसकों सला
का लागी हैं॥ महारतनों साथ बण्या है॥ स्वर्गवत कुटी
बणी है॥ तहां तुम जाइ निवास करो॥ आगें भी उहां कोये
के पुत्र रहते हैं॥ अंतर उनका आतमज्ञान कर शीतल
है॥ अर बाह्य तें फलों कर शीतल हैं॥ तहां तुम भी
जाइ कर स्थिति होवहु॥ तुम कों उहां भोग भी हैं॥ अर मो
क्ष भी है॥ वेद तें रहित तहां जाइ इस्थित होवो॥ हे वशिष्ठ
जी तब इस प्रकार पिता हम कों कहा॥ तब हम सन पि
ता के चर्ण लागे॥ पिता हमारा मस्तक चुंमन कीया॥ त
ब वेध्याचल पर्वत तें हम उदे आकाश मार्ग कों॥ मे
घों के स्थान लंघे॥ नक्षत्र चक्र लंघे॥ लोकांतर इंद्र के
स्थान लंघ कर ब्रह्मलोक विषे जा प्राप्त हूये॥ देवीजी
कों प्रणाम कर्ते भये॥ तिसी प्रकार उस हमारे पर कृपा
दृष्ट कर देख्या॥ अर सनेह सहित कंठ लगाया॥ मस्त
क चुंमन कीया॥ हम भी मस्तक टेक कर सुमेर के सिष
र कों चले॥ सुरिज चंद्रमा के लोक कों लंघ गये॥ तारा

गए लोकपाल देवता के लोकस्थान कों लंघाये
मेघ पवन के स्थान कों लंघकर सुमेर पर्वत के क
ल्पवृक्षा इसी ऊपर आन इस्थित भये ॥ हे मुनीश्वर
जिस प्रकार हम उपजे हैं ॥ अरु जिस कर ज्ञान कों प्रा
प्त भए हैं ॥ जिस प्रकार ईहां आइ इस्थित भये हैं ॥ सो
अपंडित तुमारे आगे कहा है ॥ आगे तुम कों कछु सं
शय होय सो पूछो ॥ ॥ इति श्री निर्वाणप्रकरणे
वसुंडोपाख्याने आसताच लो[illegible]लाभो नाम सर्गः ॥
॥ १६ ॥ वसुंडोवाच ॥ हे मुनीश्वर ईह चिरकाल
को वारता तुम कों कही है ॥ बहुत जुग व्यतीत भए हैं ॥
उहां ईहां इस सृष्टि तें दूर हे ॥ पर मैं तुम कों वर्तमान की
मांई सुणाया है ॥ अभ्यास के बलतें हे मुनीश्वर मेरा
जो कोऊ पुंन्य था ॥ सो फल्या है जो तुमारा निर्विघ्न द
र्शन हूया है ॥ इह जो आजणा है ॥ अरु ईह जो साषा
हैं ॥ अरु ईह जो वृक्ष है ॥ सो आज पावनता कों प्राप्त भ
या है ॥ जो तेरा दर्शन हूया है ॥ अब जो कछु संसार ह
ता है ॥ सो पूछो मैं कहों ॥ हे रामजी इस प्रकार कहि कर
बहुंड उसमें राज लीगकार अर्घपाद कर पूजन की
या ॥ आदर संयुक्ति तब मैं उसकों कहा ॥ हे पंछीयों के
ईश्वर तेरे उहां ईकहा हैं ॥ जो तेरे समान तत्ववेता
थे ॥ सो दृष्ट नहीं आवते ॥ एक तूं ही दृष्ट आवता है
॥ वसुंडोवाच ॥ हे मुनीश्वर ईहां मुज कों बहुत का
ल व्यतीत भया है ॥ जुगहूं की पंक्ति व्यतीत भई है ॥
जैसे सूरिज कों दिन रात्र केई व्यतीत हो जाते हैं ॥ तैसे
मुज कों जुग व्यतीत भए हैं ॥ केताइक काल उहां भी र
हे थे ॥ समें पाइ कर उनहूं शरीर त्याग दीये तृणवत
जैसे कोऊ त्रिण कों त्यागे तैसे त्याग दीये ॥ त्याग कर
शिव आत्म पद कों प्राप्त हूये ॥ हे मुनीश्वर बडी आयु
वाला होवे ॥ अथवा संत महंत होवे बली होवे ॥ अथ
वा ऐश्वर्यवान होवे ॥ सभ कों काल ग्रास लेता है ॥ श्री
वशिष्टोवाच ॥ हे साध जब प्रलय काल का समा आ
वता है ॥ तब सूरिज चंद्रमा वायु मेघ इह आपणी म

रयादाको त्याग देते हैं ॥ तब वदा छोभ होता है ॥ तुजकों
खेद किस कारणतें नहीं होता ॥ सूरिजका छोभ होता है ॥
नष्ट करके अस्ताचल अरु उदयाचल आदिक पर्वत
नस्म हो जाते हैं ॥ तिस छोभ विषे तुं छोभवान किंउ नहीं
होता ॥ वसुनीवाच ॥ हे मुनीश्वर एक जीव जगत वि
षे आधार कर रहते हैं ॥ एक निराधार रहते हैं ॥ जिनको
ऐश्वर्य सें नाआदिक पदारथ होते हैं ॥ सो सहिताधार
है ॥ अरु जो इन पदार्थों तें रहित हैं ॥ सो निराधार हैं ॥ सो
दोनों हम तुछ देषते हैं ॥ सत कोउ नहीं वडे बडे ऐश्वर्य
वाले बली भी हैं ॥ पर सत कोउ नहीं ॥ तिन कुं विषे पंछीओं की
जात महा तुछ है ॥ महा उद्याड बन विषे तिनका निवास
है ॥ उहां ही इनका दाणपाणी है ॥ इह निरालंब हैं ॥ इ
नकी जीवका देवनें ऐसे बणाई है ॥ हे भगवन में तो स
दा सुषी हों ॥ अरु आपणे आप विषे स्थित हों ॥ आतम सं
तोष करके मैं त्रिप्त हों ॥ मैं कदाचित इस जगत के छो
न कर नहीं षेद कों प्राप्त होता ॥ स्वभाव मात्र विषै ही
संतुष्ट हों ॥ कष्ट चेष्टा तें मुक्ति हों ॥ हे भगवन अब मैं के
वल काल को व्यतीत करता हों ॥ अवर जगत के इष्ट
अनिष्ट हम को चलाय नहीं सकते ॥ न मरणे की हम
कों इछा है ॥ न जीवणे की इछा है ॥ काहे तें जो जीवणा म
रणा शरीर की अवस्था है ॥ आतमा की अवस्था नहीं
अरु हम कों जीवणे विषे राग नहीं ॥ अरु मरणे विषे द्वे
ष नहीं ॥ जैसी अवस्था आन प्राप्त होवे ॥ तिसी विषे संतु
ष्ट हैं ॥ हे मुनीश्वर ऐसे ऐसे देव्य हैं ॥ जो इष्ट को प्राप्त
हूये हैं ॥ बडे बडे नस्म हो गये हैं ॥ तिनकी अवस्था को दे
षकर हमारे मन की चपलता जाती रही है ॥ अरु हम
इस कल्पवृछ पर बैठे हैं ॥ कैसा कल्पवृछ है ॥ रतनों की
वला जिसकों लागी हैं ॥ तिस पर बैठ कर मैं प्राणीआ
पाण की गति कों पडा देषता हों ॥ इनकी कला की जो स
म गति है ॥ तिसका मैं ज्ञाता हों ॥ तिसकों मैं जानता हों
दिन अरु रात्र की मुजकों कछु ज्ञात नहीं ॥ सति की बु

ध करके मैं कालकों जानता हों॥ अरु सार असारकों भ
ली प्रकार जाणता हों॥ हे मुनीश्वर जेती कछु गति विस्ता
र करके भासती है॥ सो सभ जब है सतिक छु नहीं॥ इसी का
रणतें हमकों किसी दृश्य पदार्थ की इछा नहीं॥ परमउ
पशम पद विषे स्थित हैं॥ सभ जगत भी हमकों शांति रू
प है॥ जो कोउ इस जगतजाल कों आश्रय करता है॥ सो
सुषी नहीं होता॥ इह जगत सभ चंचल रूप है॥ स्थिर क
दाचित नहीं होता॥ इसकी अवस्था विषे हम पथ्यर व
त अचल हैं॥ न किसी का हमकों राग फुरता है॥ न द्वेष
फुरता है॥ किसकी इछा करें॥ सभ जगत मुझकों तुछ भा
सता है॥ इह सभ भूत रूपी नदीयां काल रूपी समुद्र के
मुष विषे जाइ पडतीयां हैं॥ अरु हम कंढे पर पडे हैं॥ डूब
ते कदाचित नहीं॥ अवर जेते कछु जीव भूत हैं॥ सो पडे डू
बते हैं॥ कोई एक तुम सारषे तिकस्ये हूये हैं॥ अरु तुमारी
कृपा कर हम भी निर्विकार पद कों प्राप्त हूये हैं॥ हे मुनी
श्वर हम निराकार हैं॥ सभ जगत के क्षोभनतें रहित हों॥
आतम पद का प्राप्त कर उपशम रूप हों॥ हे मुनीश्वर
तुमारे दर्शन कर के मैं अब पूरण आनंद कों प्राप्त हूया
हों॥ अरु संतों की संगत चंद्रमा की चांदणी वत शीतल है॥
अमृत की न्याई आनंद कों देणहारी है॥ ऐसे कवन है
जो संतों के संग कर आनंद कों न प्राप्त होवहि॥ सभ आ
नंद कों प्राप्त होते हैं॥ इह अर्थ है॥ हे मुनीश्वर संत संग
चंद्रमा के अमृत तें भी अधिक है॥ का हेतें जो उह सीतल
ता गौण है॥ अंतर की तपत नहीं मिटावता॥ अरु संतों का
संग अंतर की तपत मिटावता है॥ उह अमृत षीर समु
द्र के मथणेतें होता साध्य निकस्या है॥ अरु संतों का सं
ग सुषेन प्राप्त होता है॥ अरु आतमानंद कों प्राप्त कर
ता है॥ ता तें इह परमउतम है॥ मैं तो इस तें परें अवर उत
म नहीं मानता॥ संतों का संग सभ तें उतम है॥ अरु संत
भी तेई हैं॥ जिनकीयां सर्व इछा अपातरमणी निवर्त
भई है॥ अर्थ इह जो विचार तें विनां सुंदर भासते हैं॥

अरु नासवंत हैं॥ जैसे पदारथ सभ तुछ भासते हैं॥
अरु सदा आतमानंद कर त्रिप्त आई तनिष्ट हैं॥ द्वै
त कल्पनां का जिनकों अभाव भया है॥ सदा आ
त्मानंद विषे स्थित हैं॥ जैसे पुरुष संत कहीते हैं॥
तिन संतों का संगत ऐसी है॥ जैसे चिंतामणि होती है
जिसके पाये तें सर्व दुखों का नास हो जाता है॥ हे मुनी
श्वर त्रिलोकी रूपी कमलों के भ्रमर एक तुमही
दृष्ट आवते हो॥ अरु सभनों ज्ञानवानों विषे उतम
दृष्ट आये हो॥ तुमारे वचन स्निग्ध अरु कोमल अ
रु आतम रस कर पूरण अरु रूदे अंगम अरु उचि
त हैं॥ अरु रूदा महा गंभीर अरु उदार अरु धीर
जवान सदा आतमानंद कर तुमारा चित्त है॥ तां तें
सभ तें उतम मुज कों दृष्ट आवते हो॥ तुमारे दर्शन
कर मेरे दुख नष्ट भये हैं॥ आज मेरा जन्म सफल भ
या है॥ तुम सारखे संतों का संग आतम पद कों प्राप्त
करता है॥ अरु दुख त्रय कों नष्ट करके निरतय
ताकों प्राप्त करता है॥ ॥इति निरवाण प्रकरणे
भुसुंडोपाख्याने स्वरूपवर्ननं नाम सर्गः॥
॥१८॥ भसुंडोवाच॥ हे मुनीश्वर तुज पूछ्या
था जो सृजन वायु जल का क्षोभ होता है॥ तब तुम
बेदवान किउं नहीं होते॥ तिस का उत्तर श्रवण क
रो जब जगत कों क्षोभ होता है॥ तब मेरा कल्पवृछ
स्थिर रहता है॥ इह क्षोभ कों नहीं प्राप्त होता॥ हे मुनी
श्वर इह मेरा जो वृछ है॥ सो सभ लोकों कों अगम है
इसकर मन तन नष्ट होते हैं॥ तब भी मैं सुषी रहता हों
जब हरणाकस दीप सहित पृथ्वी कों समेट कर
पाताल में ले गया था॥ तब भी मेरा वृछ कंपायमा
न नहीं भया॥ मंदराचल कों ले गये तब षीर समुद्र
कों मथने लागे॥ प्रलयकाल का पवन अरु मेघों क
क्षोभ हूया॥ तब भी मेरा वृछ कंपायमान न भया

बहुड एक दैत्य सुमेरकों आनपटणे लागा ॥ उस
कछुइक सुमेरकों उषारता ॥ परमेरा वृछ कंपाय
मान न भया ॥ हे मुनीश्वर इत्यादिक बडे बडे कष्ट
हूये हैं ॥ प्रलयकालके मेघ अरु पवन अरु सूरिज
तपे हैं ॥ तबभी मेरा वृछ स्थिर रहा है ॥ श्रीवशि
ष्टोवाच ॥ हे साध जब प्रलयकालकी वायु मेघा
दिक क्षोभ करते हैं ॥ तब तू विगतज्वर कैसे रहिता
है ॥ भसुंडोवाच ॥ हे साध जब प्रलयकालके वा
यु मेघादिक क्षोभ करते हैं ॥ तब मैं कछतप्रकी न्याई
अपणे आलणेकों त्याग जाताहों ॥ सन क्षोभनते रहि
त आकाश विषे जाइ इस्थित होताहों ॥ अरु सब अं
गोंकों सुकचाइ लेताहों ॥ जैसे वासनाकों रोकतें म
न सुकुच जाता है ॥ तैसे मैं अंगोंकों सुकचाइ लेताहों
हे मुनीश्वर जब प्रलयकालका सूरिज तपत्या ॥ त ता
ब मैं जलकी धारणा कर जलरूप होजाताथा ॥ अरु ज
ब वायु बहुत हलती थी ॥ तब पर्वतकी धारणा बांध
कर स्थिर होजाताहों ॥ जब बहुड ततोंका क्षोभ होता
था ॥ तब सब ततोंकों त्यागकर ब्रह्मंड खपरके पार
जो निर्मल परमपद होताहै ॥ तहांमें जाइ इस्थित होता
हों ॥ सुषुप्तवत अचल गंभीर होताहों ॥ जब ब्रह्मा उप
जकर सृष्टकों बहुड रचताहै ॥ तब मैं सुमेरके वृछ
ऊपर इसी आलणे विषे स्थित होताहों ॥ श्रीवशि
ष्टोवाच ॥ हे पंछीयोंके ईश्वर जैसे तुम अखंडित स्थि
त होते हो ॥ तैसे अवर जोगेश्वर स्थित किउं नहीं होते ॥
भसुंडोवाच ॥ हे मुनीश्वर इह नेत परमात्माकी है ॥
सो किसीसों लंघी नहीं जाती ॥ उन जोगेश्वरहुंकी नेत
इसी प्रकार हूई है ॥ मेरा आवणा इसी प्रकार भया ॥ ईश्व
रकी नेत अतुल है ॥ उन विसेष किसीसों नहीं करीजा
ती ॥ जहां जैसी नेत हूई है ॥ तहां तैसे ही है ॥ अन्यथा कि
सीसों नहीं होती ॥ इसी प्रकार हमकों भई है ॥ जो कल्पकु
ल्पविषे इसी पर्वतके कल्पवृछ ऊपर आलणा होताहै

28 हमआन निवासकरतेहैं ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे
पंछीयोंकेनाइक तुमारीअत्यंत दीर्घआयुहै ॥ ज्ञा
नविज्ञानकरसंपन्नहो ॥ अरयोगेश्वरहो ॥ तुमअ
नेकआश्चर्यदेखेहैं ॥ तिनविषेजोस्मर्नेविषेआव
ताहै सोकहो ॥ भसुंडोवाच ॥ हेमुनीश्वरएकवा
रअैसेस्मर्नेमोंआवताहै ॥ जोपृथिवीपरतृणअर
वृक्षहीथे ॥ अवरकछूनथा ॥ बहुडएकवारएका
दशसहस्रवर्षपर्यंतनस्महीदृष्टआवे ॥ जोवृक्षत
णजलगये ॥ एकवारअैसीसृष्टहूई ॥ जोतिसविषे
उंपजे चंद्रमाअरसूर्यनथे ॥ दिनअररात्रिकीगतिकछू
जा नथीथे ॥ कछुकछुसुमेरकेरत्नोंहीकाप्रकाशहोवे
एककल्पअैसेहूयाहै ॥ जोदेवतोंअरदैत्योंकायु
द्धहूया ॥ दैत्योंकीजीतभई ॥ सनहींदेवतेतिनऊंमा
नषोंकीन्याईहतकीये ॥ ब्रह्माविष्णुरुद्रतीनहीदेव
तारहे ॥ अवरसभसृष्टइनऊंजीती ॥ वासयुगपर्यंत
तिनहींकीआज्ञावरती ॥ बहुडएकवारअैसेचित
आवताहै ॥ जोदोइयुगपर्यंतपृथिवीऊपरवृक्षही
रहे ॥ अवरसृष्टकछूनभासे ॥ बहुडएकवारदोयु
गपर्यंतपृथिवीऊपरपर्वतहीसघनहोरहे ॥ अव
रकछूनभासे ॥ अरएकवारअैसेहूया ॥ जोसभजल
चढगये ॥ अवरकछूनभासे ॥ एकसुमेरपर्वतथंनेकी
न्याईभासे ॥ अरएकवारअगस्तमुनिदक्षिणदिशा
तेआया ॥ अरविंध्याचलपर्वतवधया ॥ सभनक्षत्रोंउस
सचूरणकरदीया ॥ इहस्मरणआवताहै ॥ हेमुनीश्व
रबहुतकछुस्मरणआवताहै ॥ परसंक्षेपतेसुणो ॥
एककालमोंसृष्टविषेदेवतेहीहूये ॥ मनुष्यअर
दैत्यकछूनभासे ॥ एकवारअैसीसृष्टहूई ॥ जोब्राह्मण
मद्यपानकरें ॥ अरम्रडबेटेहोयबेठें ॥ अरजीवऊंवि
षविपर्ययहीधर्महोवहि ॥ अरएकवारसृष्टअैसी
स्मरणमोंआवतीहै ॥ जोपृथिवीऊपरपर्वतकोऊ

दृष्टि न आवै ॥ ब्रह्मांड ही होरहा ॥ एक बार सृष्टि ऐसी हूई ॥ जो सूर्य चंद्रमा नक्षत्र लोकपाल कोऊ न उपजा ॥ एक सृष्टि ऐसी हूई जो सब नहीं हूये ॥ एक सृष्टि ऐसी हूई जो तिस विषे स्वामकार्तिक न उपजा ॥ दैत्य वध पाये ॥ दैत्यों ही का राज बध गया ॥ इत्यादिक मुज कौं बहुत स्मरण हैं ॥ केताइक कहों ॥ सूर्य चंद्रमा नक्षत्र इंद्र उपेंद्र वामनजी लोकपाल इनके बहुत जन्म मुज कौं स्मरन में आवते हैं ॥ जब हरनाक्षस कौं हरि मार्या है सभी चित है ॥ जो वेदों कौं ले गया है ॥ अर क्षीर समुद्र मथ्ये हैं ॥ सो भी बहुत स्मरण में आवते हैं ऐसी सृष्टि भी दृष्टि आई ॥ जो विष्णु जी का वाहन गरुड़ हूया नहीं ॥ अर ब्रह्मा जी हंस वाहन विनां हूया ॥ अर रुद्र बलद वाहन विनां हूया ॥ इस तें आदि लेकर बहुत कछु देष्या है ॥ क्या क्या तुमारे आगें वर्नन करों ॥ ॥ इति निर्वाणप्रकरणे जीवतवृतांतवर्ननं नाम सर्गः ॥ १८ ॥ काकभुसुंडोवाच ॥ हे मुनीश्वर जब ब्रह्मंड सृष्टि उत्पत्ति भई ॥ तब तुम उत्पत्ति हूये ॥ नारद राजपुलह पुलस्त्य नारद इंद्र मरीच उद्दालिक क्रतु तिनग अंगिरा ॥ सनतकुमार भृगु संसादिक उपजे ॥ बहुड़ सुमेर मंदराचल कैलास हिमालय आदिक पर्वत उपजे हैं ॥ अत्र व्यासदेव बाल्मीक इत्यादिक तो अल्पकाल के उपजे हैं ॥ हे मुनीश्वर तुम जो हो सो ब्रह्मा के पुत्र हो ॥ तिस कारण तें तुमारे आवजन्म स्मरण मुज कौं आवते हैं ॥ कबी तुम आकाश तें उपजे हो ॥ कबी जल तें उपजे हो ॥ कबहूं पहाड़ तें उपजे हो ॥ कबहूं पवन तें ॥ कबहूं अग्नि तें उपजे हो ॥ हे मुनीश्वर मंदराचल पर्वत क्षीरसमुद्र विषे पायकर जब मथने लागे हैं ॥ तब देवते अर दैत्य होभनवान हूये हैं ॥ मंदराचल अधह कौं चल्या जावे ॥ तब वि

२५१
२१

ष्णुजीकछ्छकारूपधारकरपर्वतकोंग्रहिराया॥
अरअमृतकोंतिकास्या॥सोमुजकोंबादशवारस्म
र्णमोंआवताहे॥अरतीनवारहरनाषसपृथिवी
कोंसमेटलेगयाहैपातालविषे॥अरषटवारपु
र्सरामरेणकामाताकापुत्रहूयाहे॥बहूतसत्रीके
क्षत्रीयोंकानास
पाछेंहूयाहे॥अरनिछत्रीकरणकीयाहे॥जबदैत्य
छत्रीयहूंकेरूपविषेउपजलेलागे॥तिसनमि
त्तविष्णुजीपर्शरामकाअवतारलेतभया॥बहू
तकालजुगहूकेव्यतीतहोगयेहैं॥हेमुनीश्वरएक
सृष्टऐसीनईहे॥जोआगल्येतेंविपर्येरूप।शास्त्र
अरपुराणोंकेअर्थअवरअवरप्रकारके।अर
एककल्पविषेअवरहीपाठअवरहीयुक्ता॥अव
रहीअर्थ।काहेतेंजोजुगजुगप्रतिअवरहीपुराण
होतेहें॥कईदेवतेकरतेहें॥कईरिषीश्वरमुनीश्व
रकर्तेहैं॥अवरकथाइतिहासबहूतस्मरणमों
आवतेहैं॥बाल्मीकदादशवाररामायणकीयाहे
सोविस्मरणहोगयाहेजगतविषे॥दोवारमहाभा
रतव्यासकीयाहे॥अरइहजोव्यासनामाजीवहे॥ति
ससप्तवारकीयाहे॥हेमुनीश्वरइसप्रकारआख्या
नकथाइतिहासशास्त्रजोहूयेहैं॥सोमुजकोंबहू
तस्मरणमोंआवतेहैं॥हेसाधदैत्योंकेमारणेनमि
त्तविष्णुअवतारधारकरमारताहे॥जुगजुगपर्यं
तमुजकोंएकादशवाररामजीस्मरणमोंआवताहे
अरवसुदेवकेग्रहविषेपृथिवीकेभारउतारणेन
मितकृष्णजीसोलहअवतारकीयेहैं॥सोमुजकोंस्म
रणहैं॥तीनवारनृसिंहअवतारधारकरहरनाकस
कोंमारताहे॥हेमुनीश्वरइसप्रकारमुजकोंअनेक
सृष्टांस्मरणआवतीहैं॥परसनहींभ्रममात्रहैं॥क
छुउपजीयांनहीं॥जबआतमतत्तविषेदेषताहों॥त
बसृष्टांकछुनहींभासतीयां॥सभआभासमात्रहैं॥
जैसेजलविषेबुदबुदेउपजकरलीनहोजातेहैं॥

घ

तैसे आत्मा विषे मन के फुरणे कर के केई सृष्टि उ
पजती है ॥ अरु ज्ञान होजाती है ॥ तिस फुरणे कर के केई
सृष्टि उपजती या है ॥ केई सृष्टि सदृशा ही उपजती हैं
केई अर्ध सदृशा उपजती हैं ॥ केई विपर्यय उपजती
हैं ॥ हे मुनीश्वर केई सृष्टि विषे उनही जैसे आकार
अरु उनही जैसे कर्म आचार होते हैं ॥ केई मन्वंतर म
न्वंतरां पर्यंत अवर ही अवर सृष्टि उपजती हैं ॥ किसी
विषे ऐसे होता है ॥ पुत्र पिता रूप होजाता है ॥ अरु पिता
पुत्र रूप होजाता है ॥ शत्रु मित्र होजाता है ॥ मित्र शत्रु
होजाता है ॥ बांधव अबांधव होजाता है ॥ अरु अबांध
व बांधव होजाता है ॥ इस प्रकार विपर्यय होते दृष्टि आ
वते हैं ॥ कबहूं हिमलतावान कल्पवृक्ष इस ही पर
हमारा आलणा होता है ॥ कबहूं मंदराचल विषे ॥ कब
हूं हिमाले पर्वत विषे ॥ कबहूं मालव पर्वत विषे हमा
रा आलणा होता है ॥ इसी प्रकार बनवल्ली वृक्षां ऊ
पर होजाता है ॥ कबहूं इसी कल्पवृक्ष ऊपर होजाता है
अब तो बहुत काल हूया है ॥ जो इसी कल्पवृक्ष ऊपर
होता है ॥ अरु इसी आलणे विषे हमारा निवास होता है
जब सृष्टि नाश होजाती है ॥ तब भी मेरा शरीर रहता है
मैं जो आसन लगाइ करि अपणी पुर्यष्टका को ब्रह्म स
त्ता विषे स्थित करता हों ॥ इसी कारण तें इह शरीर मुज
को प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर इह जगत मन संकल्प मा
त्र है ॥ जैसा संकल्प फुरता है ॥ तैसा आगे जगत होभास
ता है ॥ इह जगत सत भी नहीं ॥ अरु असत भी नहीं ॥ केव
ल भ्रम रूप है ॥ तिस जगत भ्रम विषे अनेक आश्चर्य
दृष्टि आवते हैं ॥ पिता पुत्र होजाता है ॥ मित्र शत्रु होजाता
है ॥ स्त्री पुरुष होजाती है ॥ पुरुष स्त्री होजाता है ॥ अनेक
बार ऐसे होते हैं ॥ कबहूं कलयुग विषे सतयुग वर्तने
लागता है ॥ सतिजुग विषे कलिजुग वरतणे लागता है
अदृष्ट ही वेद विद्या के अर्थ होते हैं ॥ द्वापुर विषे त्रेता त्रे
ता विषे द्वापुर वर्तणे लागता है ॥ नाना प्रकार के आश्चर्य

ॐ

30 नासते हैं ॥ हे मुनीश्वर सहस्र चौकरी जुगों की बीती
त होती है ॥ तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है ॥ सो दे
दिन ब्रह्मा समाधि विषे जुडरह्या सृष्टि संन हीं रही
एनी स्मरण आवता है ॥ अवर के ई देश किया विचि
त्र रूप चित आवते हैं क्या क्या कहो ॥ ॥ इति निर
वाणप्रकरणे चिरंजीवीतवर्ननंनामसरगः ॥
॥ १९ ॥ वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इस प्रकार ज
ब वसुंन कहा ॥ तब मैं बडे जिज्ञासा के अर्थ क
ल्पवृछे ऊपर पूछत भया ॥ कि हे पंछीयों के ईश्वर
तूं चिरप्रजंत जगत विषे व्यवहार करता रहा ॥ तेरे
शरीर कौं मृत्यु क्यों न ग्रास लीया ॥ बसुंडोवाच ॥
हे मुनीश्वर तूं सर्वज्ञ जानता हैं ॥ परब्रह्म जिज्ञासा क
र कै पूछता हैं ॥ तौं जैसे तत्स्पष्ट जूहा वेदार्थ पड
के बडे गुरौं के आगे कहता है ॥ तैसे मैं आज्ञा मा
न कर कहता हों ॥ हे मुनीश्वर मृत्यु किस कों मारती
है ॥ अर किस कों नहीं मारती ॥ सो श्रवण कर ॥ दुष
रूपी जो मोती हैं ॥ अरवासनां रूपी तंत सा पिरोये
हैं ॥ इह माला जिसके कंठ विषे पडी हूई है ॥ तिस
कौं मृत्यु मारती है ॥ अरु जिसके कंठ विषे एह माला
पडी नहीं ॥ तिस कौं मृत्यु नहीं मारती ॥ शरीर रूपी वृ
छ है ॥ अर चित रूपी सर्प तिस विषे बैठा है ॥ सो साप
पी आगनि जिस वृछ कों नहीं जलावती ॥ सो मृतक के
वश नहीं होता ॥ अर रागद्वेष करपूरण विषसों जो
है ॥ चित रूपी सर्प अर चिंतांकर पडा चूरण होता है
अर लोभ रूपी व्याधकर पडा नष्ट होता है ॥ तिसकौं
३५ मृत्यु पडी मारती है ॥ ग्रास लेती है ॥ जिसकौं इनका स्प
र्श नहीं करता ॥ तिसकौं मृत्यु भी नहीं मारती ॥ हे मुनी
श्वर शरीर रूपी समुद्र है ॥ क्रोध रूपी वडवाअगनि क
रपडा जलता है ॥ जिसकौं क्रोध रूपी अगनि नहीं जला
वती ॥ तिसकों मृत्यु भी नहीं मारती ॥ जिसका मन पर्म

पावन निर्मल पद विषे धउ विश्रांत स्थित हूया
है॥ तिसकौं मृत्यु भी नहीं नास करती॥ हे मुनीश्व
र काम क्रोध लोभ मोह भय त्रिश्ना चिंता चंचलता
अभिमान प्रमादादिक दुष जिस विषे होते हैं।
तिसकौं मृत्यु मारती है॥ अरु जिसकौं काम क्रोध लो
भ मोहादिक रोग संसार बंधन का कारण बांध न
हीं सकते॥ इनौं कर जो लिपायमान नहीं होता॥ ति
सकौं समाहित चित कहीता है॥ हे मुनीश्वर आध
व्याधरूपी मल जिसकौं स्पर्श नहीं करती॥ सो समा
हित चित कहीता है॥ अरु जो देता है लेता है सनको
रिज करता है॥ अरु चित विषे आनात्म अभिमान
स्पर्श नहीं करता॥ तिसकौं समाहित चित कहीता
है॥ अरु जो पुरुष इष्ट की वांछा नहीं करता॥ अनिष्ट
विषे द्वेष नहीं करता॥ दोनौं की प्राप्ति विषे सम रह
ता है॥ तिसकौं समाहित कहीता है॥ हे मुनीश्वर जेते ६६
कछु ऐश्वर्यवान सुंदर पदारथ है॥ सो सत्त असत
रूप हैं॥ चक्रवर्ती राजे अरु स्वर्ग विषे गंधर्व विद्याध
र किंनर देवते तिनकी स्त्रीगण अरु सुरमौं की से
नादिक सन नाशरूप हैं॥ मानुष दैत्य देवते असु
र पहाड ताल समुद्र नदीयां जेते कछु वहि पदारथ
हैं॥ सो भी नाशरूप हैं॥ स्वर्गलोक पृथ्वीलोक पाताल
लोक जेता कछु जगत भोग है॥ सो सत्त असत रूप है
अरु असुभ हैं॥ कोउ पदारथ श्रेष्ट नहीं॥ न पृथ्वी का
राज श्रेष्ट है॥ न देवलोक का रूप श्रेष्ट है॥ न नागों का
पाताल लोक श्रेष्ट है॥ न कछु शास्त्रौं का विचारणा
श्रेष्ट है॥ न कछु का (कवीइ) मंडू का जानणा श्रेष्ट है॥ न पुरा
तन कथा के श्रवन ने नकरणे श्रेष्ट हैं॥ जहां संतों का
मन स्थित है॥ तिस तें श्रेष्ट कछु नहीं॥ न बहुत जीव
णा श्रेष्ट है॥ न मूढता कर मरजावणां श्रेष्ट है॥ न नर

कों विषे पड़तां नों श्रेष्ट हे॥ इस त्रिलोकी विषे अवर कोउ
पदारथ श्रेष्ट नहीं॥ जहां संतों का मन स्थित हे॥ सोई श्रे
ष्ट हे॥ इह नानाप्रकार का जगत न्याम चल नहीं रूप हे॥
जो ज्ञानी पुरुष हैं॥ सो मृढ्ह होकर चल पदार्थों विषे न
हीं रमते॥ उह बडे तजीवले की इछा भी नहीं करते॥
॥ इति निरवाण प्रकरणे बसुंडोपाष्याने संकल्प
निराकरणं नाम सर्गः॥ २ ॥ बसुंडोवाच॥ हे मुनी
श्वर एक केवल आतम दृष्ट सभ ते श्रेष्ट हे॥ जिसके
पाये तें सर्व दुषनाश होते हैं॥ अरु परम पद कों प्राप्त हो
ते हैं॥ सो आतम चितवनी सर्व दुषों का नाश करती हे
चिरंकाल जो तीन तापों कर तपायमान जीव हे॥ अरु
जन्मों के मारग कर थका होता हे॥ तिस के श्रम कों दू
र करती हे॥ अरु तृष्णा भी मिटावती हे॥ समस्त दुषों को
जो असत्ता अनर्थ करणे हारी हे॥ तिस कों नास करती
हे॥ जैसे अंधकार कों प्रकाश नाश करता हे॥ तैसे इस
के अंतर सीतलता का शुद्ध उपजावती हे॥ हे भगवन ऐ
सी जो आतम चितवनी हे॥ सो सर्व संकल्पतें रहित हे
सो तुम सारषों कों सुगम प्राप्त हे॥ अरु हम सारषों कों
कठन हे॥ काहे तें जो समस्त कलनां तें अतीत हैं॥ हे मु
नीश्वर तिस आतम चिंता की सषी आवरनी को उइ
स कों प्राप्त होवे॥ तब इस का ताप मिट जावे॥ अरु मेहा
सीतल होवे॥ तिनों विषे मुज कों एक सषी प्राप्त भई हे
सर्व दुषों का नाश करती हे॥ सर्व सो नाग पदेवणे हारी हे
अरु जीवणे का कारण हे॥ ऐसी प्राण चिंता मुज कों प्रा
प्त भई हे॥ हे राम जी जब इस प्रकार मुज कों काकबसुं
ड कहा॥ तब मैं जाणता हूया भी तिसके अर्थ बड़े
पूछ्या॥ कि हे सर्व संशयों के छेदन हारे चिरंजीवी पु
रुष सभ तूं कहो॥ प्राण चिंता किस कों कहते हैं॥ बसुंडो
वाच॥ हे सर्व वेदांत के वेता सर्व संशयों के नाश क
रता मुज को उपहास के निमित पूछता हे॥ तूं तो सभ कु
छ जानता हे॥ तथापि तुम सारीषों में कहता हों॥ गुरु

केआगेंकहणाजीकल्याणकेनमित्तहै॥ बसुंदकौं
जीवणेकौकारणंअरबसुंदकौंआत्मलीनदेवणे
हाराप्राणचिंताकहीतीहै॥ हेभगवनइसदृष्टकें
आश्रयकरकेमैंपरमपदकौंप्राप्तभयाहों॥ बंध
नमुजकौंकोऊनहींहोता॥ बैठतेंचलतेंजागतें
सोवतेंसर्वठौरसर्वअवस्थाविषेमेराचित्तसा
वधानरहिताहै॥ इसकारनकरबंधनकोऊन
हींहोता॥ हेमुनीश्वरप्राणअरअपानकेसंसर
णेकीगतिमैंपाईहै॥ तिसजुगतकरमुजकौंआ
त्मबोधहुयाहै॥ तिस[illegible]बोधकरमेरेमदमो
हादिकविकारनष्टहोगयेहैं॥ अरसांतिरूपहो
यकरस्थितिभयाहों॥ हेमुनीश्वरजिसकौंप्रान
अपानकीगतिप्राप्तभईहै॥ सोसर्वआरंभक
र्मोंकेकरे॥ अथवासर्वआरंभोंकात्यागकरे। प
रसदाशांतिरूपहै॥ सुषसाथतिसकाकालव्यती
तहोताहै॥ हेमुनीश्वरप्राणजोउत्पतिहोताहै॥ सो
त्रिदेकोटतेंउपजताहै॥ उपजकरद्वादशअंगुल
पर्यंतबाह्यकौंजाताहै॥ तहांजायकरस्थिति
होताहै॥ तिसठोडतेंअपानरूपहोयकरउदय
होताहै॥ सोअंतरआवताहै॥ हृदयविषेआयक
रस्थितिहोताहै॥ हेमुनीश्वरबाह्यआकासके
सन्मुषजोप्राणजाताहै॥ सोअग्निमुषवतउष्ण
होताहै॥ अरजोहृदयआकाशकेसन्मुषआव
ताहै॥ सोसीतलनदीकेप्रवाहवतआवताहै॥ अ
पानजोहैसोचंद्रमारूपहै॥ अरबाह्यतेंअंतर
आवताहै॥ अरजोअंतरतेंबाह्यजाताहै॥ सो
प्राणअग्निउष्णसूर्यरूपहै॥ प्राणवायहृदेआ
काशकौंतपावताहै॥ अरअन्नकौंपचावताहै
अरअपानजोहै॥ सोहृदयकौंसीतलकरताहै॥ चं
द्रमाकीन्यांई। हेमुनीश्वरअपानरूपचंद्रमाज
बप्राणरूपसूर्यविषेलीनहोताहै॥ तहांशांति

तलहै॥तिसविषेमनस्थितहोवै॥तबबडेशोक
कोंनप्राप्तहोवै॥अरप्राणरूपीसूर्यजबअपानरू
पीचंद्रमाकेघरविषेजाइलीनहोताहै॥तिसअ
वस्थाविषेमनस्थितहोवै॥तबबडेजन्मकाना
गीनहोवै॥हेमुनीश्वरसूर्यरूपीजोप्राणहै॥उस
नेंअपणेसूर्यभावकोंत्याग्या॥अरअपानरूपीचं
द्रमाकोंजबलगनहींप्राप्तभया॥तिसअवस्था
केदेशकालकौंविचारे॥तबबडेशोककोंनप्रा
प्तहोवै॥सबशोकनाशहोजावै॥अरद्वादशअंगु
लजोआकाशहै॥तिसतेंअपानरूपीचंद्रमाउप
जकरहिदेविषेप्राणरूपीसूरजमोंलीनहोता
है॥अरसूरजभावकोंजबलगप्राप्तनहींभया
तिसकेमध्यभावअवस्थाविषेजिसकामनला
गाहै॥सोपर्मपदकोंप्राप्तहोताहै॥हिदेविषेचंद्र
माअरसूरजकेअस्तिभावअरउदेभावकाज्ञा
ताइहहोवै॥अरइनकाआधारभूतजोहैआत
मा॥तिसकोंजाणेतबमनबडेनहींउपजता॥हे
मुनीश्वरप्राणअपानरूपीजोहिदेआकाशवि
षे॥चंद्रमाअरसूर्यउदयअरअस्तिहोताहै॥ति
नकाजोगकासकहिदेविषेभास्करदेवहै॥तिस
कोंजोदेषताहै॥सोईदेषताहै॥अरबाह्यजोसूर्य
काप्रकाशहोताहै॥कबहूंअंधकारहोताहै॥तब
प्रकाशकेउदेहूंयेअरतमकेक्षीणहूंयेकछु
सिधतानहींहोती॥परजोहृदयकातमदूरहोता
है॥तबपर्मसिधताकोंप्राप्तहोताहै॥बाह्यकेत
मनष्टहूंयेंलोकोंकोंप्रकाशहोताहै॥अरहृदय
तमनष्टहूंयेआतमप्रकाशउदयहोताहै॥अर
अज्ञानअंधकारकाअभावहोजाताहै॥अरपर्म
पदकोंजाणकरमुक्तहोताहै॥प्राणअपानकीजु
क्तिजाणेतेंतमनष्टहोजाताहै॥हेमुनीश्वरप्रा

ण अपाणरूपी जो चंद्रमा अर सूरिज हैं ॥ सो जतन
बिनां उदै अर अस्ति पडे होते हैं ॥ जब प्राणरूपी सू
रिज हृदयकोट तैं उपज कर बाह्य कों गमन करता
है ॥ तब उसी छिण अपानरूपी चंद्रमा विषै जाइ ली
न होता है ॥ उह उदै हो आवता है ॥ अर जब अपान
रूपी चंद्रमा रुदैकोट विषै सूरिजरूपी प्राणवाय
विषै आन स्थित होता है ॥ तब उसी छिण विषै प्राण
रूपी सूरिज उदै होता है ॥ प्राण के अस्ति हूये अपा
ण उदै होता है ॥ अर अपाण के अस्ति हूये प्राण उ
दै होता है ॥ जैसे छाया के अस्ति हूये धूप उदै होती
है ॥ धूप के अस्ति हूये छाया होती है ॥ तैसे प्राण अ
पान की गति है ॥ हे मुनीश्वर जो रुदैकोट तैं प्राण उ
दै होता है ॥ तब प्राणों का रेचक होवणे लागता है ॥
अर अपान का पूरक होणे लागता है ॥ जब जाइक
र अपान विषै स्थित हूया ॥ तब अपान का कुंभक
होता है ॥ तिस कुंभक विषै जब ए स्थित होता है ॥ त
ब बहुड़ तीनों तापों कर न होतपता ॥ जब अपान
का रेचक होता है ॥ तब प्राण का पूरक होणे लागता
है ॥ जब अपान जाइ स्थित होता है ॥ तब प्राण का कुं
भक होता है ॥ तिस विषै जब स्थित होता है ॥ तब बहु
ड तीनों तापों कर तपाइमान नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर
प्राण अपान के अंतर जो शांतरूपी आतम तत है ॥
तिस विषै जब स्थित होता है ॥ तब तपायमान नहीं
होता ॥ जब अपान आय स्थित होता है ॥ अर प्राण उ
दै नहीं भया ॥ तिस अवस्था विषै जो साक्षीभूत अव
स्था है ॥ सो आतम तत है ॥ तिस विषै जब स्थित होता है
तब बहुड़ शोकवान नहीं होता ॥ जब अपान के स्था
न विषै प्राण जाइ स्थित होता है ॥ अर अपान जब ला
उदै नहीं भया ॥ तहां जो देश काल अवस्था है ॥ तिस
विषै मन स्थित होवै ॥ तब मन का मनत्वभाव जाता है
बहुड़ उपजता नहीं ॥ हे मुनीश्वर प्राण जो स्थित हो

ता है। अपान विषे। अरु अपान उदै नहीं हूया॥ उह जो
कुंभक है। अरु अपान अस्त प्राण विषे स्थित भई। प्रा
ण जब लग उदै नहीं हूया॥ उह जो कुंभक है॥ तिस वि
षे जो शांति तत है॥ सो आतमा का स्वरूप है॥ सो शुद्ध है
परम चेतन्य है॥ जो इस को प्राप्त होता है॥ सो बहुड़ शो
कवान नहीं होता॥ हे मुनीश्वर पुष्प विषे जैसे सुगंध हो
ती है॥ सो पुष्प की गंध साथ प्रजोजन होता है॥ तैसे प्रा
ण अपाण के अंतर जो अनन्त तत स्थित है॥ तिस सा
थ प्रयोजन है॥ सो प्राण है॥ न अपाण है॥ तिस अनंत त
तत की हम उपासना करते हैं॥ प्राण हृदै को प्राप्त होता
है॥ अपान कोठ विषे। अरु अपाण प्राण कोठ विषे दे
होता है॥ तिस प्राण अपाण के मध्य विषे जो चिदात्मा है
तिस की हम उपासना करते हैं॥ हे मुनीश्वर प्राणों का
जो प्राण है॥ अपान का अपान है। जीव का जीव है। अर
देह का आधारभूत है। ऐसा जो चिदात्मा है। तिस की ह
म उपासना करते हैं॥ अरु जो सर्व प्रकाशों का प्रकाश है।
अरु सर्व पावनों का पावन है॥ अरु सर्व भाव अभाव प
दार्थों का आपणा आप है। तिस चिदात्मा की हम उपास
ना करते हैं॥ जो पवन रिदे विषे परस्पर संपुटरूप है।
तिस विषे जो साक्षीरूप है॥ अरु अंतर बाहिर सनो
र उही है॥ तिस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं॥ जब
अपान अस्त होता है॥ अरु प्राण उपजा नहीं॥ तिस छिण
विषे जो कला कलंक तें रहित है॥ तिस चैतन्य तत की
हम उपासना करते हैं॥ जब प्राण अस्त होता है॥ अरु अ
पान उपजा नहीं॥ ऐसा जो नासका के अग्र विषे शुद्ध
आकाश है॥ तिस विषे जो सत्ता है॥ तिस चिदात्मा की ह
म उपासना करते हैं॥ जो प्राण अपाण के उत्पति का जो
स्थान है॥ अंतर बाह्य सर्व ओर तें व्यापा है॥ सर्व योग
कला का आधारभूत है॥ तिस चिदतत्व की हम उपास
ना करते हैं॥ जो प्राण अपान के रथ ऊपर आरूढ है
अरु शक्ति का शक्तिरूप है॥ तिस चितत्त्व की हम उ

पासना करते हैं ॥ हे मुनीश्वर जो संपूर्ण कला कलंक तें
रहित है ॥ अर सर्व कला जिसके आश्रे हैं ॥ ऐसा जो अ
नुभव तत है ॥ सर्व देवता जिसकी सरनि कों प्राप्त होते हैं
तिस आतम तत की हम उपासना करते हैं ॥ ॥ इति
श्री निरवाण प्रकरणे प्राणयाम समाध वर्तनं ना
म सर्गः ॥ २१ ॥ बसिष्ठो वाच ॥ हे मुनीश्वर इस प्र
कार मैं प्राण समाध कों प्राप्त भया हों ॥ इस क्रम कर कै मैं
आतम पद कों प्राप्त भया हों ॥ इस निर्मल दृष्टि कों आश्र
य कर कै स्थित हों ॥ एक छिन भी चलायमान नहीं होता ॥
सुमेर पर्वत की न्याई स्थित हों ॥ चलता फिरता भी स्थित हों
जाग्रत विषे भी सुषुप्त हों ॥ सुपन विषे भी स्थित हों ॥ सर्व
दा आतम समाध विषे लाग रहिता हों ॥ विक्षेप कदा
चित नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर नित अर अनित भाव कर
स्थित जो जगत है ॥ तिस कों त्याग कर मैं अंतरमुख अप
णे आप विषे स्थित हों ॥ अर प्राण अपान की कला जो तु
मारे विद्यमान कही है ॥ सो तिस का सदा ऐसे ही प्रवाह च
ल्या जाता है ॥ तिस विषे अयतन समाध है ॥ तिस कर मैं स
दा सुखी रहता हों ॥ कष्ट कछु नहीं होता ॥ अर जिस कों
ए कला नहीं प्राप्त भई ॥ सो कष्ट करता है ॥ हे मुनीश्वर
अज्ञानी जो जीव हैं ॥ महाप्रलै परजंत संसार समुद्र विषे
पडे डूबते हैं ॥ इसी प्रकार पडे गोते षाते हैं ॥ अर जिनो पु
रुषों पुरुषार्थ कर आतम पद पाया है ॥ सो सुषसाथ वि
चरते हैं ॥ हे मुनीश्वर अतीत काल की मुज कों चिंता नहीं ॥ अ
र भविष्यत काल की इछा नहीं ॥ वर्तमान विषे यथा प्रा
प्त राग दोष तें रहित होकर विचरता हों ॥ अर सुषुप्त की
न्याई स्थित हों ॥ ताते केवल स्वरूप स्थित हों ॥ भावाभाव प
दार्थों तें रहित अपणे आप विषे स्थित हों ॥ इस कारण तें
चिरजीवता हों ॥ अर दुष तें रहित हों ॥ प्राण अर अपाण की
कला कों समझ कर के स्वरूप विषे स्थित हों ॥ इस कारण
तें निरदुष जीवता हों ॥ आज एक छिन में पाया है ॥ अर एका
को पावोंगा ॥ एह चिंता दूर होगई है ॥ इस कर निरदुष जी
वता हों ॥ न किसी की उसतति करता हों ॥ न कदाचित निं

दा करता हों ॥ अरु सर्व कों आत्मस्वरूप देषता हों ॥ इस का
रण तें सुषी जीवता हों ॥ इष्ट प्राप्त विषै मैं हर्ष मान नहीं
होता ॥ अरु अनिष्ट की प्राप्त विषै मैं सोक मान नहीं होता
इस कारण तें निरदुष चिरंजीवता हों ॥ मैं पर्म त्याग कीया
है ॥ सर्व आत्म भाव देषता हों ॥ जीव भाव दूर होगया है ॥ इ
स कारण तें अदुष जीवता हों ॥ हे मुनीश्वर मन की चपल
ता मिटाई है ॥ अरु राग दोष दूर होगये हैं ॥ मन शांति कों
प्राप्त भया है ॥ तिस कारण तें अरोग जीवता हों ॥ काष्ट अ
र सुंदर स्त्री अर पहाड तृण अग्नि स्वर्ण सर्वत्र सम भाव
देषता हों ॥ ता ते निरदुष जीवता हों ॥ आजण पाया है ॥ आगे
एह प्राप्त होवेगा ॥ इह चिंता रूपी जो मृत्यु है ॥ तिस तें रहित
सुषी जीवता हों ॥ हे मुनीश्वर जरा मरण के दुष विषे अ
र राज लोभन के सुष विषे शोक अरु हर्ष तें रहित हों ॥ स
म भाव स्थित हों ॥ तां ते निरदुष जीवता हों ॥ इह मेरे बांधव
है ॥ अरु इह अन्य हैं ॥ इह मैं हों ॥ इह मेरे हैं ॥ इह कलत्र नों मु
जकों कछु नहीं ॥ तां तें सुषी जीवता हों ॥ आहार करता हों
विवहार करता हों ॥ बैठता चलता सूंघता स्पर्श करता
स्वास लेता हों ॥ पर इह जो अभिमान है मैं देह हों ॥ इस अ
भिमान तें रहित सुषी जीवता हों ॥ इस संसार की ओर तें सु
षुप्त रूप हों ॥ अरु संसार की गति कों देष कर हसता हों ॥
जो है नहीं इह आश्चर्य है ॥ इस कारण तें निरदुष जीवता
हों ॥ हे मुनीश्वर सर्वदा काल सर्व प्रकार सर्व पदार्थों वि
षे समबुध हों ॥ विषमता मुजकों कछु नहीं भासती ॥ न कि
सी कर सुषी होता हों ॥ न दुषी होता हों ॥ जैसे हाथ पसारीये
तो भी शरीर है ॥ अरु संकोचीये तो भी सरीर है ॥ इस प्रकार
सर्वात्मा मैं आप कों जाण्या है ॥ तां तें मुजकों दुष कोऊ नहीं
मेरी बोली अरु निश्चय स्निग्ध अरु कोमल सनके रिदे
अंगम हैं ॥ सर्वत्र जो ऐसे देषता हों ॥ इस कारण तें निरदु
ष जीवता हों ॥ चरनों तें आदि मस्तक परजंत देह विषे मु
जकों ममता नहीं ॥ अर अहंकार रूपी चिकड सों निकसा
हों ॥ इस कारण तें निरदुष जीवता हों ॥ कार्यकर्ता अरु भो

जनकर्ता भी मैं हूं ऐसा आवता हों॥ पर मेरे मन विषे निहक
र्मता धरड है॥ इसकारणतें निरदुष जीवता हों॥ हे मुनीश्व
र समर्थता करके करोंतो भी मुजकों अभिमान नहीं हो
ता॥ अगर दारिद्री होवों॥ तब संपदा सुषकी इछा नहीं हो
ती॥ किसी विषे आसक्त नहीं होता॥ इसकारणतें अदुष
जीवता हों॥ इस असत सरीरकों नाश हूये अभिमान ना
स नहीं होता॥ अरु तो का समूह सब असत रूप है॥ अ
रु आतमा सत रूप है॥ ऐसे जाणकर मैं स्थित हों॥ इसका
रणतें मैं सुषी जीवता हों॥ आसा रूपी फासीतें मुक्ति चित
की वृत्त समाहित हुई है॥ अनात्मा विषे आत्म अभिमान
की वृत्त नहीं फुरती॥ इसकारणतें सुषी जीवता हों॥ हे मु
नीश्वर मैं जगतकों असत जाण्या है॥ अरु आतमाकों स
त हाथ विषे बिलफलवत प्रतक्ष जाण्या है॥ इस जगत
विषे सषुप्त प्रबुध हों॥ इसकारणतें निरदुष जीवता हों॥ सु
षकों पाइकर सुषी नहीं होता॥ अरु दुषकों पाइकर दुषी
नहीं होता॥ सर्वका परम मित्र हों॥ इसकारणतें निरदुषजी
वता हों॥ अपदा विषे अचल चित हों॥ अगर संपदा विषे
सब जगतका मित्र हों॥ भाव अभाव कर ज्योंकात्यों हों॥ इ
सकारणतें सदा सुषी जीवता हों॥ न प्राछिन अहं मैं हों॥ न
कोऊ अन्य है॥ न कोऊ मेरा है॥ न मैं किसीका हों॥ इह भावना
मेरे चित विषे धरड है॥ तिसकारणतें सुषी जीवता हों॥ बड
ड कैसा हों॥ मैं ही जगत हों॥ मैं हों आकाश हों॥ देशकाल वस्
या सन मैं ही हों॥ इह निश्चा मुजकों धरड है॥ तातें अरोग
जीवता हों॥ घट भी चैतन्य है॥ पट भी चैतन्य है॥ बट भी चै
तन्य है॥ रथ भी चैतन्य है॥ इह सब चैतन्यतत है॥ इह निश्चा
मुजकों धरड है॥ इसकारणतें अदुष जीवता हों॥ हे मुनसा
रदूल इह सब कछु मैं तुजकों कहा है॥ बसुंढ नाम काक
त्रिलोकी रूपी कमलों का भ्रमरा है॥ तिस कह्या॥ ॥ इति
निरवाणप्रकरणे चिरजीवनहेतकथनं नाम सर्ग
॥ २२ ॥ बसुंढोवाच॥ हे मुनीश्वर जैसा मैं हों॥ तैसा तुमा
रे आगें कहा है॥ सो तुमारी आग्या के अर्थ कहा है॥ गुरोंके
आगें कहणा ढिठाई है॥ तुम ज्ञान के पारगामी हो॥ श्रीव

प्राप्त

रिष्टोवाच ॥ हे भगवन आश्चर्य है ॥ आश्चर्य के पा
छे बहुत आश्चर्य है ॥ तुम भुवलोका भूषण कहा
है ॥ आत्म उदित रूप वचन जो तुम कहे हैं ॥ सो परम वि प्रकाश
स्मै का कारण है ॥ हे भगवन तुम धंन्य हो ॥ तुम महात्मा
पुरुष हो ॥ चिरंजीवहु के मध्य विषे साक्षात तुम मुझ
को दूसरे ब्रह्मा भासते हो ॥ आज हम नी धंन्य हूये जो तु
म सारखे महापुरुषों के मुख तें आत्म उदित इस प्रका
र सुणा है ॥ जैसे मैं पूछा है ॥ तैसे तुम कहा ॥ हे साध मैं
सप्त भूमलोक देखा है ॥ अरु दक्षगण देखे हैं ॥ आका
श लोक देखे हैं ॥ पाताल देखे हैं ॥ त्रिलोकी देखी है ॥ तु
म सरीषा कोउ विरला है ॥ जैसे बांस बहुतों विषे मोती
य हूवा जो विरला होता है ॥ तैसे तुम जैसे विरले हैं ॥ हे
साध आज हम पुन्य रूप हूए हैं ॥ हमारी देह आज प
वित्र हूई है ॥ जो तुम सारखे मुक्ति आतम हू का दर्शन
हूया है ॥ हे रामजी इस प्रकार मैं कहि कर बहुर क
हा ॥ हे साध अब हम जाते हैं ॥ हमारे मध्यान का समा हू
या है ॥ सप्त रिषों के मध्य जाते हैं ॥ जब ऐसे मैं कहा ॥ त
ब कल्प जनता तें उठ खडा हूया ॥ अरु संकल्प के हाथ
कर के उसने स्वर्ण के पात्र रचके मोती अरु रतनों क
र के तिस ने मुझको अरघ पाद कीया ॥ पूजन कीया ॥ जैं
से त्रिनेत्र सदाशिव की पूजा करीती है ॥ तैसे चरनों तें ले
कर मस्तक पर्यंत मेरा पूजन कीया ॥ अरु बहुत नम्र
हो कर प्रणाम कीया ॥ अरु मैं उसको प्रणाम कीया ॥ इ
स प्रकार परस्पर नमस्कार कीया ॥ तब मैं उहां तें उठ
खडा हूया ॥ उठ कर आकाश मार्ग को उडता ॥ जैंसे
पंछी उडता है ॥ तैंसे मैं उडता ॥ उह भी मेरे साथ उडता ॥ प
रस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण कीये ॥ एक योजन पर्यंत
उह मेरे साथ चल्या गया ॥ फिर गये तब मैं उसको कहा ॥
हे साध तुम अब ई हां तें फिरो ॥ वारंवार उसको कहि क
र स्थित कीया ॥ मैं चला गया ॥ जब लग मैं उसको दृष्ट आ
वता रहा ॥ तब लग उह देखता रहा ॥ जब दृष्ट आवणे

ला

तें रहा॥ तब उह अपणे स्थान मों जा बैठा॥ मैं सप्तरि
षों के मंडल विषे आन स्थित भया॥ अरुंधती कर
पूजित हूया॥ हे रामजी इह बसुंट के वचन आश्च
र्य रूप मैं तुज को सुणाये हैं॥ अब भी उस सुमेर ऊप
र जो कल्पवृक्ष है॥ तिस की लता पर कल्याण रूप स
म स्थित है॥ अरु सांत रूप है॥ ध्यान करणे को जोग है॥
अरु सदा समाधवान है॥ ऐसा पुरुष अबला उहां
ही स्थित है॥ हे रामजी इह हमारा अरु उसका समागम
सतजुग के जब दो सै ब्यतीत भये थे॥ तब हूया था॥ अब
सतजुग क्षीण हूया है॥ त्रेताजुग वर्तता है॥ तिस विषे तु
म उपजे हो॥ हे रामजी अब भी अष्ट वर्ष ब्यतीत हूये हैं॥
जो हमारा अर उसका मिलाप हूया था॥ तिसी वृक्ष की
लता ऊपर॥ हे रामजी इह मैं तुज को बसुंट का इतहा
स कहा है॥ सो परम उतम है॥ तिसको विचार करेगा॥ तब
संसार भ्रम निवर्त हो जावेगा॥ इह मुन वशिष्ठ अर बसुं
ट की कथा है॥ जो निर्मल बुध साथ विचारेगा॥ सो भौत
पी संसार के भय तें तरेगा॥ ॥इति निरवाण प्रक
रणे बसुंट उपाख्याने समाप्तं नाम सर्गः॥ २३॥ श्री
वशिष्ठ उवाच॥ हे अनघ निहपाप इह मैं तुज को बसुं
ट का वृतांत सब कहा है॥ इस बोध कर के बसुंट म
हा संकट को तरता है॥ इस दृष्टि को तुम भी आश्रय क
के प्राणों की जुक्ति का अभ्यास करो॥ तब तुम भी बसुंट
की न्याई भव समुद्र को पार हो वहुगे॥ जैसे बसुंट ज्ञान
जोग कर के पावन जोग पद को पाया है॥ तैसे तुम भी
पावो॥ जैसे प्राण अपान के अभ्यास कर के परम तत्व को
प्राप्त भया है॥ तैसे तुम भी अभ्यास कर के प्राप्त होवो॥
वे ज्ञान दृष्ट जो तुम श्रवण करी है॥ तिसी और चित को
लाइ कर आतम पद को पावहु॥ बहुड जैसे इछा होइ
तैसे करो॥ श्री रामोवाच॥ हे रामजी भगवन प्रथ
वी विषे सूरज रूपी तुमारे ज्ञान की किरणों के प्रकाश
कर मेरे हृदे सो तम रूपी अज्ञान दूर हो गया है॥ अब प्र
बुध हूया हों॥ अपणे आनंद स्वरूप विषे स्थित भया

हैं॥ अरु जानणे जोग पद कों जानत भया हैं। मानो दूसरा
वशिष्ट भया हैं॥ हे भगवन इह जो तुम भुसुंड का चरि
त्र कहा है॥ सो परम विसमैकारण परमारथ बोध के
निमित कहा है॥ तिस विषे सरीररूपी ग्रह रक्त मास अ
स्थि का किसने रचा है॥ अरु कहां तें उपजा है॥ अरु कैसे
स्थित हूया है॥ अरु कवन इस विषे इस्थित है॥ श्रीव
सिष्टोवाच॥ हे रामजी परमारथ तत के बोधनिमित
अरु दोष बडू के निवर्त अर्थ इह मेरे वचन हैं॥ सो तूं सुण
आभास अस्थि इस सरीररूपी ग्रह का थंभा है॥ अरु नव इसके
द्वारे हैं॥ अरु रक्त मांस साथ इह लेपन कीया है॥ सो किसी
बणाया नहीं॥ आभासमात्र है॥ मिथ्या भ्रम कर के पड़ा भा
सता है॥ जैसे आकाश विषे दूसरा चंद्रमा भ्रम कर के प
ड़ा भासता है॥ तैसे असत रूपी सरीर भ्रम कर के पड़ा
भासता है॥ हे रामजी जब लग अज्ञान है॥ तब लग देह स
रूप त भासता है॥ जब ज्ञान होता है॥ तब देह असत भासता
है॥ जैसे स्वप्नकाल विषे स्वप्ने के पदारथ सत भासते हैं
अरु जाग्रतकाल विषे स्वप्ना असति भासता है॥ तैसे
अज्ञानकाल विषे अज्ञान के पदारथ देहादिक सत भा
सते हैं॥ अरु ज्ञानकाल विषे असति हो जाते हैं॥ जैसे बु
दबुदा जल विषे जल के अज्ञान कर सति भासता है॥
जल के जाणे तें बुदबुदा असति भासता है॥ तैसे देह अ
ज्ञानकाल विषे सत भासता है॥ आतमज्ञान कर असत
होइ जाता है॥ जैसे सूरज की किरणां विषे मारूथल की
नदी भासती है॥ तैसे आतमा विषे देह भासता है॥ हे रा
मजी जेता कछु जगत भासता है॥ सो सभ अभास मात्र
अज्ञान कर के भासता है॥ अहंत्वं आदिक कल्पना स
भ मनन मात्र मन विषे फुरती है॥ तूं कहता हैं॥ देह अ
स्त मांस का ग्रह रच्या है॥ सो अस्त मांस करनहार रचा सं
कल्पमात्र है॥ संकल्प कर के पड़ा भासती है॥ संकल्प के
अभाव हूये देह नहीं पाईती॥ हे रामजी स्वपन विषे जो
देह धार कर दिगंत टपर्वत देषता फिरता है॥ जाग
त हूयें उह तेरी देह कहां जाती है॥ जो कछु देह सत होती

तोजागत विषे भी रहिती ॥ अरु मनोराज करके स्वर्ग
कों जाता है ॥ अरु सुमेर विषे भ्रमता है ॥ भ्रमलोक
विषे फिरता है ॥ तब इह देह तेरी कहां होती है ॥ हेरा
मजी इन्हों स्थानों विषे जैसे मनका फुरणा देह भा
सती है होइकर । सो असतिरूप है ॥ तैसे इह सारी
रमनके फुरणे मात्र है ॥ असतही जाणो ॥ इह मेरा
धन है ॥ इह मेरी देह है ॥ इह मेरा देश है ॥ इत्यादिक
कल्पनां मनकार चीहूई है ॥ मनका बीज चित्त है ॥
हे रामजी इस जगत कों दीरघकाल का स्वप्ना जाणे
अथवा दीरघ चितका भ्रम जाणे ॥ अथवा दीरघ राज
मनोराज जाणे ॥ अवर वास्तव तें जगत कछु नहीं ॥ जब
अपने वास्तव परमात्म स्वरूप कों अभ्यास करके जा
णता है ॥ तब जगत असत रूप भासता है ॥ हे रामजी
मैं पूरब भी तुज कों ब्रह्मा जी के वचनों कर कह्या है ॥
जो जगत सभ मन का रचाइया है ॥ तांते इह जगत सं
कल्प मात्र है ॥ चिरकाल का जो अभ्यास होर हा है ॥
तिस कर सत भासता है ॥ जब दृढ पुरुष प्रयतन
कर आतम अभ्यास होवै ॥ तब असत भासै ॥ हे राम
जी जो भावना इसके हृदे विषे दृढ होती है ॥ तिस
का अभाव भी सुगम नहीं होता ॥ जब उसकी विपर्य
य भावनां का अभ्यास करीये ॥ तब उसका अभाव
हो जाता है ॥ तैसे इह मैं हों ॥ इह अवर है ॥ इत्यादिक क
लनां हृदे विषे दृढ होर ही है ॥ जब इसकी विपरजे
भावनां होवे ॥ अरु आत्म भावनां करीये ॥ तब उह मि
ट जावे ॥ सर्व आतम ही पडा भासै ॥ हे रामजी जिसकी
तीव्र भावनां होती है ॥ उही रूप उसका हो जाता है ॥ जै
से कामी पुरुष कों सुंदर स्त्री की कामना रहिती है ॥
तैसे ही इसकों आतमपद की चिंता रहे ॥ तब उही रू
प हो जाता है ॥ जैसे भृंगी कीट हो जाता है ॥ जैसे दिन
विषे जिस ब्यापार का अभ्यास होता है ॥ रात्र कों स्वप
ने विषे भी उही देषता है ॥ तैसे जिसकों इसका दृढ

अभ्यास होता है॥ सोई अनभव होता है॥ जैसे आ
काश विषे सूर्य तपता है॥ और मारूथल विषे ज
ल होयकर भासता है॥ सो जल का अभाव है॥ तैसे
पृथ्वी आदिक पदारथ भ्रमक कें भाव तें रहित
भाव रूप पड़े भासते हैं॥ जैसे नेत्र दूषण करके आ
काश विषे तिरवरे मोरपछ वत भासते हैं॥ तैसे
अज्ञान करके जगत जाल भासते हैं॥ हे रामजी इह
जगत सभ आभास रूप है॥ स्वरूप के प्रमाद करके
भय अरु दुख को प्राप्त होता है॥ जब स्वरूप को जाण
३४ ता है॥ तब भ्रम भय तें मुक्ति होता है॥ जैसे स्वप्नपुर
विषे चित के भ्रम करके सिंह तें भय पावता है॥ जब जा
गत स्वरूप चित आवता है॥ तब सिंह का भय निवर्त
हो जाता है॥ तैसे आत्म ज्ञान करके निर्भय होता है॥ ज
ब वैराग और अभ्यास करके निर्मल शुध आतम पद
को प्राप्त होता है॥ तब बड़े दुःखों को नहीं पावता॥ अ
रु रागद्वेष रूपी मल इस को स्पर्श नहीं करती॥ जैसे
तांबा पारस के स्पर्श करके स्वर्न हूया॥ तब तांबे भाव
को ग्रहण नहीं करता॥ तैसे बुद्ध मलिन नहीं होता॥
अहंत्व आदिक जेता कछु जगत भासता है॥ सो सर्व
आभास मात्र ही है॥ हे रामजी प्रथम सत असत को
जाणै॥ असत को निरादर करे॥ और सत का अभ्यास
करे॥ तब चित सर्व कलनां तें रहित होता है॥ और निह
क्रिया शांत पद को प्राप्त होता है॥ जो तत्त ज्ञान कर स
मदर्शी हूया है॥ तिस को जगत के इष्ट पदारथ पाये
तें हर्ष नहीं होता॥ और अनिष्ट के पाये तें शोक नहीं क
रता॥ न किसी की उस्तति करता है॥ न किसी की निंदा कर
ता है॥ अंतर तें शीतल शांत रूप हो जाता है॥ जो कोउ
बांधव मृत्यु हो गया है॥ तो उसकर तपायमान किंउ हो
वणा॥ उस तो मरणा ही था॥ जो आपणी मृत्यु आवै॥ तो
अब स्व शरीर छुटणा है॥ तब वृथा किंउ तपायमान
होवणा॥ और जो सेपदा आन प्राप्त होती है॥ तो उसक

रहर्षमाननहींहोता॥काहेतेंजोकछुभोगणेंथा॥हर्ष
किसकररहोवणें॥अरदुषआनप्राप्तहोवेतबकिंउ
शोककरणें॥शरीरकाव्यवहारसुषदुषआवताजाता
है॥इहअनिटहे॥जोअपणेंकीयाकर्मउत्पतिहोताहे
तबभीशोककिंउकरणें॥हेरामजीजोसतहे॥सोअस
तनहीं॥अरजोअसतहे॥सोसतनहीं॥बहुडरागदोष
किसनमितकरणें॥जिसकोंअैसातिष्ठाआनहूयाहेजो
नमैंहों॥नजगतहे॥नपृथवीहे॥तोभीशोककिंउकरणें
अरजोदेहतेंअन्यहों॥चेतन्यहों॥चेतन्यकातोनासनहीं
तबशोककिसनमितकरीये॥हेरामजीदुषतोकिसीप्र
कारनहीं॥जबलगविचारनहीं॥तबलगदुषहोताहे॥वि
चारकीयेतेंदुषकोंऊनहीं॥समकदर्शीजोमुनीश्वरहें
सोसतकोंसतजाणताहे॥अरअसतकोंअसतजाण
ताहे॥इसकारणतेंदुषनहींपावता॥अरजोअसमक
दरसीहे॥सोअज्ञानककेंदुषपावताहे॥जैसेदिनकेअंत
विषेमंदलशीतलहोजाताहे॥तैंसेसमकदर्शीकाअंत
रसीतलहोजाताहे॥जिसकोंकेरतव्यविषेकरतत्वका
अभिमाननहीं॥सोसंम्यकदर्शीहें॥हेरामजीजेतेकछु
जगतकेपदारथहें॥तिनकोंअंतरतेंअभासमात्रजाण
अरबाह्यजैंसेआचारहोवेतैंसेकर।अथवातिसकाभी
त्यागकर।निराभासहोइकरस्थितहो।मेंचिदाकाशहों
नित्यसर्वतहों।अरसर्वतेंरहितहों।अैंसेअभ्यासकर
एकांतनिर्मलआपकोंदेषेंगा॥अथवाअैंसेधारजोन
मैंहों॥नइहभोगहें॥नअर्थरूपजगतअडंबरहे॥अथ
वाअैंसेधारजोसनमैंहींहों॥नित्यशुधचिदात्माहों॥आ
काशरूपहों॥मेरेतेंइतरकछुनहीं॥मैंहीअपणेंआप
विषेस्थितहों॥इनदोनोंपक्षोंविषेजोइछाहोइ।सोईधा
र।तुजकोंसिधताकाकारणहोवेगा॥अरअभासमात्र
जगतकोंजाण।परइहभीकलंककरूपहे॥इसचितवनकों
भीत्यागकरनिराभासहो॥तूंचिदाकाशनित्यहें।सर्व
व्यापीहें।अरसर्वतेंरहितहें॥आभासकोंत्यागकरनि

र्मलग्रद्वैतहोरहु॥ग्रथवाविधनिषेधदोनोंदृष्टोंकों
ग्राश्रेकर॥हेरामजीइन्हांकोंकरो॥पररागदोषतेंर
हितहोवहु॥जबरागदोषतेंरहितहोवेंगा॥तबउतम
पदारथब्रह्मानंदकोंप्राप्तहोवेंगा॥जोसर्वकाग्रधिष्टा
नहै॥तिसकोंपावेंगा॥हेरामजीजिसकारिदारागद्वेष
रूपीग्रग्निकरपडाजलताहै॥तिसकोंसंतोषग्ररवैरा
ग्यादिकगुणनहींप्राप्तहोते॥जैसेदग्धभूतलविषेजोब
नहै॥हरणतिसविषेनहींप्रवेशकरता॥तैसेरागद्वेषा
दिकवालेरिदेविषेसंतोषादिकनहींप्रवेशकरते॥हे
रामजीरिदारूपीकल्पतरहै॥जोग्रैसारूक्षरागद्वेषादि
कसर्पकरहीनहै॥तिसतेंकवनपदारथहैजोप्राप्तन
होवै॥शुधरिदेतेंसनकछुप्राप्तहोताहै॥इहग्रर्थहै॥हे
रामजीजोबुधवानहै॥शुभग्राचारवानभीहै॥शास्त्रकूं
काजानताभीहै॥पररागद्वेषसंयुक्तहै॥सोगिदडकीन्याई
नीचहै॥तिसकोंधिकारहै॥जिनपदारथोंकेपावणेनिमि
तइहजतनकरताहै॥सोतोंग्रावतेंजातेहैं॥धनकोंएकग
कोऊकरताहै॥लेकोऊग्रवरजाताहै॥भोगताकोऊग्रव
रहै॥तोरागदोषकिसकाकरीये॥जोकछुपारब्धहै॥सोग्र
वस्यहोताहै॥धनकेनमितक्याव्यर्थजतनकरीये॥बांध
वग्रररवस्त्रग्रावतेहैं॥बहुडजावतेहैं॥जैसेसमुद्रविषे
रंगकाग्राश्रेबुधवाननहींकरते॥तैसेजगतकेपदा
रथोंकाग्रासराताबुधवाननहींकरते॥भावाभावरूपी
परमेश्वरकीमायाहै॥संसारकीरचनास्वप्नेकीन्याईहै
तिसविषेजोग्रासक्तहोतेहैं॥तिनकोंसर्पणीवतदंसती
है॥धनबांधवजगतवस्तुतेंमिथ्याहींग्रज्ञानकरकेस
तभासतेहैं॥हेरामजीजोग्रादिनहोवै॥ग्ररग्रंतभीनरहै
ग्ररमध्यविषेभासे॥तिसकोंभीग्रसतजाणीये॥जैसेग्रा
काशविषेफूलग्रसतहै॥तैसेसंसारकीरचनाग्रसतहै
जैसेगंधर्वनगरसुंदरभासताहै॥ग्ररनासहोजाताहै॥
जैसेस्वप्नपुरदारघकालकाभासताहै॥सोभ्रमरूपहै॥
तैसेइहजगतग्रसतरूपभ्रममात्रसंकल्परूपग्रभ्यास

केवसतेंघटताकोंप्राप्तनयाहै॥ कंधजोअकारवानभास
तीहै॥ सोआकारतेंरहितआकाशरूपहै॥ अरआत्मपद
सुषुप्तकीन्यांईअद्वैतरूपहै॥ तिससुषुप्तरूपपदतेंजब
गिरताहै॥ तबदीरघरूपस्वप्नसंसारकोंदेषताहै॥ हेराम
जीअज्ञानरूपीस्वप्नजामकोंदेषताहै॥ जबअज्ञानरूपी
निद्राकाअभावहोवे॥ तबअपणेआतमराजपदकोंप्रा
प्तहोताहै॥ अरनिर्विकल्पमुदताआतमपदकोंप्राप्तहो
ताहै॥ जैसेसूर्यकोंदेषकरकमलप्रफुलितहोतेहैं॥ तैसेज्ञा
नकरसुभगुणफलतेहैं॥ आतमरूपीसूर्यकैसाहै॥ सर्व
दुषरूतेंरहितहै॥ जोपुरुषनिद्रामोंहोताहै॥ सोसूक्ष्म
वचनकरनहीजागता॥ वेदशब्दअरजलदारणेकर
जागताहै॥ सोमैंतुजकोंमेघकीन्यांईगर्जकरवचनोंरूपी
जलकीवर्षाकरीहै॥ ज्ञानरूपीसीतलतासहितवचन
हैं॥ तिनरूवचनोंकरकेअबतेंज्ञानरूपीजागतबोध
कोंप्राप्तनयाहैं॥ ऐसेज्ञानकरजगीकोंआतमरूपदेषेंगा
हेरामजीनतुजकोंजन्महै॥ नमरणहै॥ नकोऊदुषहै॥ न
कोउद्यमहै॥ सर्वसंकल्पतेंरहितआतमपुरुषअपणे
आपविषेस्थितहै॥ समहै॥ सांतहै॥ सुषुप्तकीन्यांईतेरी
वतहै॥ अतिविस्तृतसमसुधअपणेस्वरूपहीविषेस्थि
तहै॥ ॥इतिनिरवाणप्रकरणेपरमार्थजोगउप
देशोनामसर्गः॥ २४ ॥वाल्मीकोवाच॥ इसप्रकार
जबवशिष्टजीकहा॥ तबरामजीसमशांतचेतन्यत
तविषेविश्रामकोपावतनया॥ अरपरमानंदकोंप्राप्त
नया॥ अरअवरजोसभाबेठीथी॥ सोवशिष्ठजीकेवच
नश्रवनकरकेसभआत्मसमाधिविषेस्थितहोरहे॥
बोलणेकाविवहारशांतहोगया॥ आकाशविषेजोशब्द
भासताथा॥ सोसांतहोगया॥ पिंजरोंमेंजोपंछीबोलते
थे॥ सोभीशांतहोगये॥ तूश्नीनये॥ बनकेजोजांतरथे॥
सोभीवचनसुणकरस्थितहोरहे॥ सर्वओरतेंशांतहो
रही॥ जैसेअर्धरात्रकेसमेंसमलोकशांतिरूपहोजा
ताहै॥ तैसेसभाकेलोकतूश्नीहोरहे॥ अरवचनोंकों

जोनिंद्राहै तिसकर अपणेस्वभावतेंजा रपाजोहै सोसंसार रूपी

वचन

39

विचारनेंलागे॥ जोक्याउपदेशमुनीश्वरकीयाहै॥ ए
कघड़ीपर्जंत शांतवृत्तरही॥ तिसकेअनंतरब
ड़ेवशिष्ठजीबोल्ये॥ हेरामजीअबतूंसम्यक
प्रबुधहूयाहैं॥ अरुआपणेआपविषेस्थितभ
याहैं॥ जोकछुजाण्याहै॥ तिसकेअभ्यासकात्या
गनहींकरणां॥ इसीविषेदृढरहणा॥ हेरामजीसं
साररूपीचक्रहै॥ तिसकानाभस्थानचित्तहै॥ तिस
चित्तनाभकेस्थिरहूयेंचक्रभीस्थिरहोजाताहै॥
इससंसाररूपीचक्रकातीव्रणवेगहै॥ यद्यपि प
रोकीताहै॥ तबभीफुर्लैलागताहै॥ तांतेंदृढप्रय
त्नबलकरकेंइसकोंरोकीये॥ संतहुकेसंगअरु
सत शास्त्रहुकेवचनयुक्तिबुधकरकेंरोकीताहै॥ हे
रामजीअज्ञानकरजोदैवकल्प्याहै॥ तिसकों
त्यागकरआपणेपुरुषार्थकाआश्रैकरहु॥ इ
सकरपर्मशांतपदप्राप्तहोताहै॥ ब्रह्मातेंआदि
लेकरचीटीपर्यंतसभअज्ञानरूपीसंसारचक्र
है॥ सोअसतरूपहै॥ भ्रमकरकेंसतकीन्याईभास
ताहै॥ तिसकोंत्यागकरहु॥ हेरामजीअसतरूपी
पदार्थहुविषेजोरागद्वेषकरतेहैं॥ सोमूर्षहैं॥
तिनतेंचित्रकापुरुषभीश्रेष्टहै॥ जोइष्टविषय
प्राप्तहोतेहैं॥ तबहर्षकरकेंप्रफुलितहोतेहैं॥ अरु
अनिष्टप्राप्तहोताहै॥ तबद्वेषकरतेहैं॥ अरचित्रके
पुरुषकोंरागद्वेषकिसीविषेनहीं॥ इसकारणतें
मैंकहताहों॥ जोचित्रकापुरुषइनतेंश्रेष्टहै॥ अर
इहआधिव्याधिकरपड़ेजलतेहैं॥ उहसदाजिउ
कातिंउस्थितहै॥ अरचित्रकापुरुषतबनासहोवे
जोआधारभीतकोंनासकरीये॥ आधिष्टानकेना
शविनांनासनहींहोते॥ अरइहपुरुषअविनासीके
आसरेहैं॥ तिसकानासहोतानहीं॥ अरमूर्षताकर

केआपकों नास होता मानते हैं ॥ अर रागदोषक कें
संयुक्त है ॥ तांते चित्र के पुरुष तें भी तुछ हैं ॥ अर मनो
राज संकल्प रूप देह इस देह तें श्रेष्ट है ॥ जे ते कछु
दुष इसकौं होते हैं ॥ सो बहु काल पर्यंत होते हैं ॥ अर
मनोराज का दुष हूया ॥ बहुड अवर संकल्प के आ
ये तें इसका अभाव हो जाता है ॥ तांतें थोडा दुष है ॥ सं
कल्प देह तें भी स्थूल देह तुछ है ॥ हे रामजी जो थोडे
काल तें देह हूई है ॥ तिस विषे दुष भी थोडा है ॥ अर जो
दीरघ संकल्प रूपी देह है ॥ सो दीर्घ दुषकौं ग्रहण क
रती है ॥ तां ते महा नीच है ॥ हे रामजी इह देह भी संकल्प
मात्र है ॥ सो सत है ॥ न असत है ॥ तिसके भोग कुं निमित
मूर्ष यत्न करते हैं ॥ अर कलेस पावते हैं ॥ अर देह अभि
मान करके इसके सुष साथ सुषी होते हैं ॥ दुष सा
थ दुषी होते हैं ॥ इसके नष्ट हूयें आपकों नष्ट हूया
मानते हैं ॥ पर देह के नष्ट हूयें पुरुष का नास नहीं ॥
होता ॥ जैसे मनोराज के नास हूये पुरुष का नास नहीं
होता ॥ जैसे दुतीय चंद्रमा के नास हूयें चंद्रमा का ना
स नहीं होता ॥ तैसे इस देह के क्षीण हूयें नास हूये दे
ही पुरुष का नास नहीं होता ॥ जैसे स्वप्न भ्रम के क्षीण
हूये नास हूयें पुरुष का नास नहीं होता ॥ तैसे देह के
क्षीण हूयें नास हूये आत्मा का नास नहीं होता ॥
अर नल प्रकार निकि ट जाइ कर देषीये घन धूप
क कैरहे विषे जो जल नासता है ॥ तब जल का अभा
व हो जाता है ॥ देषणे वाले का अभाव नहीं होता ॥ तैं
से संकल्प कर विनास रूप रचा जो देह है ॥ तिस देह
के नास हूये तुमारा नास तो नहीं होता ॥ हे रामजी दी
र्घ काल कर रचा जो स्वप्नमय देह है ॥ तिसके दुष अ
र नास कर आतमा कौं दुष अर नास नहीं होता ॥ जो चे
तन्य आत्मसत्ता है ॥ सो नास नहीं होती ॥ अर स्वरूप तें
चलायमान भी नहीं होती ॥ न विकार कों प्राप्त होती है
सर्वदा शुद्ध अच्युत रूप अपणे आप विषे स्थित है

देहके नासहूंयें तिसका नास नहीं होता॥ अग्यान
का धूड अध्यास हूया है॥ तब देहके धर्म आपणे वि
षे मानलेते हैं॥ जब आतमाका धूड अध्यास
होवै॥ तब देहअभिमान अरु देहके धर्म अभाव हो
जाते हैं॥ जैसे चक्र ऊपर कोउ चढ़ता है॥ अरु पड़ा भ्रम
ता है॥ जब उतरता है॥ तब केताइक काल भ्रमता भा
सता है॥ जब चिरकाल व्यतीत होता है॥ तब स्थिति हो
जाता है॥ जैसे देहरूपी चक्र इसको प्राप्त भया है॥ अ
रु अग्यान करकै पड़ा भ्रमाईता है॥ तिसकर आपकौं
भ्रमता देखता है॥ जब अग्यानका वेग निवर्त होता है
तब भी केउ काल देह भ्रमता भासता है॥ तिसकर जा
णता है मेरा नास होता है॥ मुजकौं दुष होता है॥ इत्या
दिक कल्पना अग्यान कर भासती है॥ तिस भ्रमद्रष्टि
कौं धीर्य करकै निवर्त करता है॥ तब अभाव होजाती
है॥ हे रामजी जैसे जेवड़ी विषे भ्रम करकै सर्प भासता
है॥ तैसे आत्मा विषे देह भासती है॥ असत्त है॥ अरु ज
ड़ है॥ न कछु कर्मकौ कर्ती है॥ न मुक्ति होवणेकी इछा
कर्ती है॥ अरु देव परमात्मा भी कछु कर्ता नहीं॥ ऊह
सदा शुध इच्छा प्रकासक है॥ जैसे निर्वात दीपक अ
पणे आप विषे स्थित होता है॥ तैसे तूं शुधरूप अप
णे आप विषे स्थित हो॥ जैसे सूर्य आकाश विषे स्थि
त होता है॥ अरु सर्व जगतकौं प्रकाश करता है॥ तिसके
आश्रे लोक चेष्टा करते हैं॥ पर सूर्य कछु करता नहीं॥ स
न कासाधीन तहै॥ तैसे आत्माके आश्रे देहादिकौं की
चेष्टा होती है॥ पर आतमा साधीन तहै॥ पापपुन्यतें रहि
त है॥ हे रामजी एह देहरूपी संनगीह है॥ तिस विषे अ
हंकाररूपी पिशाच कल्पत है॥ जैसे बालिक परछावें
विषे वैताल कल्पता है॥ अरु भयकौं पावता है॥ तैसे
अहंकाररूपी पिशाच कल्पकर भयकौं पावता है॥
सो अहंकाररूपी पिशाच महा नीच है॥ अरु सर्व संत

जनइकर तिंद है॥ अर जब अहंकाररूपी पिशाचा
नेकसे। तब आनंद होवे॥ देहरूपी संन गेह विषे इसका
निवास है। जो पुरुष इसका टहलूया होइ रहा है॥ ति
सकों नर्कों विषे लेजाता है॥ ताते तुम इसका टहलूयान
ही होवणा॥ इसके नास का उपाइ करोगे॥ तब आनंद
कों प्राप्त होवहुगे॥ हे रामजी चित रूपी उन्मत वेताल है
जिसकों स्पर्श कर्ता है। तिसकों अशुध कर्ता है॥ अर्थय
ह। जो तिसका धीर्य अर निश्चय विपर्यय कर देता है।
तिसकर दुष कों प्राप्त कर्ता है। अपणे स्वरूपतें गिराइ दी
य देता है॥ जो बडे बडे साधमुहंत हैं॥ सो भी इसके नय
ककै समाधि विषे स्थित होते हैं॥ जो किसी प्रकार अहं
कार का अभाव होवे॥ हे रामजी अहंकाररूपी पिशाच
जिसकों स्पर्श कर्ता है॥ तिसकों आपडैसा कर लेता है
जैसे आप तुछ है॥ तैसे अवर कों तुछ कर लेता है॥ अर
उद्याड विषे रहिता है॥ जहां संत संग अर सतशास्त्रों का
विचार नहीं॥ अर आतमा रूपी ज्ञान का निवास नहीं॥
तहां संन उद्याड रूपी मंदर विषे रहिता है॥ जो को उ ऐ
से स्थान विषे प्रवेश कर्ता है॥ तिसको प्रवेश कर जाता
है॥ हे रामजी जिसकों अहंकार रूपी पिशाच लागा है॥ २१
तिसका धन कर कल्याण नहीं होता॥ न बांधव मित्रों
कर होता है॥ अर अहंकार पिशाच साथ मिल्या हूया
जेती कछु क्रया कर्म कर्ता है॥ सो अपणे नास के नमि
त कर्ता है॥ विष की वली कों उपजावता अर वधावता
है॥ हे रामजी जो पुरुष विवेक अर धीर्य तें रहित है॥ ति
सकों अहंकार रूपी पिशाच शीघ्रही धाय जाता है॥ सो
कैसा है। श्वानरूप है। जिसकों स्पर्श कर्ता है। तिसकों भी
श्वान कर छोडता है॥ अर जिसकों अहंकार रूप पिशाच लागा
गा है॥ सो नर्क रूपी अग्नि विषे काठीयों की न्यांई जलेगा॥
अर अहंकार रूप पिशाच जिस देहरूपी वृक्ष के छिद्र वि
षे विष कों धारे बैठा है॥ तिसके निकट जो जावेगा॥

तिसकों मृत्यु करेगा। जो अहं ममता वकों प्राप्त होवैगा।
सो मृतक समान होवेगा। जन्म मृत्यु कों पावैगा॥ अहंका
ररूपी पिशाच जिसकों लागता है॥ तिसकों मलिन क
र्ता है॥ सरूपतें गिडायकर संसाररूपी चिकड विषे डा
रता है॥ अरु बंदोअ पदाकों प्राप्त करता है॥ जे तीअप
दाकों अहंकार प्राप्त करता है॥ सो बहु तेव र्षों पर्यंत मैं
कहता रहों॥ तो भी अपदाका वर्नन न करसकोंगा॥ हे रा
मजी इह जो अभिमान है॥ जो मैं हों॥ मैं मरता हों॥ मैं दुःख
होता हों॥ मैं दुःखी हों॥ मनुष्य हों॥ इत्यादिक कल्पनां जो
मलिनवृत पडी उठती है॥ सो भी अहंकाररूपी पिशाच
की शक्ति है॥ आतमरूप नित्य शुद्ध चिदा काश सर्वग
तिस चिदानंद है॥ सो सनका अपणा आप है॥ अहंका
र के वसतें आपकों गछिन्न अल्प दुःखी पडा जानता है॥
जैसे आकाश सर्वगत निर्लेप है॥ तैसे आत्मा सर्व है॥
अरु सर्व सा थ्य असंबंध है॥ अहंकार के संबंधतें रहि
त है॥ हे रामजी गृहण त्याग चलणां बैठणां दिक जेती
कछु क्रिया होती है॥ देहरूपी यंत्र अरु वाइरूपी रसडी
कर अहंकाररूपी यंत्री पडा करावता है॥ आत्मा सदा
अलेप है॥ सनका अधिष्ठानरूप है॥ कारिज कारणभा
वतें रहित है॥ जैसे वृक्ष की उचाई का कारण आकास है
अरु निर्लेप है॥ तैसे आत्मा सर्व चेष्टा का कारण है॥ अधि
ष्ठान भूत है॥ अरु निर्लेप है॥ जैसे आकाश अरु पृथ्वी का
संबंध नहीं॥ तैसे आत्मा अरु अहंकार का संबंध नहीं॥
चितकों जो आप जाणते हैं॥ सो महा मूर्ष हैं॥ आतम प्रका
शरूप है॥ नित्य है॥ सर्वगत है॥ विभु है॥ चित मूर्ष है॥ जड
अर
है॥ आवर्नक ती है॥ हे रामजी आत्मा सर्वत है॥ चैतन्यरू
प है॥ चित जड है॥ पाषाणवत है॥ इसकों दूर करो॥ इसका
अरु तेरा संबंध कछु नहीं॥ अरु मोह कों तजो॥ देहरूपी सं
नगेह विषे चितरूपी बेताल का निवास है॥ जिसकों अ
पणे वस करना है॥ तिसकों बोध बिना नहीं॥ छह मायसक

ते॥ अरु आत्मज्ञानी नहीं छपाय सकते॥ अरु जिसको
देह अभिमान क्षीण होगया है॥ तिसके छपावणे के
गुरु शास्त्र समर्थ होते हैं॥ जैसे अस्थि चिकड़ ते ह
णों को काढ लेवीता है॥ तैसे शास्त्र गुरु निकास ले
ते हैं॥ हे रामजी जेते देहरूपी सुंन मंदर हैं॥ तिनसु
ने नों विषे अहंकार रूपी पिशाच रहता है॥ को उदे
हरूपी गेह अहंकार पिशाच बिना नाही है॥ अवर
सभ साथ मिथ्या कूर्या है॥ जैसे पिशाच अपवित्र
स्थान रहता है॥ पवित्र स्थान विषे नहीं रहता॥ तैं
से जहां संतोष अभ्यास विचार सतसंगतें रहित
देह है॥ तिस स्थान विषे अहंकार रहता है॥ निवास
करता है॥ अरु जहां संतोष अभ्यास विचार सतसं
ग होता है॥ तहां तें अभाव होजाता है॥ जेते कछु शरी
र रूपी मसाण हैं॥ सो चित रूपी वेताल कर पूर्ण है
अरु अपमित रूपी मोह वेताल है॥ जगत रूपी म
हाबन विषे जीव मोह को प्राप्त होता है॥ जैसे बालिक
मोह पावता है॥ हे रामजी तें आपकर अपणा उधा
र कर॥ अरु सत विचार करके धीरज को प्राप्त होइ
इह जगत रूपी पुरातन बन है॥ तिन विषे भूत रू
पी मृग पड़े विचरते हैं॥ अरु भोग रूपी तृणों को
अप्रेक्ष करते हैं॥ सो तृण कैसे हैं॥ देषणे को सुंदर
भासते हैं॥ पर तिनके नीचे गर्त हैं॥ जैसे गर्त ऊपर ह
र्या वल्ल तृणे आच्छादन होते हैं॥ तिनको देषकर
मृग के बालिक भोजन करने लागते हैं॥ तिनको त
ष्णां कर गर्त विषे गिडते हैं॥ तैसे जीव रूपी मृग भोग
ऊं को रमणीक जानकर भोगणे लागते हैं॥ तिनकी
तृष्णां कर मर्कादिक जन्मों विषे गिडते हैं॥ अग्निकी
न्याई जलते हैं॥ हे रामजी तुम ऐसा नहीं होवणा॥ जो
को तुं भोगों की तृष्णां करेंगा॥ सो नर्क रूपी गर्त विषे गि
डेंगा॥ तांते तुम मृगवत को त्याग कर सिंहवत को धार

णा॥ मोहरूपी हस्तीकों सिंह होकर॥ अपणे नषऊं
साथ विदारणा॥ जोगोंकी तृस्नां तें रहित होवणां॥
इह अर्थ है॥ जोगऊंकी त्रिस्नांवाले जीव जंपूदीप
रूपी जंगल विषे मृगोंकी न्यांई भटकते हैं॥ तुम इ
नऊंकी न्यांई नहीं विचरणा॥ हे रामजी इस्त्री जो रम
णीक भासती है॥ तिनकूं अल्पकाल विषे स्पर्स सी
तल सुषदाई भासता है॥ पर चिकड़की न्यांई है॥ जें
से चिकडका लेपनी सीतल भासता है॥ पर तुछ है॥
जैसे संदा चिकड़ दलदल विषे फस्या हूया निक
स नहीं सकता॥ तैसे इह भोगरूपी दलदल विषे
फस्या हूया निकस नहीं सकता॥ तातें तुम संतोंकी
वृतकों ग्रहण करो॥ सो ग्रहणकरणी किसकों कह
ते हैं॥ अर त्यागकरणा किसकों कहते हैं॥ जैसे वि
चारकर्के असतवृतकों त्याग करो॥ अर आतमत
तकों प्राप्ति करो॥ हे रामजी इह जो देह है॥ सो अ
पवित्र है॥ अस्थ मांस रुधिर कर पूरण है॥ अर तु
छ है॥ अर इष्ट इसका आकार है॥ देहके नमित भो
गोंकी इछा करणी इसकर परमारथ सिध कोऊ
नहीं होता॥ देह अवरनें रची है॥ अर ऊ अवर कर चेष्टा
करती है॥ अवरनें इसनें विषे प्रवेश कीया है॥ दुः
षकों अवर ग्रहण करता है॥ इह मर षपता है॥ जो दुष
ऊंका भागी इह होता है॥ संकल्पनें देह रची है॥ अर प्रा
णों कर चेष्टा करता है॥ अर अहंकार पिसाच इनां
विषे प्रवेश कीया है॥ अर गर्जता है॥ मनकी वृत सुष
दुष ग्रहण करती है॥ अर दुबला वहोता है॥ तातें आ
श्चर्य है॥ हे रामजी परमारथ सत्ता एक है॥ अर सर्व स
मान है॥ इतर सत्ता तिस विषे कोऊ नहीं॥ जैंसे पथर घ
न जड होता है॥ तिस विषे अवर कछु नहीं फुरता॥ तैं
से सत्तामात्र तें इतर अवर द्वैत सत्ता किसी पदारथ
की नहीं॥ जैंसे पथर घनरूप है॥ तैसे परमात्मा घन
रूप है॥ अवर जड चैतन्य भिन्न कोऊ नहीं॥ मिथ्या सं

कल्पकी रचना है॥ जैसे बालिक परिछावें विषे वैताल
कल्पता है॥ तैसे सम्न कल्पनां मनकी है॥ जैसे एक गन्ने
की रस कडूं गुड होती है॥ कडूं षंड होती है॥ शकर मा
दिक होती है॥ तैसे एक परमात्म सत्ता समान सर्व है
तिस विषे जड चैतन्य की कल्पनां मिथ्या है॥ जब लग
सम्यक दृष्ट नहीं प्राप्त भई॥ तब लग जड चैतन्य की दृष्ट
नी होती है॥ जब यथार्थ दृष्ट प्राप्त होती है॥ तब भेद क
ल्पनां सन्मुष मिट जाती है॥ जैसे सीपी विषे रूपा भासता
है॥ सो सत है॥ न असत है॥ तैसे आत्मा विषे जड चैतन्य
सत असत विलक्षण कल्पनां है॥ हे रामजी जो सत है
सो असत नहीं होता॥ अरु जो असत है॥ सो सत नहीं हो
ता॥ आत्मा सदा सतरूप है॥ अरु अपणे आप विषे स्थि
ति है॥ द्वैत एक तिस विषे अभाव है॥ जैसे पथर विषे आ
काश सत्ता का अभाव है॥ तैसे आत्मा विषे द्वैत का अभाव
है॥ नाना रूप भासता है॥ तो भी द्वैत कछु नहीं॥ सदा अ
नुभव रूप है॥ विभाग कल्पना तिस विषे कोऊ नहीं॥
सदा अद्वैत रूप है॥ जेती कछु भेद कल्पनां भासती है
सो चित करि भासती है॥ जब चित का अभाव होता है॥ त
ब जड चैतन्य की कल्पनां मिट जाती है॥ जैसे वंध्या के पु
त्र का अभाव है॥ जैसे आकाश विषे वृक्ष का अभाव है
तैसे आत्मा विषे कल्पनां का अभाव है॥ हे रामजी इह
जो कल्पनां है॥ जो इह चैतन्य है॥ इह जड है॥ इह उपजा
है॥ इह मिट जाता है॥ इत्यादिक कल्पनां मिथ्या है॥ जैसे
जेवडी विषे सर्प मिथ्या है॥ तैसे केवल निर्विकल्प चि
न्मात्र आत्मा विषे कल्पनां मिथ्या है॥ अरु शास्त्र गुरु भी
जो आत्मा को चैतन्य कहते हैं॥ सो भी बोध के निमित क
हते हैं॥ दृष्टांत युक्त करि इस को आत्मस्वरूप विषे स्थि
तिकते हैं॥ जब स्वरूप विषे स्थिति दृढ होवेगी॥ तब ज
ड चैतन्य की भेद कल्पनां मिट जाती है॥ केवल चिन्मात्र
सत्ता पडी भासेगी॥ जो तत है॥ इस प्रकार गुरु भी जड चैत
न्य के विभाग करि इस को उपदेश करते हैं॥ तो भी मूर्ष नहीं
ग्रहण कर सकते॥ जो अथम ही अचेत चिन्मात्र अवाच्य

पदका उपदेश करें॥ तब कैंसे ग्रहण करें। हे रामजी ईश
वर आप आपदेव॥ जो चित ईश्वर है॥ इंद्री ईश्वर है॥ दे
ह ईश्वर है॥ देहकर्त्ता को कछु दुष्ट नहीं आवता॥ अरु अ
हंकार करके वेष्टित करी है॥ इह जीव ऐसे समर्थ है॥ जो दे
ह कों अपणा आप जानते हैं॥ अरु दुष के पात्र होते हैं॥ अ
रु जो विचारवान पुरुष हैं॥ अरु आत्मपद विषे स्थित
हूये हैं॥ तिन महात्मावों कों कोउ क्रिया दुष बंधन नहीं
कर सकती॥ जैसे मंत्र जाणनेवाले कों सर्प दुष नहीं देते
तैसे ज्ञानवान कों कर्म बंधन नहीं कर सकते। हे रामजी
न तूं सीस है॥ न नेत्र हैं॥ न रक्त है॥ न मांस है॥ न अस्थ्यादिक
हैं॥ न मन है॥ न तूं नूतजात है॥ तूं चेतन ते रहित चेतन्य के
वल चिन्मात्र साक्षीरूप है॥ शरीर सों ममत्व कों त्याग क
र निसप्रपुध सर्वगति आत्मस्वरूप विषे स्थित हो॥ ॥
इति निरवाणप्रकरणे देहसत्ताविचारो नाम सर्गः
॥२५॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी इसी दृष्ट कों अ
भ्यास करके अरु भेद कष्ट दृष्ट का त्याग कर॥ जब निकृ
ष्ट दृष्ट नष्ट होवैगी॥ तब आत्मानंद प्रगट होवेगा॥ जि
स आनंद के पाये तें अष्ट सिधी का ऐश्वर्य भी अनिष्ट
जाणकर त्यागेगा॥ अब अवर दृष्ट सुण। कैसी दृष्ट है
जो महामोह कों नास करती है॥ अरु जो आत्मपद पावणे
कवन भी है॥ सो सुष कर प्राप्त होवेगा॥ बहुड कैसी दृष्ट
है॥ जिसका नास नहीं होता॥ अरु दुषडं तें रहित आनंद
रूप है॥ मैं शिवजी तें श्रवण करी है॥ परब कैलास की कं
दरा विषे संसार दुष के शांत अर्थ चंद्रधारी सदाशिव
जी मुझ कों कही थी॥ हे रामजी महा चंद्रमा की न्याई शीतल
अरु अगका ग्राहे जिसका। ऐसा जो हिमालेपर्वत। तिस की
कंदरा विषे कैलाश पर्वत। तहां गौरी के रमणे का स्थान सुं
दर है॥ तहां गंगाजी का प्रवाह रूरन कुंड विषे चल्या जाता है
अरु पंछी शब्द करते हैं॥ अरु मंद मंद पवन सुषदाई चल
ता है॥ अरु कुबेर के मोर पडे विचरते हैं॥ कल्पवृक्ष लागे हू
ये हैं॥ महा उजल सीतल सुंदर कंदरा है॥ मंदारवृक्ष तमा
लवृक्षादिक लगे हूये हैं॥ तिन के साथ पल्लव ऐसे हैं॥ मा

जो स्वेत मेघ है॥ गंधर्व ऽ और किंनर ऽ आइ कर गायन क
रते हैं॥ देवतऊं के रमणीक सुंदर स्थान हैं॥ तिस पर्वत
ऊपर भगवान सदाशिव विराजते हैं॥ त्रिनेत्र हैं॥ ऽ और
हाथ विषे त्रिशूल है॥ गणों कर वेष्टित है॥ ऽ और नग
वती ऽ अर्धंग विषे विराजती है॥ ऽ ऐसा जो सर्व लोकऊं
का कारण ईश्वर है॥ सो तहां विराजता है॥ बऊडे कै
सा है॥ कामदेव का गर्व नाश कीया है॥ ऽ और षट्मुष
सहित स्यामकार्तिक पास प्राप्त है॥ ऽ और महा नया
तिके ऽ अन्य मसवाणों विषे तिसका निवास है॥ ति
स देवकों मे पूजते भया॥ तिस पर्वत ऊपर एक का
लमों में तप करणे लागा था॥ महा पुन्यरूप एक कु
टी बणाई॥ तिस विषे यथा शास्त्र पुन्य रूपा कर मैं
तप करणे लागा॥ एक कमंडल पास राष्या॥ बन
के वृक्षों के फलमालों पूजने निमित राष्ये॥ जल पा
न करों फल भोजन करों॥ बऊते विद्यार्थी शिष्य पा
सर हैं॥ तिनकों पढावऊं॥ शास्त्र का जो ऽ अर्थ है तिस
कों विचारें॥ ब्रह्म विद्या के पुस्तकों का समूह पड्या हू
या ऽ आगें॥ मृग ऽ और मृगों के बालिक विचरें॥ इस प्रका
र हम कालकों बीतावों॥ वेद का पडनां ब्रह्म विद्या कों
विचारनां॥ ऽ और शास्त्र ऽ अनुसार तप करणा॥ इनऊं
गुणऊं संजुक्त कैलास बनकुंजों विषे हम विश्राम
करें॥ तिसके ऽ अनंतर एक कालमों एक दिन श्रावण
वदी ऽ अष्टमी ऽ अर्धरात्रि व्यतीत भई है॥ ऽ अर्ध रहती
है॥ तिस कालमों मैं समाधि तें उतिर कर देषता भया
दशो दिशा का ऽ अष्ट मौन व्रत शांति रूप हैं॥ ऽ और ऐसा
तम है॥ जो शास्त्रऊं कर छेदणे वाला है॥ ऽ और मंद मं
द पवन चलता है॥ उसके कणके गिडते हैं॥ मानों प
वन हासी करता है॥ तिसी समें चंद्रमा ऽ आन उदे हूया
म हो सीतल ऽ अंमृत रूप किरणों को प्रकाशता भया
चंद्रमुषी कमल बिडऊं आये॥ चकोर ऽ अंमृत की किर
णों कों पान करत भये॥ मानों चंद्रमा रूप हो गये हैं॥

आई
प्रात विषे मणी तारडुं कीऊपर आन पडने लागीयां
अरु सप्त रिषि सिर पर आन स्थित भये ॥ मानो मेरे त
पकों देषणे आये हैं ॥ सप्त रिषों विषे पाछे ले जो तीन
तारे हैं ॥ तिनके मध्य विषे मेरा मंदर है ॥ तहां मैं विरा
जता हों सदा ॥ तब चंद्रमा कर सीतल स्थान हो गये
पवन कर फूलते हैं ॥ अरु प्रकाश जो होवे चंद्रमा का
महा सीतल स्थान हो गये ॥ ॥ इति श्री निरवाण
प्रकरणे वसिष्ठ आश्रम वरननं नाम सर्गः ॥ =
॥ २६ ॥ श्री वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी अर्धरात्रि
के समे जो मैं समाधि तें उतरा ॥ तब मुज कों तेज प्र
पाएते काश दृष्ट आवणे लागा ॥ जैसे मंद्राचल पर्वत के छी
रसमुद्र उछलि आवता है ॥ मानो हिमालय पर्वत सूर
त धार कर आन स्थित हूया है ॥ मानो माषन का पहा
र पिंड आन स्थित हूया है ॥ मानो सन संषों की समष्
ता आन स्थित भई है ॥ मानो मोतीयों का समूह एक
त्र होय कर उदय लागा है ॥ महा तीक्षण प्रकाश दृ
ष्ट आवे ॥ मानो गंगा का प्रवाह उछलणे लागा है ॥ पर
तिस प्रकास तें सीतलता तें सर्व दिशा तट पर एक
र लीये हैं ॥ तब मैं देष कर आश्चर्यमान हूया ॥ जो क्या
अकांड प्रलै होवणे लागी है ॥ अरु बोध दृष्ट कर विचा
रणे लागा ॥ जो एह क्या है ॥ तब मैं देष्या जो देवतों के गु
रु ईश्वर सदाशिव जी चल्ये आवते हैं ॥ चंद्रकला कों
धारे हूये अरु गौरी भगवती कूं साथ हाथ ग्रहण
कीया है ॥ अरु गणों के समूह कर वेष्टित हैं ॥ कानों वि
षे सर्प पडे हूये हैं ॥ कंठ विषे रुंडों की माला पडी है ॥ सी
स पर जटा है ॥ तिन पर कदंब वृक्ष के फूल अरु तमा
ल वृक्ष के फूल पडे हूये हैं ॥ ऐसे सदाशिव जो सर्व कों
फल देवणे हारे हैं ॥ तिन कौं मन कर के मैं देषत भया
अरु मन ही कर मैं मंदार वृक्ष के फूल ले कर अर्घ पा
द कर्त भया ॥ अरु मन ही कर प्रणाम कर्त भया ॥ अरु
मन ही कर प्रदक्षणा देत भया ॥ ऐसे कर कैं मैं आप

आपणे आसण तें उठ षडा हूया । अपणे शिष्यों कों
जगावत भया । जगाय कर अर्घ लेकर चल्या । जाय क
र त्रिलोचन शिव कों पुष्पांजली दीया ॥ दे कर प्रद
क्षिणा करी । प्रणाम कीया । तब मुज कों चंद्रधारी कृपा
दृष्ट कर देषत भया । अर सुंदर मधुर वाणी कर क
हत भया ॥ हृदय का तम नष्ट करता आए पडे कों शांति
पद प्राप्त करता ऐसा सदाशिवजी मुज कों देष कर क
हत भया ॥ ईश्वरोवाच ॥ हे ब्राह्मण अर्घ पाद लेआ
उ ॥ हम तेरे आश्रम विषे अतिथ आये हैं । हे निहपाप
तुज कों कल्याण तो है किंउ । तुम मुज कों महा शांति रूप
भासता हैं ॥ अर महा सुंदर बुद्ध लता पक्की जु हमी कर
तें शोभता हैं ॥ चलो हम तुमारे आश्रम कों चलें । हे राम
जी फूलों के स्थान विषे बैठे थे सदाशिव । सो ऐसे कहि
कर उठ षडे हूये ॥ तब एक छे अपणे आश्रम विषे आ
ये । कुटी विषे आसन स्थित हूये ॥ तहां मैं बडूउ पुष्प अर्घ
कर चरनों की पूजा करी ॥ बडूउ हाथों की पूजा करी । इसी
प्रकार चरनों तें लेकर सीस पर्यंत सर्व अंगाऊ की पूजा की
री । बडूउ गौरी भगवती कों तैसे पूजन कीया ॥ सषीयां
का पूजन कीया । बडूउ गणों का पूजन कीया ॥ हे रामजी
इस प्रकार भक्ति पूर्वक जब मैं पार्वती अर परमेश्वर
का पूजन कर चुका ॥ तब ससिकलाधारी सीतल वाणी
कर मुज कों कहत भया ॥ हे ब्राह्मण नाना प्रकार के चित
वणे वाली जो है चित की वृत सो तेरी स्वरूप विषे विश्रा
त कों प्राप्त भई है किंउ । अर अब तुज कों कल्याण हूया
है किंउ । अर संवित तेरी आत्मपद विषे स्थित भई है किं
उ । अर तुमारे शिष्यों कों भी कल्याण तो है किंउ । अर तु
मारे पास जो हरने विचरते हैं । एह भी सुषसाथ हैं किंउ ॥
अर मंदार वृक्षादिक तुम कों पूजा निमित फल फूल भ
ली प्रकार सौंपते हैं किंउ । हे रघुनंदन इस प्रकार जब
देव मुज कों वांछित प्रश्न कहे ॥ तब मैं उन कों कहता
या ॥ वसिष्ठोवाच ॥ हे महेश्वर जो कल्याण रूप कों
सदा सिमरते हैं ॥ तिन कों इस लोक विषे ऐसा पदारथ
कोऊ नही जो पावणे कठिन होवे । अर नय भी किसी

कानहीं॥ जिनका चित तुमारे स्मर्नेकर आनंदसों सर्व
ओरतें पूर्ण भया है॥ सो जगत विषे दीन नहीं होते॥ ते
ई देस॥ तेई जनऊ के चर्ने दिग्ण पर्वत वंदना करिये
ग्य है॥ जहां एकांत बुधीबेठ कर तुमारा स्मर्ने करते
हैं॥ हे प्रभो तुमारा स्मर्ने पूरब पुन्य रूपी व्रछ का फल है
और वर्तमान कर्मों कर संचीता है॥ तुम मनके परम मि
त्र हो॥ और सर्व आपदा का हर्ण हारा तुमारा स्मर्ने है॥
सर्व संपदा रूपी लता का बढावृने हारा है तुमारा स्म
र्ने॥ हे प्रभो बडी महिमा और बडाऊं तें बडे कर्मों के का
रणऊं का कारण तुमारा स्मर्ने है॥ हे प्रभो विवेक रूपी
समुद्र विषे रत्न रूपी परमात्मा है॥ ग्यान रूपी तम
का नास करता सूर्यऊं का समूह है॥ सो तुमारा स्मर्ने
ता न अमृत का कलस है॥ और धीर्य रूपी चांदणी का
चंद्रमा और मोक्ष का द्वार तुमारा स्मर्ने है॥ हे प्रभो तुमा
रा स्मर्ने अपूर्व रूपी दीपक उतम है॥ चित का मंदल
जो है संसार तिस सर्व कों प्रकासता है॥ हे प्रभो तुमारा
स्मर्ने उदार चिंतामणि की न्यांई सर्व आपदा कों छेद
ने हारा है॥ हे प्रभो तुमारा स्मर्ने एक क्षण भी चित वि
षे स्थित होवे॥ तब सर्व उपसर्व भय कों नास करता
है॥ और वरदायक है॥ तिसकर तुमारी न्यांई वसता है॥

॥ वाल्मीकोवाच॥ इस प्रकार जब मुनीश्वर कहता
भये॥ तब दिनका अंत हूया॥ सर्व सभा उठी परस्पर नमस्कार
करके अपणे अपणे स्थानकों गये॥ सूर्य की किरणां
साथ बहुड अपणे अपणे स्थान पर आन बैठे॥

॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे रुद्र वसिष्ठ संवादे
मोनाम सर्गः॥ २७॥ श्री वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी
इस प्रकार जब मैं कहा॥ तब गौरी भगवती जगत मा
ता मुझकों कहत भई॥ जैसे माता पुत्र कों कहे तैसे क
हत भई॥ श्री गौरी उवाच॥ हे वसिष्ठजी पतिव्रता
जो अरुंधती है सो कहां है॥ जो पति व्रतों विषे प्रथम

अरु सुषसे

हे प्रभो विवेक रूपी समुद्र विषे रत्न रूपी परमा
त्मा है॥ ग्यान रूपी तम
का नाश करता सूर्यऊं का समूह है

गणतीहै॥ तिसकौंलेआयुजोतुहमेरीपियारस
बीहै॥ तिससाथमैंशृष्टकथाचर्चाकरौंगी॥ हेराम
जीइसप्रकारजबमुजकोंपार्वतीकहा॥ तबमैंशी
घ्रहीजायकरअरुंधतीकोंलेआया॥ अरमैंवि
चारतभया॥ जोमुजकोंईश्वरप्राप्तभयाहै॥ अरपू
छणेकाअवसरपायाहै॥ तौतेंसर्वज्ञानकेसमुद्रसों
कछुपूछौं॥ संदेहदूरकरउं॥ हेरामजीऐसेविचार
करकेगौरीदेवकोंपूछतभया॥ जोकछुचंद्रधा
रीमुजकोंकहाहै॥ सोतुजकोंकहताहों॥ जोमैंपूछाहै॥
सोसुण॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हेभगवन्भूतभविष्य
तवर्तमानतीनोंकालकेईश्वर॥ अरसर्वकारणरूं
केकारण तुमारेप्रसादकरमैंकछुपूछणेकोंसमर्थ
भयाहों॥ हेमहादेवजोकछुमैंपूछताहों॥ सोप्रसन्न
बुधिहोइकरतत्वतैंशीघ्रहीउद्वेगकोंत्यागकर
कहो॥ हेसर्वपापोंकेनाशकरणेहारे॥ अरसर्वक
ल्याणकेवर्धकरणेहारे॥ देवअर्चनाकाविधान
मुजकोंकहो॥ श्रीईश्वरोवाच॥ हेब्राह्मणउतमजो
देवअर्चनाहै॥ जिसकेकीयेतेंसंसारसमुद्रकोंतर
जाईये॥ सोसुण॥ हेब्राह्मणोंविषेश्रेष्टदेवपुंडरीक
जोविष्णुहै॥ सोनहीं॥ अरत्रिलोचनजोशिवहै॥ सोभी
देवनहीं॥ अरकमलतेंउपजाजोहै॥ ब्रह्मासोभीदे
वनहीं॥ अरसहस्रनेत्रइंद्रभीदेवनहीं॥ नदेवपव
नहै॥ नसूर्यहै॥ नअग्निहै॥ नचंद्रमाहै॥ नब्राह्मणहै॥
नहोत्रीहैं॥ नतूहैं॥ नमैंहों॥ नदेवदेहहै॥ नचितहै॥ न
कलनारूपहै॥ अहुतमअनादिअनंतसंवितरू
पदेवकहीताहै॥ अवरआकारादिकपरछिन्नरू
पजोहैं॥ सोवस्तुतैंकछुनहीं॥ एअहुतमअनादिअ
नंतचैतन्यरूपदेवहै॥ सोदेवदेवशब्दकरकही
ताहै॥ तिसकाजोपूजनहै॥ सोईपूजनहै॥ तिसदेवकों

सरबत्रजानणां एही उसका पूजन है ॥ अर जो ति
नशिवतत्वकों नहीं जानते ॥ तिनकों अकारों का अ
र्चना कही है ॥ जैसे जो पुरुष जो जनो परजंत नहीं च
ल सकता ॥ तिसकों एक कोश दो कोश का चलणां
भी भला है ॥ तैसे जो पुरुष अकृतम देव की पूजा न
हीं कर सकता ॥ तिसकों अकारों का पूजना भी भला
है ॥ हे ब्रह्मण जिसकी भावना कोऊ करता है ॥ तिसके
अनुसार उह फल कों भोगता है ॥ जो प्रछिन्न की उपास
ना करता है ॥ तिसकों फल भी प्रछिन्न प्राप्त होता है ॥
अर जो अकृतम अनादि अनंत देव की उपासना क
रता है ॥ तिसकों परमातम रूप फल प्राप्त होता है ॥ हे
साध अकृतम फल कों त्यागकर जो कृतम कों चहते
हैं ॥ सो क्या करते हैं ॥ जैसे कोऊ मंदार वृक्ष के बन कों
त्यागकर कणजये के बन कों प्राप्त होवे ॥ तैसे उह क
रते हैं ॥ सो देव कैसा है ॥ अर उसकी पूजा किंउकर होती
है ॥ सो सुण ॥ तीन फूल हैं ॥ तिन फूलों साथ तिनकी पू
जा होती है ॥ एक बोध ॥ एक साम्य ॥ एक शम ॥ इह तीन
पुष्प हैं ॥ बोध नाम है सम्यक ज्ञान का ॥ जो आतम तत
कों ज्यों का त्यों जानणा ॥ अर सम्यक नाम है जो सर्व विषे
पूरण देखणा ॥ अर सम का अर्थ इह ॥ जो चित कों निवृ
त करणा ॥ आतम तत तें इतर कछु न फुरे ॥ इह तीनों
फूलों साथ शिव चिन्मात्र शुध देव की पूजा होती है ॥
हे मुनीश्वर बोध साम्य सम इन हूं पुष्पों कर आतम
देव की पूजा करीती है ॥ इह देव की पूजा है ॥ नहीं अका
चिन रअर्चना कर अर्चना होती ॥ आतमा जो संवित मात्र है
तिसकों त्यागकर जो अवर जडों की अर्चना करते हैं ॥
सो चिरपर्जंत कलेशों के भागी होते हैं ॥ हे ब्रह्मण जो ता
त तैय पुरुष हैं ॥ सो आत्म ध्यान तें इतर पूजन अर्चन बा
लकों की क्रीडा वत मानते हैं ॥ आतम भगवान एक देव
है ॥ सो शिव है ॥ परम कारण रूप है ॥ तिसकों सर्वदातान
हीं अर्चन कर पूजन है ॥ अवर पूजन कोऊ नहीं ॥ चैतन्य

अकाश अवाय स्वभाव एक आत्मदेवको तं जान । अ
वरपूज पूजक त्रिपुटी पूजो कर आतमदेवकी पूजा न
हीं होती ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे देव चैतन्य आकाशको हीं
जैसे इह जगत है ॥ चैतन्यको जीवत्व है ॥ कैसे है । सो कहो
॥ ईश्वरोवाच ॥ हे मुनीश्वर चैतन्य आकाश प्रसिध है
सर्वप्रकितें रहित है ॥ जो महाकल्प विषे शेष रहता
है ॥ सो आपहीके चेतन रूप होता है ॥ तिसके चेतन कर इह
जगत होता है ॥ जैसे स्वप्ने विषे चिदात्माही सर्वगति ज रूप
गत रूप होइ कर भासता है ॥ तैसे जाग्रत जगत भी चिदा
भासरूप है ॥ आदि सर्गतें लेकर अरु इस काल पर्यंत
आतमा तें इतर का अभाव है ॥ जैसे स्वप्ने विषे जो जगत
भासता है ॥ सो सन्मात्र चिदाकाश रूप है ॥ अवर इतर कल्प
ना कोऊ नहीं ॥ चिन्मात्रही पहाड रूप्या है ॥ चिन्मात्रही जे सत
गत है ॥ चिन्मात्रही आकाश है ॥ चिन्मात्रही जीव हैं ॥ चिन
मात्रही सत्भूत हैं ॥ चिन्मात्र तें इतर कछु नहीं ॥ दृष्ट के
आदि अर अंत पर जंत अवर जो कछु द्वैत कल्पना है । सो
नाममात्र है ॥ जैसे स्वप्ने विषे किसी के अंग काटते । सो किसी
का कटते तो नहीं ॥ निद्रा दोष करकै ऐसे भासते हैं ॥ तैसे जा
ग्रत जगत भी नाममात्र है ॥ हे मुनीश्वर आकाशोपमें आ
काश ब्रह्म आकाश तीनों एकही के परयाय हैं ॥ जैसे स्व
प्ने विषे संकल्प कर मायामय तें अनंत भव होता है ॥ सो स
न चिदाकाश है ॥ तैसे इह जाग्रत जगत सन्मात्र चिदाकार
रूप है ॥ जैसे स्वप्नपुर विषे आकाश तें इतर कछु नहीं ॥
जाग्रत रूप स्वप्न भी तैसे आतम सत होइ कर भासता
है ॥ आतमा तें इतर द्वितीय वस्तु कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर
जैसे स्वप्न विषे चिदाकाश ही घटपटादिक होइ कर भा
सता है ॥ तैसे सृष्ट प्रलय स्थिति आदिक जगत चिदात
मा तें इतर कछु नहीं ॥ आतम ही ऐसे भासता है ॥ जैसे
सुध संवित मात्र तें इतर स्वप्ने विषे नगर नहीं पाईता ॥
तैसे जाग्रत विषे अनंत भव तें इतर कछु नहीं पाईता ॥ हे
मुनीश्वर भाव अभाव रूपी पदार्थ तीनों काल जाग
त भासता है ॥ सो सन्मात्र चिदाकाश रूप है ॥ आतमा तें इत
र कछु नहीं पाईता ॥ हे मुनीश्वर इह देव मैं तुजको क

ता है॥ सो परमार्थतें कहता है॥ तूं मैं अरु सनन्तजात
जगत सर्व का जो देह है॥ सो चिदाकाश परमात्मा है॥ ति
सतें इतर कछु नहीं॥ जैसे संकल्पपुरु विषे शरीर चि
दाकाशरूप होता है॥ इतर कछु नहीं बणया॥ इति श्री
निरवाणप्रकरणे जगतपरमात्मारूपवर्ननं नाम
नाम सर्गः॥ २८॥ ईश्वरोवाच॥ हे ब्राह्मण इसप्र
कार इह सर्व विश्व केवल परमात्मारूप है॥ अपरमि
ताकाश आत्मा ही एक देव कर कहीता है॥ तिसका ही पूज
न सार है॥ तिसतें ही सर्व फल प्राप्त होता है॥ सो देव सर्व
त्र है॥ सर्व तिसी विषे स्थित हैं॥ अरु तम देव अज पर
मात्ने द्रग अखंडरूप है॥ तिसको साधना करके पावणा है
तिसकर परमसुख को प्राप्त होवणा है॥ हे मुनीश्वर तूं जा
णता हुया हैं॥ तिसकारणतें इसप्रकार की देव अर्चना मैं
तुझ को कही है॥ अरु जो असम्यक दर्शी बालिक हैं॥
जिनको निश्चयात्मक बुधि प्राप्त नही भई॥ पेलवचि
त हैं॥ तिनको धूप दीप पुष्प कर्मादिक अर्चना कही है
अकार करके कल्पित देव की मिथ्याकल्पना करी है॥
हे मुनीश्वर जो आपणे संकल्प कर देव बणावते हैं॥ ति
सको पुष्पदीपादिक धूपादिक कर पूजते हैं॥ सो भा
वनामात्र है॥ तिसकर तिनको संकल्परचित फल भी
प्राप्त होता है॥ सो बालिक बुधों की अर्चना है॥ जो तुम
सारखे हैं॥ तिनको एही पूजा है॥ जो तुमको सर्वात्मा भाव
नों कर कही है॥ हे मुनीश्वर हमारे मत विषे तो अवर देव
कोऊ नहीं॥ एक परमात्मा ही देव है॥ तीनों भवनों विषे
तिसतें अवर देव कोऊ नहीं॥ सो शिव है॥ अरु सर्व पद
तें अतीत है॥ सर्व संकल्प तें उलंघित वर्तता है॥ अरु सर्व
संकल्प का अधिष्ठान तूं ही है॥ अरु देस काल वस्तु के पर
छेद तें रहित है॥ सर्व प्रकार शांतिरूप हैं॥ एक चिन्मात्र
निर्मल सत है॥ तिसको देव करके कहीता है॥ हे मुनीश्व
र सो सवित सत्ता पंच भूतों की कलातें अतीत है॥ अरु स
र्वभाव के अंतर तूं ही स्थित है॥ अरु सर्व को सत्ता देवणे
हारा देव है॥ सर्व की सत्ता हरणे हारा भी तूं ही है॥ हे ब्रा

ल्पए जो ब्रह्म सत अरु असत के मध्य अरु सत अस
त को परोक्ष होता है॥ सो देव परमात्मा है॥ महासत्त ह
सत्ता स्वभाव करके सन्न को प्राप्त भया है॥ अैसे सर्व विषे
इस्थित है॥ जैसे सर्व वृक्षाऊ की लता अंतर रस जल स्थि
ति है॥ तैसे सत्ता समान रूपक के महा चैतन्य आत्मा स
र्व और स्थिति है॥ जो चैतन्य तत्व अरुंधती का है॥ अरु जो
तन चैतन्य तुज निहपाप का है॥ सोई चैतन्य तत्व मेरा है॥ सो
ई चितनतें जगत त्रिलोकी का है॥ सो देव है॥ अवर देव को
ऊ नहीं॥ अरु जो अवर हस्तपाद संयुक्त देव कहते हैं
सो भी चिन्मात्र सार तें इतर सार कछु नहीं॥ चिन्मात्र ही
सर्व जगत का सार भूत है॥ सोई अर्चना कर लेको योग्य
है॥ तिसी तें सन्न को फल की प्राप्त होती है॥ सो देव कहूं दू
र स्थिति नहीं॥ अरु किसी प्रकार का दूर को प्राप्त होवे
तां भी कछि न नहीं॥ सर्व की देह विषे स्थिति है॥ अरु सन्न
का आतमा है॥ सो दूर कैसे होवे॥ अरु दुष्टसों कैसे प्राप्त हो
वै॥ सन्न क्रिया भी उही कर्ता है॥ भोजन भी उही कर्ता है॥
नर्पोषण भी उही कर्ता है॥ उही स्वास लेता है॥ सन्न का
ज्ञाता उही है॥ पुर्यष्टका विषे प्रतिबिंबित होयकर उही
प्रकाशता है॥ जैसे पर्वत ऊपर चर अचर की चेष्टा होती
है॥ चलते बैठते स्थिति होते हैं॥ सो सन्न का आधार भू
त पर्वत है॥ तैसे मन सहित षट इंद्रीयों की चेष्टा आत
मा के आश्रे होती है॥ तिस देव की सत्ता विवहार के निमित
वेद वेत्तों ने कल्पी है॥ सो एक देव चिन्मात्र है॥ सत्त सम है
सर्व व्यापी है॥ निरंजन है॥ आत्मा है॥ ब्रह्म है॥ इत्यादिक
नाम ज्ञानवानों ने अरु बुधीयों उपदेश विवहार के न
मित राखे हैं॥ हे मुनीश्वर जेता कछु विस्तार संयुक्त ज
गत भासता है॥ सो सन्न का प्रकाशक उही है॥ अरु सर्व
तें रहित है॥ सो नित्य शुद्ध अद्वैत रूप है॥ सन्न जगत विषे
अनंत स्फुरत है॥ जैसे वसंत रुत विषे नाना प्रकार के फल
वृक्षों भासते हैं॥ अरु सर्व विषे एक ही रस व्यापी हुई है
उही अनेक रूप हो भासती है॥ तैसे ही आत्मसत्ता आपने
क रूप होयकर भासता है॥ हे मुनीश्वर जेता कछु जगत

स्थित

है॥ सो आतमा का चमत्कार रूप सत्ता है। आत्म तत्व वि
षे स्थिति है॥ कहूं आकाश रूप होय कर स्थिति है॥ कहूं
जीव रूप होइ कर स्थिति है॥ कहूं चित्त रूप कहूं अहं
कार रूप होय कर स्थिति है॥ कहूं दिशा रूप। कहूं द्रव्य
रूप। कहूं भाव। कहूं विकार रूप। कहूं तम। कहूं आका
श रूप होइ कर स्थिति है। कहूं सूर्य। कहूं यक्षा। कहूं
पृथ्वी। कहूं जल। कहूं अग्नि। वाइ आदि के स्थावर
जंगम रूप होकर उही स्थिति है॥ जैसे समुद्र विषे तरं
ग होते हैं॥ तैसे एक देव परमात्मा विषे त्रिलोकीयां हैं
हे मुनीश्वर देवते अरु दैत्य मनुष्यादिक सम एक देव
विषे पडे वहते हैं॥ जैसे जल विषे तृण वहते हैं॥ तैसे प
रमात्मा विषे देवते आदिक वहते हैं॥ उही चैतन्य तत
चतुर्भुज होइ कर दैत्यों को नाश करता है॥ जैसे जल मे
घ रूप होय कर धूप कों रोकता है॥ उही चैतन्य तत त्रि
नेत्र मस्तक पर चंद्रमा धार व[बलद]षेन ऊपर आरूढ हूया
पार्वती रूपी कमलनी के मुष का भ्रमरा रुद्र होइ क
र स्थिति होता है॥ अरु उही चैतन्य विष्णु रूप जो उत्ता है॥
तिस के नाभ कमल तें उत्पत्ति हूया ब्रह्मा त्रिलोकी वेद
त्रई रूपी कमलनी अउं को तलावडी होय कर स्थिति
भया है॥ हे मुनीश्वर इस प्रकार एक ही चित्त तत अने
क रूप होइ कर स्थिति भया है॥ जैसे एक हीरस अनेक
रूप होय कर स्थिति होता है॥ जैसे एक ही स्वर्ण अनेक
भूषण रूप होय कर स्थिति होता है॥ तैसे एक ही चैत
न्य अनेक रूप होइ कर स्थिति भया है॥ तातें सर्व देहां ए
क चैतन्य तत कीया है॥ जैसे एक वृक्ष के अनेक पत्र हो
ते हैं॥ तैसे एक ही चैतन्य की सर्व देहां हैं॥ उही चैतन्य म
स्तक पर चूडामणि धारणहारा त्रिलोकीपति इंद्र हो
इ कर स्थिति भया है॥ अरु देवता होइ कर सो उही स्थि
ति भया है॥ अरु दैत्य रूप होइ कर सो उही स्थिति भया है
मलिउ पजल का रूप भी उही धारता है॥ जैसे एक समु
द्र विषे तरंगों के समूह उपजते हैं॥ अरु मिट जाते हैं॥

सो जलही जलरूप है॥ तैसे उपजणें अरु बिनसणें चै
तन्य विषै होता है॥ सो चैतन्य ही रूप है॥ पर परमात्मा ए
कही वस्त है॥ हे मुनीश्वर जो चैतन्यरूपी आदर्श है॥ तिस
विषै जगत प्रतिबिंबित होता है॥ अपणी रचीहूई व
स्त को आपही ग्रहण करके अपने विषै धारता है॥ जैसे
गर्भणी स्त्री अपणे गर्भ कों धारती है॥ तैसे चैतन्य तत ज
गत प्रतिबिंब को धारता है॥ हे मुनीश्वर सर्व दृश्या उसी
देवकर सिध होती है॥ देवणें लेणें बोलणें चलणें
तन उसी कर सिध होता है॥ सूर्यादिक प्रकाशरूप
उसी कर प्रकाशते हैं॥ अरु उसी कर प्रफुलित होते
हैं॥ जैसे नीलकमल अरु रक्त कमल सूर्य कर प्रफु
लित होते हैं॥ तैसे आत्मा कर अंधकार अरु प्रका
स दोनों सिध होते हैं॥ हे मुनीश्वर त्रिलोकीरूपी धू
ड है॥ अरु चैतन्यरूपी वायु कर पूडी उडता है॥ जेते
कछु जगत के आरंभ है॥ तिन सर्वों कों चैतन्यरूपी
दीपक प्रकासकर्ता है॥ जैसे जल के संचणें कर व
ल्ली प्रफुलित होती है॥ अरु फूल फल कों प्रगट
करती है॥ तैसे चैतन्य सत्ता सर्व पदारथों कों प्रग
ट करती है॥ सत्तकं उसत्ता देकर सिध कर्ती है॥ हे
मुनीश्वर चैतन्य ही कर जड की सिधता होती है॥ अर
चैतन्य ही कर जड का अभाव होता है॥ जैसे प्रकास
कर अंधकार सिध होता है॥ अरु प्रकास ही कर अं
धकार का अभाव होता है॥ तैसे सर्व देहां चैतन्य ही क
र सिध होती हैं॥ अरु चैतन्य ही कर देहों का अभाव
होता है॥ चैतन्य भी उसी कर होता है॥ शव भी उसी कर
होता है॥ हे मुनीश्वर ऐसा पदारथ कोऊ नहीं॥ जो चै
तन्य बिनां भी सिध होवे॥ जो कोऊ पदारथ है सो आ
तमा ही कर सिध होता है॥ हे मुनीश्वर शरीररूपी बृ
छ है॥ सुंदर है॥ अरु बडे ऊंचे टासों सहित है॥ पर चै
तन्यरूपी मंजरी बिनां नहीं सोहता॥ जैसे रस बिनां बृ
छ नहीं शोभता॥ तैसे चैतन्य बिनां शरीर नहीं शोभन
ता॥ बटणा घटणादिक जो विकार हैं॥ सो भी एक आ

त्मा कर सिध होते हैं॥ इह जगत सभ चैतन्य रूप है॥ चैत
न्य मात्र ही अपणे आप विषे स्थित है॥ श्रीवशिष्ठो
वाच॥ हे रामजी इस प्रकार अमृत रूपी वाणी कर त्रि
नेत्र मुझको कहा॥ तब मैं अमृत रूपी वाणी कर भली
प्रकार पूछत भया॥ हे देव जो सर्वगति चैतन्य देव आ
प का रूप स्थित है॥ अरु चैतन्य ही बडे विस्तार को प्रा
प्त भया है॥ तब इह प्रथम चैतन्य था॥ अब इह चैतन्य
ता ते रहित है॥ इह कल्पना जीव की लोक विषे प्रतछ
आन भव कैसे होती है॥ ईश्वरोवाच॥ हे ब्रह्मवेत्तो
विषे श्रेष्ठ महा प्रश्न तुझ कीया है॥ तिसका उत्तर सुण
हे ब्राह्मण इस शरीर विषे दो चैतन्य स्थित हैं॥ एक चे
तउन्मुषत्व रूप है॥ एक निर्विकल्प आत्मा है॥ जो चेत
उन्मुषत्व इस साथ मिल्या हूआ है॥ सो जीव है॥ संक
ल्प के फुरणे कर अन्य की न्याई हो गया है॥ अर वास्तव
तें अवर कछु नहीं हूआ॥ पर इस संकल्प के अनुभ
व को ग्रहण कीया है॥ इस कर जीव रूप हूआ है॥ जै
से स्त्री अपणे शील धर्म को त्याग कर दुराचारिणी
होती है॥ तब सीलता उसकी जाती रहती है॥ पर स्त्री
का स्वरूप नहीं जाता॥ तैसे चेतउन्मुषत्व कर कै अनात्मो
रूप जीव हो जाता है॥ पर चेतन्य स्वरूप का त्याग नहीं
करती॥ जैसे पुरुष संकल्प के वस तें एक छिण विषे अ
वर रूप हो जाता है॥ तैसे चित सत्ता फुरणे भाव कर कै अ
न्य रूप हूई है॥ जैसे जल घड जडता कर कै पथर वत
हो जाता है॥ तैसे चैतन्य कला जीव रूप भई है॥ हे मुनी
श्वर आदि जो चित स्पंद चिद कला विषे हूआ है॥ त
ब शब्द के चेतणे तें आकाश हूआ है॥ बहुड स्पर्श
तन्मात्रा का चेतण हूआ॥ तब वायु प्रगट भई॥ इसी
प्रकार पंच तन्मात्रा के फुरणे कर पंच तत हूये हैं॥
बहुड देस काल आदिकों का विनाश हूआ है॥ तिस वि
षे जीव प्रतिबिंबित होता है॥ बहुड निश्चे वृत्त हूई
तिसका नाम बुधि हूआ॥ बहुड अहं वृत्ति फुरी॥ तिस
का नाम अहंकार हूआ॥ बहुड संकल्प विकल्प व

तिफुरी॥ तिसका नाम मन हूया॥ चितवनां करकें चित
हूया॥ बहुड संसार की भावनां हूई॥ तब संसार का अ
नुभव हूया॥ अभ्यास के वस तें संसार भासणे लागा
है॥ जैसे विपर्यय भावनां करकें श्रीलण आपकौं चंडा
ल जानणे लागता है॥ तैसे भावनां के विपर्यय करकें॥
आपकौं जीव मानणे लागा है॥ संकल्प जड़ता करकें चे
तन्य रूप जीव भाव कौं ग्रहण करकें संकल्पऊं विषे
वर्तता है॥ अनंत संकल्पमई जड़ता पावंरता कौं प्रा
प्त होय कर॥ जड़ता भाव कौं ग्रहण करकें देह भाव कौं
प्राप्त होता है॥ जैसे जल थड जड़ता करकें पाषाणवत
होजाता है॥ तैसे चैतन्य अनंत संकल्पऊं कर जड़ देह
भाव कौं प्राप्त भया है॥ तब चित मन मोहित हूया॥ ज
ड़ता कौं आश्रे करकें संसार विषे जन्म लेता है॥ मोह
कौं प्राप्त हूया त्रिष्णां करकें पीड़ित होता है॥ काम क्रोध
संयुक्ति भाव अभाव विषे प्राप्त होता है॥ अपणी अनं
त ताकौं त्याग करकें अछिन्न विकारों विषे वर्तता है॥ ड
बड़ाई अभिमान करत प्रसन्न हूया सं न भाव कौं प्राप्त होता
है॥ भेद भाव कौं ग्रहण करकें पर्मदीन होरहता है॥ हे
मुनीश्वर मोह रूपी जो चिकड है॥ तिस विषे जीव रू
पी हस्ती फस्या है॥ भाव अभाव कर सदा डुबा रहता
है॥ अर डुलायमान होता है॥ जैसे जल विषे तृण भ्रम
ता है॥ तैसे असार रूपी संसार विषे विकारों संयुक्ति
राग द्वेष करकें तपता रहता है॥ शांति कौं कदाचित
प्राप्त नहीं होता॥ जैसे जेष्ठ ते विषे डस एक मृग कष्ट
मान होता है॥ तैसे अविदि जीव अरति रो भाव जन्म
अर मरण करकें कष्टमान होता है॥ अपणे संकल्प क
र आपहीं भय पावता है॥ जैसे बालिक अपणे पिछा
वें विषे वैताल कल्प कर भयभीत होता है॥ अर दुः
ष संकटऊं कौं पावता है॥ आसा रूपी फासी कर बांध्या
हूया कष्टतें कष्टकौं पावता है॥ श्रम करकें तपायमा
न हूया अनेक जन्म पावता है॥ अर जन्म विषे रहता
है॥ बालिक होता है॥ तब महादीन परवस होता है॥ ब
ड़ जोवन अवस्था विषे कामादिकौं के वस हूया

स्था विषे चित्त रहता है ॥ अरु बृधा अवस्था विषे चिंता
कर मलिन होता है ॥ दुष कर पडा कष्ट पावता है ॥ जब
मस्तु होता है ॥ तब कर्मों के वस चल्या जाता है ॥ बहुड
जन्मता है ॥ गर्भ विषे दुष पावता है ॥ बहुड बालिक अ
रु यौवन वृध अरु मृत्यु अवस्था कौं पावता है ॥ इसी
प्रकार पडा भटकता है ॥ स्वरूपतें तिदयाकूं या स्थिर
कदाचित नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ए कचित सत्ता स्प
दन भाव करके अनेक भाव कौं प्राप्त होती है ॥ कहूं दुष
कर रुदन करती है ॥ कहूं सुष भोगती है ॥ कहूं स्वर्ग वि
षे देवांगना हूई है ॥ पाताल विषे नागिनी हूई है ॥ अ
सुरों विषे असुरी ॥ राक्षसहुं विषे राक्षसी हूई है ॥ ब
नको टबांतरी हूई है ॥ सिंहहुं विषे सिंही ॥ किन्नरों वि
षे किन्नरी हूई है ॥ हनी हूई है ॥ विद्याधरी गंधर्वी हू
ई है ॥ देवत्यौं विषे देवी इत्यादिक जो रूप धारते हैं ॥ सो
चेतउन्मुषत्व जीवकला रूप धारते हैं ॥ क्षीरसमुद्र वि
षे विष्णुरूप होय कर स्थिति होती है ॥ ब्रह्मपुरी विषे
ब्रह्मा रूप होय कर स्थिति होती है ॥ पंचमुष होय क
र रुद्र रूप स्थिति होती है ॥ स्वर्ग विषे इंद्र रूप होय क
र स्थिति होती है ॥ तीक्षण कला कर सूर्य रूप दिन
का कर्त्ती होती है ॥ क्षण दिन मास वर्ष के कर्त्ती है ॥ चं
द्रमा होय कर रात्रि कौं कर्त्ती है ॥ काल होय कर नक्षत्र
चक्र कौं फेरती है ॥ कहूं प्रकास होती है ॥ कहूं तम होती
है ॥ कहूं बीज ॥ कहूं पाषाण कहूं मन रूप होती है ॥ क
हूं नदी होय कर वहती है ॥ कहूं फल होय कर फले
है ॥ कहूं भंवर होय कर भ्रमले है ॥ कहूं फल होय दिषा
वे है ॥ कहूं वायु होय उडावे है ॥ कहूं अग्नि होय जला
वे है ॥ कहूं बर्फ होय सीतलावे है ॥ कहूं आकाश होय
दिषावे है ॥ सब अपने मांझ समावे है ॥ हे मुनीश्वर इस
प्रकार सर्वात्मा सर्वगति सर्वशक्ति ताकर्के ॥ एक ही
रूप चित्तशक्ति आकाश तें भी निर्मल ॥ जैसे चेतया है
तैसे होकर स्थिति भई है ॥ जैसी जैसी भावना कर्ती है

त्राघ्रहीं तैसा रूप होजाती है ॥ पर स्वरूप तें इतर क
छु नहीं होती ॥ जैसे समुद्र विषे तरंग फेन होय कर
नासता है ॥ पर जल तें इतर कछु नहीं होता ॥ जल
हीं जल है ॥ तैसे चितशक्ति अनेक रूप धारती है
पर चैतन्य तें इतर कछु नहीं होती ॥ कहूं हंसी क
हूं काकी ॥ बैल विषे बैली ॥ ककर विषे ककरी ॥
मषी चिडी इत्यादिक रूप धार केर संसार विषे प्र
वर्तती है ॥ जैसे जल विषे आया तृण भ्रमता है ॥ तैं
से पडी भ्रमती है ॥ अरु आपणे संकल्प तें आपहीं
भय पावती है ॥ जैसे मधरा आपणे शब्द कर के आ
पहीं पडा दौडता है ॥ अरु भै पावता है ॥ तैसे जीव अ
पणे संकल्प कर के अपणे आपहीं भय पावता है
हे मुनीश्वर जीवशक्ति को आचार मैं तुझ को कहा
है ॥ इस आचार को ग्रहण कर कें नीच पशु धर्मणी
हूई है ॥ स्वरूप के प्रमाद कर कें जैसा जैसा संकल्प
करती है ॥ तैसी कर्म गति को प्राप्त होती है ॥ अरु शो वान होती है
क अनेक दुःख कों प्राप्त होती है ॥ आपणे चेतनता क
र मलन होती है ॥ जैसे चावलों का स्वरूप तुषों कर
आवरत जाता है ॥ अरु बडे संताप को प्राप्त होते हैं ॥
बडूड बडूड बोवते हैं ॥ बडूड बडूड उगवते हैं ॥ को
टीते हैं ॥ तैसे स्वरूप के आवर्ण कर के जीव कला
दुर आगता जन्म मरण दुःख को प्राप्त होती है ॥ जैसे
भरतातैं रहित स्त्री शोकवान होती है ॥ तैसे इह क
ष्ट को पावती है ॥ हे मुनीश्वर जड जो है दृश्य अनात
म रूप ॥ तिस के साथ प्रीत कर लेकर ॥ अरु निजस्व
रूप के विस्मरण कर ॥ आसा रूपी फासी साथ बं
धमान हूया चितजीव को अधिक जोनों विषे प्राप्त क
रता है ॥ जैसे घटी यंत्र की टिंड कबहूं अधह कों जा
ती है ॥ कबहूं ऊर्ध कों जाती है ॥ तैसे जीव आशा के व
श हूया कबहूं अधकों जाता है ॥ कबहूं ऊर्ध जाता है

॥इति श्री निरवाणप्रकरणे श्री वसिष्ठ महेश्वर
संवादे चेतउन्मुखत्वचित विचारो नाम सर्गः॥ =
॥२९॥ ईश्वरो वाच॥ हे मुनीश्वर स्वरूप के विस्म
रण कर के इस प्रकार भ्रम होता है॥ जैसे मैं हंता हों
मैं दुषी हों। सो अनात्मा विषे अहंप्रतीत करके दुष
का अनुभव करता है॥ जैसे स्वप्न विषे पुरुष आप
कों पर्वत तें गिरता देषता है। तैसे स्वरूप के प्रमा
द कर अनात्मा विषे आतम अभिमान करकै दु
षी आपकों देषता है॥ हे मुनीश्वर शुध चेतन्य तत
विषे जो चितना वहूया है॥ चित कलाफुरी है। सो
जगत का कारण हूई है॥ तिस कर जगत होता गया
है। पर वास्तव स्वरूप तें इतर कछु नहीं भया॥ जैसे
जैसे चेतती गई है॥ तैसे तैसे जगत होता गया है। प
र वास्तव स्वरूप तें इतर कछु नहीं भया॥ उह चित
का कारण रूप भी नहीं हूया। जो कारण भी नहीं हू
या॥ तो कारिज किसकों कहीये। हे मुनीश्वर न उह
चित है। न चेत है। न चेतणे वाली वृत है। न द्रष्टा है
न दृस्य है। न दर्शन है। जैसे पथर विषे तेल नहीं हो
ता॥ अरु न कारण है। न कर्म है। न करण इंद्रीयां हैं
जैसे चंद्रमा विषे स्यामता नहीं होती। न मन है। न मन
न है। न मानणे जोग दृस्य वस्त है। जैसे आकाश विषे
अंकुर नहीं होता॥ न अहंता है। न त्वंता है। न दृस्य है
जैसे संष कों स्यामता नहीं होती॥ हे मुनीश्वर न ना
ना है। न अनाना है॥ जैसे अग्नि विषे सुमेर नहीं होता
न शब्द है। न शब्द का अर्थ है॥ जैसे मारूथल विषे
वली नहीं होती॥ न वस्त है। न अवस्त है। जैसे बरफ वि
षे उष्मता नहीं होती॥ न शून्य है। न अशून्य है। न ज
ड है। न चैतन्य है॥ जैसे सूर्यमंडल विषे अंधकार न
हीं होता। हे मुनीश्वर इत्यादि शब्द अरु अर्थ की जो
कल्पना है। सो उस विषे कोऊ नहीं। जैसे अग्नि विषे

सीतलता नहीं होती । केवल केवलीभाव है ॥ अद्वैत
चिन्मात्र तत्वस्वरूप है ॥ किसी को भी कछु दुख नहीं ॥
हे मुनीश्वर जगत को सत जाण कर भावना करणी ॥
अर आतम को असत जाण कर अभावना करणी ॥
इस भावना करके अनर्थ को प्राप्त होता है ॥ अर ज
गत को असत जाण कर अभावना जब करणी ॥
अर आतमा को सत जाण कर भावना करणी ॥ इ
स भावना कर सर्व अनर्थ निवृत्त हो जाते हैं ॥ सो अ
वरा किसी कर प्राप्त नहीं होता ॥ अपणे आपही कर
प्राप्त होता है ॥ अर आदि ही सिध है ॥ जब तिसकी अ
र भावना होती है ॥ तब भ्रम सब नहीं मिट जाता है ॥ ज
ब अनातम भावना होती है ॥ तब दुःसाध्य कहीये प
वणों कै च न होता है ॥ जतन बिना उह कैसे पावहि ॥
जो जतन साध्य है ॥ सो जतन बिना नहीं पाया जाता ॥
आतमा कैसा है ॥ निर्विकल्प है अद्वैत है । सर्व ते अ
तीत है । सो अभ्यास बिना कैसे पाई है ॥ आतम तत्वप
र्म है ॥ एक है । स्वच्छ है । तेज का भी प्रकाशक है । सर्वग
ति निर्मल है । नित उदित निर्मल शक्ति रूप है ॥ निर
विकार निरंजन है ॥ सो घट । पट । बट । कंध बिषे गि
री बिषे । बांतर बिषे । दैत्य देवता समुद्र बिषे । हस्ती बि
षे इत्यादिक जेता कछु स्थावर जंगम रूप जगत है
सो सर्व बिषे एक आतम तत्व साक्षी रूप होइ कर स्थि
त है ॥ दीपक वत सर्व को प्रकाशता है । अर सर्व क्रिया
तें अतीत है ॥ तिसी कर सब कारिज सिध होते हैं । सर्व
क्रिया संयुक्त भासता है ॥ अर सर्व विकल्प तें रहित
जड वत भी भासता है ॥ परपर्म चेतन्य है ॥ सर्व चेतनों
का सार चैतन्य है ॥ निर्विकल्प पर्म सूक्ष्म है । अर अप
णे आप विषे कछ न होता है । अर अपणे आप को प्र
माद करके रूपालोक मनस्कार त्रिपुटी भासती है ॥
जब बोध होता है ॥ तब ज्यों का त्यों आतमा ही भास
ता है ॥ नित्य शुध निर्मल परमानंद रूप है ॥ तिसके प्र

मादकर्कै चेतनभावकौं प्राप्त होताहै॥ जैसे साधनीउर्ज
नोंके संग कर ऽसाध होजाताहै॥ तैसे ऽनात्माके सं
गकर इह नीचताकों प्राप्त होताहै॥ जैसे सोना कुधातके
मिलौं नीकर खोटा होइ जाताहै॥ जब सोधना करीता
है॥ तब शुधभावकों प्राप्त होताहै॥ तैसे ऽनात्माके सं
गकर इह जीव दुषी होताहै॥ जब ऽभ्यास जतन कर
के ऽपणे शुधरूपकों पावताहै॥ तब उही रूप होजाता
है॥ जैसे स्वासका ही कर दर्पन मलिन होजाताहै॥ तब उ
स विषे मुष नहीं भासता॥ जब मलिनता निवृत होती
है॥ तब शुध होताहै॥ तिस विषे मुष स्पष्ट भासताहै॥ तैं
से चित संवेदनके प्रमादतें फुरणे कर जगत भ्रम भा
सणे लागाहै॥ ऽपर ऽआत्म स्वरूप नहीं भासता॥ जब इह
जगत सत्ता फुरणे सहित दूर होवेगी॥ तब ऽआतम तत्व
पडा भासेगा॥ जगत कौ ऽसतता भासेगी॥ हे मुनीश्वर
शुध संवित विषे चेतनताका फुरणा विवर्त होताहै॥
तब ऽअहंताभावकों प्राप्त होताहै॥ जब ऽअहंताकों प्रा
प्त भया॥ तब ऽअविनाशी रूपकों विनाश पडा जानता
है॥ हे मुनीश्वर स्वरूपतें कछु भी उथ्यान होताहै॥ तिस
कर स्वरूपतें गिडकर कष्ट पावताहै॥ जैसे पहाडतें
गिडया वटा ऽअधः कौ चल्या जाताहै॥ ऽअरु चूरण होता
है॥ तैसे स्वरूपतें उथ्यान हूया॥ ऽपर ऽअनात्मा विषे ऽअ
भिमान ऽअहं ममता हूई॥ तब ऽअनेक दुषौंकों प्राप्त होता
है॥ हे मुनीश्वर सर्व पदार्थोंकी सत्तारूप ऽआतमा है॥ ति
सके ऽअज्ञानकर्कै द्वैतभावकौं प्राप्त हूयाहै॥ जब तिस
का बोध होवै॥ तब द्वैतभाव निवर्त होजावैगा॥ सो ऽआ
तमा शुध चिन्मात्र स्वरूप है॥ तिसकी सत्ताकर देह
इंद्रीयादिक नी चैतन्य होते हैं॥ ऽअरु ऽआपणे ऽआपणे
विषयकों ग्रहण कर्तीहैं॥ जैसे सूर्यके प्रकाशकर स
भ जगतका व्यवहार होताहै॥ प्रकाश विनां व्यवहार
नहीं होता॥ तैसे ऽआत्माकी सत्ताकरकै देह इंद्रीयां ऽआ
दिक उंका व्यवहार होताहै॥ ऽआपणे ऽआपणे विषउं

कों ग्रहण करती हैं ॥ हे मुनीश्वर प्राण वायु कों लीयें जो
नेत्रों विषे सत्तामरूपा मता है ॥ सो अपणे विषय रूप
कों ग्रहण करती है ॥ तिस का बाह्य विषयों साथ सं
योग होता है ॥ तिस रूप का जिस विषे अनुभव होता
है ॥ सो परम चेतन्य सत्ता है ॥ त्वचा इंद्री अरु स्पर्श विषे ज
ब संयोग होता है ॥ इन जडऊं का जिस कर अनुभव
होता है ॥ सो साक्षीभूत परम चेतन्य सत्ता है ॥ अरु नासका
इंद्री का जब गंध तन्मात्रा साथ संयोग होता है ॥ तिस
के संयोग विषे जो अनुभव सत्ता है ॥ सो परम चेतन्य है
इसी प्रकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध इह जो पांचो विष
य हैं ॥ अरु श्रोत्र नेत्र त्वचा रसना नासका पांचो इंद्रीयां
साथ मिलकर इनके जानणे वाला साक्षीभूत परम
चेतन्य आतम तत्त है ॥ सो सुषुप्तवत परम चेतन्य कही
ता है ॥ अरु जब बहिरमुख फुरया है ॥ दृस्य साथ मिल
या है ॥ सो मलिन चितक होता है ॥ अरु जब उही मनन
प अपणे शुध स्वरूप विषे स्थित होता है ॥ तब शुध हो
ता है ॥ हे मुनीश्वर इह जगत सत्त आत्म स्वरूप है ॥
सिलघन की न्यांई अद्वैत रूप है ॥ अरु सर्व विकारों ते
रहित है ॥ न उदय होता है ॥ न अस्ति होता है ॥ संकल्प के
वसतें जीव भाव कों प्राप्त हूया है ॥ संकल्प के निवर्तू
हूयें परमात्मा रूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर आदि जो
चित कला फुरी है ॥ सो जीव रूपी रथ पर आरूढ हू
ई है ॥ अरु जीव अहंकार रूपी रथ पर आरूढ हूया
है ॥ अहंकार बुधि रूपी रथ पर आरूढ हूया है ॥ बु
धि मन रूपी रथ पर चढी है ॥ अरु मन प्राण रूपी रथ प
र चढा है ॥ अरु प्राण इंद्रीयां रूपी रथ पर चढे हैं ॥
इंद्रीयऊं का रथ देह है ॥ देह का रथ पदारथ हैं ॥ जो
कर्म करता है ॥ कर्मों कर जरा मरण रूपी संसार पिंज
र विषे पडी रहती है ॥ इस प्रकार चक्र पडा वृतता है
तिस विषै जीव प्रमादककें पडा भटकता है ॥ हे मु
नीश्वर इह चक्र आतमा का अध्यास रूप है ॥ जैसे

स्वप्नपुर विषे नाना प्रकार के पदारथ भासते हैं॥ सो
वास्तव कछु नहीं॥ तैसे इह जगत वास्तव कछु नहीं॥
जैसे मृगतृष्णा की नदी भ्रम करके भासती है॥ तैसे
इह जगत भ्रम करके भासता है॥ हे मुनीश्वर मन का
रथ प्राण हैं॥ जहां प्राणकला फुरणे तें रहित होती है॥
तहां मन भी स्थिति होता है॥ जब प्राण स्थिति हूया॥ तब
मन का मनन भी शांति हो जाता है॥ अरु जो प्राणकला
पड़ी फुरती है॥ तब मन का मनन भी पड़ा फुरता है॥ प्रा
णकला स्थिति भई॥ तब मनन निवर्त हो जाता है॥ जैं
से प्रकास बिनां पदारथ नहीं भासते॥ जैसे जब पवन
शांति हूया॥ तब धूड़ उडणे तें रहि जाती है॥ तैसे प्राणों के
फुरणे तें रहित मन शांति हो जाता है॥ जैसे जहां पुष्प हो
ते हैं॥ तहां सुगंध भी होती है॥ जहां अगनि है॥ तहां उष्णता
भी होती है॥ तैसे जहां प्राण स्पंद होता है॥ तहां मन भी हो
ता है॥ हृदय विषे जो नाड़ी है॥ तिस विषे स्वतह ही पड़ी
फुरती है॥ तिस कर मनन पड़ा होता है॥ संवित जो है॥ सो
स्वच्छ रूप जड़ अजड़ सर्वत्र विषे भासती है॥ अरु संवेद
न प्राणकला विषे फुरती है॥ हे मुनीश्वर आत्मा सर्वत्र वि
षे अनस्यूत है॥ पर जहां प्राणकला होती है॥ तहां भास
ता है॥ जहां प्राणकला नहीं॥ तहां नहीं भासता॥ जैसे सूर्य
का प्रकास सर्व ठौर विषे होता है॥ पर जहां उज्जल स्थान
जल अथवा दर्पण होता है॥ तहां प्रतिबिंब भासता है॥
अवर ठौर प्रतिबिंब नहीं भासता॥ तैसे आत्मसत्ता सर्व
त्र है॥ पर जहां प्राणकला पुर्यष्टका होता है॥ तहां भासती
है॥ अवर ठौर नहीं भासती॥ जैसे आदर्श विषे मुख का प्र
तिबिंब भासता है॥ सिला विषे नहीं भासता॥ तैसे पुर्यष्ट
(का) जो मनरूप है॥ सर्व का कारण है॥ अहंकार बुद्धि इंद्रीयां
सो तिसी के भेद हैं॥ जो आपही कर कलपता है॥ सर्व दृश्य
जाल तिस ही कर उदय होता है॥ अवर वस्तु को उ नहीं
इह भली प्रकार अनुभव कीया है॥ तिस कारण तें मन
ही देहादिकों कों प्रवर्तावता है॥ सो पर्मतत्व वस्त तिस

हीविषेभासतीहै॥ ॥इतिमनप्राणोक्तप्रतिपाद
ननामसर्गः॥२॥ ॥श्रीईश्वरोवाच॥ हेमुनीश्व
रआत्मसत्ताबिनाजीवकंपवतहोताहै॥ अरआ
त्मसत्ताकरचैतन्यहोयकरचेष्टाकर्ताहै॥ जैसेचं
बकपाषाणकीसत्ताकरजडलोहचेष्टाकर्ताहै॥
तैसेसर्वगतिआत्माकीसत्ताकरजीवफुर्ताहै॥ अ
रआत्मसत्ताभीजीवकलाविषेभासतीहै॥ अवरठौ
रनहींभासती॥ जैसेमुखकरप्रतिबिंबदर्पणविषे
भासताहै॥ अवरठौरनहींभासता॥ तैसेपरमात्मा
सर्वगतिसर्वशक्तिभीहै॥ परभासताजीवकलाविषे
हीहै॥ हेमुनीश्वरशुधवास्तवस्वरूपतेंजोइसजीव
कलाकाउथ्यानहूयाहै॥ अरइसकीओरवहीहै॥
तिसकरचितभावकोंप्राप्तभईहै॥ जैसेपक्षोंकीसं
गतककेजालणभीआपकोंफूडमानणेलागजा
ताहै॥ तैसेस्वरूपकेप्रमादककेजीवकलाआपूकों
चित्तदृस्यभावजानणेलागगईहै॥ अज्ञानककेअ
छादयाजीवमहादीनभावकोंप्राप्तहूयाहै॥ जडदे
हकेअभ्यासकरपडाकष्टपावताहै॥ कामक्रोधादि
कवातपित्तादिकरपडाजलताहै॥ जैसीजैसीभाव
नाहोतीहै॥ तैसेतैसेकर्मकर्ताहै॥ तिनकर्मोंकीभाव
नोसाथमिल्याहूयापडाभटकताहै॥ जैसेषभाणी
करचलायापथ्यरचल्याजाताहै॥ तैसेकर्मवासनां
कांप्रेरताजीवपडाभ्रमताहै॥ जैसेरथपरआरूढहोके
ररथीचलताहै॥ तैसेआत्मामनप्राणकर्मकोंथड
ककैचलताहै॥ हेमुनीश्वरचैतन्यहीजोहै॥ सोजड
दृस्यकोंअंगीकारककेजीवत्वभावकोंप्राप्तहोताहै
मनप्राणरूपीरथपरचढकरपदार्थभावनांतें
नानाप्रकारकेभेदकोंप्राप्तहूयेकीन्याईस्थितिहोता
है॥ जैसेजलहीतरंगभावकोंप्राप्तहोताहै॥ तैसेचैतन्य
नानाप्रकारहोयकरस्थितिहोताहै॥ सोइहजीवक
लाआत्माकीसत्ताकोंपाइकरवृत्तिविषेफुरणरूपहो
ताहै॥ जैसेसूर्यकीसत्ताकोंपाइकरनेत्ररूपकोंग्राह

५८
54

एक तै हैं। तैसे परमात्मा की सत्ता को पाइकर जीव वृ
त्ती विषे फुर्ना है। परमात्म चिनतत्व विषे जो स्थित
है। तिसकर फुर्ण रूप जीव जीवता है। जैसे दीपक
घर विषे होता है तब प्रकाश होता है। दीपक प्रका
श विना प्रकाश नहीं होता। अपणे स्वरूप को भु
लायकर जो जीव दृश्य की ओर लागा है। इसका
रणते आधव्याधि कर दुःखी होता है। जैसे कमल
कोश साथ लागता है तब भ्रमरे आन स्थित हो
ते हैं। तैसे जब जीव दृश्य की ओर लागता है तब
दुःख आन स्थित होते हैं। तिसकर जीव दीन हो जा
ता है। जैसे जल तरंग भाव को प्राप्त होता है। जैसे
घुराइण अपणी क्रिया कर आप बंधायमान हो
ती है। जैसे बालिक पछावें को देखकर आपही अ
विचारते भय पावता है। तैसे अपणे स्वरूप के प्रमा
द करके आपही भय पावता है। अरु दीनता को प्रा
प्त होता है। हे मुनीश्वर स्वेतत्र कि सर्वगत अप
णा आप है। तिसकी अभावना करके दीनता
को प्राप्त हुया है। जैसे सूर्य बदलों कर आछाद्या
जाता है। तैसे मूढता कर आत्मा को आवर्ण हुया है।
जब प्राणों का अभ्यास करे। तब जडता निवृत्त होवे।
अपणा आप आत्मा स्मर्ण होवे। जिनकी वासना
निर्मल भई है। रिदे ते दूर नहीं होती। सो स्थिर हुये
एक रूप होती है। तब जीव जीवन्मुक्ते होय कर चि
र पर्यंत जीवते हैं। रिदे कमल विषे प्राणों को रोक
कर शांति को प्राप्त होते हैं। जैसे काष्ठ लोष्ट होता है
तैसे देह पिंड परती है तब पुर्यष्ट का आकाश विषे
लीन हो जाती है। जैसे आकाश विषे पवन लीन हो
ता है। तैसे तिसका मन पुर्यष्ट का न हो लीन हो जात
है। हे मुनीश्वर जिसकी वासना शुद्ध नहीं भई। सो मृ
त्युकाल विषे तिनकी पुर्यष्ट का आकाश विषे स्थि

त होता है ॥ तिस के अनंतर बहुड़ फुर आवती
है ॥ अरु वासना के अनुसार स्वर्ग नर्क को देख
ने लागता है ॥ जब शरीर मन अरु पवन तें रहित
हूया शव होता है ॥ शून्य रूप हो जाता है ॥ जैसे घ
र को त्याग कर पुरुष दूर जाइ रहिता है ॥ तैसे शरी
र को त्याग कर मन अरु प्राण अवर ठौर जाइ र
हिता है ॥ तब शरीर शून्य स्वरूप हो जाता है ॥ हे मुनी
श्वर चित सत्ता सर्वत्र है ॥ पर जहां जीव पुर्यष्टक
होती है ॥ तहां भासती है ॥ चेतन्यता का अनुभव हो
ता है ॥ अवर ठौर नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर इह जीव
जब शरीर को त्यागता है ॥ तब पंच तन्मात्रा को
ग्रहण करके संग ले जाता है ॥ जहां इस की वास
ना होती है ॥ तहां जाइ प्राप्त होता है ॥ तब प्रथम इ
स का अतिवाहक शरीर होता है ॥ बहुड़ दृढ रूप के
धउ अभ्यास करके स्थूल भाव को प्राप्त होता है
अतिवाहकता विस्मरण हो जाती है ॥ जैसे स्वप्ने वि
षे भ्रम करके स्थूल जगत आकार देखता है ॥ तैसे मोह क
र के मरता है ॥ तब अपणे साथ स्थूल आकार देख
ता है ॥ बहुड़ इस स्थूल देह विषे अहं प्रतीत करता है
तिस साथ मिल के रूढ्या करता है ॥ तब असत को
सत जाणता है ॥ अरु सत को असत जाणता है ॥ इस
प्रकार भ्रम को प्राप्त होता है ॥ सर्वगत चिद इस कर
जीव मन होता है ॥ तब जागत भाव को प्राप्त होता है ॥
जब देह सों पुर्यष्टक निकसती है ॥ तब आकाश वि
षे जाइ लीन होती है ॥ तब देह फुरणे तें रहित होती है
तिस कों मृतक कहते हैं ॥ अपणे स्वरूप शक्ति कों वि
स्मरण करके जरजरी भाव कों प्राप्त होता है ॥ जब जी
वशक्ति हृदे कमल विषे मरछत होती है ॥ प्राण रो
के जाता है ॥ तब इह मृतक होता है ॥ बहुड़ जन्म ले
ता है ॥ बहुड़ मर जाता है ॥ हे मुनीश्वर जैसे वृक्ष के सा
थ पत्र लागते हैं ॥ बहुड़ काल पाइ कर नष्ट हो जा

ते हैं॥ बहुड़े नौतन उपजते हैं॥ इस प्रकार इह जीव
शरीर को धारता है॥ उह नष्ट हो जाता है॥ बहुड़ और
र शरीर धारता है॥ उह भी नष्ट हो जाता है॥ जो वृक्ष
के पत्र की न्याई उपजते हैं॥ अरु नष्ट हो जाते हैं॥ ति
नका शोक करणा व्यर्थ है॥ हे मुनीश्वर चेतन्य रूपी
समुद्र है॥ तिस विषे शरीर रूपी तरंग बुदबुदे अने
क उपजते हैं॥ अरु नष्ट हो जाते हैं॥ तिनका शोक क
रणा व्यर्थ है॥ जैसे दर्पण विषे अनेक पदार्थों का प्रति
बिंब होता है॥ सो दर्पण ते इतर कछु नहीं॥ तैसे चेतन्य
विषे अनेक पदार्थ भासते हैं॥ सो चैतन्य निर्मल आका
शवत प्रसन्न विस्तीर्ण रूप है॥ तिस विषे जो पदारथ
फुरते हैं॥ सो अनन्य रूप हैं॥ विविध शरीर भी उही रू
प है॥ ॥इति श्री निरवाण प्रकरणे देहपात वि
चारो नाम सर्गः॥ ३१॥ वसिष्ठोवाच॥ हे अर्धचं
द्र धारी चेतन तत जो महातमा पुरुष है॥ सो अनंत ए
क रूप है॥ तिस को इह द्वैत कहां ते प्राप्त भई है॥ अरु
नंत न विभ्रत का जो कहां ते खडा हो रहा है॥ एक विषे
अनेकता कहां ते प्राप्त भई है॥ अरु बुधिवान इस को
कैसे निवर्त करते हैं॥ अरु कैसे निवृत होता है॥ ईश्वरो
वाच॥ हे ब्राह्मण केवल चेतन सर्वज्ञ शक्ति है॥ जब उह ए
क ही अद्वैत होता है॥ तब निर्मलता को प्राप्त होता है॥
एक के भाव कर द्वैत कहीता है॥ अरु द्वैत की अपेक्षा
कर एक कहीता है॥ सो दोनों कल्पना मात्र है॥ जब चित
फुरता है॥ तब एक अरु दोइ की कल्पना होती है॥ चित
स्पंद के अभाव हूए एक अरु दोइ की कल्पना मिट जा
ती है॥ अरु कारज जो कारण कर भासता है॥ सो भी एक
रूप है॥ जैसे बीज ते अंकुर फल प्रजंत वृक्ष का विस्तार
है॥ सो एक रूप है॥ अरु वधणा घटणा उस विषे कल्प
ना होती है॥ तैसे चेतन्य विषे चित कल्पना होती है॥ न
व जागत रूप होइ भासता है॥ पर तिस का लव विषे नाउ
हीं रूप है॥ हे मुनीश्वर वृक्ष के सपनी वस्तु बीज एक रू
प है॥ कछु अवर नहीं हूया॥ पर बीज फुरता है॥ तब वृ

छहो भासता है ॥ तैसे जब अशुध चेतन्य विषे कल्पना फु
रती है ॥ तब जगतरूप होइ भासती है ॥ हे मुनीश्वर इ
ह जो नाना प्रकार का कार्य कारण विकाररूप जगत
भासता है सो असम्यक दृष्ट कर के भासता है ॥ जैसे जल
विषे तरंग भासता है सो जल ही रूप है द्वैत कछु नहीं
जैसे ससे के सिंह असत है ॥ जैसे जल विषे द्वैत तरंग क
लना असत है ॥ अग्यान कर के भासते है ॥ तैसे आत्मा वि
षे जगत अग्यान कर के भासता है ॥ जैसे द्रवता कर ज
ल ही तरंगरूप होइ कर भासता है ॥ तैसे फुरणे कर
आतम तत जगतरूप होय कर भासता है ॥ अवर द्वैत
कछु नहीं ॥ चेतनरूपी बल्ली पसरी है ॥ तिस विषे प
त्र फुल फल एक ही रूप है ॥ जैसे एक बल्ली अनेक रू
प होइ भासती है ॥ तैसे एक ही चेतन्य अहं त्वं देश का
ल विकारादिक भेद होय कर भासता है ॥ सो उही रू
प है ॥ हे मुनीश्वर जो सब ही चेतन्य है ॥ तो तेरे प्रश्न का
अवसर कहा होवे ॥ देश काल इत्यानेत इसते लेकर
जो शक्ति पदारथ है ॥ सो एक चिदात्मा ही है ॥ जैसे ज
ल विषे द्रवता होती है ॥ तब तरंगरूप हो भासता है
उनका नाम तरंग होता है ॥ तैसे ब्रह्म विषे जगत फुर
ता है ॥ तब अहं त्वं आदिक नाना प्रकार के नाम होते
हैं ॥ ब्रह्म परमेश्वर शिव परमात्मा अरु चेतन्य सत्ता द्वैत अ
द्वैतादिक नाम मुनीश्वर लोक के कहीते हैं ॥ जो इन ना
मों ते अतीत है ॥ सो वाणी का विषय नहीं ॥ ऐसा जो ति
विषयत तहे ॥ सो सदा अपने आप विषे स्थित है ए
जगत जो कछु भासता है ॥ सो भी उह चेतन्य तत है ॥ जै
से बल्ली फूल फल पत्र होकर पसरती है ॥ तैसे चेतन
सर्वरूप होय कर पसरता है ॥ सो उही रूप है ॥ हे मुनी
श्वर महा चेतन्य विषे जब कछु न होता है ॥ तब जी
व रूप होय कर स्थित होता है ॥ आगे द्वैत कलना को
देखता है ॥ जैसे स्वप्न विषे अपने स्वरूप को त्याग कर
अवर भिन्न वपु को धारता है ॥ अरु आगे द्वैत जग
त को देखता है ॥ जब जागता है ॥ तब अपने अद्वैत
रूप

रूपकौं देखता है॥ पर जागे बिनां भी देत कछु हूया नहीं
तैसे इह जाग्रत जगत भी कछु हूया नहीं॥ भ्रम करके
पडा भासता है॥ जब इह जीव अपने वास्तव स्वरूप
की ओर सावधान होता है॥ तब तिस को अध्यास कर
उही रूप हो जाता है॥ हे मुनीश्वर इस जीव का जो आदि
वपु है॥ सो अतिवाहक है॥ संकल्प ही तिस का रूप होता
है॥ जब तिस विषे अहं भावना तीव्र हो जाती है॥ तब उ
ही अधिभूतक होइ कर भासता है॥ तिस विषे सतता
धृढ हो जाती है॥ तिस की सतता कर राग द्वेष सो चुभा
यमान होता है॥ जब को कला जीव त अक समाचे तें
रिदे विषे विचार आन उपजता है॥ तब संकल्प रूपी
आवर्न दूर होता है॥ अर अपने वास्तव स्वरूप को प्रा
प्त होता है॥ जैसे बालिक अपने पिछावें विषे वैताल
कल्प कर के भय पावता है॥ तैसे इह जीव अपने संक
ल्प कर के आप ही भय पावता है॥ हे मुनीश्वर इह जे
ता कछु जगत भासता है॥ सो सब संकल्प ही मात्र है॥
जैसा संकल्प इस के रिदे विषे धृढ होता है॥ तैसा ही
भासता है॥ अरु ह्रदे सो जो पुरुष कछु कार्य करता है
तब सो करतत्व भाव इस के रिदे विषे धृढ होता है॥
अरु इह कहता है॥ इह कार्य मैं न करौंगा॥ तब उही संक
ल्प धृढ हो जाता है॥ तब उस कार्य तें आप को अक
र्ता जानता है॥ तैसे दृस्य की भावना कर जगत सत्
धृढ हो गई है॥ जब दृस्य का संकल्प निवर्त करता है॥
अर आत्म भावना विषे जुडता है॥ तब जगत भ्रम
निवर्त हो जाता है॥ आतमा ही पडा भासता है॥ हे मुनी
श्वर परमार्थ तें कछु द्वैत है ही नहीं॥ सब संकल्प
रचना है॥ संकल्प कर रची जो दृस्य है॥ सो संकल्प के
अभाव तें अभाव हो जाती है॥ जैसे मनोराज गंधर्व
नगर मन कर रचित होता है॥ अरु उस संकल्प के अभा
व तें अभाव हो जाता है॥ तैसे संकल्प मात्र इह जगत है
इस की इच्छा त्यागणी॥ इच्छा के त्यागे तें इस का त्याग है

वेगा॥ तबकलेशकछुनरहेगा॥ हेमुनीश्वरइहजगतसं
कल्पकीपुष्टताकरकेजीवदुखभागीहोताहै॥ जैसेस्वप्नेविषे
संकल्पकरकेदुषीहोताहै॥ तिससंकल्पमात्रकीइछाता
गतेविषेकाहुपणताहै॥ अगरस्वप्नेविषेजोसुषभोगताहै
सोसुषीकछुवस्तुनही। नाममात्रहे। तैसेइहसुषभ्रममा
त्रहे॥ हेमुनीश्वरसंकल्पविकल्पइसकोदीनकीयाहे॥ जब
संकल्पविकल्पकौत्यागकर्ताहे॥ तबचित्तअचित्तहोजा
ताहे॥ अगरपर्मउचेपदविषेविराजमानहोताहे॥ जैसेपुर
षविवेकरूपीवाइकरसंकल्परूपीमेघकोदूरकीयाहे
सोपर्मनिर्मलताकोप्राप्तहोताहे॥ जैसेसरतकालकाआ
काशनिर्मलहोताहे॥ तैसेसंकल्पविकल्परूपीमलतेरं
हितउद्यानतावकोप्राप्तहोताहे॥ संकल्पकेत्यागतेजो
पाछेशेषरहताहे॥ सोसत्तामात्रपर्मानंदतेरास्वरूप
हे॥ हेमुनीश्वरआत्मासर्वशक्तिरूपहे॥ जैसीजैसीजो
वनाहोतीहे॥ तैसेहीआपणीभावनाकरदेषताहे॥ तैसि
उसनसंकल्पमात्रहे॥ नामककैतुदयरूपयाहे॥ संकल्प
केलीनहूयेंसंसृतलीनहोजावेगा॥ हेमुनीश्वरसंकल्पर त्रिष्णारूपी
पीकाठीयेंअगरघृतकरकैजन्मरूपीअग्निकोइहजी
वपडावधावताहे॥ तिसकरअंतकदाचितनहीहोता
जबअगसंकल्परूपीवाइकरअमरजलकरइसकोअ वैराग्यरूपी
भावकरे॥ तबविस्मेहोजातीहे॥ जैसेदीपकनिर्वाण
होजाताहे॥ तैसेजन्मरूपीअग्निकाअभावहोजाताहे
अगरसंकल्परूपीवाइकेरतृणकीन्याईपडाभ्रमता
हे॥ हेमुनीश्वरत्रिष्णारूपीकणजयकीवलीहे॥ तिस
कौसंकल्परूपीजलकरसदासिंचताहे॥ जबअगसं
कल्परूपीसोषता॥ अगरविचाररूपीषडगकरकाटै
तबतिसकाअभावहोजावे॥ जोअज्ञानमात्रहे॥ सोअग
नासकेहूयेंअभावहोजावेगा॥ जैसेगंधर्वनग
रहोताहे॥ जैसेस्वप्नसृष्टहोतीहे॥ तैसेइहजगतअस
म्पकज्ञानकरभासताहे॥ सम्यकज्ञानकरलीनहोजा
वेगा॥ जैसेकोऊराजाहोवे॥ अगरस्वप्नेविषेरंकहोजा
वै॥ पूर्वलास्वरूपविस्मृतहोजावे॥ अगरदीनताकोप्रा

57 म होवै । जब पूर्व स्वरूप स्मर्ण आवै । तब आपकौं राजा
जानै । अरु दुष सब मिट जावैं । निर्दुष पद कौं प्राप्त हो
वै । तैसे इस जीव कौं आपणां वास्तव पूर्वला स्वरूप वि
स्मर्ण होगया है । तिस कर आपकौं परिछिन्न दुषी जान
ता है । जब स्वरूप ज्ञान होवै । तब सब दुषों का अभाव
होवै । जैसे सरत काल कर आकाश निर्मल होता है । तै
से निर्मल हो जावै । जैसे वर्षा काल की मलतायें तें आ
काश निर्मल होता है । तैसे संकल्प मल तें रहित जीव
निर्मल होता है शुद्ध पद कौं प्राप्त होता है । जो ऐसे श्रु
ति युक्ति कर भावनां करता है । मैं आत्मा हों । एक हों
द्वैत तें रहित हों । जब ऐसी भावना करेगा । तब सोई
होवैगा । द्वैत भावनां के अभाव हो जाता है । उत्तम पद
ब्रह्मतत्व देव पूजक पूजक पूजा किंचित न किंचित की
न्याई चित्त एक रूप हो जाता है ।। ।। इति देवक ग
ति पादनं नाम सर्गः ।। ३२ ।। श्री ईश्वरोवाच ।। हे मु
नीश्वर देव निरंतर स्थित है । द्वैत अरु एक पद तें र
हित है । अरु द्वैत एक संयुक्त नी डही है । संकल्प साथ
मिलकर चेतन रूप संसरता कौं प्राप्त होता है । अरु
जो संकल्प मल तें रहित है । सो मुक्ति रूप है । जब ऐ
से जाणता है । जो मैं हों । तब इह संकल्प कर बंधमा
न होता है । इसके अभावतें मुक्ति है । सुष दुष का अ
भाव होता है । सो शुद्ध निरंसर एक सत्ता सर्वात्मा आका
शवत होता है । इसी का नाम मुक्ति है । आकाशवत व्या
पक ब्रह्म होता है ।। श्री वशिष्ठोवाच ।। हे ईश्वर ज
ब मन विषे मन क्षीन होता है । अरु इंद्रियां मन विषे ली
न होता है । द्वितीय अरु तृतीय पद किसकी न्याई शेष
रहता है । जो महा सत्ता आत्म सत्ता सर्व का जीवन क
र्ता है । सो किसकी न्याई है ।। श्री ईश्वरोवाच ।। हे मुनी
श्वर जब मन कर मन छेदीता है । इंद्रियां जिसका अव
यव है । विचार कर कै । अभ्यास समाधि कर के । ध्यान क
र के । अभ्यास अरु उपासना कर के । जब आत्म बो

धइसकौंप्राप्तहोताहै॥तबद्वैतएककीकल्पनांनष्टहो
जातीहै॥जगतजालकीसततानष्टहोजातीहै॥तिसके
पाछेंजोशेषरहिताहै॥सोआत्मतत्वप्रकाशहै॥जैसे
भुनेबीजतेंअंकुरनहींउगमता॥तैसेजबमनउपश
महोताहै॥तबतिसविषेजगतसत्ताकाअभावहोजा
ताहै॥चैतन्यसत्तजोहै॥सोचित्तसत्ताकोबाधनकरले
ताहै॥जबमनरूपीमेघकीसततानष्टहोतीहै॥तबसर
तकालकेआकाशवतनिर्मलआत्मसत्ताभासतीहै॥
चितकीचपलतामिटजातीहै॥तबपरमनिर्मलपावनचि
न्मात्रतत्वप्राप्तहोताहै॥अरुद्वैतएकभावअभावरू
पीसंसारकीकल्पनामिटजातीहै॥समसत्तारूपतत्वजो
सर्वविषेहै॥अरुसंसारसमुद्रकेपारकरणेहाराहै॥सो
प्राप्तहोताहै॥सुखबोधवतनिरलयहोजाताहै॥शांतरू
पआतमाकोंपाइकरशांतिरूपहोजाताहै॥हेमुनीश्वर
मनकीहीणताकाप्रथमपदएतुजकोंकहाहै॥अबद्वि
तीयपदसुण॥हेमुनीश्वरजबइहचित्तशक्तिमनके
मननतेंमुक्तिहोतीहै॥कैंसीमननवृत्तहै॥जोअनेकअ
रकौंधावतीहै॥तिसतेजबमुक्तिहोताहै॥तबचंद्रमाके
प्रकाशवतशीतलहोजाताहै॥आकाशवतविस्ताररू
पआपणाभासताहै॥अरुघनसुषुप्तरूपहोजाताहै॥जैं
सेपथ्थरकीशिलापोलतेंरहितहोतीहै॥तैसेइरूपतेंर
हितघनसुषुप्तइसकाआकारहोताहै॥लूणवतरस
मईवृत्तहोजातीहै॥जैसेआकाशविषेशब्दलीनहोजा
ताहै॥तैसेइसकाचित्तआतमाविषेलीनहोइजाताहै॥
जैसेवाइचलणतेंरहितअचलहोजातीहै॥तैसेचित्तअ
चलहोजाताहै॥जैसेगंधपुष्पविषेस्थितहोतीहै॥तैसे
चित्तवृत्तआतमतत्वविषेविश्रामकोंपावतीहै॥सोआत
मसत्ताकैसीहै॥नजडहै॥नचैतन्यहै॥सर्वकल्पनातेंरहि
तअचेतचिन्मात्रहै॥अफुररूपसर्वसत्ताकेधारणहारी
है॥देशकालआदिकोंकेप्रछेदतेंरहितहै॥जिसकोंतु
प्राप्तहोताहै॥तिसकोंतुर्यापदभीकहतेहैं॥सर्वद्रष्टक

लंकतें रहित पद है॥ तिस सत्ता कों पाइकर साक्षी की न्याई
इस्थित होता है॥ सर्वत्र सर्वदा काल सम स्थित है॥ सर्व
प्रकाश रूप ही है॥ अरु शांति रूप है॥ तिस आतम सत्ता का
तिस कों आत्मत्व कर अनुभव होता है॥ जिस कों द्वितीय
पद प्राप्त होता है॥ हे मुनीश्वर एह तुज कों द्वितीय पद क
हा है॥ अब त्रतीय पद श्रवण कर॥ जब द्रढ तक अत्यंत
प्रणाम आतम तत्व विषे होता है॥ तब ब्रह्म आतमा इत्या
दिक नामों की भी तहां निवर्तता हो जाती है॥ भाव अभाव
की कल्पनां कों उ नहीं फुरती॥ स्याण की न्याई अचल वृ
त्त हो जाती है॥ परम शांति निह कलंक तुर्यातीत सत्तें जो
उलंघित पद है॥ तिस कों प्राप्त होता है॥ सो सर्व का अंत
अरु सर्व का आधार रूप है॥ एक अद्वैत नित चिन्मात्र त
त्व है॥ तुर्यातें भी आगें पद है॥ जिस विषे वाणी की भी ग
म्य नहीं॥ तिस पद कों प्रापुत होता है॥ हे मुनीश्वर सर्व क
लनां तें रहित अरु अतीत पद मैं तुज कों कहा है॥ तिस वि
षे स्थित हो॥ सोई सनातन देव है॥ अरु विश्व भी उही रूप
है॥ उही तत्व संवेदन के बल तें ऐसे रूप होकर भासता
है॥ अरु वास्तव तें न कछु प्रवृत्त है॥ न निवृत्त है॥ न कों प्र
वर्तिया है॥ न निवर्त होवेगा॥ समस्त सत्ता सकाश रूप अ
द्वैत तत्व अपने आप विषे स्थित है॥ आकाशवत निर्म
ल है॥ तिस विषे द्वैत एकत्व भी का अभाव है॥ एक चिद्घ
न सत्ता पाषाणवत अपने आप विषे स्थित है॥ जगत वि
षे अरु तिस विषे भेद रंच भी नहीं॥ जैसे जल अरु तरंग
विषे भेद कछु नहीं॥ तैसे जगत अरु ब्रह्म विषे भेद कछु
नहीं॥ समस्त सत्ता शिव शांति रूप है॥ अरु सर्व वाणी कें
विलास तें अतीत है॥ तू इस की यों चेतु मात्रा है॥ तुर्याशां
ति रूप परम तु है॥ वाल्मीकोवाच॥ हे भारद्वाज इस प्र
कार जब ईश्वर कहा॥ अरु परम शांति रूप आतम तत्व
क प्रसंग वशिष्ट जी श्रवण कीया॥ तब दोनों की वृत्ति
आतम तत्व विषे स्थित हो गई॥ अरु तूष्णीं हो रहे॥ मानो म
तीं लिख छोडे हैं॥ एक महूर्त पर्यंत चित्त की वृत्ति अंतें से

रही॥ बहुड ईश्वर जागया॥ ॥इति निर्वाणप्रकर्णे
परमेश्वर उपदेशो नाम सर्गः॥ ३३॥ वाल्मीकोवाच॥
हे भारद्वाज एक महूर्त तें उपरांत हरि जो है सदाशिव
गौरी रूप कमलनी को सरोवर सो तीनों नेत्र षोलत
भया॥ जैसे पृथिवी रूपी दवे तें सूर्य निकसे॥ तैसे नेत्र नि
कसे॥ अरु जैसे चादरा सूर्य का प्रकाश एकठा होवे॥ तैसे
नेत्रों का प्रकाश उदय हूया॥ अरु देषत भए जो वशिष्ठ जी
के नेत्र मूंदे हूये हैं॥ तब कहा हे मुनीश्वर जागो॥ अब नेत्र
का हे को मूंद छोड़े हैं॥ जो कछु देषणा था सो तो देष छो
ड्या है॥ अब समाधि विषे जुड़ने का श्रम किस निमित्त
करते हो॥ तुम सारषे जो तत्ववेत्ते हैं॥ तिन को हेय अरु उपा
देय किसी विषे नहीं होती॥ तूं जैसा बुधिवान हैं॥ तैसा ही है
तूं आतमदर्शी हैं॥ जो कछु पावणेयोग था सो पाया है॥ जो
जानणेयोग था सो जाण्या है॥ अरु बालिकों के बोधने
मित्त जो तुम मुज सों पूछ्या सो मैं कहा है॥ अब तुम को
लक्ष्मी साथ क्या प्रयोजन है॥ हे रामजी इस प्रकार कहि
कर मेरे अंतर प्रवेश करके चित्त की वृत्त साथ जगाया॥ ज
ब मैं जागया॥ तब बहुड ईश्वर कहत भये॥ हे वशिष्ठ जी
इह जो शरीर है॥ तिस की हृदयाकाश कारण प्राण स्पंद है॥ प्रा
णों कर शरीर की चेष्टा होती है॥ आतमा तिस विषे उदा
सीन की न्याई स्थित है॥ न कछु करता है॥ न भोगता है॥ जब
इस जीव को अपणे स्वरूप का प्रमाद होता है॥ तब देह वि
षे अभिमान होता है॥ अरु हृदयाकाश को आपके मान
ता है॥ बहुड भोगता मानता है॥ इस कर के पड़ा दुष पावता
है॥ इस लोक परलोक विषे भटकता है॥ अरु जब आ
त्म विचार उपजता है॥ तब आतमा का अभ्यास होता है
देह अभिमान मिट जाता है॥ इस भ्रम तें मुक्ति होता है॥
शरीर के नष्ट हूये आतमा का नाश नहीं होता॥ अरु श
रीर जो चेतन्य होय कर फुर्ता है॥ सो प्राणों कर फुर्ता है॥ ज

बमध्यसें प्राणनिकसजातेहैं ॥ तबशरीरजडमृतकरूप
होजाताहै ॥ अगरजोचंचलावलोहारी । अरपवित्रकरणेहा
रीसंवेदनशक्तिहै ॥ सोआकाशतेंभीसूक्ष्महै ॥ उहशरी
रकेनासहूयेतेंनासनहीहोती ॥ जोनासनहीहोती ॥ तब
विनासकाभ्रमकैंसेहोवै ॥ हेमुनीश्वरआतमतत्तजोचे
तनसत्ताहै ॥ सोसर्वत्रहै ॥ परभासतीनहीहै ॥ जहांसात्तक
गुणकाअंससमनहोताहै ॥ अरप्राणहोतेहैं ॥ मनअरप्रा
णोंसहितदेहविषेभासतीहै ॥ जैसेनिर्मलदर्पणविषे
मुषकाप्रतिबिंबभासताहै ॥ जोआदर्शमलिनहोता
है ॥ तबमुषविद्यमानभीहोताहै परभासतानहीं ॥ तैं
सेमनअरप्राणजबदेहविषेहोतेहैं ॥ तबआतमाभा
सताहै ॥ जबमनअरप्राणनिकसजातेहैं ॥ तबमलन
शरीरविषेआत्मसत्ताभासतीनहीं ॥ हेमुनीश्वरआत
मसत्तासनहोडपूरणहै ॥ परभासतीनहीं ॥ जबतिसका
अभ्यासहोवै ॥ तबसर्वात्मरूपहोयकरभासतीहै ॥ स
र्वकलनांतेंरहितशुधशिवरूपसर्वकीसत्तारूपतुंही
है ॥ विष्णुभीतुंहीहै ॥ ब्रह्माभीतुंहीहै देवताजानभीतुंही
है ॥ अग्निवायचंद्रमासूरिजादिकजगतसभकाआदि
वपतुंहीहै ॥ सोएकदेवहै ॥ शुधहैचेतनरूपहै ॥ सर्वदेवों
कादेवहै ॥ अवरसभतिसकेटहलूयेहैं ॥ अरसभउसके
चितउलासहैं ॥ हेमुनीश्वरहमजोइसजगतविषेवदे
ब्रह्माविष्णुरुद्रहैं ॥ सोउसीततत्तेंप्रगटभयेहैं ॥ जैसेअ
ग्नितेंचिणगारेउपजतेहैं ॥ जैसेसमुद्रतेंतरंगप्रगटहो
तेहैं ॥ तैंसेहमतिसतेंप्रगटभयेहैं ॥ इहअविद्याभीतिस
तेंप्रगटभईहै ॥ अरअनेकसाषाकोंप्राप्तभईहै ॥ वेद
अरवेदकेअर्थअरजीवसभउसअविद्याकाजटाहै
अरअनेतभावकोंप्राप्तभईहै ॥ बेडुडबडुउउपजती
है ॥ अररचतीहै ॥ देशकालपदार्थआदिकसभउसी

करसंपन्न हैं॥ पर सर्व की सत्तारूप तुंही आत्मदेव है॥ ब्रह्मा
विष्णु रुद्र हम जो हैं॥ सो हमारा परमपिता है॥ सर्व का मूल
बीज तुंही देव है॥ सन्न तिस ते उपजे हैं॥ जैसे वृक्ष तें पत्र
उपजते हैं॥ तैसे सन्न महादेव तें उपजते हैं॥ सर्व का अनु
भव कर्ता तुंही है॥ सर्व कों सत्ता देणेहारा तुंही है॥ सर्व
प्रकाशों का प्रकाशक तुंही है॥ सो नमस्ते तों कर पूज
णे जोग है॥ सर्व विषे प्रतक्ष है॥ सर्वदा सर्व प्रकार सर्व
विषे उदित प्रकार है॥ चैतन्य अनन्तस्वरूप है॥ तिस
कों आवाहन विषे मंत्र आसनादिक समग्री नहीं॥
चाहीती॥ काहेतें जो सर्वदा अनन्तस्वरूप कर के प्रत
क्ष है॥ अरु सर्व प्रकार सर्व ठौर विषे विद्यमान है॥ वह
शिव तत्त आदि ही सिध है॥ मन वाणी विषे तीनों रूप
तुंही है नासता है॥ अरु सन्न की आदि है॥ अरु पूजने
जोग है॥ अरु नमस्कार करणे जोग भी तुंही है॥ जानणे
जोग भी तुंही है॥ हे मुनीश्वर ऐसा जो आत्मतत्व है॥ सो
जरा मृत्यु शोक भय के काटणेहारा है॥ तिस कों आप
कर आप ही देखीता है॥ तिस के साक्षात्कार हूयें चि
त्त तुं ने बीजवत हो जाता है॥ बहुड़ उपजता नहीं॥ सो
शिव जीव ऊं का जीव है॥ सर्व पद ऊं का पद तुंही है॥ अ
नन्तस्वरूप है॥ आत्मा है॥ परमपद है॥ इतर दृष्ट विषे किं
उं दृष्टते हो॥ ॥इति श्री निरवाणप्रकरणे देवतिर
णयो नाम सर्गः॥ २४ ॥ईश्वरोवाच॥ हे मुनीश्वर सो
चिद्रूप तत्व है॥ सो सर्व के अंतर स्थित है॥ अनन्तस्वरू
प परम प्रभु देव ईश्वर है॥ सन्न बीजों का बीज तुंही है॥
सर्व सारों का सार तुंही है॥ कर्मों का कर्म॥ धर्मों का धर्म
तुंही है॥ सो चैतन्य धातु निर्मल रूप सन्न कारणों का का
रण तुंही है॥ अरु आपणों आप कारण है॥ सर्व भावों का भा
व का प्रकाशक तुंही है॥ सर्व चैतन्यों का चैतन तुंही है॥ परम

प्रकाशरूप है। भौतिक प्रकाश तें रहित है। अलौकिक प्रकाश
है। सर्व जीवों का जीवतु ही है। चैतन्यघन निर्मल आतमा
अस्ति मात्र स्वरूप है। सत्य असत्य तें रहित महाशांति रूप
है। सर्व सत्तों की सत्ता उही है। सो चिन्मात्र तत्त्व है। सोई नाना
रूप होइ रहा है। जैसे एक ही आतम सत्ता स्वप्न विषे आका
श वंध पहाडादिक होकर भासती है। तैसे नाना रंग रं
जनी उही होकर भासता है। जैसे सूर्य की किरणों विषे म
रुस्थल की नदी हो भासती है। अनेक कोट किरणों तें अने
क तरंग भासते हैं। तैसे इह जगत तिस विषे भासते हैं।
हे मुनीश्वर उसी आतम तत्त्व का इह आभास प्रकाश है।
तिस ते इतर कछु है नहीं। जैसे अग्नि विषे उष्णता अग्नि
तें भिन्न नहीं। उही स्वरूप है। तैसे जगत आतमा तें कछु भि
न्न नहीं। उही स्वरूप है। अरु सुमेर भी तिस के आगे परमा
णुरूप है। अरु संपूर्ण काल तिस का निमेषरूप है। कल्प
निमेष उन्मेषवत उदय होता है। अरु सप्त समुद्र संयुक्त
पृथ्वी तिस के आगे रोम के अग्रवत तुच्छ है। ऐसा उह
देव है। बडु उकैसा है। संसार रचना को बूलता नहीं। अरु
करतल नाव को प्राप्त होता है। बहु कर्मों को करता भा
सता है। तो भी कछु नहीं करता। दृश्यरूप दृष्ट आवता है
तो भी दृश्य तें रहित है। निरइच्छ है। तो भी इच्छावान है। दे
हवान नहीं। तो भी देहवान है। बहु देहवान है। तो भी अ
देह है। सभ की सत्तारूप उही देव है। उक्त। नोल। मत। चु
ज। विंडल। माणलावेल। घिलमला। जोबला। गुगल
सनस। इत्यादिक वाक्य अनर्थक हैं। इन का अर्थ कछु
नहीं। सो भी देव कर सिध होते हैं। ऐसा कछु नहीं जो देव
विषे असत नहीं। अरु ऐसा कछु नहीं जो देव कर सत न
हीं। हे मुनीश्वर जिस तें ए सर्व है। अरु जो इह सर्व है। जो स
र्वमय नित्य है। तिस सर्वात्मा कौं मेरा नमस्कार है॥ ॥इ
ति श्री निर्वाण प्रकरणे महेश्वर वर्णनं नाम सर्गः
॥३५॥ ईश्वरोवाच॥ हे मुनीश्वर इत्यादिक शब्दों की स
तारूप भी उही है। सर्व सत्तारूप भी उही है। सर्व सत्तारूप

रतनों का दखा उ ही है । उ ही तत चमतकार करके पडा फु
रना है । जैसे जल तरंग फेन बुदबुदा आदिक आकारों
कर के फुरना है ॥ तैसे देव नाना प्रकार के आकार होकर
फुरता है ॥ उ ही गुछे रूप होकर स्थित होता है । उ ही फूल
रूप होकर स्थित होता है । आप ही तिस विषे सुगंध
होकर स्थित होता है । घ्राण इंद्री विषे स्थित होकर आ
प ही सूंघता है ॥ आप ही त्वचा इंद्री होता है ॥ आप ही प
वन होकर चलता है ॥ आप ही स्पर्श होकर ग्रहण कर
ता है ॥ आप ही जल रूप होता है ॥ आप ही वाइ होकर सु
कावता है ॥ आप ही श्रवण इंद्री होकर आप ही शब्द हो
कर आप ही ग्रहण करता है ॥ इसी प्रकार जिह्वा त्वचा
नासका कर्ण नेत्र होकर ॥ आप ही स्पर्श रूप रस गंध
शब्द को ग्रहण करता है ॥ उसी ने पदार्थ रचे हैं ॥ उसी
ने नेत्र रचे हैं ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र शिव पंच मईश्वर जो हैं सदा
शिव तिस प्रजंत उ ही देव इस प्रकार रच्या है ॥ आप ही साक्षी
वत इ स्थित होता है । जैसे दीपक के प्रकाश कर मंदर की स
ने रूया होती पडी है ॥ तैसे संसार रूपी मंडप की सने रूया
साक्षी कर पडी होती है ॥ तिस विषे अपनी शक्ति निर्त करती
है ॥ अर आप साक्षी रूप होय कर देखता है ॥ श्रीवशिष्टो
वाच ॥ हे जगतनाथ शिव की शक्ति क्या है ॥ अर कैसे स्थित
है ॥ अर तिस की निर्त कैसे होती है ॥ ईश्वरोवाच ॥ हे मु
नीश्वर आतम तत्त्व भाव तें अचल है ॥ अर आंति रूप है
शिव परमात्मा है ॥ सो निर्मल चिन्मात्र स्वरूप है ॥ निराकार
है ॥ तिस की यां शक्ती हैं ॥ इछा शक्ति है । काल शक्ति है । नेति
शक्ति है मोह शक्ति है । ज्ञान शक्ति है । क्रिया शक्ति है । कर
ता शक्ति है ॥ पर स्वरूप तें सदा अकर्ता है ॥ इत्यादिक अनंता
की शक्ती है ॥ तिस शक्ती का अंत नहीं ॥ अनंत रूप चिन्मात्र दे
व है ॥ इह जो मैं तुज को शक्ती कही हैं ॥ सो भी शिव रूप तें भि
न्न नहीं ॥ जो कर्तृत्व भोक्तृत्व साक्षित्व आदिक भावनी तें
शक्ती विविध रूप धारीयां हैं ॥ सो शिव शक्ति एक रूप है
बहुत भासती है ॥ पश्यंती विषे अग्रपश्य शक्ति है ॥ आत्मा विषे

अर देव को साक्षात
कैसे है

अर

61

साक्षात शक्ति कल्पीती है॥ तैसे काल शक्ति है॥ निर्तक
की न्याई ब्रह्मांड रूपी नृत्य मंडल विषे निर्त करती
है॥ क्रियाशक्ति करता अकर निर्त करती है॥ इत्या
दिक शक्ती कहीती हैं॥ जैसे आदि ते तरू ई है॥ ब्रह्मा
ते आदि तृण पर्यंत तैसे ही स्थित है॥ अन्यथा नहीं
होती॥ हे मुनीश्वर इह संपूर्ण जगत पड़ा निर्त करू
ता है॥ संसार रूपी नटनी है॥ तिसके अवरण हारी नेत
है॥ अरु परमेश्वर परमात्मा है॥ सो साक्षी रूप है॥ सदा
उदित प्रकाश रूप है॥ एक रस देव स्थित है॥ अरु नेता
दिक शक्ती नी तिस ते भिन्न नहीं॥ उही रूप हैं॥ तां ते
देव ही जाण॥ अवर द्वैत कछु नहीं॥ इति श्रीनि
र्वाण प्रकर्णे निर्तनृत्य वर्ननं नाम सर्गः॥ ३६॥
ईश्वरोवाच॥ हे मुनीश्वर जो एक देव परमात्मा है
सो संतो कर सदा पूजणे योग्य है॥ चिन्मात्र अनंत वपु आ
त्मा सर्वत्र है॥ घट पट गागरी कंधबांतरादिक सर्वत्र
विषे उही स्थित है॥ ब्रह्मा इंद्रादिक देवते अवर सभ जी
वों के अंतर बाहिर उही स्थित है॥ सर्व आत्मा सांत रू
प देव का दीप्रकार पूजन होता है॥ सो सुण॥ इष्ट देव
का जो पूजन है॥ सो ध्यान है॥ अरु ध्यान है सो पूजन है॥
त्रिभवन का जो आधार भूत है॥ सो आत्मा है॥ तिसकी
ध्यान कर पूजा करो॥ जहां जहां मन जावैं (तहं)॥ तहां तहां चि
द रूप आत्मा को करो॥ सभ का प्रकाशक आत्मा है
सो चिद रूप अज्ञान नव कर के अंतर स्थित है॥ अहंता
कर के सिध है॥ सो सभ का सार रूप है॥ अरु सभ का आ
पे रूप है॥ तिसका जो विराट रूप है॥ सो सुण॥ तिसको
जाण कर पूजन करो॥ बाह्य कैसा है॥ अनंत है॥ पारावा
र ते रहित है॥ पर्म आकाश है॥ सो उसकी ग्रीवा है॥ अर
अनंत पाताल जो उसके चर्न हैं॥ अनंत दिशा तिसकी भुजा
हैं॥ सर्व प्रकाश उसके सस्त्र हैं॥ रिदे को शकोण विषे

स्थित है ॥ ब्रह्मंड समूहों के परंपरा प्रकाशता है ॥ परमीका-
श पार अपार स्वरूप है ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र देवते
इत्यादिक जीव उसकी रोमावली हैं ॥ त्रिलोकी विषे जो
देह रूपी जंत्र है ॥ तिन कूं विषे इछादिक शक्ती रूप सू-
त्र व्याप्या है ॥ तिसी कर सब पडे चेष्टा करते हैं ॥ सो देव
एक ही है अरु अनंत है अरु सत्तामात्र स्वरूप है ॥ सब
जगत जाल तिसका विवर्त है ॥ अरु काल तिसका द्वारपा-
ल है ॥ पर्वत आदिक ब्रह्मंड जगत तिसके देह विषे कि-
सी कोण में स्थित हैं ॥ तिस देव की चितवना करो ॥ बड-
ड कैंसा देव है ॥ सहस्रा ही तिसके चरण हैं ॥ अरु सहस्रा ही
नेत्र हैं ॥ सहस्रा ही तिसके सीस हैं ॥ अरु सहस्रा ही भुजा
हैं ॥ अरु सहस्रा ही भुजा विषे भूषण हैं ॥ सर्वत्र जिस
की नासका इंद्री है ॥ सर्वत्र जिसकी रसना इंद्री है ॥ सर्व
त्र ही जिसकी श्रवण इंद्री है ॥ सर्व ओर जिसका मन है
सर्व मनन कला ते अतीत है ॥ सर्व ओर उही शिवरूप
है ॥ सर्वदा सर्व का करता है ॥ सर्व संकल्पों के अर्थ का फ-
ल दाइक है ॥ सर्व भूतों के अंतर स्थित है ॥ अरु सर्व सा-
धनों का सिध करता है ॥ ऐसा जो देव है ॥ सर्व विषे सर्व प्र-
कार सर्वदा काल स्थित है ॥ तिस देव की चितवना करो
ऐसे देव के ध्यान विषे सावधान रहो ॥ सदा तिस को ही
आकार रहणा ॥ इह उस देव का पूजन है ॥ अब अंतर
का पूजन श्रवण करो ॥ हे ब्रह्मवेत्तों विषे श्रेष्ट संवित
मात्र जो देव है ॥ सदा अनुभव करके प्रकाशता है ॥ तिस
का पूजन दीपक कर नहीं होता ॥ धूप कर के भी नहीं हो-
ता ॥ न पुष्पों कर होता है ॥ न दान कर ॥ न लेप केसर कर
तिसका पूजन होता है ॥ अर्घ पाद आदिक जो पूजा की सा-
मिग्री है ॥ तिस कर देव का पूजन नहीं होता ॥ तिसका पूज-
न कलेश बिना नित्य ही होता है ॥ हे मुनीश्वर एक अमृत-
रूपी जो बोध है ॥ तिस देव का सजाती प्रतीत ध्यान करणा

देहदेह प्रत आफ

सोतिसकापर्मपूजनहे ॥ हे मुनीश्वर शुद्धचिन्मात्रजोदेव
हे ॥ सोअनन्तस्वरूपहे ॥ तिसदासर्वदाकालसर्वप्रकार
पूजनकरो ॥ देषताहे ॥ स्पर्शकरताहे ॥ संघताहे ॥ श्रव
णकरताहे ॥ बोलताहे ॥ देतालेताचलेताहे ॥ बैठता
हे ॥ इसतेलेकरजोकछुक्रियाकरताहे ॥ सोसनअपने
कचैतन्यसाक्षीविषेअर्पनकरो ॥ हे मुनीश्वर आत्म
मदेवकाजोध्यानकरणं उहीधूपदीपहे ॥ अरस
र्वसमिग्रीपूजनकीएहीहे ॥ ध्यानहीदेवकोंप्रसन्न
करताहे ॥ तिसकरपर्मानंदकोंप्राप्तहोताहे ॥ अवर
करदेवकीप्राप्तनहींहोती ॥ हे मुनीश्वर जोमूढहोवे
अरइसप्रकारध्यानकरपूजाकरेईश्वरकी ॥ तबत्र
योदसनिमेषकेध्यानकरगोदानफलकोंपावताहे
अरसतनिमेषकेध्यानकरप्रभुकोंपूजे ॥ तबमनुष
अश्वमेधजगकेफलकोंपावे ॥ अरध्यानकेबलके
रुआतमाकोंघटीप्रजंतपूजाकरे ॥ तबउहपुरुषरा
जसूजजगकायेकेफलकोंपावे ॥ जोदोपहरप्रजंत
ध्यानकरेतबलखराजसूजजगकेफलकोपावे ॥ (
दिनप्रजंतध्यानकरेसो असंषफलकोपावे ॥ हे मुनी
श्वरइहपर्मजोगहे ॥ अरएहीपर्मक्रियाहे ॥ एहीपर्मप्र
योजनहे ॥ हे मुनीश्वर दोनोपूजामैंतुमकोंकहीहें ॥ जि
सकोंइहपर्मपूजाप्राप्तभईहे ॥ सोपर्मपदकोंप्रापुत
होताहे ॥ सनदेवतेतिसकोंनमस्कारकरतेहें ॥ सर्वक
रकेउहपुरुषमेरेवतपूजनेजोगहोताहे ॥ ॥ इति
श्रीनिरवाणप्रकरणेअंतरबाह्यदेवपूजावर्न
नंनामसर्गः ॥ ३९ ॥ ईश्वरोवाच ॥ हे मुनीश्वर
अबअभ्यंतरकोपूजनतूंश्रवणकर ॥ जोसर्वपवित्र
करणहारहूंकोंभीपवित्रकरताहे ॥ अरसर्वतमअ
ध्यानकानाशकरताहे ॥ सोआतमपूजनमेंतुजकोंक
हताहों ॥ वैसापूजनहे ॥ जोसर्वप्रकारकरकेसर्वदाका

अंबाल

न विषै तिस देव का पूजन पड़ा होता है ॥ विविधान क
बहूं पद्दे नहीं ॥ चलतें बैठतें जागतें सोवतें सर्व वि
वहार विषै तिस ध्यान में रहता है ॥ हे मुनीश्वर तिस जो
ईस संसार विषै स्थित संवित रूप चिन्मात्र है ॥ तिस
का पूजन करो ॥ जो सर्व प्रत्यै का करता है ॥ सदा अनभ
व कर कै प्रकाशता है ॥ तिस का आप कर आप पूजन
कर सोतं है ॥ उठता हूया चलता हूया षाता पीता जे
ते कछु बाह्य अर्थ है ॥ त्याग करता अरु ग्रहण करता जो
गों कौं भोगता ॥ तिन सभनों कौं करता भी देव की पूजा
निशानी
कर ॥ हे मुनीश्वर शरीर विषै जो शिव लिंग है ॥ चिन्ह तें
रहित लिंग जो बोध रूप चिन्ह है ॥ सो देव है ॥ यथा प्राप्त
विषै सम रहिणा ॥ सो तिस देव का पूजन है ॥ यथा प्राप्त वि
षै सम भाव रहणा ॥ तिस सम भाव विषै स्नान कर कै शु
द्ध होकर बोध रूप लिंग का पूजन करो ॥ जो कछु आन
प्राप्त होवै ॥ तिस विषै रागद्वेष तें रहित होवणा ॥ सर्वदा
साक्षी अनन्न रूप विषै स्थित रहणा ॥ एही उस का पू
जन है ॥ हे मुनीश्वर सूर्य के नेत्रन आकाश विषै उही सू
र्य होकर प्रकाशता है ॥ चंद्रमा के नेत्रन विषै उही चं
द्रमा होकर स्थित होता है ॥ इन तें आदि लेकर जो पदा
र्थ्य हूं के समूह है ॥ जैसी जैसी भावनां कर फुरनां हूया
है ॥ सोई रूप होकर देव स्थित है ॥ हे मुनीश्वर तिस प्रत्यु
ष बोध रूप अद्वैत है ॥ तिस कौं देषणा ॥ अवर विषै वृत्त
को न लगावणा ॥ एही देव का पूजन है ॥ प्राण अपाण रू
पी जो रथ है ॥ तिस के पर आरूढ हूया अंतर गुहा विषै
गुप्त हू स्थित है ॥ तिस का जो तीन है ॥ अर जैते कछुक
मे हैं ॥ तिन सभन का कर्ता उही है ॥ सर्व भोगों का भोगता उ
ही है ॥ अर सर्व शास्त्रौं का स्मरण करणेहारा उही है ॥ अ
र भावत रूप है ॥ सभन की भावनां करणेहारा परम प्रकाश रू
प ॥ अैस जो शिव तत है ॥ तिस कौं सर्वतत जान कर चि
तवनां करणी ॥ सो तिस का पूजन है ॥ बहुड़ कैसा है देव
सहकलंक भी उही है ॥ अर निहकलंक भी उही है ॥ देह
विषै स्थित है ॥ तो भी आकाशवत निर्मल है ॥ जानती है

63 अरु नहीं जानता भी उही है॥ प्राणरूपी आलै विषे गका
शता है॥ चिदै कंठ ताल नेत्रां नासका पीठ विषे व्या
पक है॥ शब्दादिक विषयों को करता मन को प्रेरता है॥
जैसे तिलों विषे तेल आश्रय होता है॥ कलना रूपी क
लंक तें रहित है॥ अरु कलना गण सें युक्त भी उही है॥
संपूरण देहां विषे एक ही देव आप रहा है॥ पर परत्व
चिदै विषे होता है॥ सो चिन्मात्र निर्मल प्रकाश रूप है॥
कलना रूप कलंक तें रहित सब पदार्थों का प्रका
शक प्रतक चेतन आत्म तत्त्व आपणे आप ही विषे स्थित
है॥ सो आपणे फुरणे कर के शीघ्र ही द्वैत की न्याई हो जा
ता है॥ हे मुनीश्वर जैता कछु साकार रूप जगत दृष्ट आ
वता है॥ सो सब विराट आत्मा है॥ तातें आपको विराट
की भावना कर॥ हस्त पाद नख केश इह संपूरण ब्रह्मां
ड मेरा देह है॥ मैं ही प्रकाश रूप एक देव हों॥ अरु इं
द्रादिक मेरी मूर्तों हैं॥ सब मेरी उपासना करते हैं॥ जै
से पतिव्रता स्त्री भर्ता की सेवा करती है॥ तैसे मू
र्ती मेरी उपासना करती हैं॥ बहुड़ के सजाणे मन मेरा
द्वारपालक है॥ त्रैलोकी का नैवेद्य करणे वाला है॥ अ
रु चितवना मेरी आवणे जावणे वाली प्रत्याहारी है॥ ना
ना प्रकार रूं के ज्ञान अंगों के भूषण हैं॥ कर्म इंद्रीयां
मेरे द्वारे हैं॥ ज्ञान इंद्रीयां मेरे गण हैं॥ ऐसा मैं एक अनंत
आत्मा हों॥ अखंड रूप हों॥ विच्छेद भेद तें रहित आपणे
आप विषे स्थित हों॥ सर्व विषे परपूरण एक मैं ही हों॥ हे
मुनीश्वर ऐसी भावना कर के जो एक देव की पूजा कर
ता है॥ सो परमात्म देव को प्राप्त होता है॥ तब दीनता आ
दिक कलेश सब नष्ट हो जाते हैं॥ अनिष्ट की प्राप्ति विषे
शोक नहीं करता॥ अरु इष्ट की प्राप्ति विषे हर्ष नहीं कर
ता॥ न तो मान होता है॥ न कोप मान होता है॥ न विषयों की
प्राप्ति कर चिंत मानता है॥ न इष्ट के वियोग कर खेद मा
नता है॥ न अप्राप्त की वांछा करता है॥ न प्राप्त के त्याग की
इछा करता है॥ सर्व पदार्थों विषे समभाव है॥ ऐसा जो

पुरुष है॥ सो देव का परम उपासक है॥ ग्रहण त्याग तें रहि-
त सम विषै तुल्य है॥ भेद भाव कौं नहीं प्राप्त होता॥ सो दे-
व अर्चन उत्तम है॥ हे मुनीश्वर चेतन्य तत देव मैं तुज-
को कहा है॥ सो इसी देह विषे स्थित है॥ जो प्राप्त वस्तु हो-
वै॥ तिस को अर्पण करणी॥ सन्तति सी आगे राखणी॥
सन्त का साक्षी आतमा को देखणा॥ किसी तें भेद वा-
न होवणा॥ अहं प्रतीत तिस विषे राखणी॥ इ तरह
स्व की भावनां नहीं करणी॥ एही देव की अर्चना है॥ हे मु-
नीश्वर जो कछु आन प्राप्त होवै॥ तिस विषे जतन तें रहि-
त तुल्य रहणा॥ जो नहे भोजले लेचो स्यान प्राप्त होवै
सो देव के आगे राखणा॥ ग्रहण त्याग की बुधि तिस वि-
षे न करणी॥ सो देव का पूजन है॥ सर्व पदारथों की प्राप्ति वि-
षे देव की पूजा करणी॥ उसकर अनिष्ट भी इष्ट हो जाता
है॥ मृत्यु आवे सो देव की पूजा करणी॥ जीवणा आवे सो
देव की पूजा॥ दारिद्र भी प्राप्त होवै तो भी देव की पूजा॥ रा-
ज प्राप्त होवै तो भी देव की पूजा॥ विचित्र नाना प्रकार की
चेष्टा करणी॥ सो सभ देव के आगे पुष्प हैं॥ राग द्वेषों
विषे सम रहणा॥ सो समता कर के देव की पूजा है॥ संतो-
के रिदे के हरने हारी जो मैत्री॥ सो संपूरण विश्व का मित्र
होवणा॥ सो मित्रता कर के देव पूजन है॥ भोग कर त्या-
ग कर जो कछु आन प्राप्त होवै॥ तिस कर देव का पूजन
कर॥ हंता कर अहंता कर जुक्त कर अजुक्त कर हेय
उपादेह कौं त्याग कर उस देव का पूजन कर॥ जो नष्ट
हूया सो हूया॥ जो प्राप्त हूया सो हूया॥ तिन दोनों विषे
निरविकार रहणा॥ इसकर देव को अर्चन कर॥ इह भो-
ग आपातरमणी हैं॥ होते भी हैं॥ नष्ट भी हो जाते हैं॥ इन-
की इछा करणी नहीं॥ सदा संतुष्ट रहणा॥ जैसे आन प्रा-
प्त होवै॥ तिस विषे राग द्वेष तें रहित होवणा॥ सो देव अ-
र्चना है॥ हे मुनीश्वर जो कछु प्रारब्ध कर के आन प्राप्त
होवै॥ तिस कर आतमा की अर्चना करो॥ इछा अर अनि-
छा कौं त्याग कर जो प्राप्त होवै॥ तिस कर देव की अर्चना
करो॥ हे मुनीश्वर ग्यानवान न किसी की वांछा करता है

न त्याग करता है ॥ जो अनिछित आन प्राप्त होवै ॥ तिस को भो
गता है ॥ जैसे नदीयां समुद्र विषे जाइ प्राप्त होती है ॥ तिन
को भोगता है ॥ न कछु हर्ष करता है । न शोक करता है ॥ तैं
से ज्ञानवान इष्ट अनिष्ट की प्राप्त विषे राग द्वेष तें रहित
यथा प्राप्त कों भोगता है ॥ सो देव का पूजन है ॥ देश काल
क्रिया करि आन प्राप्त होवै ॥ अथवा अकस्मात आन प्राप्त हो
वै ॥ तिस विषे सम रहिणा ॥ अर चित्त विकारों को न प्राप्त हो
वै ॥ सो देव की अर्चना है ॥ जो इच्छा अनर्थ रूप होवै ॥ तो भी स
म रस साथि मिल्या हूया अमृत हो जाता है ॥ जैसे षट रस
स्वाद है ॥ सो षंड साथि मिल्ये हूये मधुर हो जाते हैं ॥ तैसे
अनर्थरूपी रस सम रस साथि मिल्ये हूये अमृत हो जाते
हैं ॥ षेद न हो करते आनंदरूप हो जाते हैं ॥ चंद्रमा की न्या
इ ॥ समता भाव नों अमृतमय हो जाती है ॥ जैसे आकाश नि
श्लेष र्मल है ॥ तैसे समता भाव कर के चित्त राग द्वेष तें रहित नि
र्मल होता है ॥ इच्छा कों दृश्य साथि मिल्या न देषणा ॥ साक्षी
रूप रहणा ॥ सो देव की अर्चना है ॥ जैसे पथ्थर की शिला
निस्पंद रहिती है ॥ तैसे विकल्प तें रहित चित्त अचल हो
ता है ॥ सो देव की अर्चना है ॥ हे मुनीश्वर अंतर तें आकाश
वत असंग रहिणा ॥ अर बाह्य क्रिति आचार विषे र
हिणा ॥ किसी का संग अंतर स्पर्श न करे ॥ सदा सम भाव
वितान करि पूरण रहणा ॥ सो देव का उपासक होता है
जिस के हिरदे रूपी आकाश सों अज्ञान रूपी मेघ नष्ट हो
गया है ॥ तिस को स्वप्ने विषे भी विकार नहीं प्राप्त होता ॥
अर जिस के हिरदे रूपी आकाश सों अहंकार रूपी कुहि
ड अंत हो गई है ॥ सो सरत काल के आकाश वत उजल
हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर जिस को समता भाव प्राप्त भ
या है ॥ तिस कर देव को पाया है ॥ सो पुरुष ऐसा हो जाता
है ॥ जैसे राग द्वेष तें रहित नौतन बालिक होता है ॥ जी
वन रूपी जो चेतनता है ॥ तिस तें उलंघ कर परम चेतनतत
को प्राप्त होता है ॥ सकल इच्छा तें रहित सुषउप

त्मसतें मुक्ति शरीर का नाइक तिष्टत होता है ॥ सो देव अ
र्चना है ॥ ॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे देवार्चन विधा
न नाम सर्गः ॥ ३८ ॥ श्री ईश्वरोवाच ॥ हे मुनीश्वर जैसे सू
का मनो होवे ॥ जो कछु आरंभ न करे ॥ अर्थवान कूरे ॥ सो
आपणे आप कर चिन्मात्र शिव तत की अर्चना क
र इस कर देव प्रसन्न होता है ॥ जब देव प्रसन्न हूया
तब प्रगट होता है ॥ जब उसकों पाया ॥ अरु स्थित भया
तब राग द्वेषादिक सब्दों का अर्थ नहीं पाइता ॥ जै
से अग्नि विषे बर्फ का कण का नहीं पाईता ॥ तैसे इस
विषे राग द्वेषादिक नहीं पाईते ॥ तां ते तिस देव की अ
र्चना करणी जोग्य है ॥ जो राज आन प्राप्त होवे ॥ अथ
वा दरिद्र आन प्राप्त होवे ॥ सुख दुःख आन प्राप्त होवे ति
स विषे सम रहणा ॥ सो देव की अर्चना करणी ॥ हे मुनी
श्वर क्षुद्र चिन्मात्र सें प्रमादी नहीं होवणा ॥ इसी को ना
म अर्चना है ॥ जेता कछु घटपटादिक जगत भासता
है ॥ सो सब आतम रूप है ॥ तिस तें इतर कछु नहीं ॥ सो आ
तमा शिव शांत रूप अनाभास है ॥ एक ही प्रकाश रू
प है ॥ संपूरण जगत प्रतीत मात्र है ॥ आत्मा ते इतर कछु
द्वैत वस्तु आभास नहीं ॥ सर्वात्मा रूप अद्वैत तत जब
नास्या ॥ तब तिस विषे कूया जाणता है ॥ जो बडा आश्च
र्य है ॥ घटपटादिक सब उही रूप है ॥ अवर तो कछु नहीं
हे मुनीश्वर इह सर्वात्मा है ॥ अनंत रूप शिव तत है ॥ जिस
कों ऐसा निश्चा प्राप्त भया है ॥ तिस नें देव की पूजा जाणी
है ॥ घटादिक जो पदारथ हैं ॥ पूज पूजा पूजक भाव सो स
ने त्रलोक रूप है ॥ निर्मल देव आतमा विषे कछु भेद भाव
नहीं ॥ हे मुनीश्वर आतम देव सर्व शक्ति अनंत रूप है
तीनों जगतों विषे तिस ते भिन कछु नहीं ॥ निर्मल प्रका
श संवित रूप आत्मा विषे स्थित है ॥ हम कों तो ईश्वर दे
व तें इतर कछु नहीं भासता ॥ सर्वत्र सर्व प्रकार सर्वात्मा पू
रण दृष्ट आवता है ॥ अर जिस कों देश काल के अछेद स

हितईश्वरभासताहै। सोहमारेउपदेशकेपात्रनहीं। इह
ज्ञानबेधनीचहै। तिनकीदृष्टकोंत्यागकरमेरीदृष्टकों
आश्रेलेऊ। जोमैंतुजकोंकहीहै। तिसकरस्वस्थवीतराग
निरामयहो। यथाप्रारब्धजोकछुसुषदुःषआनप्रा
प्तहोवे। बेदतैंरहितहोकरतिसदेवकाअर्चनकर। तब
अनंतकोंप्राप्तहोवेंगे। हेमुनीश्वरतिसदेवकासर्वदासर्वप्र
कारसर्वात्माककैभावनाकर। उहीउसकापूजनहै। जो
वृत्तसदाअनंतरूपविषेस्थितरहे। अरयथाप्राप्तवि
षेखेदतैंरहितविचरणा। इहीदेवकीअर्चनाहै। जैसेस्फ
टकेमंदरविषेप्रतिबिंबभासतेहैं। सोकछुनहीं। अधा
निहकलंकस्फटकहोताहै। तैसेसर्वओरतैंरहितजन्म
दुःषादिकोंतेरहितनिहकलंकआत्माहै। तिसकोप्राप्त
हूयेंतेरेविषेकलंकजन्मदुःषादिककछुनरहैंगे॥
॥इतिश्रीनिर्वाणप्रकरणेवशिष्टईश्वरसंवादेदेव
पूजाविचारोनामसर्गः॥३८॥वशिष्टोवाच॥हेदे
वशिवकिसकोंकहतेहैं। अरब्रह्मकिसकोंकहतेहैं। अर
आतमाकिसकोंकहतेहैं। अरपरमात्माकिसकोंकहते
हैं। तत्वसत्वकिसकोंकहतेहैं। निहकिंचिनअरनविज्ञा
नकिसकोंकहतेहैं। इत्यादिकजोभेदसंज्ञाहै। सोकिस
निमित्तहूईहै। हेत्रिलोकीकेईश्वरसोमुजकोंकहो। श्री
ईश्वरोवाच॥ हेमुनीश्वरजबमनकाअभावहोताहै
तबअनादिअनंतआभाससत्तामात्रशेषरहतीहै॥
सोइंद्रीयोंकाविषयनहीं॥तिसकोंनिहकिंचिनकहतेहैं
॥श्रीवशिष्टोवाच॥हेईश्वरजोइंद्रीयोंबुधादिककां
विषयनहीं। तिसकापावणांकिसकरहोताहै॥ईश्वरो
वाच॥हेमुनीश्वरजोमुमोक्षुहै। अरवेदआज्ञायुक्तरसं
युक्तहै। अनंतकीवृत्तजिसकोंप्राप्तभईहै। तिसकोसात्विक
रूपजोअविद्याकानाशगुरुशास्त्रनामवनीविद्यारूपहै
सोप्राप्तहोताहै। तिसकरअविद्याकानाशनष्टहोजाता
है। अरआतमतत्वप्रकाशआवताहै। जैसेसाबणमैलके
धोबीवस्त्रकीमैलदूरकरताहै। तैसेगुरुशास्त्रअवि

अवद्या को
द्या का सात की नाशगो दूर करते हैं ॥ जब केते काल तें अवि
द्या नाश होती है ॥ तब अपणें आप आपही कर देषतु
है ॥ जैसें वायु कर बदल दूर होते हैं ॥ अर नेत्रों कर सूर्य दे
षता है ॥ जैसें किसी बालिक के हाथ को स्याही लागती है
अर मृत्तका जल कर धोये तें दूर हो जाती है ॥ तो मैल कर
मैल दूर होती है ॥ तैसें अविद्या का सात की नाश गुरु शास्त्र
सें अविद्या आवर्ण को नष्ट करते हैं ॥ हे मुनीश्वर जब गु
रु शास्त्र कों मिलकर आतम विचार प्राप्त होता है ॥ तब वि
चार कर स्वरूप की प्राप्त होती है ॥ अर द्वैत भ्रम मिट जाता
है ॥ सर्वात्मा ही प्रकाशता है ॥ जब विचार द्वारा आतम तता
निश्चै हूया ॥ जो सर्वात्मा है इतर कछु नहीं ॥ ऐसा निश्चा ज
हां होता है ॥ तहां तें अविद्या जाती रहती है ॥ हे मुनीश्वर आ
त्मा की प्राप्त विषे गुरु शास्त्र प्रतछ कारण नहीं ॥ काहे तें जो
वस्तु जिसके हौते हूये तें पाईये सो तिनके विद्यमान होतें
कैसे पाईये ॥ इंद्रीयों के समूह का नाम गुरु है ॥ अर ब्रह्म स
र्व इंद्रीयों तें अतीत है ॥ इनकर कैसें पाईये ॥ अकारण है ॥ प
रकारण भी हैं ॥ काहे तें जो गुरु शास्त्र के क्रमक कैं आत्मसा
न की सिधता होती है ॥ गुरु शास्त्र बिना बोध की सिधता नहीं
होती ॥ आतमा निरदेश है ॥ अर अदृस है ॥ तो भी गुरु अर
शास्त्रों कर पाईता है ॥ अर न शास्त्रों कर पाईता है ॥ न गुरों
कर पाईता है ॥ अपणे आप ही करके आतम तत की प्राप्त
होती है ॥ जैसें अंधकार विषे पदारथ पडा होवे ॥ अर दीप
क प्रकाश कर देवे ॥ सो दीपक कर पाया नहीं ॥ अपणे आप
कर पाया है ॥ तैसे गुरु शास्त्र भी हैं ॥ जो दीपक होवे अर नेत्र
न होवें ॥ तब कैसे पाईये ॥ नेत्र होवें अर दीपक न होवे ॥ तब भी
नहीं पाईता ॥ जब दोनों होवें ॥ तब पदारथ पाईता है ॥ तैसे गु
रु शास्त्र भी होवे ॥ अर अपणा पुरुषार्थ तीक्षण बुधि हो
वे ॥ तब आतम तत पाईता है ॥ अन्यथा नहीं पाईता ॥ गुरु शास्त्र
शुध बुध त्रिष्यतीनों एकठे मिलते हैं ॥ तब संसार के दुःष सु
ष दूर होते हैं ॥ अर आत्मपद की प्राप्त होती है ॥ गुरु शास्त्र आ
वर्ण दूर कर देते हैं ॥ तब आप कर आपही पावता है ॥ जैसे

क्षर अक्षर
ईश जीव
आनन्द
ब्रह्म

वायु बदलों कों दूर करती है ॥ नेत्रों कर सूर्य देषीता है ॥
अवनामों के भेद सुण ॥ हे मुनीश्वर जब बोधके वसतें क
र्म इंद्रीयां बुधइंद्रीयां लै हो जाती हैं ॥ तिसके पाछे जो शेष
रहिता है ॥ तिसका नाम शिवतत आतमसत उं आदिक
नामों कर कहीता है ॥ जहां एह संपूरण नहीं तिन की रतनी
नहीं ॥ तिसके पाछे जो शेष रहता है ॥ सो आकाशतें भी सूछ
म अमन हूं रहे ॥ अनंत है ॥ परम सत्य स्वरूप है ॥ जहां सत्यता का
भी अभाव है ॥ हे मुनीश्वर अविशांत रूप जो है सु मोक्ष ॥ अ
रु मनन कलनां कर संयुक्त है ॥ तिनकों जीवन्मुक्ति पद के
बोधन निमित शास्त्र मोक्ष उपाय रचा है ॥ ब्रह्मा इंद्र रुद्र वि
ष्णु लोकपाल पंडित पुराण वेद शास्त्र सिधांत रचे हैं ॥ ति
न विषे इह नाम तिन्हों कहे हैं ॥ चैतन्य ॥ ब्रह्म ॥ शिव ॥ आत्मा
परमात्मा ॥ सचिदानंदादिक संज्ञा अनेक कहीं है ॥ शिव
आत्मा ब्रह्म परमात्मा आदिक भिंन भिंन नाम सब वासी
यों ने कल्पे हैं ॥ ज्ञानीको कछु भेद नहीं ॥ हे मुनीश्वर ऐसा
जो देव है ॥ तिसका ज्ञानवान इस प्रकार अर्चन करते हैं ॥
जिस पद के हम आदिक टहिलूये हैं ॥ तिस परम पद कों प्रा
प्त होते हैं ॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥ हे भगवन इह जगत स
नातन अविद्यमान है ॥ अरु विद्यमान की न्याई स्थित है ॥ सो कै
से हूया है ॥ समस्त कहणे को तुम ही जोग हो ॥ श्री ईश्वरो
वाच ॥ हे मुनीश्वर जो ब्रह्मादिक नामों कर कहीता है
सो शुद्ध केवल संवित मात्र है ॥ आकाश तें भी सूक्ष्म है
जिसके आगे आकाश भी ऐसे स्थित है स्थूल है जैसे
अणु के आगे सुमेर स्थूल होता है ॥ तिस विषे जब वेदना
शक्ति फुरी आभास होइ कर ॥ तब तिसका नाम चेतन
हूया ॥ बहुड़ि अहंता भाव कों प्राप्त हूया ॥ अहं अस्मि जैं
से स्वप्ने विषे आपकों पुरुष हस्ती देखणे लागे ॥ तैसे आ
प कों अहं मानणे लागा ॥ बहुड़ि देश काल आकाशादि
क देषणे लागा ॥ तब चितकला जीव अवस्था कों प्राप्त
भई ॥ अरु वासनी करणे हारी हूई ॥ जब जीव भाव हूया
तब बुधि निश्चे आत्मक होइ करि स्थित भई ॥ शब्द अरु

क्रियाज्ञानसंयुक्त भई ॥ एक एक प्रति मिलकर शीघ्र ही
कल्पती भई ॥ तब मन क्रिया ॥ सो मन संकल्परूपी सायाका
बीज है ॥ तब आतिवाहक शरीर बिषे आलमरूप होइक
र डोलसत्ता स्थित भई ॥ इस प्रकार इह उत्पत्ति भई है ॥ बहु
ड वायुसत्ता स्पंद भई ॥ तिसतें स्पर्शसत्ता त्वचा प्रगट भई ॥
बहुड तेजसत्ता हूई ॥ तिसतें प्रकाशसत्ता हूई ॥ प्रकाशतें ने
त्रसत्ता प्रगट हूई ॥ बहुड जलसत्ता ॥ जलतें स्वादसत्ता ॥ स्वा
दतें रससत्ता ॥ जिह्वा प्रगट भई ॥ बहुड गंधसत्ता ॥ गंधतें भूम
सत्ता ॥ भूमतें घ्राणसत्ता ॥ पिंडसत्ता पुष्ट भई ॥ देशसत्ता ॥ का
लसत्ता ॥ सर्वसत्ता हूई ॥ इनको एकत्र करके फुरा ॥ जैसे बी
जपत्र फूल फल आदिकका आश्रय होता है ॥ तैसे इह
पुर्यष्टकाज्ञान ॥ एही आतिवाहक देह है ॥ तिसका आ
श्रय भई ॥ वास्तवतें कछु उपजा नहीं ॥ केवल परमात्मसत्ता
अपने आप विषे फुरती है ॥ जैसे जल विषे जल फुरता है
तैसे आत्मसत्ता अपने आप विषे फुरती है ॥ हे मुनीश्व
र संवित विषे जो संवेदन पृथकरूप होइकर फुरी है ॥ स्पं
दकवै ॥ जब स्वरूपको जाण्या ॥ तब नष्ट होजाती है ॥ जैसे सं
कल्पकार रचा नगर संकल्पके अभाव हूये अभाव होजा
ता है ॥ तैसे आत्माके ज्ञानतें संवेदनका अभाव होजाता है
हे मुनीश्वर संवेदन तबलग भासती है ॥ जबलग इसको
जाण्या नहीं ॥ जब जाणीती है ॥ तब संवेदनका अभाव होजा
ता है ॥ संवित विषे लीन होजाती है ॥ भिन्नसत्ता इसकी कछु
नहीं रहती ॥ हे मुनीश्वर जो प्रथम अग्रण तन्मात्रा थी ॥ सो
भावनांके वसतें स्थूल देहको प्राप्त भई ॥ स्थूलदेहकर भा
सणे लागी ॥ आगे जैसे जैसे देसकाल पदार्थोंकी भावनां
होती गई ॥ तैसे तैसे भासणे लागे ॥ जैसे गंधर्वनगर भासता
है ॥ जैसे स्वप्नपुर भासता है ॥ तैसे भावनांके वसतें इह पदा
रथ भासणे लागे हैं ॥ वशिष्ठोवाच ॥ हे भगवन गंधर्वन
गर अर स्वप्नपुरके समान इसको कैसे कहते हो ॥ इह ज
गत तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है ॥ ईश्वरोवाच ॥ हे मुनीश्व
र संसार दुःखनी वासनाके वसतें दिखाई देते हैं ॥ जो अ

विद्यमानविषेस्वरूपकेप्रमादकरकेविद्यमानबुधि
हूईहै॥जगतकेपदार्थोंकोसतजाणकरजोवासनां
फुरतीहै॥तिसवासनांकरदुःखहोताहै॥हेमुनीश्वर
इहजगतअविद्यमानहै॥जैसेमृगतृष्णाकाजलअस
तहोताहै॥तैसेइहजगतअसतहै॥तिसविषेवासनांअ
रवासकअरवासनांकरणीजोगतीनोंवृथाहैं॥जैसे
मृगतृष्णाकेजलकोपानकरके॥त्रिपतकोउनहींहोता
काहेतेजोजलनहींअसतहै॥तैसेइहजगतहींअसतहै
इसकेपदार्थोंकीवासनाकरणीवृथाहै॥ब्रह्मातेंआ
दिलेमपर्यंतसर्वजगतमिथ्यारूपहै॥वासनांवासक
अरवासनांकर्णेयोग्यपदारथतीनोंकेअभावहूये
केवलआतमभावरहिताहै॥सतनामसुंगतिहोजाता
है॥हेमुनीश्वरइहजगतभ्रममात्रहै॥वास्तवतेंकछुन
हीं॥जैसेबालिककोंअज्ञानकरकेअपणेपछावेंविषे
वैतालभासताहै॥जबविचारकरदेखे॥तबवैतालका
अभावहोजाताहै॥तैसेअज्ञानकरकेइहजगतभास
ताहै॥आत्मज्ञानविचारकरइसकाअभावहोजाताहै॥
जैसेमृगतृष्णाकीनदीभासतीहै॥जैसेआकाशविषे
नीलताअरदूसराचंद्रमाभासताहै॥तैसेआतमाविषे
अज्ञानकरकेदेहभासताहै॥जिसकोदेहादिकोंविषे
स्थिरबुधिहै॥सोहमारेउपदेशकेजोग्यनहीं॥हेमुनीश्व
रजेविचारवानहैं॥तिसकोंउपदेशकरणाजोग्यहै॥जो
मूरिषहैं॥अरलोभीहै॥अरअसतवादीहै॥अरपुनक
र्मोंतेंरहितअनारजैहै॥तिसकोंज्ञानवानउपदेशनक
रे॥जिसविषेविचारहोवे॥अरवैराग्यहोवे॥कोमलता
अरशुभआचारहोवे॥तिसकोंउपदेसकरणायोग्यहै॥
अरजोइनगुणोंतेंरहितविपर्ययहै॥तिसकोंउपदेश
करणाऐसेहोताहै॥जैसेमहासुंदरस्वर्नवतजिसकी
कांत॥जैसीकिसीकीकंन्याहोवे॥अरस्वप्नकल्पितपुरु
षकोविवाहदेणेकीइछाकरे॥तैसेहीअपात्रकोंउपदे
शकरणीमूर्षताहै॥इतिश्रीनिर्वाणप्रकर्णेजगत

ष्यागतिपादनं नाम सर्गः ॥ ५० ॥ श्रीवशिष्ठोवाच
हे भगवन तुं जीव जो आदि सर्ग के उत्पत्ति भया है ॥ अरु
देह भी अपने साथ देषत भया ॥ तिसके अनंतर कैसे
स्थित हूया ॥ श्रीईश्वरोवाच ॥ हे मुनीश्वर परमात्मा
तें उपजा तुझको जैसे कहा है ॥ सो आपने साथ शरीर
देषता भया स्वप्न नर की न्याई सर्वगति चिदघन आत
मा के आश्रे उपज कर जीव अपने शरीर को देषणे ला
गा ॥ हे मुनीश्वर आदि जो जीव फुरता है ॥ अरु प्रमाद को न
प्राप्त भया ॥ अपने स्वरूप विषे अहं प्रत्यय रहा ॥ इस का
रण तें ईश्वर होय कर स्थित भया है ॥ तिसको इह निश्चे
रहा ॥ जो मैं सनातन हों ॥ नित्य हों ॥ शुध परमानंद स्वरूप हो
अव्यय रूप हूं ॥ परम पुरुष हों ॥ इस प्रकार आदि जीव को
निश्चा रहा ॥ आत्मा की अपेक्षा करके तिसको जीव क
हा है ॥ अरु सृष्ट जगत की अपेक्षा करके उसको ईश्वर
कहा है ॥ हे मुनीश्वर जो आदि जीव है ॥ कहों विष्णु रूप हो
कर ब्रह्मा कं नाभ कवल तें उत्पत्ति कीया है ॥ किसी सृष्ट
विषे प्रथम ब्रह्मा हूया है ॥ किसी सृष्ट विषे प्रथम रुद्र
हूया है ॥ विष्णु अरु ब्रह्मा दोनों तिसतें हूये हैं ॥ चैतन्य आ
काश विषे जैसा जैसा फुरणा हूया है ॥ तैसा होकर स्थित
भया है ॥ अरु आदि जीव उपज कर जिस प्रकार संकल्प
कीया है ॥ तैसा होकर स्थित भया है ॥ वास्तव तें सत असत
त रूप है ॥ जैसे पछावें विषे वैताल होता है ॥ तैसे अज्ञान क
रके सति रूप हो भासता है ॥ आद पुरुष तें लेकर जो सृष्ट
है सो परमात्मा के एक निमेष तें हूई है ॥ अरु उन्मेष विषे
लै होजाती है ॥ एक निमेष के प्रमाद करके कल्पों के समूह
व्यतीत होजाते हैं ॥ अरु परमाणु परमाणु विषे सृष्टां फुर
ती हैं ॥ कल्प अरु महाकल्प तिनों विषे भासते हैं ॥ केई सृ
ष्टां परस्पर देषती हैं ॥ केई अन्योन्य अदृष्ट रूप हैं ॥ इस
प्रकार सृष्टां तिसके स्पंद कला विषे फुरती हैं ॥ चमत्कार
होती हैं ॥ अरु जब स्पंद कला स्वरूप की ओर आवती है
तब लीन होजाती है ॥ जैसे स्वप्ने का पर्वत जागे तें लीन हो

जाता है ॥ तैसे जागत की सृष्टि अफुर हूयें लीन हो जाती
है ॥ हे मुनीश्वर जीव जीव की अपणी सृष्टि है ॥ तिसको अ
ष्टि के कोऊ देश काल रोक नहीं सकता ॥ काहे ते जो अप
णे अपणे संकल्प विषे स्थित हैं ॥ अरु आत्मा का चमत्कृ
रहे ॥ जैसे फुरणा फुरता है ॥ तैसे चमत्कार होइ भासता है
हे मुनीश्वर न कछु उपजा है ॥ न नास होता है ॥ स्वतह चैतन्य
तत अपणे आप विषे पड़ा चमकता है ॥ जैसे स्वप्न नगर
उपजता है ॥ अरु मिट जाता है ॥ जैसे संकल्प का पहाड़ उप
ज कर नष्ट हो जाता है ॥ तैसे जगत उपज कर नष्ट होता है
जैसे स्वप्न अरु संकल्प के पहाड़ के कोऊ रोक नहीं सकता
तैसे इह अपणी अपणी सृष्टि को देस काल नहीं रोक स
कता ॥ काहे ते जो अवर और इसका सदभाव नहीं ॥ तैसे
इह जगत अपणे काल विषे सतरूप है ॥ आत्मा विषे सद
भाव नहीं ॥ संकल्परूप है ॥ हे मुनीश्वर जैसे आदित ते
जीव ईश्वर फुरते हैं ॥ तैसे कर्म फुरते हैं ॥ रुद्र ते लेकर ब्र
ह्मा पर्यंत सब एक छिण विषे उसत ते फुर आये हैं ॥ सु
मेरादिक भी अपणे स्थान विषे रोकते हैं ॥ अन्य अण को
भी नहीं रोक सकते ॥ काहे ते जो उहां है ही नहीं ॥ तैसे आ
त्मा विषे सृष्टि आभास रूप हैं ॥ हे मुनीश्वर इस प्रकार ज
गत सब माया मात्र है ॥ भावना कर के पड़ा भासता है ॥ ज
ब आतमा का अभ्यास होता है ॥ तब भेद कल्पना सब
मिट जाती है ॥ केवल उपशमरूप शिव तत पड़ा भासता
है ॥ हे मुनीश्वर निमेष का जो सौवां १०० भाग है ॥ तिस
के अर्ध भाग प्रमाद होवणे कर के नाना प्रकार का जग
त होता है ॥ सत असत रूप जगत विश्वकर्मा बणावता
है ॥ आतम तत न दूर है ॥ न निकट है ॥ न अर्ध है ॥ न ऊ
र्ध है ॥ न पूरब है ॥ न पश्चम है ॥ सत असत के मध्य अन
नुभवरूप है ॥ सर्व का ज्ञाता है ॥ प्रतक्षादिक प्रमाण तिस
को विषय नहीं कर सकते ॥ जैसे जल विषे अग्नि नहीं लि
क सकती ॥ हे मुनीश्वर जो कछु तुझ पूछ्या था सो मैं कहा है
तिस विषे चित को लगावणा ॥ तेरा कल्याण होवे ॥ अब है

यंत्ररूपा

मवांछित स्थानकूं जाते हैं॥ चलो पार्वती हम अपणें स्था
नकों जावैं॥ हे रामजी इस प्रकार जब ईश्वर कहा॥ तब मैं
अर्घपाद कर पूजन कीया॥ पार्वती अरु गणों कों लेक
र ईश्वर आकाशमार्ग कों चलते रहे॥ जब लग मुज
कों दृष्ट आवते रहे॥ तब लग मैं उनकी ओर देषता रहा
बहुड मैं आपणें कुशा के स्थान आन बैठा॥ जो कछु ई
श्वर उपदेश कीया था॥ सो मैं आपणी बुधि साथ विचा
रणें लागा॥ इति श्री निर्वाणप्रकर्णे परमारथ विचा
रो नाम ईश्वर वसिष्ठ संवादे समाप्तं नाम सर्गः॥
॥४१॥ श्री वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी जो कछु मुजकों
ईश्वर कहा॥ सो मैं आप भी जाणता था॥ अरु तूं भी जाण
ता है॥ इह जगत असत है॥ देषणें वाला भी असत है॥
तिस माया रूपी जगत विषे मैं तुज कों सत क्या कहौं॥ अ
रु असत क्या कहौं॥ जैसे जल विषे द्रवता होती है॥ तैसे
आत्मा विषे जगत है॥ जैसे पवन विषे स्पंद होता है॥ जै
से आकाश विषे शून्यता होती है॥ तैसे आत्मा विषे
जगत है॥ हे रामजी जो कछु पतत प्रवाह कर आन प्रा
प्त होता है॥ तिसी कर मैं देव अर्चना करता हौं॥ इसी क
म कर्के मैं निर्वासी हौं॥ जगत की क्रिया विषे भी मैं निर
दुःख होइ कर्के चेष्टा करता हौं॥ व्यवहार करता दृष्ट आ
वता हौं॥ तो भी सदा शांति रूप हूं॥ यथा प्राप्त आचार रू
प फलों कर मैं आतम देव की अर्चना करता हौं॥ छेद
भेद मुज कों कोऊ नहीं होता॥ हे रामजी ग्राह्य जो विषय
हैं॥ अरु ग्राहक जो इंद्रीयां हैं॥ तिनका संबंध जो विषय
है॥ अरु इंद्रीयों का मिलना सो सर्व जीवों कों तुल्य है॥ पर
जो ज्ञानवान पुरुष हैं॥ सो सावधान रहिते हैं॥ जो कछु दे
षते सुणते बोलते षाते पीते सूंघते स्पर्श करते हैं॥ सो
आतम तत विषे अर्चन करते हैं॥ आत्मा तें इतर नहीं
जाणते॥ इस प्रकार सावधान रहिते हैं॥ अरु जो अज्ञानी
हैं॥ तिनकों कर्तृत्व अरु भोक्तृत्व का अभिमान होता है॥ ति
सकर दुःखी होते हैं॥ हे रामजी तुम भी इसी दृष्ट कों आश्र

करकै संसाररूपी बन विषे निहसंक विचरो ॥ तुम
कों भी दुःष कछु न प्राप्त होवैगा ॥ जिसकी वृत इस प्रका
र समान होगई है ॥ तिनकों वदाकष्ट आन प्राप्त होवै
तो भी तिसकों षेद नहीं होता ॥ इह जो दृष्ट मैं तुझे कही है
इसकों आश्रय करैगा ॥ तब तुझकों दुषकौ कछु न होवैगा
हे रामजी सुष दुष धन अर बांधवों का वियोग ॥ इह स
न पदारथ अनित्य हैं ॥ इह आवते भी हैं अर जाते भी
हैं ॥ इनकों आगमापाई जाणकर बिसारो ॥ इह संसा
र विषमरूप है ॥ एकरस कदाचित नहीं रहिता ॥ इस
कों स्थिर जाणकर दुःषी नहीं होवणा ॥ हे रामजी जैसे
पदारथ काल जावै ॥ तैसे जावै ॥ अर जैसे सुष दुःष आ
वै तैसे आवै ॥ इह सभ आगमापाई पदारथ हैं ॥ आव
ते भी हैं ॥ अर जावते भी हैं ॥ इष्ट की प्राप्त अर अनिष्ट की
निवृत विषे हर्षमान नहीं होवणा ॥ अर अनिष्ट की प्रा
प्त इष्ट के वियोग कर षेदवान नहीं होवणा ॥ जैसे आ
वैं तैसे आवैं जैसे जावैं तैसे जावैं ॥ जिस आवणा है सो
आवैहीगा ॥ जिस जावणा है सो जावैहीगा ॥ इह सुष दुः
ष प्रवाहरूप हैं ॥ इन विषे आस्था करके तपायमान
नहीं होवणा ॥ हे रामजी इह सभ जगत तूं ही है ॥ अर तूं
ही जगतरूप है ॥ अर तूं चिन्मात्र विस्तृत आकार है ॥
जो तूं ही है ॥ तौ बहुड हर्ष विषाद किस निमित करता
है ॥ इसी दृष्ट कों आश्रय करके जगत विषे सुषपूर्वकी
आंई विचरो ॥ बहुड तुर्यातीत अवस्था कों प्राप्त होवैंगा
जो सम ही प्रकाश रूप है ॥ हे रामजी जो कछु मैं तुझकों
कहणा था सो कहा है ॥ आगे जो कछु तेरी इछा हो इसो
कर ॥ अर पाछे जो तुझ पूछणा था ॥ जो ब्रह्म अनंतरूप
विषे मैल कलंक कैसे प्राप्त भई है ॥ अब बहुड प्रश्न
कर ॥ जो मैं उत्तर कहों ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे ब्राह्मण अ
ब मुझकों संसार कछु नहीं रहा ॥ सन संसा नष्ट होगया
है ॥ जो कछु जानणा था सो मैं जाण्या है ॥ अब मैं परम अ
हृत समतृप्तता कों प्राप्त भया हों ॥ हे मुनीश्वर आत्मा (

विषे न मैल है ॥ न द्वैत है ॥ न एक है ॥ कोउ कल्पना नहीं ॥ पूर
व मुज कों अज्ञान था ॥ तब मैं दुःखी था ॥ अब तुमारे वचनों
कर मेरा अज्ञान नष्ट भया है ॥ अरु कलंक कछु नहीं भास
ता ॥ न आत्मा विषे जन्म है ॥ न मृत्यु है ॥ सर्व ब्रह्म ही है ॥ हे मु
नीश्वर प्रथम संसा करउपजता है ॥ सो संसा मेरा नष्ट
हो गया है ॥ जैसे जंत्री का पुतली हलावने तें रहित अच
ल होती है ॥ तैसे मैं संज्ञो तें रहित अचल चित्त स्थित हों ॥
सर्व सारों का सार मुज कों प्राप्त भया है ॥ जैसे सुमेर अच
ल होता है ॥ तैसे मैं अचल हों ॥ कोउ ह्लो न मुज कों नहीं

ऐसा भी पदारथ कोऊ नहीं

जो मुज कों त्यागणे योग्य होवे ॥ अरु ऐसा भी कोउ नहीं
जो ग्रहण करणे योग्य होवै ॥ न किसी पदारथ की मुज
कों इछा है ॥ न अनिछा है ॥ शांतिरूप विषे स्थित हों ॥ न स्व
र्ग की मुज कों इछा है ॥ न नर्क विषे द्वेष है ॥ सर्व ब्रह्मस्व
प मुज कों भासता है ॥ मंदराचल पर्वत की न्याई आतम
तत विषे स्थित हों ॥ हे मुनीश्वर जिस कों अवस्त विषे व
स्त बुधि होती है ॥ अरु कलना कलंक करि दे विषे स्थित
होती है ॥ सो किसी कों ग्रहण करती है ॥ किसी कों त्याग क
रती है ॥ अरु दीनता कों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर इह सं
सार महा समुद्र रूप है ॥ राग द्वेष रूपी तिस विषे कल्लो
ल हैं ॥ अरु धृने अग्नुने तिस विषे मछ कछ हैं ॥ ऐसे
भयानिक संसार समुद्र तें ॥ अब मैं तुमारे प्रसाद क
र के तरता हों ॥ सर्व संपदा के अंत कों प्राप्त भया हों ॥ स
र्व दुःख नष्ट हो गये हैं ॥ सर्व के सार कों प्राप्त भया हों ॥ पू
रण आतम हों ॥ अदीन पद कों प्राप्त भया हों ॥ अरु परम
आनंद सत्ता कों प्राप्त भया हों ॥ आसा रूपी हस्ती कों मैं
ने मारा है ॥ आत्मा तें इतर मुज कों कछु नहीं भासता ॥
सब विकल्पों के जाल गलत हो गये हैं ॥ इछा आदिक वि
कार नष्ट हो गये हैं ॥ दीनता जाती रही है ॥ तीनों जगतों
विषे मेरा जय है ॥ सदा उदित रूप हों ॥ इति श्री निर्वाण
प्रकर्ण विश्रांति अवगमन नाम सर्गः ॥ ॥ श्री वशि

ष्ठोवाच ॥ हे रामजी देह इंद्रियों कर जो केवल न करता है
अरु मन विषे असंगता है ॥ तो जो कछु उह करता है ॥ सो
भी कछु नहीं करता ॥ जो कछु इंद्रियों का इष्ट प्राप्त होता
है ॥ सो एक छिन मात्र सुख भासता होता है ॥ तिस छिन प्र
संनता विषे जो बंधमान होता है ॥ सो बालिक मूर्ख है ॥
जो ज्ञानवान है ॥ सो तिस विषे बंधमान नहीं होता ॥ हे रा
मजी वांछा ही इसकों दुखी करती है ॥ जो सुंदर विषउं
की वांछा करता है ॥ जो जतन कर तिनकों प्राप्त होती
है ॥ तब मध्य छिन सुख होता है ॥ बहुड़ वियोग होता है
तब इसकों दुःख देता है ॥ तिस कारण ते इनकी वां
छा ही त्यागणे योग्य है ॥ इनकी वांछा तब होती है ॥ जो
सरूप का अज्ञान होता है ॥ अरु देहादिकों विषे अहं
भाव होता है ॥ जब देह विषे अहंभाव होता है ॥ तब अ
नेक अनर्थों की प्राप्त होती है ॥ तां ते हे रामजी ज्ञान रू
पी पहाड़ पर चढे रहणा ॥ अहंता रूपी गर्त विषे नहीं
गिड़ना ॥ हे रामजी आतम ज्ञान रूपी सुमेर पर्वत है ॥ ति
स पर चढा बहुड़ अहंता अभिमान करके गर्त विषे बा
सलेवणा ॥ सो गर्त विषे गिड़ना होता है ॥ जब इस भाव
कों त्यागेंगा ॥ तब आपणे स्वभाव सत्ता कों प्राप्त होवेंगा
जो सम सांत रूप है ॥ अरु विकल्प जाल सब मिट जा
वेंगे ॥ अरु समुद्र वत पूरण हो जावेंगा ॥ द्वैत रूप फुर
णा कों उन फुरेगा ॥ हे रामजी जब अंतर ते विषयउं कों
असत जाणे ॥ तब मन भी निरास हो जाता है ॥ चित्त नि
हसंक हो जाता है ॥ वस्तु ते देखें तो सर्व विषे सत्ता समा
न रूप ब्रह्म चिद्घन स्थित है ॥ तिस ते जो कछु देखता
सता है ॥ सो स्वरूप के प्रमाद करके भासता है ॥ हे राम
जी आतमा का अज्ञान रूप ही बंधन है ॥ आतमा का तो
बोध ही मुक्ति रूप है ॥ तां ते बल कर ही आपकों आप
ही जगावो ॥ तब इस बंधन ते मुक्ति होवो ॥ हे रामजी जिस
विषे विषयों का स्वाद नहीं ॥ अरु जिस विषे इनका अन

नवहोता है ॥ सो तत आकाशवत निर्मल सता है ॥ वास
नोंतें रहित है ॥ जो वासनोंतें रहित होइकर पुरुष क
छु क्रिया करता है ॥ सो विकारकों नहीं प्राप्त होता ॥ जदि
प अनेक ल्लोक आन प्राप्त होवैं ॥ तब भी उसकों विका
र कछु नहीं होता ॥ ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान तीनों आतमरूप भा
सते हैं ॥ जब ऐसे जाण्या तब त्रय किसीका नहीं रहिता
चित के फुरणे कर जगत उत्पत्ति होता है ॥ अर चित के
अफुर हूयें लीन होजाता है ॥ जब वासनों सहित प्राण
उदै होते हैं ॥ तब जगत उदै होता है ॥ जब वासनों सहित
प्राण लीन होजाते हैं ॥ तब जगत लीन होजाते हैं ॥ तातें
अभ्यास करके वासनों अर प्राणों कों स्थित करो ॥ अर ज
ब मूर्खता उदै होती है ॥ तब कर्म उदै होते हैं ॥ अर मूर्खता
के लीन हूयें कर्म भी लीन होते हैं ॥ तातें सतसंग अर स
तशास्त्र के विचार कर मूर्खता कों दूर करो ॥ जैसे वा
यु के संग धूड उदके बदल आकार होती है ॥ तैसे चि
त के फुरणे कर जगत स्थित होता है ॥ हे रामजी जब
चित फुरता है ॥ तब द्रष्टा दर्शन का संबंध फुर आवता
है ॥ जैसे आकाश आकार रूप भासता है ॥ तैसे जब चित फु
रता है ॥ तब नाना प्रकार का जगत फुर आवता है ॥ अर
चित के अफुर हूयें जगत लीन होजाता है ॥ हे रामजी वा
सना क्षीण होवै ॥ अथवा प्राणों का निरोध होवै ॥ तब चि
त अचित होजाता है ॥ सो वासना के क्षय हूयें चित अ
चित होजाता है ॥ अथवा प्राणों के रोकणे तें चित अचि
त होता है ॥ जब चित अचित हूया ॥ तब परमपद कों प्राप्त
होता है ॥ हे रामजी दृश्य दर्शन संबंध के मध्य विषे जो
सुख है ॥ सो परमातम सुख है ॥ सो एकांत का सुख है ॥ सो सं
वित ब्रह्मरूप है ॥ तिसके साक्षात्कार हूयें मन क्षय हो
जाता है ॥ जहां चित नहीं उपजता ॥ सो चित तें रहित अ
त्तम सुख है ॥ ऐसा सुख स्वर्ग विषे भी नहीं ॥ जैसा मारूथ
ल विषे वृक्ष नहीं होता ॥ तैसे चित सहित विषे सुख नहीं
होता ॥ चित के उपशम विषे जो सुख है ॥ सो अवाच है

वाणीकर नहीं कहा जाता॥ तिस के समान ऽअवर सुष
को ऊ नहीं॥ ऽपर तिस तें ऽअन्य सुष भी नहीं॥ ऽअवर सुष ना
स भी हो जाते हैं॥ ऽआतम सुष नास नहीं होता॥ ऽअविना
सी है॥ ऽअर उपजणे बिनसणे दोनों तें रहित है॥ हे राम
जी ऽअबोध कर के चित उदे होता है॥ ऽअर ऽआतम बोध
कर के शांति हो जाता है॥ जैसे मोह कर के बालिक कौं
वैताल दिषाई देता है॥ मोह के नष्ट भयें वैताल नष्ट हो
जाता है॥ तैसें ऽअज्ञान कर चित उदे होता है॥ ऽअज्ञान के न
ष्ट हूयें चित नष्ट हो जाता है॥ जो विद्यमान भी चित भास
ता है॥ तो भी बोध कर के निरबीज होता है॥ जैसे तांबा पा
रस साथ मिल कर स्वर्न हो जाता है॥ ऽआकार तौ उही पड़ा
दृष्ट ऽआवता है॥ पर तांबे भाव का ऽअभाव हो जाता है॥ तैं
से ज्ञान कर चित ऽअचित हो जाता है॥ सतपद कौं प्राप्त हो
ता है॥ पर नाम रूप तैसे ही भासता है॥ हे रामजी ज्ञानी का
चित भी हूया करता दृष्ट ऽआवता है॥ पर चित ऽअचित हो
गया है॥ जो ऽअज्ञान कर के भासता है॥ सो ज्ञान कर के सम
हो जाता है॥ जेता कछु जगत ऽअबोध कर के भासता था
सो बोध हूयें शांत हो जाता है॥ बहुड़ नहीं उपजता॥ उह वि
त सतपद कौं प्राप्त होता है॥ को ऊ काल तौ उह तुर्या ऽअव
स्था विषे स्थित हूया विचरता है॥ बहुड़ तुर्यातीत पद कौं
प्राप्त होता है॥ ऽअधः ऊर्ध मध्य सब ब्रह्म ही सम॥ इस प्र
कार ऽअनेक होकर स्थित भया है॥ ऽअनेक कौं भी मौं कर भी
न कहे सर्वात्मा ऽअवर चितादिक कछु नहीं॥ इति श्री
निरवाणप्रकर्णे चित सत्ता सूचनं नाम सर्गः॥ ४३॥
वसिष्ठोवाच॥ हे रामजी ऽअब तैसे हेपतें एक ऽअपूर
व ऽआश्चर्य रूप बोध का कारण ऽआष्यान सुण॥ एक
बिलफल है॥ ऽअर ऽअनंत जोजनों पर्यंत तिस का विस्तार है
ऽअर ऽअनंत युग व्यतीत हो गये हैं॥ उजर्जरी भाव कौं क
दाचित नहीं प्राप्त होता॥ ऽअर ऽअनादि है॥ तिस विषे ऽअवि
नासी रस है॥ कबहूं नास नहीं होता॥ ऽअर रस कर पूर्ण
है॥ ऽअर चंद्रमा की न्याई सुंदर है॥ बहुड़ कैसा है॥ सुमेरादि
क जो बडे पहाड़ हैं॥ तिन कौं महाप्रलय के पवन कर वि

गों की न्यांई उन्मावता है ॥ सो पवन भी तिस बिल्व को हला
इ चला इ नहीं सकता ॥ हे राम जी जो जनों के अनंत को
ट ब्रह्मंड तिन के भी कोट ब्रह्मंड तिन के भी कोटांक के
तिस की संख्या नहीं करी जाती ॥ ऐसा इह बिल्व फल
है ॥ ब्रह्मंड कैसा है ॥ बहुत बडा है ॥ जैसे सुमेर के निकू
ट राई का दाणा होवे ॥ सो सूक्षम तुछ भासता है ॥ तैसे
तिस बिल्व के आगे ब्रह्मंड तुछ सूछम भासता है ॥ सो
बिल्व रस कर पूरण है ॥ गिडता कबहूं नहीं ॥ अर पुरा
तन है ॥ तिस का आदि मध्य अंत ब्रह्मा विस्नु रुद्र इं
द्रादिक भी नहीं जाण सकते ॥ न उस के मूल को कोउ
जाण सकता है ॥ न मध्य को कोउ जाण सकता है ॥ अ
इष्ट उस का आकार है ॥ अर अद्दष्ट फल है ॥ अर अपणे
प्रकाश कर प्रकाशता है ॥ ब्रह्मंड कैसा है ॥ एक मांड
घन है आकार जिस का ॥ अर सदा अचल है ॥ किसी वि
कार को नहीं प्राप्त होता ॥ सत है ॥ निर्मल है ॥ निरविकार नि
रंतर रूप है ॥ नीरंध्र है ॥ अर चंद्रमा की न्यांई सीतल है
सुंदर है ॥ अर ज्ञान संवित रूप तिस विषे रस है ॥ सो अ
पणी रस आपही लेता है ॥ अर सर्व को देवणे वाला
उही है ॥ सभ को प्रकाशकर्ता उही है ॥ तिस विषे अनेक
चित्र रेषा निवास कीया है ॥ अर अपणे स्वरूप को त्या
गता नहीं ॥ अनेक रूप होइ कर आपही भासता है ॥ ति
स विषे स्पंद रूपी रस पडा फुरता है ॥ त्वंता ममता इदं
ता ॥ देश काल क्रिया नेत सत्ता द्वैत है उपादेय ॥ अनंत को
लन विष्यत काल प्रकाश तम विद्या अविद्या इत्या
दिक कल्पना जाल रस के फुरणे कर के पडे फुरते
हैं ॥ सो बिल्व आतमा रूप है ॥ अनंत स्वरूप तिस विषे
रस है ॥ सो सदा अपणे आप विषे स्थित है ॥ नित्य शां
त रूप है ॥ तिस को जाण कर पुरुष कृतकृत्य होता है
॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे बिल्वपाख्यान नाम सर्ग
॥ ४४ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन सर्व धर्मों के वेत्ता
तुम हो ॥ इह बिल्व रूपणी महाचिद्घन सत्ता कही

सो ऐसे मेरे निश्चे नया ॥ जो चैतन्यमजारूप अहंता आदि
क जानते हे ॥ इस विषे भेद रंचक भी नहीं ॥ चैतन्य अरु एक क
(भली प्रकार) लना सम्यक सर्व उहा हे ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी
जैसे ब्रह्मंड की मज्जा सुमेरादिक पृथ्वी हे ॥ तैसे चैतन्य
शिला की मज्जा इह ब्रह्मंड हे ॥ सभ जगत चैतन्य शिलारू
प हे ॥ इतर कछु नहीं ॥ तिस सर्वगत चैतन्य का विनास
संभवता नहीं ॥ हे रामजी चैतन्यरूपी मर्च बीज हे ॥ तिस
विषे जगत रूपी चमतकार तीछणता हे ॥ सो सुषमवत
निर्मल हे ॥ शिला के अंतर वत अस्थित हे ॥ हे रामजी अ
ब अवर आश्चर्यवत आष्यान सुण ॥ चंद्रमावत महा सु
दर ॥ अरु स्निगध सीतल स्पर्श अरु विस्तृत रूपा शिला
हे ॥ सो महा नीरंध्र हे ॥ घनरूप हे ॥ तिस विषे वली उपज
तीयां हे ॥ ऊर्ध तिन का मूल हे ॥ तिस कीयां ऊर्ध अरु अधः
साषां हे ॥ अनेक तिस का घडों हें ॥ श्रीरामोवाच ॥ स
ति कहते हो ॥ इह शिला मैं भी देषा हे ॥ जो विद्रुम का मूर्ति
नदी विषे सालग्राम हे ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी
जैसे तूं जानता हें अरु देषी भी हे पर तैसीयां तिस के
सन अंतर हें ॥ जो शिला मैं कहता हों ॥ सो अपर शिला
हे ॥ तिस के अंतर ब्रह्मंडों के समूह हें ॥ अरु कछु भी नहीं
हे रामजी चैतन्यरूपी शिला मैं तुज को कही हे ॥ तिस
विषे संपूर्ण ब्रह्मंड हें ॥ सो घन चेतनता करके शिला व
र्नन करी हे ॥ अत्यंत घन हे ॥ अरु नीरंध्र हे ॥ सो परम ब्रह्म ला
शिला: काशवत निर्मल हे ॥ आकाश पृथिवी पर्वत देश विध्व
नदी समुद्र इत्यादिक सभ नहीं ॥ तिस शिला के अंतर स्थि
त हे ॥ अरु कछु हे नहीं ॥ जैसे शिला के ऊपर कमल लि
षे होते हें ॥ सो शिला ही रूप हें ॥ शिला ते इतर कछु नहीं
तैसे इह जगत आतमा रूपी शिला विषे हे ॥ आत्मा ते
भिन्न कछु नहीं ॥ हे रामजी भूत भविष्यत वर्तमान जो
तीनों काल हें ॥ सो उस शिला की पुतलीयां हें ॥ जैसे शि
लपी पुतलीयां कल्पता हे ॥ जो इती पुतलीयां इस शि
ला सों निकसेंगीयां ॥ तैसे इह जगत आतमा विषे उप

जो कछु नहीं ॥ मनरूपी शिलपी पदा कल्पता है ॥ तिस
करने नाना प्रकार का जगत पदा भासता है ॥ आतमा वि
षे कछु उपजा नहीं ॥ जैसे सुषुप्त रूप शिला के ऊपर क
मल रेषा लिषी होती है ॥ सो शिला तें इतर कछु नहीं ॥
तैसे इह जगत आतमा विषे है ॥ सो आतमा तें भिन्न नहीं ॥
जैसे शिला विषे पुतलीयां होती हैं ॥ सो न उदै होती हैं
न अस्त होती हैं ॥ जिउं की तिउं शिला ही है ॥ तैसे आत
मा विषे जगत न उदै होता है ॥ न अस्त होता है ॥ काहे तें जो
वास्तव कछु नहीं ॥ अर आतमा तें इतर जो कछु द्वैत क
ल्पना होती है ॥ सो अज्ञान कर के भासती है ॥ जब बोध हू
या तब शांति हो जाती है ॥ जैसे जल की बूंद समुद्र विषे
डारी समुद्र रूप हो जाती है ॥ तैसे बोध कर कल्पना आ
त्मा विषे लीन हो जाती है ॥ हे रामजी चेतन आतमा अ
नंत है ॥ तिस विषे विकार कल्पना कोऊ नहीं ॥ अज्ञान के
र कल्पना भासती है ॥ ज्ञान कर के लीन हो जाती है ॥ वि
कार भी आतमा के आश्रय भासते हैं ॥ अर आतमा विका
रों तें रहित है ॥ ब्रह्म तें विकार उत्पत्ति होते हैं ॥ अर ब्रह्म ही
विषे स्थित हैं ॥ अर वास्तव तें कछु हूये नहीं ॥ सन आनी
सरूप हैं ॥ जैसे किरणों विषे जल आभास होता है ॥ तैसे ब्र
ह्म विषे जगत विकार आभास होता है ॥ जैसे बीज विषे
वृक्ष होता है ॥ पत्र फल फूल टास का विस्तार एक ही बी
ज के अंतर है ॥ अर बीज सत्ता सन विषे अनस्यूत होती
है ॥ बीज तें इतर कछु नहीं होता ॥ तैसे चिदघन आतमा के
अंतर विस्तार है ॥ सो चिदघन आतमा तें इतर कछु नहीं
उही अपणे आप विषे स्थित है ॥ अर जगत भी उही रूप
है ॥ जो एक मानीये तब द्वैत भी होता है ॥ जो एक कहणा
भी नहीं तो द्वैत कहां होवै ॥ जगत अर आतमा विषे भेद
कछु नहीं ॥ आतमा ही अद्वैत अपणे आप विषे स्थित है ॥
जैसे शिला विषे मरत लिषी होती है ॥ सो शिला रूप है ॥
तैसे जगत आतमा रूप है ॥ जैसे शिला विषे मरती भिन्न

भिंन विषमरूप होती हैं ॥ अरु आधाररूप शिला अभे
द है ॥ तैसे आत्मा विषे जगत मूर्ती भिंन भिंन विषमरूप
भासती हैं ॥ अरु आधाररूप चैतन्य अभेदरूप है ॥ ब्रले
सता समान सुषुपतवत समस्थित है ॥ वहै विकार भा
तिस विषे दृष्ट आवृते हैं ॥ पर वास्तव सुषुप्तवत विका
र तें रहित है ॥ फुरणे तें रहित चैतन्य शिला स्थित है ॥ ति
स निस्पंद शांति चिदघनरूप सता विषे इह जगत कल्पि
त है ॥ अधिष्ठान सता सदा सर्वदा शांतरूप है ॥ भेद को
कदाचित नहीं प्राप्त होती ॥ जैसे जल विषे तरंग अभेद
रूप हैं ॥ जैसे स्वर्ण विषे भूषण अभिंनरूप हैं ॥ तैसे आ
तमा विषे जगत अभिंनरूप है ॥ इति श्री निरवाण प्र
करणे शिलाकोश उपदेशो नाम सर्गः ॥ ४५ ॥ श्रीव
शिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जैसे बीज के अंतर फूल फल
बहु संपूरण होता है ॥ सो आदि बीज है ॥ अरु अंत भी बी
ज है ॥ जब फल परपक होता है ॥ तब बीज ही होता है ॥ तैं
से जगत विषे आतमा भी है ॥ पर सदा अच्युत है ॥ अरु स
म है ॥ कदाचित भेद विकार परणाम को नहीं प्राप्त भया
अपणी सता कर स्थित है ॥ जगत के आदि भी उही है ॥ म
ध्य भी उही है ॥ अंत भी उही है ॥ कछु अवर भाव को प्राप्त
नहीं भया ॥ देश काल कर्मादिक जेती कछु कल्पना भा
सती है ॥ सो उही रूप है ॥ जेते कछु शब्द अर्थ हैं ॥ सो आ
तमा तें भिंन नहीं पाईते ॥ जैसे वृक्ष के आदि बीज है ॥ अरु
अंत भी बीज है ॥ मध्य जो कछु विस्तार भासता है ॥ सो भी उही
रूप है ॥ भिंन कछु नहीं ॥ तैसे जगत के आदि भी आतम
सता है ॥ अंत भी आतम सता है ॥ मध्य जो कछु भासता है
सो भी उही रूप है ॥ हे रामजी चैतन्य रूपी महा आदर्श है
तिस विषे संपूरण जगत प्रतिबिंबित होता है ॥ अरु संपू
र्ण जगत संकल्प मात्र है ॥ जैसे जैसे फुरणा किसी को दृढ
होता है ॥ तैसे ही आत्मसता के आश्रित होकर भासता है ॥
जैसे चिंतामणि विषे जैसा कोउ संकल्प धारता है ॥ तैसा
ही प्रगट हो आवता है ॥ सो संकल्प ही मात्र होता है ॥ तैसे

जैसी जैसी भावना को धारता है ॥ तैसी आत्मा के आश्रि
त होइ कर भासती है ॥ अनंत जगत आत्म रूपी मणि के
आश्रित स्थित होते हैं ॥ जैसी जैसी को भावना करता
है ॥ तैसी ही उसकी हो भासती है ॥ हे रामजी आत्म रूपी द
बा है ॥ तिस से जगत रूपी रत्न मोती पडे निकसते हैं ॥
जैसा जैसा फुरणा होता है ॥ तैसा जगत भास आवता है
जैसे शिला के अंतर रेषा होती है ॥ सो नाना रूप चित्र भा
सती है ॥ सो अनन्य रूप है ॥ तैसे आत्मा विषे जगत अनन्य
रूप है ॥ जैसे शिला के अंतर शंख चक्रादिक रेषा भा
सती है ॥ सो शिला रूप है ॥ तैसे इह जगत आत्मा विषे
भासता है ॥ सो आतम रूप है ॥ आत्म रूपी शिला नीर
ध है ॥ तिस विषे छिद्र कोऊ नहीं ॥ जैसे जल विषे तरंग ज
ल रूप होते हैं ॥ तैसे ब्रह्म विषे जगत ब्रह्म रूप है ॥ कैसा
ब्रह्म है ॥ सम अंगाति रूप सघुनवत स्थित है ॥ तिस विषे ज
गत कछु फुरता नहीं ॥ शिला की रेषावत है ॥ जैसे शिल के
अंतर मूर्ता स्थित होती है ॥ तैसे ब्रह्म विषे जगत स्थित
है ॥ जैसे आकाश विषे सून्यता होती है ॥ जैसे जल विषे
द्रवता होती है ॥ जैसे पवन विषे स्पंद होता है ॥ तैसे ब्रह्म
विषे जगत है ॥ ब्रह्म अर जगत विषे भेद कछु नहीं ॥ जै
से तरु अर बृछ विषे भेद कछु नहीं ॥ तैसे जगत अर ब्र
ह्म विषे भेद कछु नहीं ॥ ब्रह्म ही जगत है ॥ जगत ही ब्रह्म
है ॥ हे रामजी भाव अभाव भेद कल्पना कोऊ नहीं ॥ ब्रह्म
सत्ता ही प्रकाशती है ॥ ब्रह्म ही जगत रूप होइ भासता है ॥
जैसे मारूथल विषे सूर्य की किरणां जल रूप हो भास
ती है ॥ तैसे ब्रह्म जगत रूप हो भासता है ॥ हे रामजी सुमेर
तें लेकर पर्वत अर त्रिण तें लेकर बन अर चित तें ले
कर जगत ॥ अर पर्माण तें लेकर भूत ॥ इनकों विचार
कर देषीये तब पर्मात्म सत्ता ही भासती है ॥ सर्व पदार्थों वि
षे स्थूलता अर सूक्ष्मता भाव कर उही व्यापी है ॥ जैसे
जल को रस बनासपती विषे व्याप्या हूया है ॥ तैसे सर्व
जगत विषे सूक्ष्मता करके आतम सत्ता व्यापी हूई है ॥

जैसे एकहीं रस सँतावछ त्रिगगुछे विषे व्यापी हूई है॥ अ
र एकहीं अनेक रूप होभासता है॥ तैसे एक ब्रह्मस
त्ता अनेक रूप होकर भासती है॥ हे रामजी जैसे मोर
के अंडे विषे अनेक रंग होते हैं॥ जब अंडा फूटता है
तब ससनैं ससनैं अनेक रंग तिसतें प्रगट होते हैं॥ सो ए
कहीं रस मोर का अनेक रूप होभासता है॥ तैसे ए
कहीं आत्मा अनेक रूप जगत आकार होकर भा
सता है॥ जैसे मोर के अंडे विषे एकहीं रस होता है॥
पर जो दीरघसत्री [वादी] अज्ञानी हैं॥ तिसकों न विष्यतें
अनेक रंग उस विषे भासते हैं॥ सो अनउपजे हीं उप
जे भासते हैं॥ तैसे इह जगत अनउपजा हीं नानत्व अ
ज्ञानी के हृदे विषे स्थित होता है॥ अर जो ज्ञानवान
हैं॥ तिनकों एकरस ब्रह्मसत्ता भासती है॥ जैसे मोर
का रस नहीं परणाम कों प्राप्त भया॥ तो भी एकरस है
अर जो परणाम कों प्राप्त होकर नानारूप भया॥ तो भी
एकरस है॥ तैसे इह जगत परमात्मा विषे गुप्त है॥ त
ब भी परमात्मा हीं है॥ अर जो नानारूप होकर भासप्र
तब भी उही है॥ पर परणाम कों नहीं प्राप्त भया॥ पर अ
ज्ञानी कों नानात्व भासता है॥ ज्ञानवान कों एकसत्ता
भासती है॥ अथवा दृष्टांत का दूसरा अर्थ है॥ जैसे मो
र का अंडा है॥ तिस विषे नानत्व कछु हूई नहीं॥ जिस
कों दिव्य दृष्ट है॥ तिसकों उस विषे अनउपजी नान
त्व भासती है॥ और जिसकौं दिव्य दृष्ट नहीं॥ तिसकों
बीज हीं भासता है॥ नानात्व नहीं भासती॥ तैसे जिस
कौं अज्ञान रूपी दिव्य दृष्ट है॥ तिसकों अनउपजा ज
गत नानात्व हो भासता है॥ अर जो अज्ञान दृष्ट तें रहि
त है॥ तिसकौं एकहीं ब्रह्म भासता है॥ अवर कछु न
हीं भासता॥ हे रामजी नानत्व भासता है॥ तो भी कछु
नानत्व नहीं॥ जैसे मोर के अंडे विषे नाना रंग भासते हैं
तो भी एकरूप हैं॥ तैसे इह जगत पदारथ भिंन भिंन
भासते हैं॥ तो भी एक ब्रह्मसत्ता है॥ द्वैत कछु नहीं॥

॥ इति श्री निर्वाणप्रकर्णे सत्ता उपदेशो नाम सर्गः
॥ ४६ ॥ श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जैसे अग्नि उपजी
कों तिरंगा मयूर के अंडे विषे होती है ॥ सो वीर्य तें इत
र कछु नहीं ॥ तैसे अहं त्वं आदिक जगत आत्मा वि
षे अनउदे ही उदे रूप भासते हैं ॥ जैसे वीर्य विषे उन
रंगों की उदे भी अनउदे है ॥ तैसे आत्मा विषे जगत की रूप
उदय भी अनउदय है ॥ अरु आत्मसत्ता अप्राप्त पद
है ॥ वाणी कर कछु कहा नहीं जाता ॥ ऐसा सुख स्वर्ग
विषे नहीं पाईता ॥ अरु अवर भी किस स्थान विषे नहीं
पाईता ॥ ऐसा सुख ॥ जैसा सुख आत्मा विषे स्थित हूये पा
ईता है ॥ हे रामजी आतम सुख विषे विश्रांत पावणे के
निमित ॥ मुनीश्वर देवता गण अरु सिध महा रिष हैं स्व
दर्शन संबंध फुरणे कूं त्याग कर स्थित होते हैं ॥ सो तैं उ
त्तम सुख है ॥ संवित विषे जो संवेदन फुरणा है ॥ सो जिनका
निवर्त हूया है ॥ तिसका जिनहूं त्याग कीया है ॥ तिन पु
रुषों कों दृश्य भावना कोऊ नहीं फुरती ॥ न तिन कों को
ऊ कर्म स्पर्श करता है ॥ अरु प्राण भी तिसके निस्पंद हो
ते हैं ॥ चित चेतन के संबंध तें रहित चित्र की मूर्तिवत स्थि
त होते हैं ॥ हे रामजी जब चेतन कला फुरती है ॥ तब इस को
संसार भ्रम प्राप्त होता है ॥ अरु जब चेतन का फुरणा मिट
जाता है ॥ तब इह शांति अद्वैत रूप स्थित होता है ॥ जैसे
राजा की सेना युध करती है ॥ अरु जीत हार राजा की हो
ती है ॥ तैसे चेतन फुरणे द्वारा आत्मा विषे बंध मोक्ष होती
है ॥ यद्यपि आत्मा सत रूप अच्युत है ॥ पर मन बुध अं
तःकर्ण द्वारा आत्मा विषे बंध मोक्ष होती भासती है ॥
आत्मा सबन का प्रकाशक है ॥ जैसे चंद्रमा की चांदनी वृ
क्षादिकों को प्रकाशती है ॥ तैसे आत्मा सर्व पदार्थों कों
प्रकाशता है ॥ सो कैसा है ॥ न दृश्य है ॥ न उपदेश का विषय
है ॥ न विलास रूप है ॥ न दूर है ॥ केवल अमन भव चैतन स्वरू
प अज्ञातमता कर सिध है ॥ न देह है ॥ न इंद्रीयहूं के गण हैं
न चित है ॥ न वासना है ॥ न जीव है ॥ न स्पंद है ॥ न अवर कों

स्पर्शकर्ता है॥ न आकाश है॥ न सत है॥ न असत है॥ न मध्य
है॥ न सून है॥ न असून है॥ न देशकालवस्तु है॥ न अहं है
न इतर है॥ इत्यादिक सर्वशब्दों तें रहित हृदयस्थान वि
षे प्रकाशता है॥ आनन्दस्वरूप है॥ न तिसका आदि है॥ न
मध्य है॥ न अंत है॥ न शस्त्र काटते हैं॥ न अग्नि जलाय स
कती है॥ न जल गलाय सकते हैं॥ न इह है॥ न उह है॥ न वा
इ सोष सकती है॥ अवर किसी की समर्थता नहीं॥ सो
चिद्रूप आतमतत्त है॥ न जन्मता है॥ न मरता है॥ और देह
रूपी घट केई वार उपजते हैं॥ केई वार नष्ट होते हैं॥ आ
र आत्मारूपी आकाश सब के अंतर बाहिर अखंड अ
वनाशी है॥ जैसे अनेक घटों विषे एक ही आकाश स्थि
त होता है॥ तैसे अनेक पदार्थों विषे एक ही ब्रह्मसत्ता
आत्मरूप करके स्थित है॥ हे रामजी जेता कछु स्थावर
जंगम जगत दृष्ट आवता है॥ सो सब ब्रह्मरूप है॥ कैसा
ब्रह्म है॥ निरधर्म॥ निर्गुण है॥ निर्वैव निराकार है॥ निर्म
ल निर्विकार है॥ आदि अंत तें रहित समशांतिरूप है॥
इसी दृष्ट को आश्रय करके स्थित होवो॥ हे रामजी इसी
दृष्ट को आश्रय करोगे॥ तब बडे आरंभ कार्य तुझ को
स्पर्श न करेंगे॥ जैसे आकाश को बदल स्पर्श नहीं कर
ते॥ तैसे तुम को कर्म स्पर्श न करेंगे॥ काल हूया कारण
कार्य उत्पत्ति स्थिति संहारादिक जो संसरणरूप संसार
है॥ सो सब ब्रह्मरूप है॥ इसी दृष्ट को आश्रय करके विच
रो॥ इति श्रीनिर्वाणप्रकरणे ब्रह्मएकताप्रतिपा
दनं नाम सर्गः॥ ८० ॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन जो
विकारगत है ब्रह्म विषे कोऊ नहीं॥ तो भावाभाव जग
त किसकर पडा भासता है॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रा
मजी विकार किसकों कहते हैं॥ प्रथम तो इह सुण॥ जो
वस्तु अपने पूर्व स्वरूप को त्यागकर॥ विपर्ययरूप को
प्राप्त होवै॥ अरु बहुड़ पूर्व ले स्वरूप कों न प्राप्त होवै॥
तिस कों विकार कहीता है॥ जैसे दूध तें दही होती है॥ बहु
ड़ दूध नहीं होता॥ अरु जैसे बालिक अवस्था बीत जाती

है। बिगूड नहीं आवती। अरु युवा अवस्था गई। ईक्रूई
बिगूड नहीं आवती। तिसका नाम विकार है। अरु ब्र
ह्म निर्विकार निर्मल है। आदि भी निर्विकार है। अरु
अंत भी निर्विकार है। मध्य जो तिस विषे कछु मल वि
कार भासती है। सो अज्ञान करके भासती है। मध्य वि
षे भी ब्रह्म अविकार ज्यों का त्यों है। हे रामजी जो पदा
र्थ विपर्यय रूप हो जाता है। सो बिगूड अपणे स्वरूप
को प्राप्त नहीं होता। अरु जो तिसु सत्ता सदा ज्यों की त्यों अ
द्वैत रूप आत्म अनुभव करके प्रकाशती है। जो कछु
हैं अन्यथा रूप को न प्राप्त होवै। तिसको विकार कैसे
कहीये। हे रामजी जो वस्तु विचार ज्ञान करके निवर्त
हो जावै। तिसको भ्रम मात्र जाणीये। वास्तव कछु नहीं।
जेते कछु विकार हैं। सो अज्ञान करके भासते हैं। जब आ
त्म बोध होता है। तब निवर्त हो जाते हैं। जिसके बोध
करके विकार नष्ट हो जावैं। तिस विषे विकार कैसे क
हीये। सो ब्रह्म शब्द करके कहीता है। सो निर्वेदन वि
प आत्मा है। जो आदि अंत विषे सत होवै सो मध्य वि
षे भी जाणीये। जो सत है। इसतें इतर होवै सो अज्ञान
करके जाणीये। आतम तत्त सदा सर्वदा सम रूप है
आकाश वायु भी अन्यभाव को प्राप्त हो जाते हैं। पर
आतम तत्त कदाचित अन्यभाव को नहीं प्राप्त नया
प्रकाश रूप है। अरु एक है। नित्य है। निरविकार है।
ईश्वर है। नाना भाव विकार को कदाचित नहीं प्राप्त
होता॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन विद्यमान एक तत
त है। सो ब्रह्म सदा निर्मल रूप है। तिस संवित ब्रह्म वि
षे एह अविद्या कहां तें आई है॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥
हे रामजी इह सर्व ब्रह्म है। आगे भी ब्रह्म था। अरु पाछे
भी ब्रह्म ही होवेगा। तिस निरविकार आदि अंत मध्य तें
रहित ब्रह्म विषे। अविद्या को उ नहीं। इह निश्चै है। जि
सको वाच्य वाचक क्रम कर उपदेश के निमित्त ब्रह्म क
होता है। तिस विषे अविद्या कहां है। हे रामजी अहं

त्वं आदिक जगत नाम अग्नि वायु आदिक स
र्वत्र लस रहा है ॥ अवर अविद्या असत्य मात्र नीत
हौ ॥ जिसका नाम नहीं अविद्या है ॥ सो न ममात्र अ
सत जाणे ॥ जो नहीं विद्यमान तिसका नाम कौंक
हीये ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे मुनीश्वर उपद्रा मम क
ले विषे तुम किंउ कहा ॥ जो अविद्या है अब इस
प्रकार कैसे कहते हो ॥ हे गमो जो अविद्यमान है
है होन नहीं ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी एताका
ल पर्यंत तं अबोध था ॥ तिस निमित्त मैं तुज कों कल
प कर युक्त कही थी ॥ सो तेरे जगावणे निमित कही
थी ॥ अर तं अब प्रबुध हूया है ॥ तब मैं कहा अवि
द्या अविद्यमान है ॥ हे रामजी अविद्या अर जीव ज
गतादिक का नाम अबोध कों जगावणे निमित्त
वेदवादीयों नें वर्नन कीया है ॥ जब जाग्रत बुधि
मन होता है ॥ तब लगइ इसकों अविद्या नाम है ॥ जो जु
गतों विनां बोधवानं नहीं होता ॥ अनेक उपाय क
रनी जुगतों विनां नहीं जागता ॥ अर जब बोधवान
होता है ॥ तब सिधांत उपदेश कों जुगतों विनां भी
पाइ लेता है ॥ अर अबोध मन जुगतों विनां नही पा
इसकता ॥ हे रामजी जो कार्य युक्तों कर सिध होता है
सो अवर जतन कर साधया नहीं जाता ॥ जैसे अंध
कार जुत रूपी दीपक कर दूर होता है ॥ अवर बल
जतन कर निवर्त नहीं होता ॥ जैसे जुगतों विनां अवर
जतन कर अत्ता न निद्रा नहीं निवर्त होती ॥ जो अबु
धइ मतीवं सर्वब्रह्म सिधांत का उपदेश करती है ॥ त
ब उह उपदेश व्यर्थ होता है ॥ जैसे को उ दुःखी अपणे
दुखस्याणे कें आगें जाइ कहे ॥ तब उह उसका कहा
सुणता ही नहीं ॥ उसका कहणां भी व्यर्थ होता है ॥ तै
से अप्रबुध कों सर्वब्रह्म का उपदेश व्यर्थ होता है ॥ ता
ते मूढ कों युक्तों कर जगाईता है ॥ अर बोधवान कों अंत
छ तन काले उपदेश करीता है ॥ हे रामजी एताकाल

कृत्र

कदाचित

तं अप्रबुध था ॥ इसकारणतें मैं तुजकों नानाप्रकार
की युक्तों उपदेश कर जगाया है ॥ तब मैं तुजकों प्र
त्यक्ष तत्त्वका उपदेश कीया है ॥ हे रामजी अब तं ऐ
से धार जो मैं ब्रह्म हों ॥ इह तीनों जगत भी ब्रह्म है ॥ अहं
त्वं आदिक सर्व ब्रह्म है ॥ द्वैत कल्पना कछु नहीं ॥ ऐ
से धारकर जो तेरी इछा होवे तैसे कर ॥ हृदय संवेदन
फुरे तौ ही सदा आत्म विषे स्थित रहे ॥ इस प्रकार अ
नेक कार्यों विषे भी लेप न होवेगा ॥ हे रामजी जो चेत
न्य परमात्मा व्यापक प्रकाशरूप है ॥ सो सदा अहं भाव
करके फुरता है ॥ ऐसा जो अनंत नवरूप है ॥ चलते बै
ठते खाते पीते चेष्टा करते तिसी विषे स्थित रहे ॥ त
ब अहं मम भाव तेरा निवर्त हो जावेगा ॥ अवेदन जो
शांतरूप ब्रह्म सर्वभूतो विषे स्थित है ॥ तिसकूं तूं प्राप्त
होवेगा ॥ तब आदि अंत तें रहित प्रकाशरूप आपकों
देषेगा ॥ शुध संवित मात्र आत्मा कौं देषेगा ॥ जैसे मृत
का के पात्र कोली टिंड घटादिक सर्व मृत्तिका का अ
पना आप है ॥ तैसे तूं सर्वभूत आत्मा को देषेगा ॥ जैसे
मृत्तिका तें घट भिंन नहीं ॥ तैसे आत्मा तें जगत भिंन नही
जैसे वायु अरु स्पंद दोनों एक है ॥ जैसे जल तें तरंग भिंन
नहीं ॥ तैसे आत्मा तें प्रकृति भिन्न नहीं ॥ जैसे जल अरु त
रंग शब्द मात्र दोइ है ॥ भेद भाव कछु नहीं ॥ अज्ञान कर
के भेद भासता है ॥ अरु ज्ञान करके नष्ट हो जाता है ॥ जैं
से जेवड़ी विषे सर्प है ॥ तैसे आत्मा विषे अकित है ॥ हे रा
मजी चित्तरूपी वृछ है ॥ अरु कल्पनारूपी बीज है ॥ त
ब चित्तरूपी अंकुर उत्पत्ति होता है ॥ तिसतें भावरूपी
संसार उत्पत्ति होता है ॥ जबके आत्मज्ञान करके कल्पना
रूपी बीज दग्ध होता है ॥ तब चित्तरूपी अंकुर नष्ट
हो जाता है ॥ हे रामजी चित्तरूपी अंकुर तें सुख दुःख
रूपी वृक्ष उत्पत्ति होता है ॥ जब चित्तरूपी अंकुर नष्ट
हो जावे ॥ तब सुख दुःख रूपी वृछ कहां तें उपजे ॥ हे राम
जी जेता कछु द्वैत भ्रम है ॥ सो अबोध करके उपजता
है ॥ बोध करके नष्ट अरु क्षय हो जाता है ॥ आत्मा जो

बोधीता

परमार्थसार है ॥ तिसी की भावना कर संसार भ्रम तें मु
क्ति होवैगा ॥ इति श्री निर्वाण प्रकर्णे संस्तत विचा
रो नाम सर्गः ॥ ४८ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे मुनीश्वर जो
कछु जानणे योग्य था सो मैं सब जाण्या है ॥ अर जो क
छु देषणे योग था सो देष्या है ॥ अब मैं परम पद विषे पू
र्ण आत्मा हूया हों ॥ तुमारे विज्ञानरूपी अमृत के संचणे
कर्के ॥ हे मुनीश्वर पूर्ण नें सब विश्व पूर्ण करा है ॥ पूर्ण
तें पूर्ण प्रतीत करी है ॥ पूर्ण विषे पूर्ण ही स्थित है ॥ अब र
हैत कछु नहीं ॥ इह मुजकों अब अनुभव हूया है ॥ हे मु
नीश्वर ऐसे मैं जाणकर लोकों के निमित्त तुम सों पूछ
ता हों ॥ अर बोध की दृढता निमित्त पूछता हों ॥ जो बा
लिक पिता सों पूछता है ॥ तब पिता उदवेग नहीं करती
तैसे तुम उदवेगवान नहीं होवणा ॥ हे मुनीश्वर श्रोत्र च
क्षु त्वचा रसना घ्राण पांचो इंद्री प्रत्यक्ष दृष्ट आवती
हैं ॥ जब इह मरजाता है ॥ तब तिस काल विषे विषयों कों
ग्रहण किंउ नहीं करतीयां ॥ अर जीवत ऐसे कैसे ग्रहण
करतीयां हैं ॥ अर मूये किंउ नहीं करतीयां ग्रहण ॥ अर घ
टादिकों की न्याई जड बाहर स्थित है ॥ अंतर इनका अ
नुभव कैसे होता है ॥ लोहे की सलाका वत भिन्न भिन्न इ
ह हैं ॥ इनका एकता होवणा कैसे हूया है परस्पर ॥ एक
जो आत्मा कर अनुभव होता है ॥ मैं देषता हों ॥ मैं सुणता हों
इत्यादिक एक ग्रीवृत्ति किंउ कर हूई है ॥ मैं समान कर्के
जाणता भी हों ॥ पर विसेष कर तुम सों पूछता हों ॥ श्रीव
शिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इंद्रीयों अर चित्तादिक अर घ
टपटादिक पदारथ ॥ निर्मल चेतन्य तें भिन्न नहीं ॥ आ
त्मतत्व प्रकासते भी सूक्ष्म है ॥ हे रामजी जब चेतन्य त
त्त तें चेतता पुर्यष्टका की भावना की वृत्त फुरी है ॥ तब इं
द्रीगणों सहित आगे देषता भई है ॥ तब चित्त के अंग
इंद्रीगण हूई हैं ॥ इनकी घनता कर्के चेतन्यतत पुर्यष्ट
का भाव कों प्राप्त हूया है ॥ तिस विषे सन घटादिक प
दारथ प्रतिबिंबत हूये हैं ॥ पुर्यष्टका विषे भासे हैं ॥ श्री
रामोवाच ॥ हे मुनीश्वर अनंत जगत जो रचे हैं ॥ अर

रूप आत्मा तें

महं आदर्श विषे प्रतिबिंबत हैं ॥ तिस पुरयष्टका का
रूप क्या है ॥ अरु कैसे हूई है ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रा
मजी आदि अरु अंत ते रहित जो जगत का बीजरूप
अनादि ब्रह्म है ॥ सो निरामय है ॥ अरु प्रकाशरूप है ॥ शु
ध चिन्मात्र कलनां ते रहित अचिंत है ॥ सो जब कलनां
के सन्मुख हूया ॥ तब तिसका नाम जीव हूया ॥ सो जीव
देह कों चेतता भया ॥ जब अहंभाव फुरया ॥ तब अहं
कार हूया ॥ जब मनन करणे लागा ॥ तब मन हूया ॥ जब
निश्चय करणे लागा ॥ तब बुधि हूई ॥ अरु इंद्रयें परमा
त्मा कों देषणे की भावनां हूई ॥ तब इंद्रीयां भई ॥ जब
देह की भावनां करणे लागा ॥ तब देह हूई ॥ घटपट की
भावनां हूई ॥ तब घटपट हूया ॥ इसी प्रकार जैसी जैं
सी भावना होती गई है ॥ तैसे पदार्थ होते गये हैं ॥ हे
रामजी एही स्वभाव जिसका है ॥ तिसकौं पुर्यष्टका क
हते हैं ॥ स्वरूप ते विपर्ययरूप जो दृस्य की ओर भाव
नां भई है ॥ अरु कर्तृत्व भोक्तृत्व सुषदुषादिक की भा
वनां कलनां अभिमान जो चित्तकला विषे हूया ॥ ति
स कर तिसकों जीव कहते हैं ॥ जैसी जैसी भावनां कों आ
कार हूया है ॥ तैसी तैसी वासनां कर्ते भया ॥ जैसे जलक
र संचयो हूया बीज ॥ टास पत्र फल फूल भाव कों प्रा
प्त होता है ॥ तैसे वासनां कर संचा हूया स्वरूप के प्रमा
द कर महा मोहजाल विषे गिरता है ॥ अैसे जानता है ॥
जो मैं मानुष देह सहित हों ॥ अथवा देवता हों स्थावर
हों ॥ इत्यादिक देह कों पाय कर देह साथ मिल्या हूया
जाणता है ॥ अैसे नहीं जाणता जो मैं चिदात्मा हों ॥ देह
साथ मिल्या हूया पछिन्न तुछरूप आप कों देषता है
इस मिथ्याज्ञान कर केद्रबता है ॥ देह विषे अभिमान
ककें वासनां के वस हूया चिरपर्यंत अधः ऊर्ध मध्य
विषे इह जीव भ्रमता है ॥ जैसे समुद्र विषे आया हूया
काष्ट तरंगों कर उछलता है ॥ अधः ऊर्ध कों जाता है ॥ अ
र जैसे घटीयंत्र की टिंडा अधः ऊर्ध कों जाती हैं ॥ तैसे जी
व वासनां के वस ते अधः ऊर्ध कों भ्रमता है ॥ अरु विचा

रुअरुअभ्यासकरआतमबोधकोप्राप्तहोताहै ॥ त
बसंसारबंधनतैंमुक्तिहोताहै ॥ आदिअरुअंततैंरहि
तजोआत्मपदहै ॥ तिसकोप्राप्तहोताहै ॥ बहुतकाल
जनोंकोंजोगाकरआत्मज्ञानकेवसतैंपरमपदकोंप्रा
प्तहोताहै ॥ हेरामजीस्वरूपतैंउतिरकरजीवइसप्र
कारजोमतेहैं ॥ अरुशरीरोंकोपावतेहैं ॥ अबइहसुण
जोचक्षादिकइंद्रीयांमृतककूयेंविषयोंकोकिसन
मितग्रहणनहीकरतीयां ॥ हेरामजीजबशुधतततवि
षेचितकलनांहोतीहै ॥ तबउहकलनांजीवरूपहोती
है ॥ बहुडमनसहितषट्इंद्रीयोंकोलेकरदेहरूपी
गेहविषेस्थितहोताहै ॥ तबबाह्यविषयोंकोग्रहण
कर्तीहै ॥ मनसहितषट्इंद्रीयोंकेसंबंधकरविषयों
कागहणहोताहै ॥ इनतैंरहितविषयोंकोकदाचित
नहींग्रहणकरती ॥ इसप्रकारइनविषेस्थितहोइ
करविषयोंकोंग्रहणकरताहै ॥ यद्यपिइंद्रीयांभिन
भिंनहैं ॥ तौभीइनकोएकठाकरलेतीहै ॥ इनकाएक
ठाहोवणांअहंकाररूपीतागेकरहोताहै ॥ देहइंद्री
यांमणकोंकीन्यांईहैं ॥ इनकौंएकठाकर्केजीवकह
ताहै ॥ मैंदेषताहों ॥ मैंसूंघताहों ॥ मैंबोलताहों ॥ मैंसुण
ताहों ॥ इत्यादिकइनकेअभिमानकर्केविषयोंकं
ग्रहणकर्तीहै ॥ हेरामजीदेहइंद्रीयांमनादिकजड
हैं ॥ परआतमाकीसत्तापायकरअपणेअपणेविष
यहुंकोंग्रहणकर्तीहैं ॥ जबलगपुर्यष्टकादेहविषे
होतीहै ॥ तबलगइंद्रीयांविषायोंकंग्रहणकरती
हैं ॥ जबपुर्यष्टकादेहसोंनिकसजातीहै ॥ तबइंद्रीयां
विषयोंकोनहींग्रहणकरती ॥ हेरामजीइहजोप्रत्य
क्षनेत्रनासकाकांनजिह्वात्वचाभासतीहै ॥ सोइह
इंद्रीयांनहीं ॥ इंद्रीसूक्ष्मतन्मात्राहैं ॥ इहतिनकेरह
णेकेस्थानहै ॥ जैसेगेहविषेजरोषेहोतेहैं ॥ तैसेइहस्था
नहैं ॥ अरजीवकारूपसुण ॥ हेरामजीआतमततसन
मोडपरणहै ॥ अरतिसकाप्रतिबिंबतहांपडताहै ॥ ज

हंतिर्मलवौरहोतीहै॥ जैसेजलनिर्मलविषेप्रतिबिं
बहोताहै॥ जैसेदोकुंडहोवें॥ एकजलजेकरपूरणहो
वे॥ दूसराजलतेंरहितहोवे॥ सोसूर्यकाप्रकाशदोनों
विषेतुल्यहोताहै॥ परजिसविषेजलहै॥ प्रतिबिंबति
हांहीहोताहै॥ जलकेहोलेलेकरप्रतिबिंबभीहलता
हैदृष्टआवताहै॥ अरजहांजलनहींतहांप्रतिबिंबनी
तहीं॥ तैसेजहांसात्विकअंसअंतहकर्णहोताहै॥ त
हांआतमाकाप्रतिबिंबजीवभीहोताहै॥ सोजबलग
शरीरविषेहोताहै॥ तबलगशरीरचैतन्यभासता
है॥ जबउहजीवकलापुरयिष्टकारूपशरीरकोत्या
गजाताहै॥ तबशरीरजडुभासताहै॥ जैसेकुंडसेंज
लनिकासलेजावे॥ अरकुंडसूर्यकेप्रतिबिंबकर
हीनभासताहै॥ तैसेअंतष्करणअरतन्मात्रापुरयि
ष्टकाविषेआतमाकाप्रतिबिंबहोताहै॥ जबपुरयि
ष्टकाशरीरकोत्यागजातीहै॥ तबशरीरजडभास
ताहै॥ हेरामजीजैसेझरोषेकेआगेंकोऊपदारथर
खाये॥ तबझरोषेकोपदारथकाज्ञानकछुनहींहो
ता॥ जोउनकास्वामीआनदेषताहै॥ तबपदारथको
ग्रहणआनकरताहै॥ तैसेइंद्रीयोंकेस्थानोंविषे
सत्तामतन्मात्राग्रहणकरणेवालीहोतीहै॥ तबवि
षयोंकोग्रहणकरतीहैं॥ जबनहींहोतीतबनहींग्रह
णकरतीयां॥ हेरामजीप्रतछदेषजोकोऊकथाका
श्रोतापुरुषकथाविषेबैठाहोताहै॥ अरचितउस
काअवरगौरनिकसजाताहै॥ तोप्रतछबैठाहै॥ प
रसुणताकछुनहीं॥ काहेतेंजोश्रवणइंद्रीमनकेसा
थगईहै॥ तैसेपुरयिष्टकानिकसजातीहै॥ तबमृ
तकहूयोंइंद्रीयांविषयऊंकोग्रहणनहींकरती
यां॥ हेरामजीअहंममतेंलेकरजोदृस्यहै॥ सोभीसर्ग
केआदिविषेआतमरूपीसमुद्रविषेतरंगावतफुरी
है॥ तिसकरआगेंदृस्यकेलनाहूईहै॥ सोनदेसनहै

नकानहै॥ नहूयाहे॥ इहसभअसतरूपहैं॥ वास्तव
कछु नहीं॥ ऐसेजाणकर असंगविचिर॥ संसारकेसु
षदुःषहर्षशोकरागद्वेषतें रहितहोकरविचिर॥ त
बतूं मायाकं तरजावेंगा॥ इतिश्रीनिरवाणप्रक
र्णेसंवेदनविचारोनामसर्गः॥४८॥ श्रीवशिष्ठो
वाच॥ हेरामजी वास्तवतें इंद्रीयांआदिकगण
कछु उपजे नहीं॥ जैसेआदिकमनजाब्रह्माकीउत्प
त्तिमेंतुजकोंकहीहे॥ सोसमतुजेंसुणीहे॥ जैसेंआदिजी
वपुरयिष्टकारूपब्रह्माउपजाहे॥ तैसेअवरभीउपजे
हैं॥ हेरामजीजीवपुरयिष्टकाविषेस्थितहोयकर॥ जैसी
जैसीभावनांकरतीगयाहे॥ तैसेतैसेभासणेलागा॥ बहु
डतिसकीसत्तापायकरइंद्रियआपणेआपणेंविषयों
कोंग्रहणकरणेलागी॥ अरवास्तवतेंइंद्रीयांभीकछुव
स्तनहीं॥ सत्तआत्माकेआभासकरपडीफुरतीहैं॥ इंद्री
अरइंद्रियोंकेअर्थइहसंवेदनतेंउपजेहैं॥ जैसेंउपजे
हैं॥ तैसेतुजकोंकहाहे॥ हेरामजीशुधसंवितमात्रसत्ता
विषेजोअहंउलेषहूयाहे॥ सोसंवेदनहूईहे॥ जोसंवे
दनजीवरूपपुरयिष्टकाभावकोंप्राप्तहोयेकरबुधि
मनअरपंचतन्मात्राकोंउपजायकरजीवकलाआप
हीतिसविषेप्रवेशकरस्थितभई॥ तिसकोंपुरयिष्टका
कहतेहैं॥ परइहउपजीभीस्पंदविषेहै॥ आत्माविषेउ
पजाकछुनहीं॥ सोआत्मानएकहे॥ नअनेकहे॥ अनंत
आत्मततआस्तिअनामयहे॥ अरवेदनांभीतिसतेंअ
नन्यरूपहे॥ इसकारणतेंकहाहे॥ जोपूर्णसततातेंइतर
कछुनहीं॥ हेरामजीतिसविषेनकछुचेतकलनांहे॥ न
कोउमननशक्तिहे॥ केवलशांतिसत्ताहे॥ तिसकोंपरमा
त्माकहतेहैं॥ सोमनसहितषट्इंद्रीयोंतेंअतीतहे॥ अ
चेतचिन्मात्रहे॥ तिसतेंजीवउत्पत्तिनयाहे॥ एहभीउपदे
शाकेनमित्तकहीताहे॥ वास्तवतेंकछुउपजानहीं॥ केवल
भ्रममात्रहे॥ जहांजीवउपजाहे॥ तहांतिसकोंअहंभावबि
पर्ययहूयाहे॥ एहीअविद्यारोगाहे॥ सोउपदेसकोंपायक

रलीन होजाता है ॥ जैसे निर्मली करजलकी मलिनता
लीन होइजाती है ॥ तैसे गुरु अरु शास्त्र के उपदेश को
पायकर अविद्या लीन होजाती है ॥ तब आत्मरूप अंकु
रश्रांति होजाते हैं ॥ ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है ॥ तिस
विषे आकाश भी स्थूल है ॥ जैसे परमाणु के आगे सुमेर
स्थूल होता है ॥ तैसे आकाश स्थूल है ॥ हे रामजी आत्मा वि
षे जो स्थूलता भासती है ॥ सो भ्रममात्र है ॥ जो बडे उदार आ
रंभ भासते हैं ॥ सो भी असत हैं ॥ अवर जगत के पदार्थों की
क्या बात है ॥ हे रामजी आत्मा विषे जगत कछु नहीं पाईता
काहे तें जो वस्तु असम्यक ज्ञान करके भासती है ॥ सो सम्य
क ज्ञान करके नहीं पाईती ॥ जेते कछु जगतजाल भास
ते हैं ॥ सो सब मायामात्र हैं ॥ अर्थ कछु सिध नहीं हो
ता ॥ जैसे मृगतृष्णा का जल यत्न करि भी पान कीया
नहीं जाता ॥ तैसे जगत पदार्थों कर कछु परमारथ
सिध नहीं होता ॥ अज्ञान करके भासते हैं ॥ हे रामजी जो
वस्तु संम्यक ज्ञान करके पाईये ॥ सो सत जाणीये ॥ जो
सम्यक ज्ञान करके न रहे ॥ सो भ्रममात्र जाणीये ॥ एह जी
व पुर्यष्टका अविद्या कि भ्रम है ॥ असत्त ही सत होइ भा
सता है ॥ जब गुर अरु शास्त्र का विचार होता है ॥ तब ज
गत भ्रम मिट जाता है ॥ अरु पुर्यष्टका विषे स्थित हो
इकर जैसी भावना करती है ॥ तैसी सिध होती है ॥ जैसे
बालिक अपणे परछावें विषे वैताल कल्पता है ॥ तैं
से जीव कल्प अपणे आप विषे देश काल तनतादिक
कल्पती है ॥ भावना के अनुसार तिस को भासते हैं ॥ जै
से बीज तें पत्र फूल फल टासादिक विस्तार होता है ॥
तैसे तन्मात्रा तें अवर भूत जात वध्ये ॥ अंतर बाहिर दे
श काल कृया कर्म कृये हैं ॥ आदि जीव फुरकर जैसा
संकल्प धारता भया ॥ तैसे होत भया ॥ सो एह संवेदन
नी आत्मा साथ अनन्यरूप है ॥ जैसे मरचे अरु तीक्ष्णता
अनन्यरूप है ॥ जैसे आकाश विषे शून्यता अभिन्नरूप

८०
80

है॥ तैसे आतमा विषे वेदना अनन्यरूप है॥ तिस वे
दना उपजकर तिस्कै धारता जो एह पदारथ ऐसे
हैं॥ एसे होइ॥ सो तैसें स्थित हैं॥ अन्यथा कदाचि
त नहीं होते॥ जैसे आदि जीव फुरकर तिस्का धारता
है॥ तिसका नाम नैत है॥ अर स्वरूपतें सर्वात्मा ही है
आत्मसत्ता एरूप धारकर स्थित भई है॥ जैसे एक
ही गन्नेकी रस ग्राकर खंडादिक विकारोंको पावती
है॥ जैसे एक मृतका घट मट टिंट मो जो आदिक वि
कारोंकों पावती है॥ तैसे आत्मसत्ता सर्वसंज्ञाको पा
वती है॥ जैसे एक ही जलकी रस पत्र फल फल वासा
दिक होयकर भासता है॥ तैसे एक ही सत्ता घट पट
कंध गादी आदिक अकार हो भासती है॥ हे रामजी जै
से आदि जीवने तिस्कै कीया है॥ तैसे ही स्थिति है॥ अन्य
था कदाचित नहीं होती पर जागत काल विषे ऐसे है
वास्तवतें न बिंब है॥ न प्रतिबिंब है॥ [illegible] ॥ काहेतें
जो द्वैत विषे होते हैं॥ सो द्वैत कछु नहीं॥ केवल चिदात्
दत्व ल आत्मतत्व अपने आप विषे स्थित है॥ देहादि
कभी चिन्मात्ररूप हैं॥ हे रामजी जेता कछु जगत भासता
है॥ सो आत्माका कंचनरूप है॥ जैसे जेवडी सर्प भासती है
तैसे आत्मा जगतरूप हो भासता है॥ जैसे स्वर्न भूषण हो
भासता है॥ जैसे स्वर्न विषे भूषण कछु वस्तु नहीं॥ तैसे आ
त्मा विषे द्रस्य वास्तव नहीं॥ जैसे स्वप्नपतन असत ही स
त हो भासता है॥ तैसे जीवकों देह भासती है॥ हे रामजी आ
त्मसत्ता जिउकी तिउ है॥ पर फुरनेकर अनेकरूप धार
ती है॥ जैसे एक नट या अनेक सांगोंको धारता है॥ तैसे
आत्मसत्ता देहादिक अनेक अकारोंको धारती है॥ जैसे
स्वप्ने विषे एक ही अनेक रूपधारी होता है॥ तैसे जाग्रत
विषे नानारूपकों धारता है॥ हे रामजी आत्म नित्य शुद्ध
सर्वका आपणा आप है॥ अपने स्वरूपके प्रमाद कर

आपकोजन्ममरनजानताहै॥सोजन्ममरणअसतरूपहै
जैसेकोउपुरुषआपकोंस्वपनेंविषेस्वानरूपजाणै
तैसेआपकोइहजन्मतामरतादेषताहै॥जैसेजैसेइ
सकोंपूरवभावनांधडहोरहीहै॥तैसातैसाहीभासता
है॥भ्रमकरकेअसतकोसतपडाजानताहै॥जैसेस्वप्ने
विषेवस्तकोअवस्त॥अरवस्तकोंअवस्तदेषताहै॥तैं
सेजागतविषेविपर्ययदेषताहै॥जैसेजागतज्ञानतैं
स्वप्नभ्रमनिवृत्तहोजाताहै॥तैसेआत्माअधिष्टानके
ज्ञानतैंजगतभ्रमनिवर्तहोजाताहै॥जैसेपूरवउष्कृत
कर्मकीयाहोवै॥अरतिसकेपाछैंसुकृतकर्मकरीये
तबउहअछादयाजाताहै॥तैसेपूरवसंस्कारजोनीच
वासनांहोतीहै॥अरपाछैंआतमततकाअभ्यासक
रीये॥तबपुरुषप्रयत्नकरकेंमलिनवासनानष्टहोजा
तीहै॥जबलगवासनामलिनहोतीहै॥तबलगउपज
ताबिनसतापडागोतेषाताहै॥जबसंतोकेसंगअर
शास्त्रकेविचारकरआत्मज्ञानउत्पतिहोताहै॥त
बसंसारबंधनतैंछूटताहै॥अन्यथानहींछूटताहै
रामजीजीवचितवासनांकेलेककरआवरताहै॥अ
रअन्यथानहींछूटता॥अरूँपीमंदरविषेबैठक
रसोअनेकभ्रमकोंदेषताहै॥आदिजीवजोफुरताहै
सोअपणेस्वरूपकोंत्यागकरअनातमभ्रमकूंदेष
तामयाहै॥जैसेबालिकपछावेंविषेभूतकल्पै॥तैसे
कल्पकरजैसीजैसीभावनांकरी॥तैसेभासणेलागा
आदिजीवपुरयष्टकाविषेस्थितभया॥पुरयष्टकाक्या
कहीये॥बुधिमनअहंकारअरतन्मात्राइनकाना
मपुरयष्टकाहै॥अरअतिवाहकदेहहै॥चैतन्यआ
त्माअमृतहै॥आकाशनीतिसकेनिकटस्थूलहै॥
प्राणवाइगुंछेकेसमानहै॥देहसुमेरकेसमानहै॥अं
सासूक्ष्मजीवहै॥सुषुप्तजडरूप॥अरस्वप्नभ्रमदों
नोंअवस्थाविषेस्थावरजंगमरूपजीवपडेभटकते
हैं॥कबहूंसषोपतविषेस्थितहोतेहैं॥कबहूंस्वप्नेवि

बेस्थितहोतेहैं॥ इसप्रकारदोनोंअवस्थाविषेजीवप
डेभ्रमतेहैं॥ हेरामजीसर्वकादेहअतिवाहकहै॥ ति
सीदेहकरपडेचेष्टाकर्तेहैं॥ कबहूंस्थावरविषेजा
तेहैं॥ तबवृक्षपथरादिकयोनकोंपावतेहैं॥ जोस्वपनें
विषेहोतेहैं॥ तोजंगमयोनकूंपावतेहैं॥ सोभीकर्मवा
सनाकेअनुसारपावतेहैं॥ जोतामसीवासनाघनतर
होतीहै॥ तबकल्पवृक्षचिंतामणिआदिकस्वरूपकों
प्राप्तहोतेहैं॥ जोकेवलतामसीघनतमोहरूपहोतीहै
तबअवरवृक्षपथरादिकयोनकोंपावतेहैं॥ इसका
नामसुषुप्तहै॥ सोलयघनरूपहै॥ अरतिसतेंइतर
मोह विक्षेपरूपस्वप्नअवस्थाहै॥ कबहूंतिसविषेहोता
है॥ कबहूंसुषुप्तरूपस्थावरहोताहै॥ हेरामजीसुषुप्त
अवस्थाविषेवासनासुषुप्तरूपहोतीहै॥ सोबहुरउ
गमतीहै॥ इसकरकेमोहरूपहै॥ अरतिससुषुप्ततें
जबउतरताहै॥ तबविक्षेपरूपहोताहै॥ जबबोधहोवे
तबजागतअवस्थाकोंपावे॥ सोजागतदोप्रकारकी
है॥ सोईजागतहै॥ जोलेअरविक्षेपतेंरहितऔचेतन्य
अवस्थाहै॥ तिसतेंरहितहै॥ सोअवरमनोराजसनस्वप
नरूपहै॥ एकजीवन्मुक्तिजागतहै॥ दूसरीविदेहमुक्ति
है॥ जीवन्मुक्तितुरीयारूपहै॥ विदेहमुक्तितुर्याअतीत
है॥ इहअवस्थाजीवकोंबोधकरप्राप्तहोतीहैं॥ अरबो
धपुरुषप्रयत्नकरहोताहै॥ इसतेंरहितनहींहोता॥
हेरामजीजीवकूंकाफुरणांज्ञानरूपहै॥ जोदृस्यकीओ
रलागताहै॥ तबउहउहीरूपहोजाताहै॥ अरजोसतकी
ओरलागताहै॥ तबसतरूपहोजाताहै॥ जबदृस्यकेस
न्मुखहोताहै॥ तबदीरघभ्रमकोंदेखताहै॥ जीवकेअंत
रजोसत्यरूपहोइफुरताहै॥ सोभीआत्मसत्तातेंइतर
कछुवस्तुनहीं॥ जैसेवलनदोईविषेदाणोंवतजलभी
पडाउछलताहै॥ सोजलतेंइतरकछुवस्तनहीं॥ तैसे
आत्माबिनाजीवकेअंतरकछुवस्तुनहीं॥ अवरसत्यजो
भासतीहै॥ सोमायामात्रहै॥ हेरामजीजीवकोंस्वरूपके
प्रमादकरकेसत्यभासतीहै॥ सोसतवतहोगईहै॥ तिस

करनानाप्रकारकीविश्वभासतीहै॥ अरनानाप्रकार
कीवासनांपडीफुरतीहै॥ तिसवासनाकरबंधमानकू
याहै॥ जबवासनाक्षयहोवै॥ तबमुक्तिरूपहै॥ हेराम
जीघनवासनांमोहरूपकानामसुषुप्तजडअवस्थाहै
अरक्षीणस्वप्नरूपहै॥ जबस्वरूपकाप्रमादहोताहै॥ त
बदृश्यविषेसततबुधिहोतीहै॥ तिसविषेप्रतीतहोती
है॥ तबनानाप्रकारकीवासनांउदैहोतीहै॥ अरजोस्वरू
पकासाक्षात्कारहोताहै॥ तबसंसारसत्तानासहोजाती
है॥ बऊडवासनांनहींफुरती॥ हेरामजीवासनांतबल
गफुरतीहै॥ जबलगदृश्यविषेसततबुधिहोतीहै॥ ज
बजगतकाअत्यंतअभावकूया॥ तबवासनांभीनहींर
हिती॥ जैसेभूषणगलिकरस्वर्णकीया॥ तबभूषणबु
धिनहींरहिती॥ जोअज्ञानकरवस्तउपजीहै॥ सोज्ञान
करलीनहोजातीहै॥ सोवासनांभीअबोधकरउपजी
है॥ बोधतेलीनहोइजातीहै॥ हेरामजीघनवासनांकर
सुषुप्तजडअवस्थाहोतीहै॥ अरतनवासनांकरस्वप्न
देषीताहै॥ घनवासनांमोहकेरजीवस्थावरअवस्था
कौप्राप्तहोतेहैं॥ अरमध्यवासनांकरतिर्यगयोनिपशु
पंछीसर्पादिककौप्राप्तहोतेहैं॥ अरतनुवासनांकरम
नुष्यादिकशरीरकौपावताहै॥ अरनष्टवासनांकर
मोक्षपदकौपावताहै॥ हेरामजीइहजगतसभसंक
ल्पकररचितहै॥ बाह्यघटपटादिककौजोदेषताहै
अरग्रहणकरताहै॥ सोएकअंतरदेहविषेस्थितहो
इकरबाह्यघटपटादिकहोइकेस्थितहोताहै॥ तिन
कौग्रहणकरताहै॥ ग्राह्यग्राहकसंबंधदेषताहै॥ इह
मैंग्रहणकीयाहै॥ इहमैंलीयाहै॥ अरजोज्ञानवानहैं॥
सोनकछुग्रहणकरणेकाअभिमानकरताहै॥ नकछु
त्यागणेकाअभिमानकरताहै॥ तिसकौअंतरबाह्य
सत्चिदाकाशभासताहै॥ चेतन्यसत्ताकाइहचमत्का
रहै॥ तीनोजगतरूपहोयकरउहीप्रकाशताहै॥ रंचक
मात्रभीकछुअन्यनहीं॥ केवलआत्मसत्ताअपणेआ
पविषेस्थितहै॥ जैसेसमुद्रविषेतरंगबुदबुदेहोकरभा
सतेहैं॥ परजलहीजलहै॥ जलतेइतरकछुनहीं॥

तैसे आत्मा जगत रूप होइ कर भासता है॥ अवर द्वैत
वस्तु कछु नहीं॥ इति श्री निर्वाण प्रकर्णे यथार्थ उ
पदेशो नाम सर्गः॥ ५० ॥वशिष्ठोवाच॥ हे राम
जी जैसे जीव कों स्वप्ने विषे संसार उदै होता है॥ सो कल्प
ना मात्र होता है॥ न सत है॥ न असत है॥ जीव को एक फु
रणे कर भ्रम भासता है॥ तैसे इह जाग्रत अवस्था भ्रम
मात्र है॥ स्वप्न अर जाग्रत एक रूप है॥ जैसे स्वप्ने विषे जा
ग्रत का एक छिण दीरघ काल हो जाता है॥ तैसे स्वरूप
के प्रमाद कर इस कों जाग्रत भी दीरघ काल का भ्रम
हूया है॥ सत को असत जाणता है॥ अर असत को सत
जाणता है॥ जड को चैतन्य जाणता है॥ अर चैतन्य को
जड जाणता है॥ विपर्ये ज्ञान कर के इस प्रकार जाण
ता है॥ जैसे एक ही जीव स्वप्ने विषे अनेकता को प्राप्त हो
ता है॥ तैसे आदि जीव एक तें अनेक हो भासता है॥ जैसे
स्थाणु विषे चोर भ्रम भासता है॥ तैसे आतमा विषे ती
नों जगत भ्रम भासते हैं॥ जैसे सुषुप्त तें स्वप्न भ्रम उदै
होता है॥ तैसे अद्वैत आतमतत विषे जगत भ्रम होता
है॥ आत्मा अनंत सर्वगति है॥ जीव का बीज रूप है॥ जैं
सा उस के आगे फुरणा होता है॥ तैसा सिध होकर भास
ता है॥ हे रामजी जिन पुरषों कं स्वरूप की स्थिति भई है॥
सो सदा निसंग होइ कर विचरते हैं॥ जैसे पुंडरीकाक्ष
विष्णजी निःसंगता उपदेश करेंगे॥ तिस को पाय क
र अर्जुन मुक्त होइ कर विचरेगा॥ तैसे हे महाबाहो तुं
म भी विचरो॥ हे रामजी पांडु का पुत्र अर्जुन नाम जैसे
सुख साथ जीवणा व्यतीत करेगा॥ सर्व विवहार विषे भी
सुखा स्वस्थ रहेगा॥ तैसे तुं भी निःसंग होइ कर विचिर
॥श्रीरामोवाच॥ हे ब्राह्मण पांडु का पुत्र अर्जुन कब
होवेगा॥ अर कैसे विष्णुजी तिस कों निःसंगता उपदेश
करेंगे॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी आस्ति सन्मा
त्र जो तत है॥ जिस विषे आत्मादिक संज्ञा कल्प कर कही
है॥ सो आतमसत्ता अपणे आप विषे स्थित है॥ आदि अ
र अंत तें रहित है॥ जैसे आकाश विषे आकाश स्थित है

तैसे निर्मल तत आपणें आप विषे स्थित है ॥ तिस वि
षे जगत भ्रम फुरता है ॥ जैसे स्वप्न विषे भ्रमण फुरते हैं
तैसे आत्मा विषे चौदस प्रकार के भूतजात फुरते हैं ॥
इस संसार जाल विषे भूत प्राणी पडे फुरते हैं ॥ जैसे पं
छी जाल विषे भ्रमते हैं ॥ तैसे जगत विषे जीव भ्रमते
हैं ॥ चंद्रमा सूर्य लोकपाल होय कर स्थित हैं ॥ पंच भू
तों का तिनहूं क्रम रचा है ॥ जो इह पुण्य ग्रहण करणें यो
ग्य है ॥ इह पाप त्यागणें योग्य है ॥ पुन्यों कर स्वर्गादिक
सुख प्राप्त होता है ॥ पाप कर नर्क प्राप्त होता है ॥ इह मर्या
दा लोकपालों स्थापन करी है ॥ इस प्रकार संसार रूपी
नदी पर आरूढ हूये पडे वहते हैं ॥ जैसी संसार रूपी
नदी वहती है ॥ अछिन्न रूप भासती है ॥ अर नास रू
प क्षण क्षण विषे पडी नष्ट होती है ॥ जैसे नदी का वेग
समान प्रवाह करके उही पडा भासता है ॥ पर होता अ
वर है ॥ क्षण क्षण विषे उह गया पुं जाता रहिता है ॥
तैसे संसार अपने काल विषे अछिन्न रूप सत भास
ता है ॥ अर आत्मा की अपेक्षा करके नास रूप है ॥ क्षण
क्षण विषे पडा नष्ट होता है ॥ तिस जगत विषे वैवस्व
त सूर्य का पुत्र यमराज लोकपाल बडा प्रतापवान
स्थित है ॥ सो बडा तेजवान है ॥ अर सभ जीवों को मार
ता है ॥ ऐसे नेम को धार कर प्रजा विषे स्थित है ॥ आ
दि प्रवाह इस प्रकार हूया है ॥ तिस पतन प्रवाह कार्य
विषे स्थित है ॥ जीवों को मारणें ॥ अर दंड करणें एही
उसका नेम है ॥ अर चित विषे पहाड की न्यांई स्थित है
सो यमराज चौं चौं युगों पर्यंत एक नेम को धारता है ॥
जो किसी जीव को मारणें नहीं ॥ कबहूं अष्ट वर्ष ॥ क
बहूं बारह वर्ष का नेम धारता है ॥ कबहूं सप्त वर्ष ॥
कबहूं षोडश वर्ष नेम धारता है ॥ तब उदासीन की न्यां
ई स्थित होता है ॥ किसी को मारता नहीं ॥ तब पृथ्वी वि
षे नीरंभ्र अनंत हो जाते हैं ॥ चलणें को मार्ग नहीं रहता
तब केई दुष्ट जीव होते हैं ॥ सो जीवहूं को दुःख देते हैं ॥ ति
स कर पृथ्वी भारी होती है ॥ अर दुःखी होती है ॥ ति

स पृथिवी के भार उतारणे के निमित विष्णु जी अव
तार धार करि दुष्ट जीवों कों नष्ट करते हैं ॥ धर्म मार्ग
को पुष्ट करते हैं ॥ अरु दुष्टों को नाश करते हैं ॥ हे रामजी
को इस प्रकार नेम को धारणे हारे यमराज अनंत युग
अपणे विवहार कों करते ब्यतीत होगये हैं ॥ भूत अ
रु जगत अनेक होगये हैं ॥ इस सृष्टि का जो अब वैव
स्वत यम है ॥ सो आगे नेम करेगा ॥ बीदश वर्ष पर्यंत
किसी कों न मारेगा ॥ ऐसा नेम करेगा ॥ तब जीव बहु कु
र्म करणे लागेंगे ॥ पृथिवी भूतों साथ नीरंध्र होजावे
गी ॥ जैसे रत्न साथ गुच्छे संघट होजाते हैं ॥ तैसे पृथिवी
प्राणीयों साथ संघट होजावेगी ॥ तब पृथिवी भार सा
थ दुखित होय कर विष्णु जी की शरणि जावेगी ॥ तब विष्णु
जी दोइ देह कों धार कर पृथिवी का भार उतार हिंगे ॥
अरु सभ देवता अवतार धार कर साथ आवहिंगे ॥
नरों विषे नाइक भाव कों प्राप्त होवहिंगा ॥ एक देह क
र तो वसुदेव के घर विषे पुत्र वासुदेव नाम होवहिगा
अरु दूसरी देह कर पांडु के गेह विषे अर्जुन नाम हो
वैगा ॥ युधिष्टिर नाम धर्म का पुत्र होवहिगा ॥ समुद्र जि
सकी मेखला है ॥ ऐसी जो है पृथिवी तिसका राज क
रैगा ॥ पांडु का पुत्र धर्म का वेता तिसके चाचे का पुत्र दु
र्योधन होवहिगा ॥ तिसका अरु भीम का बडा युद्ध हो
वैगा ॥ दोनों और संग्राम की जो जैसा होवैगा ॥ अगारी
१८ अक्षौहिणी सेना एकत्री होवेगी ॥ तिस विषे बडे
नयानिक योधा होवहिंगे ॥ तिनके बल कर हरि पृथि
वी का भार उतारेंगे ॥ हे रामजी तिस सेना के युध विषे
विष्णु का जो अर्जुन नाम देह होवहिगा ॥ सो गांडीव ध
नुष धारेगा ॥ सो प्राकित भाव विषे स्थित होवैगा ॥ हर्ष
शोकादिक विकारों संयुक्त नर धर्म होवैगा ॥ सो युध
विषे आपणे संबंधीयों कों देष कर मूर्छित होवैगा
मोह कातरता कर तिसका हाथ तें धनुष गिर पडेगा ॥
अरु आर्तिवंत होवैगा ॥ तब बोध देय कर हरि तिसकों

उपदेश करेंगे ॥ दोनों सेना के मध्य विषे जब अर्जुन
मोहित होयकर गिरेगा ॥ तब कहेंगे हे राजसिंह अ-
र्जुन तूं मनुष्यभाव कों किउं प्राप्त हूया है ॥ अरु मोहि-
त भाव किउं हूया है ॥ इस कादरता कों त्यागकर ॥ तूं
परमप्रकाश आत्मतत है ॥ सर्व का आतमा तूं अनंद
अविनाशी अनंत है ॥ आदि अंत मध्य तें रहित है ॥ व-
प्या कादरता कों किउं प्राप्त हूया है ॥ सर्वव्यापी परम अ-
कुररूप है ॥ अरु निर्मल है ॥ दुःख के स्पर्श तें रहित है
नित्य शुध निर्मल है ॥ हे अर्जुन आत्मा न जन्मता है ॥
न मरता है ॥ होयकर बहुरि कछु अवर नहीं होता ॥
काहे तें जो अज है ॥ नित्य है ॥ निरंतर पुरातन है ॥ स-
र्व की आदि है ॥ तिसका शरीर के नाश हूये नाश न
हीं होता ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे श्री नाराय-
णऽवतारो नाम सर्गः ॥ ४१ ॥ श्री भगवानोवाच
हे अर्जुन जो इस आत्मा कों हंता मानते हैं ॥ कि हन-
ना हूया करता है ॥ अरु इस आत्मा कों हत होता मान-
ते हैं ॥ सो आत्मा कों नहीं जानते ॥ न इह आत्मा मारता
है ॥ न मरता है ॥ काहे तें मारता मरता नहीं ॥ जो अक्रिय रू-
प है ॥ अरु निरवैव है ॥ आकाश तें भी सूक्ष्म है ॥ तिस
आत्मा परमेश्वर कों कौन किस प्रकार मारे ॥ हे अ-
र्जुन तूं अहंकार रूप नहीं ॥ इस अनात्म अभिमान
रूपी मल कों त्यागकर ॥ तूं जन्म मरण तें रहित है ॥
मुक्तिरूप है ॥ जिस पुरुष कों अनात्मा विषे अहंकार
भाव नहीं ॥ अरु बुधि जिसकी कर्तव्य भोक्तृत्व विषे
लिपायमान नहीं होती ॥ सो पुरुष सर्व विश्व कों मारे
तब भी उसकों तु नहीं मारता ॥ न बंधमान होता है ॥ हे
अर्जुन जिसकों जैसा धड निश्चय होता है ॥ तैसा ही ति-
सकों अनुभव होता है ॥ तांतें इह मैं सो अरु मेरा जो
मलिन संवित निश्चय होता है ॥ तिसकों त्यागकर स्व-
रूप विषे स्थित हो ॥ जो ऐसी भावनां विषे स्थित नहीं

होते ॥ अर आपकों नष्ट होता मानते हैं ॥ सो सुख दुःख के
रागद्वेष विषे पडे जलते हैं ॥ हे अर्जुन आपने गुणों के ॥
अंसक मों विषे वर्तते हैं ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन तें
पांचों तत्त्व आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी उपजे हैं ॥
तिन भूतों के अंस श्रवण त्वचा ॥ नासका ॥ नेत्र जिह्वा ॥
विषे स्थित है ॥ ऊह आपणे विषयन कों ग्रहण करते हैं ॥
नेत्र रूप कूं ग्रहण कर्ते हैं ॥ त्वचा स्पर्श कों ॥ जिह्वा रस
कों ग्रहण करती है ॥ नासका गंध कों ॥ श्रवण शब्द कों
ग्रहण करते हैं ॥ तिस विषे अहंकार कर विमूढ हूया
है आतमा जिसका ॥ सो आपकों कर्ता मानता है ॥ मैं दे
षता हों ॥ मैं सुणता हों ॥ स्पर्श करता हों ॥ स्वाद लेता हों ॥ गंध
२९ लेता हों ॥ हे अर्जुन ऐसे न कर्म कलना करके रचे हैं ॥ सो
इंद्रीयों कर कर्म पडे होते हैं ॥ इह अहंभाव कर वृथा
कलेश का भागी होता है ॥ बहुतों मिलकर कर्म की
या ॥ अर तिन विषे एक ही अभिमानी होय कर दुख पा
वता है ॥ सो बडा आश्चर्य है ॥ देह इंद्रीयों कर कर्म होते
हैं ॥ अर अभिमानी होइ कर सुख दुःख विषे रागद्वेष क
र जीव जलता है ॥ तांतें इनका संग अभिमान त्याग कर
आपणे स्वरूप विषे स्थित हो ॥ मन कर बुधि कर केव
ल इंद्रीयों कर जोगी कर्म करता है ॥ अर तिन विषे अ
भिमान वर्तन नहीं करता ॥ निहसंग होय कर कर्ता है
तिस कों आतमपद की सिधता का कारण होते हैं ॥ हे
अर्जुन इस जीव कों अहंकार ही दुखदाई है ॥ अनात्मा
विषे आत्म अभिमान कर्ता है ॥ तिस अभिमान सहि
त जो कछु कर्म कर्ता है ॥ सो सभ दुखदाइक होते हैं ॥ अ
र जो अहंकार रूपी विष के चूरण तें रहित होय कर
चेष्टा करता है ॥ लेता है ॥ देता है सो दुःख का कारण न
हीं होती ॥ सदा सुखरूप है ॥ हे अर्जुन सुंदर शरीर हो
वै ॥ अर विष्टा में लसा अपवित्र मलिन कीया होवै ॥
तब तिसकी सोभा जाती रहिती है ॥ तैसे बुधिवान भी
होवै ॥ अर शास्त्र का वेता होवै ॥ इत्यादिक गुणों कर सं
पन्न होवै ॥ अर अनात्म विषे आतम अभिमान होवै

तिसकौ भी सो भाजाता रहता है ॥ अरु जो निर्मम निरहंका
र होवे ॥ अरु सुख दुःख विषे सम है ॥ ऐसा जो क्षमावान
है ॥ सो युक्त कर्म करै ॥ अथवा अयुक्त कर्म करै ॥ ति
सकौं किसी कर्म का स्पर्श नहीं होता ॥ तातें हे अर्जुन
ऐसे निश्चैवान होयकर कर्म कौं करो ॥ हे पांडु पुत्र
इह युध कर्म तेरा धर्म है सो कर ॥ अपनां कर्म अप्रति
कूड भी होवे पर कल्याण कर्ता है ॥ अरु पराया धर्म उ
त्तम भी होवै तो भी दुखदाइक है ॥ अपणां धर्म अमृत
की न्यांई अल्प भी सुखदाइक है ॥ हे अर्जुन भावें जैसा
कर्म कर ॥ जो तेरे विषे अहंकर्ता भाव न होवैगा ॥ तब तु
ज कौं स्पर्श न करेगा ॥ संग अभिमान कौं त्याग कर ॥ यो
ग विषे स्थित होयकर कर्म कौं कर ॥ जो निहसंग पुरु
ष है ॥ तिसकौं कोउ कर्म आन प्राप्त होवै ॥ तिसकौं क
र्ता क्रूया बंधमान नहीं होता ॥ तातें ब्रह्मरूप होयकर
ब्रह्ममय कर्म कौं कर ॥ तब शीघ्र ही ब्रह्मरूप हो जावैं
गा ॥ जो कछु आचार कर्म होवै ॥ सो ब्रह्म विषे अर्पण क
र ॥ हे अर्जुन सर्व कर्म ईश्वर विषे अर्पण कर ॥ सो ई
ईश्वर आत्मा है ॥ निर्भय कहीये ॥ निरदुःख कहीये ॥ भा
वनां कर भावित क्रूया ॥ ईश्वर आत्मा होयकर पृथि
वी का भूषण होइकै विचिर ॥ संन्यास जोग जुगत हो
इकर कर्मों कौं कर्ता मुक्ति रूप होवैंगा ॥ सर्व संकल्प
का संन्यास ॥ समझ्यां तिमन होइकर विचिर ॥ अर्जु
न उवाच ॥ हे भगवन संग त्याग किसकौं कहते हैं ॥ अ
रु ईश्वर अर्पण किसकौं कहते हैं ॥ अरु ईश्वर अर्पण
रब्रह्म अर्पण किसकौं कहते हैं ॥ अरु संन्यास किसकौं कहते
हैं ॥ योग किसकौं कहते हैं ॥ इनकौं विभाग कर कहो
॥ श्रीभगवानोवाच ॥ हे
महामोह के निवृत अर्थ ॥ जो किसकौं कहते हैं ॥ ज
अर्जुन तें प्रथम ब्रह्म सुण जो किसकौं कहते हैं ॥ अवर
हो सर्व संकल्प शांति हैं ॥ एक चघन वेदनी है ॥ अवर
कछु भावनां का उत्थान नहीं ॥ अचेत चिन्मात्र सत्ता

है ॥ तिसकोपरब्रह्मकहतेहैं ॥ तिसकौंजाणकर ऐसा
पावणेकाउद्यमकरणा ॥ जिसविचारसाथ तिसकौंपा
ई है ॥ तिसकानाम ज्ञानहै ॥ अर तिसविषे स्थित होवणा
तिसकानामजोगहै ॥ अर इहसर्वब्रह्महै ॥ मैंब्रह्महौं ॥
सर्वजगतमैंहीहों ॥ ब्रह्मतें इतर कछु भावनां न होकर
णी ॥ इसकानाम ब्रह्मअर्पणहै ॥ अर नानाप्रकारकाजो
जगत भासताहै सो क्याहै ॥ अंतर भी शून्य ॥ अर बाहिर
भी शून्य ॥ जिसकौं शिलाकी उपमाहै ॥ ऐसा जो आकाश
वत सत्तारूपहै ॥ सो न शून्यहै ॥ न शिलावत है ॥ अस्तिमा
त्र है ॥ तिसके आश्रे स्पंदकलनां फुरनेकी न्याई ॥ कछु
होइकर अन्यवत भासती है ॥ सो जगतरूप होइकर स्थि
त भई है परकैसी है ॥ आकाशकी न्याई शून्य है ॥ तिस वि
षे जो विभागकलनां हूई है ॥ सो कोट कोट अंस जीवक
ला होती गई है ॥ एकही अपृथक अनेकभूत पृथक
पृथक होइकर स्थित भई है ॥ जैसे समुद्रविषे तरंगबुद
बुदे अनेकरूप होकर स्थित होते हैं ॥ सो जलही हैं ॥ अव
र कछु नहीं ॥ एकही जल अनेकरूप भासताहै ॥ तैसे ए
कही वस्तु सत्ता घटपटादिक प्रकार हो भासती है ॥ सं
वितसारम आत्माविषे भेदकलनां कछु नहीं ॥ अज्ञा
नकरके अनेकरूप भेदकलनां विकल्पजाल भास
ते हैं ॥ अर अनेकभावकौं एक देखणा भी अज्ञान है ॥ ए
क अनेक देखणां क्या है ॥ अर अनेक एक देखणा क्या
है ॥ जो एक आत्मा है ॥ तिसकौं अनेक नानारूप देखणां
सो अज्ञान है ॥ अर भिन्न भिंन देह इंद्रीयां प्राण मन बुधा
दिक अनेक हैं ॥ तिसविषे अहं प्रतीत कर एकत्र भाव
देखणां सो भी अज्ञान है ॥ अज्ञानकर इह कलनां हूई
है ॥ अर ज्ञानकर कै नष्ट होजाती है ॥ हे अर्जुन जेते कछु सं
कल्पजाल हैं ॥ तिनको त्याग करणा ॥ इसका नाम असंग
संगतें रहित कहते हैं ॥ अर सभ कलनां ध्यानकौं ईश्व
रसाथ एकत्र भावनां होकरणी ॥ इस भावनां कर द्वैत भा
व गलित होजाता है ॥ इसका नाम ईश्वरअर्पण कहते हैं
हे अर्जुन जब ऐसी अभेद भावनां होती है ॥ तब आत्मा

बोध प्राप्त होता है ॥ और बोध कर सर्वज्ञ हुए अर्थ एक
रूप भासते हैं ॥ सर्वज्ञों का एक ही ज्ञान भासता है ॥
और एक ही अर्थ सर्वज्ञों विषे भासता है ॥ हे अर्जुन स
र्व जगत मैं ही हों ॥ मैं ही दिशा हों ॥ मैं ही आकाश हों ॥ मैं ही
कर्म हों ॥ मैं ही काल हों ॥ देवता मैं हों ॥ अदेवता मैं हों ॥ ऐ
सा जो सर्वात्मा मैं हों ॥ सो तूं मेरे विषे मन कों लगाइ ॥ और
मेरी भक्ति कर ॥ और मेरा ही यजन कर ॥ और मुझ ही कों
नमस्कार कर ॥ तब तूं मुझ ही कों प्राप्त होवहिंगा ॥ हे अ
र्जुन मैं आत्मा हों ॥ तूं मेरे हों परायण हो ॥ अर्जुन उवाच
हे देवेश ऐसे तेरे दो रूप हैं ॥ एक पर रूप है ॥ और एक
अपर रूप है ॥ तिन दोनों रूपों विषे मैं किस का आश्रय
करों ॥ जिस कर मैं परम सिधता कों प्राप्त होंवों ॥ श्री भग
वानोवाच ॥ हे अनघ एक समान रूप है ॥ और एक प
रम रूप है ॥ एह जो शंख चक्रादिक कर संयुक्त है ॥ सो मे
रा समान रूप है ॥ और परम रूप मेरा आदि अंत तें रहि
त एक अनामय है ॥ सो ब्रह्म आत्मा परमात्मा आदिक
शब्दों कर कहीता है ॥ जब लग तूं अप्रबोध हैं ॥ अना
त्म देहादिक विषे तुझ कों आत्म अभिमान है ॥ तब लग
मेरे चतुर्भुज प्रकार की पूजा परायण हो ॥ परकर्मों कों
कर ॥ जब प्रबोध होवैंगा ॥ तब मेरे परम रूप कों प्राप्त हों
वहिंगा ॥ आदि मध्य अंत तें रहित मेरे रूप कों प्राप्त हो
वहिंगा ॥ तिस कों पाय कर बहुड़ जन्म मरण विषे न आ
वैंगा ॥ जब तूं शास्त्रों का नात्माक तें हूया ज्ञानवान हूया
हैं ॥ तब आत्मा कर आत्मा सों मेरा पूजन कर ॥ मैं सर्व का
आत्मा हों ॥ इह मैं हों ॥ एह मैं हों ॥ ऐसे जो मैं कहता हों ॥ सो
आत्म तत्त बहुड़ बहुड़ कहता हों ॥ हे अर्जुन मैं मानता
हों जो तूं अब प्रबोध हूया हैं ॥ और आत्मपद विषे वि
श्रांतवान हूया हैं ॥ और संकल्प कलनां तें रहित मुक्ति हू
या हैं ॥ एक आत्मसत्ता विषे स्थिति हूया हैं ॥ ऐसे योग क
र सर्व भूतों विषे स्थिति आत्मा कों देखैंगा ॥ और सर्व भूत
आत्मा विषे स्थिति देखैंगा ॥ और सर्वत्र विषे तुझ कों सम

बुधि होजावैगी॥ जब स्वरूप विषे तुज कों दृढ स्थिति
होवैगी॥ हे अर्जुन जो सर्व भूतों विषे स्थित आत्मा कों
देषता है॥ अरु एकत्व भाव कर भजन करता है॥ अर
आतमा तें इतर जिस कों अवर भावनां नहीं फुरती॥
ऐसे एकत्व भाव विषे जो स्थिति है॥ सो सर्व प्रकार व
र्तमान भी है॥ तो भी बहुड जन्म मरण विषे नहीं आ
वता॥ हे अर्जुन जिस विषे सर्व शास्त्रों का अर्थ है॥ अरु स
र्व शास्त्रों विषे जो एक अर्थ रूप है॥ ऐसी जो आत्म सत्ता
है॥ सो सत है॥ न असत है॥ सत असत तें जो रहित सत्ता है
सो आत्म सत्ता है॥ सो सर्व लोकों के चित विषे प्रकाश रू
प करकैं स्थिति है॥ ऐसे जो अनुभव करकैं स्थित है॥ सो
आत्मा है॥ हे भारत जैसे सर्व दूध विषे घृत स्थिति हो
ता है॥ अरु जैसे जल विषे रस स्थिति होता है॥ तैसे मैं स
र्व लोक के अंतर ततरूप स्थिति हों॥ सर्व शरीरों विषे
जो चैतन्य है॥ तिस चैतन्य तें जो मुक्ति सुख अनुभव
सता है॥ सो मैं हों॥ सर्वगति आत्मा स्थिति हों॥ जैसे सर्व
दूध के अंतर घृत स्थिति है॥ तैसे सर्व पदार्थों के अंतर
मैं आत्मा स्थिति हों॥ जैसे रत्न के अंतर बाहिर प्रकाश
होता है॥ तैसे मैं सर्व पदार्थों के अंतर बाहिर स्थिति हों
जैसे अनेक घटों के अंतर बाहिर आकाश एक ही
स्थिति है॥ तैसे मैं अनेक देहों के अंतर बाहिर अव्यक्त
स्वरूप करकैं स्थिति हों॥ हे अर्जुन ब्रह्मा तें आदि अरु तृ
ण पर्यंत जो पदारथ हैं॥ तिन सभनों विषे सत्ता समान
करकैं मैं स्थिति हों॥ अरु नित्य अजन्मा हों॥ तिस मेरे विषे जो
चित संवेदन फुरी है॥ सो अनात्मता की न्याई होत भई है
फुर्लीक करकैं जगत रूप होइ भासता है॥ अहंता अरु ममता
आदिक कों प्राप्त भई है॥ अरु आतम तत्व अपणे आप
विषे स्थिति है॥ अवर द्वैत कछु नहीं॥ हे अर्जुन आत्मा स
नका साक्षी रूप है॥ तिस के जगत का सुष दुःष स्पर्श नि
हीं करता॥ जैसे दर्पण प्रतिबिंब कों ग्रहण करता है॥ परस

न विषै सम है ॥ किसी करि षेदवान नहीं होता ॥ तैसे सनु
पदारथ अवस्था का साक्षीभूत आतमा है ॥ पर किसी कौं
स्पर्श नहीं करता ॥ अरु सरीर के नास विषै तिसु का नास
नहीं होता ॥ जो ऐसे देषता है सो ईयथारथ देषता है ॥
हे अर्जुन पृथिवी विषै गंध मै हों ॥ अरु जल विषै रस मैं
हों ॥ पवन विषै स्पर्श शक्ति मै हों ॥ अरु स्पंद शक्ति मै हों ॥
अग्नि विषि प्रकाश सक्ति ॥ आकाश विषै शब्द शक्ति मैं
हों ॥ अवर तुज कौं क्या कहों ॥ जो इह मै हों ॥ एह मै हों ॥ स
र्वात्मा सर्व का आतमा मै हों ॥ मेरे तें इतर कछु नहीं ॥ हे पा
ण्डव इह जो प्रपंच पडी प्रवर्तती है ॥ प्रलय अरु उत्पति हो
ती दृष्ट आवती है ॥ सो मेरे विषै ऐसे है ॥ जैसे समुद्र विषै
तरंग उपजते अरु लीन होते हैं ॥ जैसे पहाड पथर रूप
है ॥ अरु वृक्ष काष्ट रूप है ॥ जैसे तरंग विषै जल होता है ॥
तैसे सर्व पदार्थों विषै आतमा मै हों ॥ जो सर्व भूतों विषै आ
त्मा कौं देषता है ॥ सो आतमा कौं अकती देषता है ॥ जैसे
समुद्र विषै नाना प्रकारों के तरंग भासते हैं ॥ जैसे स्वर्न
विषै भूषण भासते हैं ॥ तैसे नाना प्रकार इह आत्मा वि
षै भासते हैं ॥ हे अर्जुन इह नाना प्रकार के पदार्थ ब्रह्म स्वरू
प हैं ॥ ब्रह्म ते भिन्न कछु नहीं ॥ तब अवर क्या कहीये ॥ ना
व विकार क्या कहीये ॥ जगत द्वैत क्या कहीये ॥ जो तु ही है
तो वृथा मोहित किंउ होता है ॥ इस प्रकार सुण कर अ
र समझ कर अरु अंतर भावनां निश्चित होकर जीवन्मु
मुक्ति इस लोक विषै समरस चित्त विचरते हैं ॥ हे अर्जु
न तिस पद कों किंउ नहीं प्राप्त होता ॥ जे पुरुष निर्मान नि
र्मोह होते हैं ॥ अभिलाष दोष जिसका निवर्तन या है ॥ अ
र सर्व कामनां तें रहित हूये हैं ॥ अरु सुष दुष विषै राग
द्वेष तें रहित संत संग ते मुक्ति हूये हैं ॥ सो अद्वैत पद कौं प्रा
प्त हूये हैं ॥ इति निर्वाण प्रकर्णे अर्जुन उपदेशो ना
म सर्गः ॥ ५२ ॥ श्री भगवानोवाच ॥ हे महाबाहो बउ
उ मेरे परम वचन सुण ॥ जो मैं तेरी प्रसन्नता के निमित्त कह
ता हों ॥ जो तेरा हितकारी हों ॥ इह जो ज्ञान तो दम सुष दुःष

विषे हैं ॥ सो इंद्रीयों को स्पर्श होते हैं ॥ अरु आगमापाई हैं
आवते हैं बहुड निवर्त होजाते हैं ॥ तांते अनित्य हैं ॥ ति
नको तूं सहि रहु ॥ आत्मा को स्पर्श नहीं होते ॥ तूं तो आ
त्मा हैं ॥ एक हैं ॥ आदि अंत मध्य तें रहित हैं ॥ निरवयव
अखंड पूरण हैं ॥ तुझको शीत उष्ण सुख दुःख खंडित न
हीं कर सकते ॥ इह कल्पना कर रचे हूये हैं ॥ जैसे स्वर्न वि
षे भूषणों का निवास है ॥ तैसे इनका आत्मा विषे असत
निवास है ॥ हे भारत जिसकों इंद्रीयों के भोग स्पर्श अ
म रूप चलायमान नहीं कर सकते ॥ अरु सुख दुःख जि
सकों सम है ॥ तिस पुरुष कों मोक्ष की प्राप्त होती है ॥ हे
अर्जुन आत्मा नित्य शुध सर्व रूप है ॥ अरु इंद्रीयों के
स्पर्श असत रूप हैं ॥ सो असत रूप विषय सत रूप
आत्मा को मोह नहीं सकते ॥ इह अध्यमात्र तुछ है ॥ क
छु वस्तु नहीं ॥ अरु बोध रूप आतम तत सर्वगा ति शु
ध रूप है ॥ तिसको इसका स्पर्श कैसे होवै ॥ सत कों अ
सत नहीं स्पर्श कर सकता ॥ जैसे जेवडी विषे सर्प आ
भास होता है ॥ सो जेवडी कों स्पर्श नहीं कर सकता ॥ अ
रु जैसे मरत को अग्नि कागद को जलाय नहीं सक
ती ॥ अरु जैसे स्वप्ने के चोभ जागृत पुरुष कों स्पर्श न
हीं कर सकते ॥ तैसे देह इंद्रीयां अरु तिनके विषय
आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते ॥ हे अर्जुन जो सत है
सो असत नहीं होता ॥ अरु जो असत है ॥ सो सत नहीं
होता ॥ सुख दुःख आदिक असत रूप हैं ॥ अरु हैं ही नहीं
अरु परमात्मा सत रूप है ॥ जगत के सत घटादिक व
स्त ॥ अरु असत आकाश के फुलादिक ॥ तिन दोनों के
त्यागतें पाछैं जो निरंजन महाशून्य ति पद है ॥ तिस वि
षे स्थित है ॥ हे अर्जुन जो ज्ञानवान पुरुष है ॥ सो इष्ट
सुखादिक विषयों कर हर्षमान नहीं होता ॥ अरु अ
निष्ट दुःख कर शोकवान नहीं होता ॥ अरु चैतन्य पाषा
ण वत शरीर विषे स्थित होता है ॥ हे साधक इह चित्त भी
जड है ॥ अरु देह इंद्रीयां भी जड हैं ॥ अरु आत्मा चैतन्य है

इनके साथ आपकों मिल्यां हूया किं उदेषता हैं ॥ चित
अर देहनी आपसमें भिंन्न भिन हैं ॥ देह के नष्ट
हूयें चित्त नष्ट नहीं होता ॥ अर चित्तके नष्ट हूयें दे
ह नष्ट होती है ॥ इनके नष्ट हूयें जो आपकों नष्ट हू
या मानता है ॥ अर इनके दुषसुष साथ दुषी सुषी हो
ता है ॥ सो महामूर्ष है ॥ हे अर्जुन स्वरूपके प्रमाद क
के देहादिकों विषे अहं प्रतीत करती है ॥ अर कर्ता भो
क्ता आपकों मानता है ॥ जब आतमाका बोध होता है
तब आपकौं अकर्ता अभोक्ता अद्वैत देषता है ॥ जै
से जेवडीके अज्ञानकर के सर्प भासता है ॥ अर जेवडी
के बोधकर सर्पका अभाव होजाता है ॥ तैसे आत्माके
अज्ञानकर देह इंद्रीयोंके सुषदुःष भासते हैं ॥ अर
आत्मज्ञानकर सुषदुःषका अभाव होजाता है ॥ हे अ
र्जुन इह विश्व अजएक ब्रह्मस्वरूप है ॥ नकोउ जन
मता है ॥ नमर्ता है ॥ एसत उपदेश है ॥ परबोधकर अै
से जाणता है ॥ हे अर्जुन ब्रह्मरूपी समुद्र विषे तूं एक
तरंग फुरया हैं ॥ के ताइक काल रहि के बहुडि तिसी
विषे लीन होजावैंगा ॥ तातै तेरा स्वरूप निरामय ब्रह्म
है ॥ सब जगत ब्रह्मका स्पंद है ॥ सभै पायकर पडा द
ष्ट आवता है ॥ तातै मान मद शोक सुषदुष सन अस
त रूप हैं ॥ तूं शांतिवान हो ॥ हे अर्जुन प्रथम तो तूं ब्रह्म
मय युधिकर ॥ जो जेतीक कछु शोणा सैंना है ॥ सो सब
अनुभव करनाशा कर छोड ॥ जो इह द्वैत कछु नहीं ॥ ए रूपस्थिति
कहीं बढा पसरया ब्रह्म है ॥ ए ब्रह्ममय युधकर ॥ अर
सुषदुःष लाभ अलाभ जय अजय ब्रह्मयुध विषे इ
नकौं एक ताकर ॥ जो कछु ब्रह्मा तैं लेकर तृण पर्यंत ज
गत भासता है ॥ सो सब ब्रह्म ही है ॥ ब्रह्म तैं इतर कछु न
हीं ॥ ऐसे ध्याणके लाभ अलाभ विषे सम होकर स्थित
हो ॥ अवर चितवनां कछु न कर ॥ हे अर्जुन कर्म जड श्रा

रारसाथस्वभाविकपडेहोतेहैं॥ अरहोवहिंगे॥ जैसेवा
इकाफुरणोस्वभाविकपडाहोताहै॥ तैसेशरीरकरक
र्मस्वभाविकपडेहोतेहैं॥ हेअर्जुनजोकछुकार्यकरैं॥
अरजोकछुभोजनकरैं॥ जोकछुयजनकरैं॥ जोकछु
दानकरैं॥ सोआत्माहीविषेअर्पणकर॥ अरसदाआ
तमसत्ताविषेस्थितिरहु॥ अरसभकोआतमरूपदेष
हेअर्जुनजोकछुकिसीकेअंतरघटभिन्नाहोताहै॥ सो
ईरूपउसकोंभासताहै॥ तूंइसप्रकारअभ्यासकरैंगा
तबब्रह्मरूपहोजावैंगा॥ इसविषेसंशयकछुनहीं
हेअर्जुनजोकर्मोंविषेआतमाकोंअकर्तादेषताहै॥
अरअकर्ताजोहै॥ अकरणोअभिमानसहिततिसकों
कर्तादेषताहै॥ सोमनुष्योंविषेबुधिमानहै॥ अरसंपू
र्णकर्मोंकाकर्ताभीउहीहै॥ कर्तव्यकछुरहीनहीं॥ इह
अर्थहै॥ हेअर्जुनकर्मोंकेफलकीभीइछामतिहो॥ अ
रसंगकर्मविषेविस्तारभीमतिहो॥ जोमैंनहींकर्ता॥
योगविषेस्थितिहोकरकर्मकोकर॥ हेधनंजयकर्त
त्वअभिमान॥ अरफलकीवांछात्यागकरकर्मकर
जोकर्मोंकेफलअरसंगकोत्यागकर॥ नित्यतृप्तहू
याहै॥ सोकर्ताक्रियाभीकछुनहींकर्ता॥ कार्यअकार्य
कोंकर्ताभीनहींकर्ता॥ हेअर्जुनजिससर्वआरंभोवि
षेकामनासंकल्पकात्यागकीयाहै॥ ज्ञानअग्निकर
कर्मजलायेहैं॥ तिसकोंबुधिमानपंडितकहतेहैं॥ जो
समआतमाविषेस्थितहै॥ सर्वअर्थोंविषेनिसप्रेही
है॥ निर्द्वंदसतस्थितिहै॥ यथाप्राप्तवर्तताहै॥ सोपृथि
वीकाभूषणहै॥ समुद्रकीन्याईअचलहै॥ अरआपणे
आपकरतृप्तहै॥ जैसेसमुद्रविषेअनिछितजलप्रवे
शकरतेहैं॥ तैसेज्ञानवानविषेसुषप्रवेशकरतेहैं॥
सोशांतिरूपसर्वबासनांतेंरहितहै॥ इतिश्रीनिर
वाणप्रकरणेअर्जुनउपदेशोसर्वब्रह्मप्रतिपादनं
नामसर्गः॥ ५३ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ हेअर्जुनतं

॥ सो कैसा
आतमा है
जगत

आत्मा हैं॥ जो देश काल वस्तु के परिछेद तें रहित हैं॥ अर
अविनासी हैं॥ अजर कहीये प्रणाम तें रहित हैं॥ सु हे अ
र्जुन तूं शोक मत कर॥ इह जो तुज कों भासता है॥ सो अज्ञा
न करकै भासता है॥ अज्ञान कहीये अपणां प्रमाद॥ प्रमा
द कहीये अनात्मा विषे आतम अभिमान इसी का नाम
अज्ञान है॥ हे अर्जुन इह जो संसार रूप तेरा देह है॥ सो इ
स विषे अभिमान मत करै॥ इह मिथ्या है॥ इस कर कै दुख
होता है॥ अर तूं असंग है॥ अविनासी है॥ तेरा नाश कदा
चित नहीं॥ हे अर्जुन जो विनाश रूप है॥ तिस का होवणां क
दाचित नहीं॥ अर जो सत है॥ तिस का अभाव होवणां क
दाचित नहीं॥ तत्ववेत्यां नें इन दोनों का निरणय कीया है
हे अर्जुन तिस कों तूं अविनासी जाण॥ जिस कर के इह स
र्व जगत व्यापत है॥ तिस के विनास करणें कों कोऊ समर्थ नहीं
सो हे अर्जुन तूं ऐसा हैं॥ अर इह आत्मा सर्व का अपणां
आप है॥ तिस का विनाश किउं कर होवै॥ अर अज्ञानी जो
मानुष हैं॥ तिन का विनाश होता है॥ तिस ऊपर अर्जुन
प्रश्न कीया॥ अर्जुन उवाच॥ हे भगवन तुम कहते हो
आत्मा अविनासी है॥ अर सभन का अपणां आप है॥ तब
उन दुष्टां कों कर नास होता है॥ श्रीभगवानुवाच॥ कि
हे अर्जुन तूं सत कहता हैं॥ पर परमार्थ तें जो कोऊ किसी को
भी नास नहीं होता॥ परंतु अज्ञानक कै उन का विनास
होता है॥ तिन कों मृत्यु ग्रास लेती है॥ सो आतमा एक है॥
अर अद्वैत है॥ जिस विषे एक कहणा भी नहीं॥ तो वे
तक हों होवै॥ अर्जुन उवाच॥ हे भगवन तुम कहते हो
आत्मा एक है॥ तो मृत्यु भी द्वितीय न भई॥ तब लोक मर
ता है॥ बहुड मर कर नर्क स्वर्ग भोगता है॥ जो मृत्यु नहीं
तो लोक मरते कौं हैं॥ अर पाप पुन्य भोगते कौं हैं॥ श्री
भगवानोवाच॥ हे अर्जुन न कोऊ मरता है॥ न कोऊ ज
न्मता है॥ इह स्वप्ने की न्यांई मिथ्या कल्पना है॥ जैसे नि
द्रा दोष करकै जन्मणां मरणां भी भासता है॥ तैसे संसार
विषे इह जन्म मरण भासता है॥ अज्ञान नाम फुरणे का

सो अज्ञान कर
भासता है

है॥ तिसकुर्ते ही नर्क अरु स्वर्ग कल्पा है॥ हे अर्जुन जैसे
इह जीव भोगता है॥ सो तूं श्रवण कर॥ अपणे स्वरूप के
प्रमाद होवणे कर आगे संकल्प का शरीर रचा है॥ पुर
यष्टका कहीये॥ सो क्या कहीये॥ पृथ्वी जल अग्नि वा
यु आकाश मन बुधि अहंकार तिस विषे जीव प्रवेश हु
करते हैं॥ तिस साथ मिल कर जैसी वासना करता है॥ तै
से ही आगे भोगता है॥ सो वासनां तीन प्रकार की है॥ ए
क सातकी है॥ एक राजसी है॥ एक तामसी है॥ जैसी वास
नां होती है॥ तैसा स्वर्ग अरु नर्क बण जाता है॥ सातकी वा
सनां ते स्वर्ग बण जाता है॥ इतरां ते नर्क बण जाता है॥ स्व
र्ग अरु नर्क केवल वासना ही मात्र हैं॥ वास्तव ते न कोऊ
नर्क है॥ न स्वर्ग है॥ न कोऊ मरता है॥ न जन्मता है॥ केव
ल एक ही आत्मा ज्यों का त्यों स्थित है॥ पर जगत वास
नां इह भ्रम कर के पड़ा भासता है॥ अज्ञान कर के चि
रकाल की वासनां अभ्यास कीया है॥ तिन कर के भ्र
म कों पड़ा देखता है॥ अर्जुन उवाच॥ हे जगतपति न
र्क अरु स्वर्गादिक जगत विषे जो इह जीव जोनों कों दे
खता है॥ तिस नाना प्रकार के देखणे विषे कारण कवन
है॥ श्री भगवानोवाच॥ हे अर्जुन अज्ञान कर के जो अ
नात्मा विषे आत्म अभिमान हूया है॥ तिस कर जगत
कों सत जानणे लागा है सत जान कर वासनां करणे ला
गा है॥ बहुड़ जैसे जैसे जगत कों सत जाण कर वासनां
करता है॥ तैसे ही जगत भ्रम कों देखता है॥ जब इसकों आ
त्म विचार उपजता है॥ तब जगत कों स्वप्ने की न्याई देख
ता है॥ अरु वासनां नीछय हो जाती है॥ जब वासनां छय
होती है॥ तब कल्याण कों प्राप्त होता है॥ अर्जुन उवाच
हे भगवन चिर अभ्यास कर जो संसार भ्रम दृढ़ हो रहा
है॥ सो किस प्रकार उपजता है॥ अरु किस प्रकार लीन हो
वेगा॥ श्री भगवानोवाच॥ हे अर्जुन मर्षता अज्ञान
कर के जो अनात्म देहादिकों विषे आत्म भावनां होती
है॥ तिस कर जगत कों सत जाण कर वासनां करता है॥

तिस वासना के अनुसार जगत भ्रम कों देषता है ॥ जब
स्वरूप का अभ्यास कर्ता है ॥ तब वासना नष्ट होजाती
है ॥ तातें हे अर्जुन तूं स्वरूप का अभ्यास कर ॥ अरु अ
हंमम आदिक वासना को त्याग कर ॥ केवल आत्मा की
भावना कर ॥ हे अर्जुन इह जो देह है ॥ सो वासना रूप है
जब वासना निवृत होवेगी ॥ तब देह भी लीन होजावे
गी ॥ जब देह लीन भई ॥ तब देशकाल क्रिया जन्ममर
ण भी न रहेंगे ॥ इह अपणे ही संकल्प कर रचे हैं ॥ भ्रम
रूप हैं ॥ तिन की वासना कर वेष्टित हूया जीव पडा भट
कता है ॥ जब आत्मबोध होता है ॥ तब वासना तें मुक्ति हो
ता है ॥ निरालंब असंकल्प अविनासी आत्म तत्व कों पा
वता है ॥ तिसी कों मोक्ष कहते हैं ॥ जिस की वासना क्षय हू
ई ॥ हे अर्जुन जब जीव कों तत बोध होता है ॥ तब वासना
रूपी जाल तें मुक्ति होता है ॥ जो वासना तें मुक्ति हूया सो
मुक्ति हूया ॥ जो पुरुष सर्व धर्म परायण भी है ॥ अरु सर्व
ज्ञ है ॥ शास्त्रों का वेत्ता भी है ॥ अरु वासना तें मुक्ति नहीं हू
या ॥ सो सर्व ओर तें बंध है ॥ जैसे दृष्टदोष कर के निर्मल
आकाश विषे तिरवरे मोर के पूछ वत भासते हैं ॥ तैसे
मूर्षों कों शुध आत्मा विषे वासना रूपी मल जगत भास
ता है ॥ जैसे पिंजरे विषे बांध्या पंछी होता है ॥ तैसे उह बं
ध होता है ॥ जिस के अंतर वासना है ॥ सो बंध है ॥ अरु जिस
के अंतर वासना नहीं ॥ तिस कों मोक्ष जाण ॥ हे अर्जुन जिस
के अंतर जगत की वासना है ॥ सो वडी संपनता संयुक्त भी
भासता है ॥ तौ भी दरिद्री है ॥ अरु दुषों का भागी है ॥ अर
जिस की वासना नष्ट भई है ॥ अरु संपनता तें रहित दृष्ट आ
वता है ॥ तौ भी वडा संपनतावान है ॥ उह कल्याण रूप है ॥ तां
ते वासना रूपी मल कों त्याग कर ॥ शांतवान हो ॥ इति श्री
निरवाण प्रकरणे जीवन निरणयो नाम सर्गः ॥ ५४ ॥
श्रीभगवानोवाच ॥ हे अर्जुन इस प्रकार तूं निरवास जी
वन्मुक्ति होकर विचर ॥ तब रा अंतहकरण शीतल होजा
ते

वेगा ॥ अरु जरा मरण तें मुक्ति निहसंग आकाशवत होवेंगा
इष्ट अरु अनिष्ट कों त्याग कर वीतराग होइ स्थित होवेंगा
हे अर्जुन पतित प्रवाह जो कार्य आन प्राप्त होवे ॥ तिस कों
कर ॥ युध विषे काइरता मत कर ॥ आत्मा अविनासी है ॥ अ
रु देह नासवंत है ॥ देह के नाश हूये आत्मा का नास नहीं
होता ॥ हे अर्जुन जो जीवन्मुक्ति पुरुष हैं ॥ सो राग द्वेष ते रहि
त होइ कर प्रवाह पतत कार्य कों करते हैं ॥ ते जीवन मु
क्ति स्वभाव होकर विचिरै ॥ अरु इह मैं करों इह न करौं ॥ इ
स ग्रहण अरु त्याग के संकल्प कों त्याग ॥ इस कर ते ज्ञानवा
न बंधमान नहीं होते ॥ अरु जो मूर्ख हैं ॥ सो इसी विषे बंधमा
न होते हैं ॥ जो जीवन्मुक्ति पुरुष हैं ॥ सो सुषपतवत स्थिति
होकर प्रवाह पतत कारिज कों करते हैं ॥ अरु प्रबुध की न्यां
ई वासनों ते रहित कार्य करते हैं ॥ जैसे कछू अपणे अंग षैं
च लेता है ॥ तैसे ज्ञानवान वासनां कों सुकचाइ लेता है ॥ अरु
आप कों चिन्मात्र रूप जाणता है ॥ अरु जगत मेरे विषे मणि
कों की न्यांई परोया हूया है ॥ अरु सब जगत मेरा अंग है ॥ जै
से अपणे हाथ पसारे अरु षैंचे ॥ जैसे समुद्र तें तरंग उठते हैं
अरु लीन होते हैं ॥ तैसे विश्व आत्मा तें उपजती है ॥ अरु लीन
होती है ॥ भिन्न कछु नहीं ॥ हे अर्जुन जैसे चंदोये ऊपर नाना प्र
कार चित्र लिष्पे होते हैं ॥ पर उह रंग वस्त्र तें भिन्न नहीं होते
तैसे जगत आत्मा विषे मन रूपी चित्रेले रचा है ॥ अरु अनउ
पजा ही उपजा होकर भासता है ॥ जैसे थंभ विषे चित्रेरा क
ल्पता है ॥ जो एती पुतलीयां निकसेंगी ॥ जैसे आकार रूपी
पुतलीयां तिस के मन विषे पडी फुरतीयां हैं ॥ तैसे इह तीनों
जगत काल संयुक्त चित विषे फुरते हैं ॥ चित्रेला भी मूर्तीं त
ब लिषता है ॥ जब भित होती है ॥ इह आश्चर्य है ॥ जो आकाश
विषे मन मूर्तीं कों कल्पता है ॥ हे अर्जुन एह मूर्तीं सपष्ट भा
सती हैं ॥ तो भी आकाश रूप है ॥ जैसे स्वप्न सृष्टि आकाश रूप
होती है ॥ तैसे एह है ॥ आकाश अरु कंध विषे भेद नहीं ॥ पर आ
श्चर्य है ॥ जो भेद पडा भासता है ॥ जैसे मनोराज अरु स्वप्नपुर ॥

विषेजगतमनकेफुरणेंकरभासताहै॥ अरुअफुरहूयें
सेहोजाताहै॥ सोमनोमात्रहै॥ तैसेइहजगतमनोमात्रहै॥
अकाशतेंभीसूक्षमरूपहै॥ जैसेस्वप्नपुरमनोराजविषेएक
क्षणमेंबडेकालकाअनुभवहोताहै॥ पर्वतरूपकेविस्म
रणकरउहीसतहोभासेहै॥ तैसेइहजगतसत्तहोताहै॥ ज
बलगप्रमादहोताहै॥ तबलगपडाभासताहै॥ जबइस
कमककेंआतमाकोदेषताहै॥ तबजगतभ्रमनिवर्तहो
जाताहै॥ आगरदेषीताहैपरलीनहोजाताहै॥ सर्तकालके
आकाशवतनिर्मलहोभासताहै॥ जैसेचित्रेलेकेमनवि
षेचित्रपडेफुरतेंहै॥ सोआकाशरूपहैं॥ तैसेइहजगतआ
काशरूपहै॥ हेअर्जुनभावअभाववृत्तकोंत्यागकरस्व
रूपविषेस्थितहो॥ तबआकाशवतनिर्मलहोजावेगा॥
जैसेमेघोंकीप्रवित्तिविषेभीआकाशनिर्मलहोताहै॥ अ
रनिवर्तविषेभीनिर्मलहोताहै॥ तैसेतूंपदार्थोंकेभावअ
भावविषेनिर्मलहैं॥ जेतेकछुपदारथभासतेहैं॥ सभआ
काशरूपहैं॥ जैसेचित्रेलेकेमनविषेपुतलीयांभासतीहैं॥
तैसेइहजगतआकाशरूपहै॥ जैसेएकक्षणमनकेफुरणे
करनानाप्रकारकेपदारथभासआवतेहैं॥ अफुरहूयेंली
नहोजातेहैं॥ तैसेप्रमादकरजगतभासताहै॥ आतमाके
जाणेंलीनहोजाताहै॥ अरुआतमाविषेनिर्बाणरूपहैं
आत्माविषेएकनिमेषकेफुरणेकरप्रमादतेंवजसारकी
न्यांईसत्तअरदृढहोभासताहै॥ अरचित्तकेफुरणेकरके
पडाभासताहै॥ सनजगतआकाशरूपहै॥ द्वैतकछुहूया
नहीं॥ बडाआश्चर्यहै॥ आकाशऊपरमनोंलिषीहैं॥ नाना
रूपरमत्तीकहोभासतीहैं॥ मनकोंमोहतीहैं॥ हेअर्जुनए
हीआश्चर्यहै॥ जोकछुहैनहीं॥ अरनानाप्रकारकेरंगभास
तेहैं॥ आकाशरूपीनीलातालहै॥ चंद्रमातारेआदिकआ
काशविषेफलविडेहैं॥ अरमेघरूपीतिनकोंपत्रलागेहैं॥
हेअर्जुनअवरआश्चर्यदेष॥ चित्रभीतबउत्पतिहोताहै॥
जबप्रथमतिसकाआधारभितअथवावस्त्रहोताहै॥ अ
रुचित्रप्रथमउत्पतिहोतेहैं॥ अरआधारभूतकंधपाछें
बणतीहै॥ प्रथमइहमतीचित्रबणेहैं॥ अरपाछेंभितब

९१

णी है ॥ इह आश्चर्य है ॥ जैसे तें बादरबे पथर तरे ॥ तैसे
इह आश्चर्य है ॥ हे अर्जुन इह माया को प्रधानता है ॥
जो वास्तव आकाशरूप चित्रे जो आकाश विषे आ
काशरूप पुतलीयां रचे हैं ॥ आकाश विषे आकाश
रूप पुतलीयां उपजी हैं ॥ अरु आकाश विषे लीन
होती हैं ॥ आकाश ही को भोजन करतीयां हैं ॥ आका
श ही को आकाश देता है ॥ आकाश ही इह सृष्टि आ
काशरूप आकाश आत्मा विषे आकाशरूप स्थि
ति हैं ॥ हे अर्जुन वास्तव तें आत्मा ऐसे है ॥ तिस ऐसे
अद्वैतरूप आत्मा विषे जो उत्थान हूया है ॥ तिस उत्था
न कर उसको स्वरूप का प्रमाद हूया है ॥ तिस कर आ
गें द्वैत प्रपंच को देषता है ॥ अरु अनेक वासनां होती
हैं ॥ वासनांरूपी जेवडे साथ बांध्या हूया पडा नटक
ता है ॥ वासनां कर आवरता हूया ॥ अहंत्वं शब्दों को जा
नणे लागता है ॥ अरु नाना प्रकार के भ्रम को देषता
सदा है ॥ तो भी स्वरूप ज्यों का त्यों है ॥ जैसे दर्पण विषे प्रति
बिंब पडता है ॥ अरु दर्पण ज्यों का त्यों रहिता है ॥ तैसे
जगत आत्मा विषे प्रतिबिंबित होता है ॥ अरु आत्मा
छेद भेद तें रहित है ॥ ब्रह्म ही ब्रह्म विषे स्थित है ॥ जो
सर्वरूप ही है ॥ तो छेद भेद किसका होवे ॥ जैसे जल विषे
तरंग बुदबुदे होते हैं ॥ सो जल ही रूप हैं ॥ तैसे इह सन
ब्रह्म ही ब्रह्म कर पूरण है ॥ तिस विषे द्वैत कछु नहीं ॥
जैसे आकाश विषे आकाश स्थित है ॥ तैसे आत्मा वि
षे आत्मा स्थित है ॥ तिस विषे वासवासिक कल्पनां कछु
नहीं ॥ पर स्वरूप के प्रमाद कर वासवासिक भेद हो
ता है ॥ जब स्वरूप का ज्ञान हूया तब वासनां नष्ट हो
जाता है ॥ हे अर्जुन जो वासनां तें मुक्ति है सो मुक्ति है ॥
अरु वासनां साथ बांध्या हूया है ॥ सो बंध है ॥ जो सर्व
शास्त्रों का वेत्ता ही है ॥ अरु सर्व धर्मों कर पूरण है ॥ जो
वासनां तें मुक्ति नहीं हूया तो बंध ही है ॥ जैसे पिंजरे वि

षेपंछीबांध्याहोताहै ॥ तैसेउह वासनांकर बांध्या हूया
है ॥ हे अर्जुन जिसके अंतर वासनां कौ बीज रह्या है ॥ अरु बा
ह्यदृष्ट नहीं आवता ॥ सो बीज नीव है बन के विस्तारकौं
पावैगा ॥ जैसे बट का बीज वहै विस्तारकौं पावता है ॥ तै
सेउह वासनां विस्तारकौं पावैगी ॥ अरु जिस पुरुष आत
मा का अभ्यास कीया है ॥ तिसकर ज्ञान अग्नि उपजाई है
उसकर वासनांरूपी बीज जलाया है ॥ तिसकौं बहुड
संसार जनम उदै नहीं होता ॥ अरु वस्त बुधिकर पदारथ
कौं ग्रहण नहीं करता ॥ अरु सुष दुष आदिक विषे हूब
ता नहीं ॥ सदा निर्लेप रहता है ॥ जैसे तूंबा जल के ऊपर
रहिता है ॥ तैसे उह सुष दुष तें ऊपर ही रहेगा ॥ हे अ
र्जुन तूं ज्ञांता भ्या है ॥ तेरा भ्रम अब दूर भया है ॥ अरु आत
म पद कौं तूं प्राप्त भया है ॥ अरु मन का मोह तेरा निरवा
ण होगया है ॥ तूं सम्यक ज्ञानी हूया है ॥ विवहार अरु
तूं इस्मीतुज कौं तुल्य भई है ॥ अनंत रूप निहसंक पद कौं
प्राप्त भया है ॥ इह मैं जाणता हौं ॥ इति श्री निरवाण प्र
करणे अर्जुन विश्रांत वरननं नाम सर्ग: ॥ ५५ ॥ अर्जु
न उवाच ॥ हे अच्युत मेरा मोह अब नष्ट भया है ॥ अरु आ
त्मस्मृत कौं मैं प्राप्त भया हौं ॥ तेरे प्रसाद तें मैं अब निर
संदेह होकर स्थित हौं ॥ अब जो कछु तुम कहो सो मैं क
रौं हौं ॥ श्री भगवानोवाच ॥ हे अर्जुन मन की जो पांच वृ
ती है ॥ प्रमाण ॥ विपर्यै ॥ विकल्प ॥ अभाव ॥ स्मृत ॥ जब इ
ह पांचो मन तें निवर्त हो जावैं ॥ तब चित सांत हो जावै ॥ तिस
के पाछे जो शेष रहिता है ॥ चेतन तें रहित चेतन्य ॥ तिसकौं
प्रत्यक चेतन कहते हैं ॥ सो वस्तरूप है ॥ अरु सर्वरूप है
तिस पद कौं जो प्राप्त हूया है ॥ तिसकौं आधि व्याधि आ
दिक बाध नहीं सकते ॥ जैसे ज्वाला सौं निकसकर पंछी आ
काश मार्ग कौं उडता है ॥ तैसे उह देह अभिमान तें मुक्ति हो
इकर आत्ममार्ग कौं प्राप्त होता है ॥ तिसकौं दुष नहीं बाध
सकते ॥ हे अर्जुन प्रत्यक चेतन जो सत्ता है ॥ सो परमप्रकाश
रूप है ॥ शुध है ॥ संकल्प विकल्प तें रहित है ॥ इंद्रीयां के

विषे नहीं आवता ॥ इंद्रीं तें अतीत है ॥ जो पुरुष सर्व तें अ-
तीत पद कों प्राप्त हूया है ॥ तिस कों वासनां नहीं स्पर्श क-
रती ॥ तिस के प्राप्त हूयें घट पटादिक सन संग न हो जाते
हैं ॥ तहां तुछ वासनां का बल कछु नहीं चलता ॥ जैसे अ-
ग्नि समूह के निकट बरफ गल जाती है ॥ तिस की सीत-
लता नहीं रहिती ॥ तैसे शुध पद के साछातकार हूयें ॥
चित वृत नष्ट हो जाती है ॥ बहूड वासनां का भी अभाव हो
जाता है ॥ हे अर्जुन वासनां तब लग फुरती है ॥ जब लग
संसार कों सत जाणीता है ॥ जब आतम पद का प्राप्त होती
है ॥ तब संसार अरु वासनां का अभाव हो जाता है ॥ इस का-
रण तें विरक्त पुरुष को कछू नीच तुछ भोगों की वासनां
नहीं फुरती ॥ तब लग नाना प्रकार के अकार विकार सं-
युक्त अविद्या पडी फुरती है ॥ जब लग शुध आतमा कों अप-
णा आप कर जाणया नहीं ॥ शुध आत्मा कों प्राप्त हूयें जग-
त भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ आतम तत्व स्वछ पद विषे स्थित
होता है ॥ आकासवत निर्मल भाव कों प्राप्त होता है ॥ अर
अपणे आप कर सन को पूर्ण देषता है ॥ सोई आतम सत
सर्व आकार रूप है ॥ अर सन आकार रूप तें रहित है ॥
हे अर्जुन जो शब्दों तें अतीत परम वस्त है ॥ तिस कों किस की
उपमा दीजीये ॥ जो वासनां रूपी विसूचका कों त्याग कर ॥
अपणे आतम स्वभाव विषे स्थिति हूया पृथिवी मों विच-
रता है ॥ सो त्रिलोकी का नाथ है ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे
रामजी जब इस प्रकार त्रिलोकी का नाथ कहेगा ॥ तब
अर्जुन एक छिण मौन विषे स्थिति हो जावैगा ॥ तिस को उ-
परांत कहेगा ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवान सर्व शोक
मेरे नष्ट हो गये हैं ॥ तुमारे वचनों कर ॥ अर बोध उदय हू-
या है ॥ जैसे सूर्य के उदे हूयें कमल खिड आवते हैं ॥ तैसे
तुमारे वचनों कर मेरा बोध खिड आया है ॥ अब जो कछु
तुमारी आज्ञा होइ सो करोंगा ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रा-
मजी इस प्रकार कहि कर अर्जुन गांडीव धनुष कों ग्रहण
करेगा ॥ भगवान कों सारथी कर के निहसंदेह निहसंक

होयकर रणलीलाकों करैंगा ॥ कैंसा युधकरेगा जो हस्ती
घोडा मानुष मारेगा ॥ लोहू के प्रवाह चलैंगे ॥ तो भी आतम
तत विषे स्थित रहेगा ॥ स्वरूप तैं चलायमान न होवैगा ॥
सूरम्यों कों नष्ट कर देवेगा ॥ पर अिंडकातिं रहेगा ॥ जैसे
पवन मेघ कों अनाव कर देता है ॥ तैसे योधों का अनाव क
र नास करेगा ॥ पर स्वरूप तैं चलायमान न होवैगा ॥ इति
श्री निरवाणप्रकर्णे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे नवि
तगीताम उपाख्याने समाप्ते नाम सर्गः ॥ ५६ ॥ श्री व
शिष्टोवाच ॥ हे रामजी इसी दृष्ट कों आश्रय करकें निहसं
ग संन्यास हो ॥ कैंसी दृष्ट है दुषों का नाश करती है ॥ जो कछु
कर्म चेष्टा होवै ॥ सो ब्रह्म अर्पण कर ॥ जिस विषे इह सर्व
है ॥ अर जिस तें इह सर्व है ॥ ऐंसी जो सता है ॥ तिस कों तूं परम
आत्मा जाण ॥ अनुभव रूप आत्मा है ॥ तिस की भावना कर
तिसी कों प्राप्त होता है ॥ इस विषे संशय नहीं ॥ जो सता संवेद
न फुर्णे तें रहित है ॥ चेतन तें रहित जो चेतन्य प्रकाश है ॥ तिसी दिशा-
कों तूं परम पद जाण ॥ सो सन की परम कोष्टा रूप है ॥ सन का प्र
काश है ॥ सो महां उत्तम परम गुरों का गुरु है ॥ सो आत्मा रूप है
सून वादी जिस कों सून कहते हैं ॥ विज्ञान वादी जिस कों वि
ज्ञान कहते हैं ॥ ब्रह्म वादी जिस कों ब्रह्म कहते हैं ॥ सो परम
सार रूप है ॥ सो शिव रूप है ॥ शांत रूप अपणे आप विषे
स्थित है ॥ सो आत्मा इस जगत रूपी मंदर कों प्रकासक नैंह
रा दीपक है ॥ अर जगत रूपी बृहत कारस है ॥ अर जगत रू
पी पशूयों का पालक गोपाल है ॥ अर जीव जंत रूपी मोती
यों कों एक त्र करणे हारा आत्मा तागा है ॥ अर रिदे आकाश
विषे स्थित है ॥ अर जंत रूपी मरचों विषे आतम रूपी तीह
ण ता है ॥ अर सर्व पदार्थों विषे पदारथ रूप सता उही है ॥ स
तों विषे सत उही है ॥ असतों विषे असत उही है ॥ जगत रूपी
गृह विषे पदार्थों कि प्रकासणे हारा दीपक उही है ॥ तिस कर
सन सिध होते हैं ॥ अर चंद्रमा सूर्य तारे आदिक जो प्रकाश
रूप देषीते हैं ॥ तिन का प्रकाश उही है ॥ ए जड प्रकाश हैं ॥ उह
चेतन्य प्रकाश है ॥ तिसी कर ए सिध होते हैं ॥ अर तिसी तें सन

प्रकाश गगन भये हैं ॥ सो आतम संवित अपणे विचा
रकर पाईता है ॥ हे रामजी जैते कछु भाव अभाव पदा
रथ भासते हैं ॥ सो असत हैं ॥ वास्तवे हाये कछु नहीं
प्रमाद दोषकर के नाना रूप भासते हैं ॥ जब विचार उ
पजता है ॥ तब एह नष्ट होजाते हैं ॥ हे रामजी अहंभा
व जिसके अंतर है ॥ अैसा जो जगतजाल है ॥ सो मिथ्या
भिमानकर के पड़ा भासता है ॥ तिसकों उपजा क्या कहीये
किसकी आस्था करीये ॥ एह जगत कछु वस्त नहीं ॥
आदि अंत मध्य की कल्पनों ते रहित जो देव है ॥ सो द्रु
ल्लेसता समान अपणे आप विषे स्थिति है ॥ अवर है
त कछु बण्या नहीं ॥ जब इह निश्चा तुजकों धृड़ हो
वैगा ॥ तब तूं विवहार करता भी निहसंग अंतर तें शांत
रूप होवेंगा ॥ हे रामजी जिस पुरुष कों तिस समानसता
विषे स्थिति भई है ॥ सो इष्ट अरु अनिष्ट की प्राप्त विषे
राग द्वेष ते रहित अंतर तें सदा शांति रूप रहता है ॥
उह न उदे होता है ॥ न अस्त होता है ॥ सदा समता भाव
विषे स्थित रहता है ॥ सो स्थिर रूप होता है ॥ अद्वैत तत्त
विषे स्थिति होता है ॥ जगत की ओर तें सुषुपतवत होजा
ता है ॥ विवहार भी पड़ा करता है ॥ पर ज्ञानवान नहीं होता ॥
दर्पण की न्याई जैसे मणस नप्रतिबिंबकों ग्रहण करती
है ॥ पर तिसके अंतर संग नहीं होता ॥ तैसे ज्ञानवान पुरु
ष कदाचित कलनों कलंक कों नहीं प्राप्त होता ॥ तिसका
चित विवहार विषे भी सदा अलेप रहता है ॥ ज्ञानवान
को जगत आतमा का चमतकार भासता है ॥ न एक है ॥ न
अनेक है ॥ आतम तत सदा अपणे आप विषे स्थिति है
ए चित्त विषे जो चेतनाव भासता है ॥ सो तिस चितके फुर
णे का नाम संसार है ॥ अरु फुरणे तें रहित अफुरका नाम
परमपद है ॥ हे रामजी महाचैतन्य विषे जो नमका भाव है ॥
कि मैं नहीं आतमा को जाणता ॥ इसी का नाम चितस्पंद है ॥
संसार का कारण है ॥ जब इह भावनों क्षय होवे ॥ तब चित्त

अफुर होजावै ॥ हे रामजी जहां नञ अभाव होता है ॥ तहां प
दारथ का अभाव होता है ॥ सो नञ समनौ ड अपने अ
र्थ को सिध करती है ॥ पर आत्मा विषे प्रवितन हीं सक
ती जब एक हता है ॥ आतमा को मैं नहीं जानता ॥ तो भी
आतमा का अभाव नहीं होता ॥ अभाव को जानणे वाला
भी आतमा है ॥ जो आतम ततनु होवै ॥ तो अभाव कवन
क है ॥ सो आतम पर्मसंन है ॥ पर कैसी सून है ॥ जो अजड
रूप है ॥ पर्म चैतन्य रूप है ॥ हे रामजी नञ का जो अर्थ है
सो आत्मा विषे तं त्यय कर ॥ जो आतमा कों नञ की भाव
ना नहीं होती ॥ अर्थ इह जो आतमा का अभाव न मान
ना ॥ अर अनातम विषे जो नञ का अभाव है ॥ तिस कों नञ का
भाव कर ॥ अर्थ इह जो अनातम कं अभाव रूप मान ॥
जब इस प्रकार धड भावना करेंगा ॥ तब संसार भ्रम नि
वर्त होजावैगा ॥ केवल आतम भाव ही बरहेगा ॥ हे राम
जी चित्त के फुर्णे का नाम संसार है ॥ चित्त के फुर्णे कर सं
सार चक्र पडा वर्तता है ॥ माता मान मेय ॥ त्रिपुटी रूप
चित्त ही होता है ॥ जैसे स्वर्न सों भूषण प्रगट होते हैं ॥ तैसे
चित्त कर त्रिपटी होती है ॥ अर चित्त स्पंदनी कछु भिन्न
वस्त नहीं ॥ आतमा का आभास रूप है ॥ अज्ञान कर कि
चित्त स्पंद होता है ॥ अर ज्ञान कर कै लीन हो जाता है ॥ जैसे
स्वर्न के भूषन कों गाल्ये तें भूषण बुधि नहीं रहती ॥ तैसे
चित्त अचल हूये चित्त संज्ञा जाती रहती है ॥ जैसे भूषन
के अभाव हूये स्वर्न ही रहता है ॥ तैसें कर चित्त जगत के बोध
लीन हूयें शुद्ध चैतन्य सत्ता शेष रहती है ॥ बउड भोगों
की त्रिश्ना लीन हो जाती है ॥ जब भोग भावना निवृत्त भई
तब ज्ञान का पर्म लछन सिध होता है ॥ हे रामजी जो ज्ञान
वान पुरुष है ॥ अर सत स्वरूप कों जिस पछाण्या है ॥ ति
स कों भोगों की इछा नहीं रहती ॥ जैसे जो पुरुष अंमृत को
पान कर अघाइ रहा है ॥ तिस कों खल आदिक तुछ भोज
न की इछा नहीं रहती ॥ तैसे आतम सत्ता ज्ञान कर जो तृप्त
भया है ॥ तिस कों विषयों की त्रिश्ना नहीं होती ॥ इह निश्चै

९४

94

करजाए॥ जबचितफुरताहै॥ तबजगतभ्रमहोभासता
है॥ अरसतजाएकरभोगोंकीइछाहोतीहै॥ जबबोध
होताहै॥ तबजगतभ्रमलीनहोजाताहै॥ बहुरइन्द्रियां
किसकीकरे॥ अरजोइंद्रीयोंकेविषयआनप्राप्तहोवैं॥ अ
हंकरतिसकोंनभोगै॥ तबउहमूर्षहै॥ मानोउहहाथों
करआकाशकोंछेदताहै॥ हेरामजीमनजोवसहोताहै॥
सोगुरुशास्त्रोंकीयुक्तकरहोताहै॥ उनकीयुक्तबिनासि
धनहींहोता॥ जोकोउअपणेअंगोंकोंकाटै॥ अरतिसक
रचित्तकोंवसकीयाचाहे॥ तोभीचितस्थिरनहींहोता॥ अ
रसंसारभ्रमनहींमिटता॥ जबलगचितकोटविषेस्थि
तिहै॥ तबलगजगतभ्रमकोंदेषताहै॥ जबगुरुअरशा
स्त्रोंकीयुक्तिकोंग्रहणकर्केचितकाअभावकरताहै॥ त
बचितनष्टहोजाताहै॥ चितअचलहोजाताहै॥ जैसेबा
लककोंअंधकारविषेपिशाचभासताहै॥ अरदीपकजे
गायदेषेतेंअंधकारनिवृतहूयेंपिशाचभ्रमनिवर्त
होजाताहै॥ तबबालिकनिर्भयहोताहै॥ तैसेआत्मज्ञान
युक्तिकर॥ अज्ञाननिवर्तहोजाताहै॥ असम्यकबोधकर
केजगतभ्रमहूयाहै॥ सम्यकबोधकर्केनिवर्तहोजाताहै
बहुरजाणयानहींजाता॥ जोअज्ञानकाभ्रमजगतकहां
गया॥ जैसेदीपककेनिर्वाणहूयेंनहींजाणीता॥ जोप्रकास
कहांगया॥ तैसेअज्ञानकेनष्टहूयेंनहींजाणीता॥ जोजग
तकहांगया॥ चित्तकेफुर्णेंकरबंधहोताहै॥ अरअफुरहू
येमोक्षहोताहै॥ परआतमातेंभिंनकछुनहीं॥ आतम
सत्ताजिउकीतिउहै॥ तिसविषेनबंधहै॥ नमोक्षहै॥ हेराम
जीजबइसकोंमोक्षकीइछाहोतीहै॥ तबभीइसकीपूर्ण
ताकाक्षयहोताहै॥ परनिरसंवेदनहूयेंकल्याणहोता
अ है॥ जोअनाभासजडरूपपरमपदहै॥ अरचेतनउनमुषत्व
तेंरहितहै॥ हेरामजीबंधअरमोक्षादिकभीकलनांवि
षेहोतेहैं॥ जबकलनांतेंरहितबोधहोताहै॥ तबबंधमो
क्षदोनोंनहींरहिते॥ जबलगविचारकरनहींदेषीया॥
तबलगबंधअरमोक्षभासताहै॥ विचारकीयेतेंदोनों

का अभाव होजाता है॥ जो अहं त्वं इदं का अभाव होवै
तब कवन किसकौं बंधक है॥ अरु कवनु किसु कौं मु
क्त कहै॥ सन कलनां चित्त के फुरणे कर होती है॥ जब
चित्त का फुरणां नष्ट होता है॥ तब सन कलनां का अ
भाव होजाता है॥ तब सांतवान होता है॥ अन्यथा नहीं
होता॥ तांतें चित्तकौं आत्मा विषे लीन करै॥ जिसके आ
श्रे इह जगत उपजता है॥ अरु जिसके आश्रे लीन हो
ता है॥ ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है॥ तिसी अनभव ग
प प्रत्यक आतम प्रकाश विषे स्थित हो॥ इति श्री
निर्वाणप्रकर्णे प्रत्यक आत्माबोधनं नाम सर्गः
॥ ५८ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी जो परमतत पु
र्णात्म पद है॥ सो हमको सदा प्रत्यक्ष है॥ वस्तरूप उही
है॥ उसतें इतर कछु नहीं॥ इह प्रत्यक आत्मा है॥ सर्वस
त्ता का दर्पण है॥ सन सत्ता इसीतें प्रगट होती है॥ जैसे
बीजतें वृक्ष की सत्ता प्रगट होती है॥ तैसे आतमातें ज
गत की सत्ता प्रगट होती है॥ हे रामजी मन बुधि चित
अहंकार जडात्मक है॥ इनतें रहित है सो परमपद है॥ तिस
ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक सन्न तिसी विषे स्थित हैं॥ जैं
सत्ता कों पाय कर बडा ऊंचा मानता कर सोभते हैं॥ जैं
से चक्रवर्ती राजा निरधनों तें ऊंचा सोभता है॥ तैसे इह
सर्व लोक तें ऊंचे सोभते हैं॥ तिस आत्मा कों जो प्राप्त हो
ता है॥ सो मृत्यु कौं नहीं प्राप्त होता॥ अरु शोकवान कदा
चित नहीं होता॥ अरु क्षीण नहीं होता एक क्षण मात्र भी
जो अप्रमादी होकर आत्मा कों जिउ का तिउ जानता है
सो संसार कलनां कौं त्याग कर मुक्ति होता है॥ श्रीरामो
वाच॥ हे रूपवराय हे भगवन मन बुधि चित अहंकार
के अभाव हूयें सत्ता समान क्यूं कर रहती है॥ सो तिस
का ज्ञान कैसे होता है॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी जो
सर्व देहों विषे स्थित होकर भोजन करती है॥ जलपान क
रती है॥ देखता सुणता बोलता इत्यादिक क्रिया करती दृ
ष्ट आवता है॥ सो आदि अंत तें रहित संवित सत्ता है॥ सर्व

गति अपणे आप विषे स्थित है ॥ अरु सब विश्व तुंही
रूप है ॥ आकाश विषे आकाश रूप तुंही है ॥ शब्द विषे
शब्द रूप तुंही है ॥ स्पर्श विषे स्पर्श नासका विषे गंध
रूप तुंही है ॥ सून्य विषे सून्य रूप विषे रूप पा नेत्रों विषे
नेत्र तुंही है ॥ पृथिवी विषे पृथ्वी जल विषे जल तेज
विषे तेज वृक्ष विषे रस तुंही है ॥ मन विषे मन बुधि वि-
षे बुधि अहंकार विषे अहंकार रूप तुंही है ॥ अग्नि
विषे अग्नि उष्णता विषे उष्णता घट विषे घट पट वि-
षे पट रूप तुंही है ॥ बट विषे बट स्थावर विषे स्थावर
जंगम विषे जंगम रूप चैतन्य विषे चैतन्य जड विषे ज-
ड रूप तुंही है ॥ काल विषे काल नास विषे नास उत्प-
ति विषे उत्पति होकर स्थित है ॥ बालिक विषे बालि-
क जोबन विषे जोबन वृध विषे वृध मृत्यु विषे मृत्यु
होकर तुंही परमेश्वर स्थित है ॥ हे रामजी इस प्रकार
सर्व पदार्थों विषे अभिन्न रूप स्थित है ॥ नानत्व भी दृष्ट
आवती है ॥ पर अनाना है ॥ नानत्व भ्रम करके दृष्ट आव-
ती है ॥ जैसे पछावें विषे भ्रम करके बेताल भासता है ॥ तै-
से आत्मा विषे नानत्व भासता है ॥ सर्व विषे सर्व ओड स-
र्व प्रकार सर्वात्मा ही स्थित है ॥ ऐसा जो आत्मदेव सत्ता
समान है तिस विषे स्थित हो ॥ वाल्मीकोवाच ॥ इस
प्रकार जब वशिष्ठजी कहा ॥ तब दिन कर अस्त हूया
सर्व सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान कों गये ॥ बहु-
डि दिन को अपणे अपणे स्थान पर आन बैठे ॥ इति श्री
निरवाणप्रकर्णे भूत जोग उपदेशो नाम सर्गः ॥
॥ ५८ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन जैसे हमारे स्वप्ने वि-
षे पुर नगर मंडल होते हैं ॥ तैसे ब्रह्मादिकों देह को ग्रह-
ण कीया है ॥ उनकों असत मे प्रतीत है ॥ हमकों दृड प्रतीत
कैसे उपजी है ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ प्रथम ब्रह्मा कों स-
र्ग असत वत भासता है ॥ वास्तव नहीं भासता ॥ सर्वगत
चैतन्य संवित कों संसार के दर्शन कर जब सम दर्शन का

अभावना या॥ स्वप्नरूप विषे आपतें अहंता प्रतीत उप
जी॥ तब धड होकर देषने लागा॥ जैसे अपने स्वपने वि
षे जगत धड भासता है॥ स्वप्नात हीं लषीता॥ तैसे ब्रह्मलोक
जगत भी धड भासता है॥ स्वप्नांत हीं भासता॥ जो स्वप्नपुरु
षतें उपजा है॥ सो स्वप्न ही रूप है॥ हे रामजी ऐसा जो सर्ग है
सो एक एक जीव प्रति उदे हूया है॥ जैसे समुद्र विषे तरंग
फुरते हैं॥ तैसे चैतन्य तत का आभास जगत फुरते हैं॥ जैसे
स्वप्नपुर विषे अवास्तव पदारथ होते हैं॥ तैसे इह पदारथ
भी अवास्तव हैं॥ भ्रममात्र हैं॥ मन के संकल्पमात्र हैं॥ हे रा
मजी ऐसा पदारथ कोऊ नही॥ जो इस जगत विषे सिध न
ही होता॥ अरु अवर का अवर नही भासता॥ अरु मर्यादा को
नही त्यागता॥ काहे ते जो मन के संकल्पमात्र उपजे हैं॥ तूं दे
षु जल विषे अग्नि समुद्र विषे जो वडवाअग्नि है॥ सो विप
र्यै है किंउ॥ इसी कारण ते मैं कहता हों॥ जो मनोमात्र है॥ अरु
देषु जो आकाश विषे नगर वसते हैं॥ विवान प्रतछ चलते
हैं॥ अरु सिला जो है चिंतामणि आदिक तिसतें कमल उपज
ते हैं॥ जैसे हिमालै पर्वत विषे बरफ उपजती है॥ अरु सर्व रु
तीं के फल एक ही समें उपजते हैं कल्पवृछ सों॥ जैसे पथर
निकस आवते हैं॥ रतों के गुछे निकस आवते हैं॥ शिला विषे
जल निकस आवता है॥ चंद्रकांता सों अमृत द्रवता है॥ एक
निमेष विषे घट पट होजाता है॥ अरु पट घट होजाता है॥ स्व
रूप के विस्मृत हूये सत को असत देषता है॥ जैसे स्वप्ने विषे
अपणों मरणों देषता है॥ जल ऊपर को चलता देषता है॥ मे
घ होकर स्वर्ग को चढीया होकर गंगाजी चलती है॥ पथर उ
डते हैं॥ जैसे पंषों सहित पहाड उडते हैं॥ चिंतामणि सिला तैं स
भे पदारथ उपजते हैं॥ इत्यादिक भ्रमतें नानात्व विपर्यै होके
र पडे फुरते हैं॥ तातें तूं देषु जो मनोमात्र है॥ अरु अवर के अव
र होजाते हैं॥ हे रामजी इह इंद्रजाल गांधर्व नगर सांबर माया
वत है॥ असत ही हैं॥ भ्रम करके सत भासता है॥ ऐसा कोऊ पदार
थ नहीं जो सत नहीं॥ अरु असत भी नहीं॥ मन विषे फुरते हैं॥ इ
ति श्री निर्वाणप्रकरणे जाग्रत स्वप्न विचारो नाम स
र्गः॥ ५२॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इह संसार मिथ्या है

जो पुरुष इसकों सत जानता है ॥ सो महां मूर्ख है ॥ अ
रु भ्रम विषे भ्रम कों देषता है ॥ अर महा मोह कों प्रा
प्त होता है ॥ जैसे कोऊ मृग होता है ॥ अर टोये विषे गि
र पडता है ॥ अर महां दुष कों प्राप्त होता है ॥ अर बहु
ड उस तें नीवडे टोए विषे गिडता है ॥ तो अति ही दुष कों
प्राप्त होता है ॥ तैसे ही मूर्ष जो पुरुष है ॥ आतमा के अग्या
न करि के संसार रूपी टोए विषे गिडता है ॥ तिस विषे अ
वर अवर भ्रम कों देषता है ॥ स्वप्ने विषे स्वप्ना बहुड
स्वप्ने विषे अवर स्वप्ना देषता है ॥ इसी तें एक हास
६त कहता हों ॥ हे रामजी तूं श्रवण कर ॥ एक संन्यासी
था ॥ सो मनन शील संन्यासी ॥ योग का जो अभ्यास वो अं
ग है समाध ॥ तिस समाध विषे स्थित था ॥ अरु तिहाउ
म का समाध करतें करतें कुछ थकूया था ॥ तिस समाध के
र दिन कों व्यतीत कीया करे ॥ जब समाध तें उतरे ॥ तब
अभ्यास एक बणाय कर बहुड समाध विषे जुडे ॥ इसी प्र
कार जब बहुत काल व्यतीत भया ॥ तब एक समें स
माध तें उतरते हूयें एह चितवना करणे लागा ॥ जो जै
से पुरुष मस्त होते विचरते हैं ॥ अर चेष्टा करते हैं ॥ तैसे
में भी कछु चेष्टा करों ॥ ऐसे विचार करके मन के संकल्प
तें विश्व कल्पी ॥ तिस विषे एक आपनी बणाया ॥ तब
तिस का नाम जीवट भया ॥ मद्यपान करे ॥ अर ब्राह्म
णों की सेवा भी करे ॥ तिस जीवट शरीर विषे विचरणे
लागा ॥ चेष्टा करतें हूयें सोय गया ॥ तब स्वप्ना पाया ॥ स्व
प्ने विषे ब्राह्मण का शरीर तिस कों मान हूया ॥ जो में ब्रा
ह्मण हों ॥ तब ब्राह्मण के शरीर विषे वेद का अध्ययन
कीया ॥ तब पाठ बहुत कीया करे ॥ बहुत काल ऐसी
चेष्टा करतें व्यतीत भया ॥ तब सोये हूयें स्वप्ना पाया ॥
तिस स्वप्ने विषे आप कों राजा देषत भया ॥ जो में राजा हों
तब बडा सैना संयुक्त राजा होकर विचरणे लागा ॥ अप
कार बेदणे लागा ॥ केताइक काल इस प्रकार व्यतीत
भया ॥ तब सोये हूयें बहुड स्वप्ना पाया ॥ तिस स्वप्ने विषे

ऽआपकौं चक्रवर्ती राजा देषता भया ॥ जो मैं चक्रवर्ती रा
जा हों ॥ तब चक्रवर्ती राजा होइकर ॥ सारी पृथिवी परि आ
ज्ञा चलावणे लागा ॥ जब केताइक काल व्यतीत भया ॥ तब
स्वप्ना पाया ॥ स्वप्ने विषे आपकौं देवांगना देषत भया ॥ जो मैं
देवता की स्त्री हों ॥ तब देवता की स्त्री होकर देवता के साथ
बाग विषे विचरे ॥ जैसे वलीवृछ के साथ सोभा पावती है ॥ तैं
से ही देवता के साथ सोभा पावणे लागी ॥ इसी प्रकार कोइ
काल देवता के साथ व्यतीत कीया ॥ तब बहुड़ स्वप्ना पाया
तिस स्वप्ने विषे आपकौं हरिनी देषत भई ॥ जो मैं हरिनी हों
हरिनी होइकर बन विषे विचरणे लागी ॥ कोई काल ऐसे
से व्यतीत भया ॥ तब बहुड़ स्वप्ना पाया ॥ तब आपकौं वल्ली
देषत भई ॥ जो मैं वल्ली हों देवता के बन की ॥ जब ऐसे को
ई काल व्यतीत भया ॥ तब स्वप्ना पाया ॥ स्वप्ने विषे आपकौं भ
वरा देषत भई ॥ जो मैं भवरा हों ॥ भौंरा होइकर सुगंध कौं
ग्रहण करणे लागी ॥ तिसतें अनंतर बहुड़ स्वप्ना पाया ॥ त
ब देषत भई जो मैं कमलनी हों ॥ कमलनी हूई ॥ तब एक दि
न हस्ती बल्ली के निकट आयकर बल्ली कों षाइ गया ॥ जैसे
कोउ बालिक मूरिष होता है ॥ नली वस्तु कौं नीतोर डार
ता है ॥ तैसे मूरिष हस्ती तिस वल्ली कौं तोरकर षाइ गया
तिसतें उपरांत तिस वल्ली हस्ती का आहार पाया ॥ पायकर
बहुड़ बष्पी पाया ॥ ठौय विषे पड़ी कौ ताइक काल व्यतीत
भया ॥ तब हस्ती कौं स्वप्न आया ॥ वहुड़ जो भवरा होइकर क
मलों विषे लागी विचरतें ॥ केताइक काल व्यतीत भया ॥
तब बहुड़ वल्ली हूई ॥ तब उस वल्ली के निकट एक ह
स्ती आया ॥ हस्ती कौं पाद कर उह वल्ली चरण भई ॥ तब
उस वल्ली कौं एक हंस षाइ गया ॥ तब उह वल्ली हंस हूई
हंस होकर बहु मानसरोवर विषे विचरने लागा ॥ तब
हंस के मन विषे आई ॥ जो ब्रह्मा का हंस होवों ॥ तब संक
ल्प करके ब्रह्मा का हंस बण गया ॥ जैसे जल का तरंग
बण जावै ॥ तैसे ही हंस ब्रह्मा का हंस बण गया ॥ तब ब्रह्मा
के उपदेश करके हंस कौं आत्मज्ञान प्राप्त भया ॥ हे रा

मजी। ऐसें अज्ञानकर्कें भ्रमकों प्राप्त भया॥ सो ज्ञानकर्कें
शांति भया॥ बहुर विदेह मुक्ति होवैगा॥ उह हंस सुमेर प-
र्वत विषे उदय जाता था॥ मन विषे आई जो मैं रुद्र होवों
तब सत संकल्प कर्कें रुद्र ही हो गया॥ जैसें शुध दर्पण
विषे प्रतिबिंब शीघ्र ही पडता है॥ तैसें शुध अंतःकरण
के संकल्प कर रुद्र भया॥ रुद्र कहीये जिसकों अनुत्तर
ज्ञान है॥ अनुत्तर ज्ञान कहीये जिसके जानणें तें अवर
जानणा कछु न रहे॥ सर्व तें श्रेष्ठ ज्ञान सो रुद्र कों अनुत्त-
र ज्ञान है॥ तिस अनुत्तर ज्ञान कर सो तित रुद्र जी॥ आप-
णी जो कछु चेष्टा है॥ सो करतें भया॥ अरु गणां अपणे कों
देषते भया॥ तब रुद्र के मन विषे विचार हूया॥ जो बडा
आश्चर्य है॥ जो मैं अज्ञान करकें एते वडे भ्रम कों प्राप्त
हूया था॥ ऐसी आश्चर्य माया है॥ मैं तो एक रूप बडा हों
अरु इह विश्व मेरा स्वरूप है॥ आपणे जो मेरे शरीर हैं
तिनकों जाइकर जगावों॥ तब रुद्र जी उठ षडा हूया॥
अपणे स्थान कों चल्या॥ प्रथम जो संन्यासी का शरीर था
तिसकों आइ कर देष्या॥ देषकर तिसकों चितशक्ति
कर जगाया॥ तब संन्यासी के शरीर विषे नीं ज्ञान हूया
जो सर्व मैं ही पडा हों॥ पर संन्यासी जाण्या जो मेरे तांई रु-
द्र जगाया है॥ तब संन्यासी जाण्या॥ जो मेरे शरीर इतु ने
होर नी हैं॥ तब उहां तें रुद्र अरु संन्यासी दोनों चल्ये
जीवट के स्थान मों आये॥ देष्या जो जीवट शव की न्याई
ई पडा है॥ अरु मदरा के वासन पडे हैं॥ अरु चेतनां उहां
ही पडी भ्रमती है॥ नाना प्रकार के स्थान कों पडा देष-
ता है॥ जैसे मरने के छिद्रों विषे कीडी पडी भ्रमती है
तब जीवट कों चितशक्ति कर जगाया॥ तब उठ षडा
हूया॥ जीवट कों ऐसे स्मरण हूया॥ जो मेरे तांई इन्हों-
ने जगाया है॥ तब जीवट के मन विषे विचार हूया॥ जो
इतने शरीर मेरे होर हैं॥ तब रुद्र संन्यासी जीवट ती-
नों चल्ये॥ तब इन्हों विचार कीया॥ जो इतने शरीर हमों

नेंक्योंकर पाये॥ आदि एक पर्मात्मा विषे जो चेतन मु
खलकरके मैं संन्यासी भया॥ बहुड संन्यासी तें जीवट हू
या॥ बहुड मद्यपान करणे लागा॥ बहुड ब्राह्मण हूया
ब्राह्मण का शरीर धारकर वेदपाठ करणे लागा॥ ति
स वेदपाठ करणे का पुन्य जो है॥ तिसतें राजे का शरीर
धारया॥ तिसतें आगे जो बडा पुन्य प्राप्त भया॥ तब चक्र
वर्ती राजा हूया॥ तब चक्रवर्ती राजे के शरीर विषे स्थि
त हूया॥ तिसके होवणे करके देवता की स्त्री भया॥ तब
स्त्री शरीर मों जो बहुत प्रीत नेत्रों विषे थी॥ तिसतें हरि
णी भई॥ बहुड़ि जु मरी भया॥ तिसतें आगे वली भया॥ इ
सतें लेकर जो शरीर धारते॥ सो मैं मिथ्या धारते हैं॥ अरु अ
ज्ञान करके धारते हैं॥ ज्ञान की प्राप्त विना मैं बहुत काल
भटकता रह्या हों॥ अरु सहस्र वर्ष अनंत जुग व्यतीत भ
ये॥ संन्यासी तें आदि अरु कडु पर्यंत वासना करके जन्म
पाये॥ एते जन्म पाय कर जो जो ब्रह्मा का जन्म हंसजाइ
हूया॥ तहां ज्ञान की प्राप्त भई॥ क्या है तें जो पूर्व अभ्यास की
योथा॥ तिसकर अरु एक समाचे तें सतसंग अरु ज्ञान प्राप्त भया
तब ऐसे विचार करतें हुहां तें चले॥ तब चैतन्य आका
श विषे उड़ते॥ मदरापान करणे वाले की सृष्ट विषे गये
तब उसकों देखत भये॥ जो सोया पड़ा है॥ तब उसकों चि
तशक्ति कर जगाया॥ तब जीवट रुद्र संन्यासी मदरापा
न करणे वाला चारों कुहां तें चले॥ चिताकास विषे उड़ते
राजा की सृष्ट विगये॥ तब देखत भये॥ जो राजा की स
ष्ट पडी चेष्टा करती है॥ अरु राजा अपणे मंदर विषे पलंग
ऊपर सोया पडा है॥ अरु राणी बी साथ सोई हुई है॥ सो रा
जी की देह स्वर्न की न्याई सोभायमान है॥ अरु तैसे ही रा
णी की देह स्वर्न जैसा है॥ सो दोनों कैसे सोये पडे हैं॥ जैसे
नेवरीं अरु नवरी दोनों सोये होते हैं॥ अरु सहेली नी सि
रपर बहुत षडी है॥ अरु चवर करती है॥ जैसे वृक्ष के पा
स बहुती वली होती है॥ तैसे ही राजा अरु राणी के पास
सहेलीयो षडी हैं॥ तब राजा को चितशक्ति कर जगाया

तबराजादेषतभया॥ जोसर्वविश्वमेराहीस्वरूपहै।
अररानीदेषतभया॥ जोएतेशरीरअज्ञानकेरके
मैंधारेहैं॥ आश्चर्यमायाहै॥ राजास्वरूपविषेजागा
तबरूद्रसंन्यासीशिवइमदरापानकरणेवालाअलम
अरराजा णारूहांतेचल्यो॥ तबहस्तीतेंआदिलेकरजोशरीरधा
रेथे॥ सोसबजगाये॥ इहशरीरसौ१००धारेथेसोस
बजगाये॥ संपूरण॥ तिनसबनोंविषेएहीनिश्चाभ
या॥ जोहमचिन्मात्रस्वरूपहैं॥ अरआवर्नतेंरहित
हैं॥ आवर्नकहीयेअज्ञानकरफुरणां॥ तिसतेंरहितहैं
तबहेरामजीउनकेशरीरदेषणेविषेसोहइआवे॥
परचेष्टासबनकीएकजैसी॥ अरनिश्चानीएकजैसा
उनकानामशतरूद्रभया॥ उहशतरूद्रहूये॥ तातेहे
रामजीविश्वसंपूर्णअज्ञानरूपफुरणेंकरहोताहै॥
अरज्ञानककेंकछुहूयानहीं॥ ऐसेउनकोसंवेदन
अरनिश्चाएकजैसाहूया॥ एकदेषेतोसर्वमेराही
स्वरूपहै॥ जबदूसरादेषेतोमेराहीरूपहै॥ इसीप्रका
रसर्वहीदेषतभये॥ जोसर्वआपनाहीस्वरूपहै॥ तिस
विषेएहदृष्टांतहैं॥ जैसेसमुद्रविषेतरंगहोतेहैं॥ अ
उन रआकारउनकेभिन्नभिन्नहोतेहैं॥ अरस्वरूपकों
एकजैसाहोताहै॥ तैसेज्ञानवानसर्वविश्वकोंअप
णांहीस्वरूपदेषतेहैं॥ अरअज्ञानीउसकोंभिंनजा
नतेहैं॥ अरआपकोंभिनजानतेहैं॥ अरएककोंदू
सरानहींजानता॥ अरदूसरेकोंप्रथमनहींजानता
सोक्यानहींजानता॥ जोएहमेरास्वरूपहै॥ एहीनहीं
जानता॥ जैसेपथरकेबटेदोपडेहोवें॥ तोनआपकों
जानतेहैं॥ नदूसरेकोंजानतेहैं॥ जोमेरास्वरूपहै॥ तैं
सेहीअज्ञानीनआपकोंजानताहै॥ नअवरकोंअप
नांस्वरूपजानताहै॥ हेरामजीइहविश्वहीआपनांस्व
रूपहै॥ अज्ञानकरकेंभिंनभासताहै॥ अज्ञानकरही

ये जो चिन्मात्र विषे फुरणां ॥ तिस फुरणे विषे संसार है ॥ अर अफुर विषे आतमा ही स्वरूप है ॥ तां ते हे रामजी फुरणे को त्याग कर अवर कछु नहीं ॥ जिस प्रकार शत्रु मरै ॥ तिस प्रकार मारीये ॥ एही यतन करीये ॥ अर मैं तेरे ताईं ऐसा उपाय कहता हों ॥ जिस विषे यतन भी कछु नहीं ॥ अर शत्रु भी मारता जावै ॥ सो उपाय एही है ॥ जो चितवना कछु न करीये ॥ इस विषे यतन भी कछु नहीं ॥ सुगम उपाय है ॥ हे रामजी एह चितवना ही दुःष है ॥ अर चितवना तें रहित होवणां ही परम सुष है आगै जो तेरी इछा होवै सो करो ॥ ए चित्त के फुरणे कर संसार है ॥ अर निवर्त होवणे ते स्वरूप ही है ॥ जैसे पुरष पथर विषे पुतलीयां कल्पता है ॥ तो पथर ते भिन्न पुतलीयां का अभाव है ॥ तैसे ही चित्त नें विश्व कल्पी है ॥ जब चित्त निवर्त होवै ॥ तब विश्व अपनां ही स्वरूप है ॥ अवर भिन्न कछु नहीं ॥ अर चित्त साथ जहां जावै तहां पंचभूत ही दृष्ट आवते हैं ॥ आतमा दृष्ट नहीं आवता ॥ अर चित तें रहित ज्ञानी जहां जावै ॥ तहां आतमा ही दृष्ट आवता है ॥ जब चित की ब्रत बाहिरमुष होती है तब संसार होता है ॥ पंचभूत ही दृष्ट आवते हैं ॥ अर जब चित की ब्रत अंतरमुष होती है ॥ तब ज्ञानरूप अपणां आप ही भासता है ॥ जितने कछु पदार्थ हैं ॥ सो ज्ञानरूप आतमा बिनां सिध नहीं होते ॥ पहिले आपकौं जाणीता है ॥ तब पाछे अवर पदारथ जाणीते हैं ॥ इसी तें ज्ञानवान सर्व अपणां आप जानता है ॥ हे रामजी एह जितने पदारथ हैं ॥ सो फुरनें कल्पे हैं ॥ अर जेते जीव हैं ॥ तिनकी संवेदन भिन्न भिन्न है ॥ अर संवेदन विषे अपणी अपणी विश्व है ॥ जैसे पुरष सोवता है ॥ तिसकौं अपनें स्वप्ने की विश्व भासती है ॥ अर कोई पास बैठा होता है ॥ तिसकौं नहीं भासती ॥ उसकी विश्व स्वप्नें कों नहीं जानता ॥ अर जो ज्ञानी है ॥ तिसकौं अपणां आप ही

भासता है ॥ इह जगत सभ अपणें रूप जानता है ॥ अ
र अज्ञानी जिस और देखता है ॥ तिस कों पंच भूत कर द
ष्ट आवते हैं ॥ जैसे पृथिवी के खोदे हूये आकास ही
दृष्ट आवता है ॥ तैसे अज्ञानी चित सहित जहां देख
ता है ॥ तहां पंच भूत ही दृष्ट आवते हैं ॥ तो ते हे रामजी
तें फुरणे तें रहित हो ॥ फुरणें कर कै बंध है ॥ अर अफुरणे
कर कै मोक्ष है ॥ आगें जैसी तुमारी इछा है ॥ तैसे करो ॥
हे रामजी जो अफुरनें कर कै असत्त हो जावै ॥ तिस के नास
विषे हूं पणता करणी क्या है ॥ अर जो तूं छमी कर कै अ
स होवै ॥ तिस कों आतम रूप जाण ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे
मुनीश्वर एक ब्रीवट ब्राह्मण तें आदि लेकर संन्यासी
कै रूप स्वपने विषे हूये ॥ तिस तें उपरांत बहुड़ क्या हूया
॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी ब्राह्मण तें आदि ले
कर जेते शरीर थे ॥ सो रुद्र कर जगाये हूये सुखी हूये
जब सो ही एक रहे न ये ॥ तब रुद्र जी तिन कों कहा ॥ हे स
र्वो तुम अपने अपने स्थानों कों जावो ॥ अर को कु का
ल अपने कलत्र विषे भोगों कों भोगो ॥ बहुड़ तुम मेरे
गण हो कर मुझ कों प्राप्त होवोगे ॥ महाकल्प विषे ह
म सभ ही विदेह मुक्त होवेंगे ॥ हे रामजी जब ऐसे रु
द्र जी कहा ॥ तब सभ अपने अपनें स्थानों को गये ॥
अर रुद्र जी भी अंतर्ध्यान हो गये ॥ सो अब भी तारे
को आकार धारे हूये एक बीक बी मुझ कों आकाश वि
षे दृष्ट आवते हैं ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन तुमों
नें कहा संन्यासी ब्रीवट तें आदि सो शरीर धारे ॥ सो
सत कैसे हूये ॥ अर तिन की सृष्ट कैसे सत हुई ॥ सो क
हो ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी आतमा जो है ॥ सो स
भ का अपणां आप है ॥ अर शुध है ॥ अर चैतन्य आका
श है ॥ अर अनुभव रूप है ॥ तिस अपणें आप विषे ॥ जै
से देश काल का अप्रवावस्त का निश्चा होता है ॥ सोई
आगें बण जाता है ॥ जैसे जैसे फुरता है ॥ तैसे ही होता जा
ता है ॥ अंतहकरण जो है मन ॥ सो मन जिस का शुध होता

है ॥ तिसका सत्त संकल्प होता है ॥ जैसे संकल्प करता है
तैसे ही होता है ॥ अरु जो तूं कहैं जो संन्यासी का अंतहक
र्ण शुध था ॥ तिन नीचनु च जन्म कैसे पाये ॥ नीच कहीये
मदरापान करणे वाला ॥ अरु जो मरसों वली तें आदि ले
कर ॥ अरु ऊंच कहीये ब्राह्मण राजा तें आदि लेकर ॥ शु
ध अंतहकर्ण विषे ऐसे जन्म न चाहीये ॥ तिसका उत्तर
एह है ॥ कि संवेदन विषे जैसा फुरणा होता है ॥ तैसा ही हो
ता है ॥ जैसे एक पुरुष का अंतहकर्ण शुध होइ ॥ तिसके
मन विषे फुरया ॥ जो एक शरीर मेरा विद्याधर होवे ॥ अरु
एक शरीर मेरा नेदका होवे ॥ तिसके हो जाते हैं दोनों ॥
भला भी अरु बुरा भी ॥ अरु जो तूं कहें बुरा किउं बण्या
भला ही बणता ॥ तिसका उत्तर सुण ॥ जैसे भले पंडित के
घर पुत्र होता है ॥ अरु संस्कार करके चोर हो जाता है ॥ संस
कार का जो वासनां मलिन होती है ॥ तब तिसकों दुःख दे
ती है ॥ तिसतें हे रामजी सर्वक्षु नैं कर हीं ऊंच नीच होते हैं ॥
जैसा अभ्यास होता है ॥ अरु पर्म योग होता है ॥ तैसा सिध हो
ता है ॥ अभ्यास कहीये मंत्रों का जाप ॥ अरु योग कहीये
चित्त का स्थिति करणा ॥ इनकर जैसी चितवनां होती है ॥
तैसी हीं सिध होती है ॥ अरु अज्ञानी कौं नहीं होती ॥ जैसे व
स्त निकिट पडी है अरु दूर है ॥ तैसे अज्ञानी की भावनां न
हीं ॥ तब न दूर वाली प्राप्त होती है ॥ न निकिट वाली प्राप्त
होती है ॥ किउं नहीं सिध होती जो उसकी भावनां धृड नहीं
अरु रिदा भी शुध नहीं ॥ संकल्प भी तब सिध होता है ॥ जि
सका रिदा शुध होता है ॥ तिसका संकल्प भी सिध होता है ॥
जिसकी चितवनां करती है ॥ सो भी सिध होता है ॥ अरु जो नि
किट है ॥ सो भी सिध होता है ॥ अरु जो तूं कहैं संन्यासी तो एक
था ॥ शरीर बहुत कैसे चेतन्य हूये ॥ तिसका उत्तर सुण ॥ जो
कोई योगेश्वर है ॥ अरु योगनी जो देवीयां हैं ॥ तिनका संक
ल्प सत्त है ॥ जैसे संकल्प फुरया तैसे हीं होता है ॥ ऐसे सत्य
संकल्प वाले अनेक मैं आगे देखे हैं ॥ एक सहस्रबाहु अ
र्जुन राजा था ॥ सो घर विषे बैठा हूया सिर पर छत्र पडा झु
लता है ॥ अरु चमर होता है ॥ अर तिसके मन विषे संकल्प

कृया॥ जोमैंमेघहोकरवर्षों॥ तिससंकल्पकेकरणेकरए
कशरीरतोराजाकारहो॥ अरएकशरीरमेघहोकरवर्ष
णेलागा॥ अरविष्णुभगवानजोहै॥ सोएकशरीरकरकैक्षी
रसमुद्रविषैसैनकरतेहैं॥ अरप्रजाकारक्षानिमित्तअव
रशरीरभीधारलेतेहैं॥ अरजगनदेवीयांअपणेस्थानों
विषैहोतीहैं॥ अरवडेईश्वर्यकरदेशोंविषैभीविचर
तीहैं॥ अरइंद्रभीएकशरीरकरकैस्वर्गविषैरहिताहै॥
अरअवरशरीरकरजगोंविषैभीबैगारहताहै॥ इत्या
दिकजोयोगीश्वरहैं॥ तिनकाजैसासंकल्पहोताहै॥ तैसे
हीसिधहोताहै॥ अरजोअज्ञानीपुरुषहैं॥ तिनकामन
बडेभ्रमकोंप्राप्तहोताहै॥ अरबडेमोहकोंप्राप्तहोता
है॥ मोहतेंआगेबहुडमोहकोंप्राप्तहोताहै॥ अरनीच
गतिकोंप्राप्तहोतेहैं॥ जैसेबडाजोपर्वतहै॥ तिसऊपर
तेंवडागिडताहै॥ तबनीचेस्थानकोंप्राप्तहोताहै॥ तैसे
हीमूर्खआत्मपदतेंगिडनेकरकैसंसाररूपीटोयेवि
षैगिडतेहैं॥ अरबडेदुःखकोंप्राप्तहोतेहैं॥ श्रीरामो
वाच॥ हेभगवनतुमोंकहाजोसंसारस्वप्नमात्रहै॥ सो
मैंनेंजानयाहै॥ अनंतमोहरूपीविषमहै॥ आतमचेत
नरूपीआनंदहै॥ तिसकेप्रमादकरकैजडरूपीआप
कोंजानताहै॥ वडाआश्चर्यहै॥ हेभगवनएहजोतुमों
संन्यासीकहो॥ तिसजैसाकोऊअवरभीहै॥ अथवानहीं
सोकहो॥ श्रीवशिष्टोवाच॥ हेरामजीसंसाररूपजो
मंडीहै॥ तिसविषैरात्रकेसमैंमेंसमाधकरकैदेखोंगा
अरदिनकोंतेरेताईजैसेहोवैगा॥ तैसेकहोंगा॥ बाल
मीकोवाच॥ हेराजाऐसेजबवशिष्टजीकहा॥ तबसम
ध्यानकासमाकृया॥ अरनोबतनिगारेबाजणेलागे॥ ब
डाशब्दकृया॥ जैसेप्रलेकालकामेघगार्जताहै॥ तैसेश
ब्दहोवणेलागा॥ तबवशिष्टजीकेवचनोंपरराजेअर
देवतऊनेंफूलचडायेसनमानों॥ अरबडीपूजाकरी॥ जै
सेबडापवनचलताहै॥ अरबागवृछोंकेफूलपृथिवी
परगिडतेहैंवेगकरकै॥ तैसेहीबहुतफूलोंकीवर्षाक
री॥ जबबहुतपूजाहोरही॥ तबवशिष्टजीकोंनमस्का

के

रकर्के उठ खडे हूये ॥ बहुड आप विषे नमस्कार कीये ॥
बहुड राजा दशरथ ते आदि लेकर राजा अर रिषि स
नेउ ठे ॥ तब कैसे उठे ॥ जैसे मंदराचल पर्वत ते सूर्य उदे
होता है ॥ तैसे ही वशिष्ठ ते आदि लेकर रिषि अर राजा
दशरथ ते आदि सभ नेउ ठे ॥ तब पृथिवी के राजा अर
प्रजा पृथिवी कौं चले ॥ आकाश के सिध अर देवता जो
थे सो आकाश कौ चले ॥ सभ अपणे अपणे कर्म विषे
जाइ लागे ॥ जैसे शास्त्रोक्त विवहार है ॥ तिस विषे स्थि
ति भये ॥ अर तब रात्र भई ॥ तब आप ही आप विचारने
लागे ॥ जो वशिष्ठ जी कैसे ज्ञान उपदेश कीया ॥ तिस विचा
रकर्के रात्र एक क्षण की नांई व्यतीत भई ॥ अर वशिष्ठ
जी कौं मिलणे की वांछा करते रात्र कल्प के समान बीती
तब सूर्य की किरणां उदे होवणे सों आन स्थिति भये ॥ अ
र राम लछमण ते आदि लेकर राजा अर प्रजा अर आ
कास के देवता अर सिध अर वशिष्ठ विश्वामित्र ते आ
दि लेकर सभन स्थिति भये ॥ अर सभनों आपस विषे न
मस्कार कीये ॥ अर अपणे अपणे स्थान विषे बैठ गये ॥
शांति रूप होकर स्थिति भये ॥ जैसे पवन ते रहित कम
ल स्थिति होते हैं ॥ तैसे ही फुर्न रूप पवन ते रहित शांति
रूप स्थिति भये ॥ तब वशिष्ठ जी अनुग्रह करके आप ही
कहत भये ॥ हे रामजी तेरी प्रीत के नमित्त मैं संसार रूपी
मडी कौं बहुत खोजन कीया ॥ अकाश विषे ॥ अर पाताल
विषे ॥ सप्तद्वीप सभन खोजे हैं ॥ पर ऐसा संन्यासी कोउ दृष्ट
न आया ॥ जैसा अन्य का संकल्प नहीं भासता ॥ जब पिछ
ली प्रहर रात्र रही ॥ तब मैं बहुड ढूंढ करी ॥ तब उत्तर दि
शा विषे चीन मचीन नगर मों एक स्थान है ॥ तहां एक म
डी देखी ॥ तिसके दरवाजे चडे हूये देखे ॥ तिस विषे कके
केशों वाला संन्यासी बैठा है ॥ अर बाहिर उसके चेले बैठे
हैं ॥ उह चेले दरवाजे खोलते नहीं ॥ जो मत हमारे गुरु की
समाधि खुल जावै ॥ तिस स्थान विषे बैठा है ॥ मानो दूसरा
ब्रह्मा बैठा है ॥ अर जिस देश विषे बैठा है ॥ तिसके बैठे नों

दिन एकी सम्प्रतीत भये हैं ॥ समाधि विषे स्थित हूये ॥ अ
र समाधि विषे उसकों सहस्र वर्ष का अनुभव भया है
अरु बहुत जन्म भी पाये हैं ॥ कैसे जन्म जो प्रत्यक्ष देषत
भया ॥ अरु स्पष्ट भी प्रत्यक्ष देषा ॥ तिस विषे विचरे ॥ हे रा
मजी इस जैसा इक अवर भी पूर्व कल्प विषे था ॥ इहु ती
नहीं थे ॥ सो एक को बहुत देषर हा हो ॥ कछू दृष्ट नहीं आ
वता ॥ तब राजे दशरथ कहा ॥ हे महामुने ॥ जो तुम आ
त्र नकुल विचरले बोला
ज्ञा करो तो मैं आपणे अनुचर चीन मचीन नगर उत्तर
वल भेषों ॥ तहां जाइ कर तिस संन्यासी कों जगावे ॥ तब
वशिष्ट जी कहा ॥ हे राजन उह संन्यासी अब ब्रह्मलोक हं
स होकर ॥ ब्रह्मा के उपदेश सों जीवन्मुक्ति हूया है ॥ अर
इह जो शरीर उसका है ॥ सो अब मृतक हूया है ॥ इस
विषे अब पुर्यष्टका जो है जीव सो नहीं ॥ तिस कों क्या ज
गावणा है ॥ अर मास एक पीछे उसका दरवाजा सिष्य
षोलेंगे ॥ तब लोक उस नगर के देषेंगे जो मृतक पडा
है ॥ तातें हे रामजी इह विश्व संकल्प मात्र है ॥ अर जो तूं
कहें जो एक जैसे कैसे हूये ॥ तो सुण ॥ जैसे इह मुनीश्व
र रिषराजे अर अवर जो संसार विषे लोक हैं ॥ सो केई
वार एक जैसा शरीर धारते हैं ॥ अर केई मध्य धारते हैं
अर केई कछु थोडा धारते हैं ॥ अर केई विलक्षण धा
रते हैं ॥ सो श्रवण कर ॥ इह जो नारद है सो इस जैसा अ
वर भी नारद होवेगा ॥ तिसकी चेष्टा भी ऐसी होवेगी
अर शरीर भी अवर ऐसा होवेगा ॥ अर व्यास जी शुक
देव भृग अर भृग का पिता अर जनक अर कर्करी अ
रु अत्रि रिषीश्वर जैसा अब है ॥ अर अत्र का इस्त्री भी
संद होवेगी ॥ ऐसा ही अत्रे जैसे ही इस्त्री होवेगी ॥ इन
तें आदि लेकर बहुत होवेंगे ॥ जैसे एक ही समुद्र वि
षे तरंग एक ही जैसे भी होते हैं ॥ अर घट वध भी होते
हैं ॥ तैसे हे रामजी इह संसार ब्रह्मा तें आदि अर पाता
ल पर्यंत सब मन के रचे हूये हैं ॥ सो सब मिथ्या हैं ॥ ज
ब इह चित्त कला बहिर्मुष होती है ॥ तब संसार दे

राकालहोताहै॥जबअंतरमुषहोतीहै॥तबआतमप
दकोप्राप्तहोताहै॥अरजबबाहिरमुषहोतीहै॥तबदुषकों
पावताहै॥अपनांस्वरूपसदाअनंदरूपहै॥तिसवि
षेचित्तकलनाजानतीहै॥जोमैंसदादुषीहौं॥देहइंद्रीयों
साथमिलकरदुषीहोताहै॥तांतेहेरामजीतंइसअ
ग्यानफुरनेंतेंरहितहो॥फुरनेंकरइहअवस्थाप्राप्तहो
तीहै॥जैसेचंद्रमाअंम्रतकरपूर्नहै॥तिसविषेचर्मदृ
ष्टकरकैकलंकतानासतीहै॥तैसेंहीआत्माअंम्रतरू
पचंद्रमाविषेअग्यानदृष्टकरकैजन्ममृतुरोगकदुष
नेयकलंकदेषताहै॥महाआश्चर्यमायाहै॥जैसेचं
द्रमाएकहै॥नेत्रदोषकरकैबहुतेभासतेहैं॥तैसेचंद्र
मारूपएकअद्वैतआत्माहै॥तिसविषेविश्वरूपना
नत्वअग्यानकरकैभानहोताहै॥एहीमायाहै॥हेराम
जीतंएकरूपआत्माहै॥तिसविषेफुरनेंविश्वकल्पीहै
तांतेतंफुरनेंतेंरहितहो॥फुरनेंतेरहितहूयेबिनांआ
त्माकादर्शननहींहोता॥जैसेसूर्यकेचढेहूयेंभीब
दल्योंकेहोतेंसूर्यनहींभासता॥तैसेफुर्नरूपबदल
केदूरहूयेंसूर्यरूपआत्माशुधभासताहै॥अरदृष्ट
दर्शनदृष्टाफुरनेंकल्पेहैं॥हेरामजीइहसंसारकासा
रजोआत्माहै॥तिसविषेसुषुप्तकीन्यांईमौनहो॥श्री
रामोवाच॥हेभगवनतीनुमौनमैंजानताहौं॥सोकव
नतीनमौन॥एकवाणीकीमौनचुपकररहणा॥अर
एकइंद्रीयोंकीमौन॥अरएककाष्टमौन॥काष्टमौनक
हीयेजोहठकरकैमौन॥जोइंद्रीयोंकोवसकरणा॥इ
हतीनमौनमैंजानताहौं॥अरसुषुप्तमौनतुमकहोजो
क्याहै॥श्रीवशिष्टोवाच॥हेरामजीतीनमौनकाष्ट
तपस्वीकीहैं॥अरसुषुप्तमौनग्यानीजीवन्मुक्तकीहै
अरतीनमौनअग्यानीतपस्वीकीहैं॥सोतीनमौनबऊड
अवणकर॥एकमौनवाणीकीजोबोलणानहीं॥एक
मौनसमाधजोनेत्रोंकोमूंदलेणादेषणाकछुनहीं
एकहठकरस्थितहोवणा॥इंद्रीयांअरमनकोस्थिति

हिकेहठकर

करणा॥ अरएक मौन इंद्रीयोंकी चेष्टातें रहित हो
वणा॥ इह तीन मौन कष्ट तपस्वी की हैं॥ अर सुषुप्त
मौन ज्ञानी की है॥ सुषुप्त मौन कहीये जो वाणीकर
के अर इंद्रीं करके चेष्टा नी होवै॥ अर आत्मातें इ
तर अवर न भासे॥ इह उत्तम मौन है॥ अथवा ऐसे
होवै॥ जो न मैं हों न जगत है॥ ऐसे निश्चै विषे स्थि
ति होवणां॥ इह वसी मौन है॥ अथवा ऐसे होवै॥ जो
सर्व मैं ही हों॥ ऐसे निश्चै विषे स्थित होवणां॥ इह व
दी उत्तम मौन है॥ हे रामजी विधकरके भी आत्मा
की सिधता होती है॥ अर निषेधकर भी आत्माकी
सिधता होती है॥ तिस आत्मा विषे स्थिति होवणां॥
इह वदी मौन है॥ हे रामजी इह जो मैं सुषुप्त मौन क
ही है॥ सो क्या है॥ तूं सुण॥ संसार जो है द्वैतरूप॥ तिस
के फुरणेतें सुषुप्त होवणां॥ अर आत्मा विषे जाग
णा॥ एही सुषुप्त मौन है॥ द्वैत के फुरणेतें रहित हो
वणां॥ एही सुषुप्त है॥ अर आत्मा विषे जागणां एही
तेरे ताईं कहा॥ अर ऐसे देषणां॥ जो न मेरे विषे जा
ग्रत है॥ न स्वप्न है॥ अर न सुषुप्त है॥ इस निश्चै विषे
स्थित होवणां॥ इह तुर्यातीत है॥ सो पंचम मौन है॥ ऐ
सा जो तुर्या अतीत पद है॥ सो अनादि है॥ अनंत है॥
अर जरातें रहित है॥ अर शुध है॥ अर निरइछ है
इस निश्चै विषे स्थित होवणां॥ इह उत्तम मौन है॥ हे
रामजी ज्ञानी इंद्रीयां के रोकणेकी इछा भी नहीं क
रता॥ अर न विचरणे की इछा करता है॥ जैसे स्वभावि
क पड़ी होती है॥ तिसी विषे स्थित होता है॥ इह परम मौ
न है॥ अर ज्ञानीकों सुष की वांछा भी नहीं॥ अर दुःष
का त्रास भी नहीं॥ इह परम मौन है॥ अर हेउपादेतें र
हित होवणां॥ अर हे रामजी तुम रघुवंश कुल विषे चं
द्रमा हो॥ अपणे स्वभाव विषे इस्थित होवणां परम मौ
न है॥ हे रामजी संसार जनम मरन के फुरणे करके होता

है॥ सो मिथ्या है॥ न शरीर सत्य है॥ न माया सत्य है॥ हे रामजी
तेरा स्वरूप शुद्ध है॥ इस तत को अंगीकार करके स्थित होव
णा एही परम मौन है॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन इह
सो रुद्र जो तुम मो कहा॥ सो रुद्र गण थे॥ अथवा रुद्र थे॥
॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी जिसको रुद्र कहते हैं
तिसी को गण कहते हैं॥ इह सत नहीं रुद्र हैं॥ श्रीरामोवा
च॥ हे भगवन इह जो तुम मो कहा॥ सो रुद्र हूया॥ सो तो इ
ह॥ एक चित था॥ सो किं कर हूया॥ जैसे दीपक तें दीप
क होता है॥ इसी भांत हूये॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी
एक सावर्णी है॥ एक निरावर्णी है॥ जहां शुध अंतस्करण हैं
सो निरावर्णी है॥ अर जहां मलन अंतष्करण हैं॥ सो सावर्णी
है॥ शुध अंतष्करण विषे जैसे निश्चा होता है॥ तैसे ततका
ल आगे सिध होता है॥ अर मलन अंतष्करण का फुरणां
सिध नहीं होता॥ तातें शुध जो निरावर्णी रूप है॥ सो आत्मा
है॥ अर सर्व व्यापी है॥ जैसा उनका निश्चा होता है॥ सो स
त है॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन रुद्र सरीर जो है सदाशि
व॥ सो चेष्टा इसकी तो मलन है॥ जो सिरों की माला गले वि
षे धारता है॥ अर भभूत लगी हूई है॥ अर नागे ही रहते
हैं॥ अर स्मसान विषे विचरते हैं॥ अर स्त्री सदा वामे
अंग रहती है॥ तिसको तुम कैसे कहते हो॥ जो शुध अं
तष्करण है॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी एक शुध अं
र अशुध अज्ञानी को कहते हैं॥ जो शुध विबेवर्ती॥ अर अ
शुध विबेनवर्ती॥ अर जो ज्ञानी हैं॥ सो हृदया को अपने वि
षे नहीं देखता॥ तिनको शुध अर अशुध मलन कर रा
ग द्वेष कछु नहीं॥ ऐसे जो सदाशिव हैं॥ तिनकौं न त्याग
करणा है॥ न अंगीकार करणा है॥ जो स्वभाविक चेष्टा
होती है॥ सो होवे॥ सो कैसे होती है॥ सो श्रवण कर॥ आदि
परमातमा विषे विष्णु भगवान का फुरणा हूया है॥ जो चा
र भुजा धारते संसार की रक्षा करणी॥ अर शुध चेष्टा रा
बणी॥ अर अवतार धारणे॥ अर धर्म की रक्षा करणी

अर पापीयोंके मारणा ॥ इह आदि फुरणा हूया ॥ हे राम
जी इह हूया स्वनाविक हैं। आइ प्राप्त नई है ॥ इस हू
याका न इनको रागद्वेषक के उपादेय है ॥ न हेय है ॥ अ
र इस हूयाकरके इनको अभिमान भी नही । जो हम कर
ते हैं ॥ इसी तें हूया इनको बंध नही करती ॥ ताते इह संस
र फुरणमात्र है ॥ जब तूं फुरणे तें रहित होवैंगा ॥ तब तेरे
ताई त्रिपुटी नजासैगी ॥ आत्माते इतर कछु न नासैगा
ताते तूं अज्ञान रूप फुरणे तें रहित हो ॥ जब तेरे ताई आ
त्मपद का साक्षात कार होवैगा ॥ तब तूं जानेगा जो फुर अ
फुर द्दस्य अद्दस्य मेरे विषे कछु नहीं ॥ अर आत्ममात्र प
द है ॥ जिस विषे एक कहणें भी नहीं ॥ तब द्वैत कहां ते हो
वै ॥ हे रामजी द्दस्य अद्दस्य फुरण अफुरण अर विद्या
अविद्या इह सभ उजनावलीके नमित कहते हैं ॥ अर आ
त्मा विषे कहणे कछु नहीं ॥ आत्मा एक है ॥ जिस विषे द्वै
कां त कछु नहीं ॥ जब चित परणाम बहिरमुख होता है ॥ त
ब विश्व का भान होता है ॥ अर जब चित अंतरमुख पर
णाम पावता है ॥ तब अहंता अर ममता का नास होता है
अर चैतन्यमय हूआ बरहता है ॥ जब अत्यंत अंतरमुख प
रणाम पावता है ॥ तब चैतन्य कहणें भी नहीं रहता ॥
अर जब इस तें भी अत्यंत परणाम पावता है ॥ तब है न
ही कहणें भी नहीं रहता ॥ हे रामजी ऐसा आत्मा तेरा अ
पणां स्वरूप है ॥ अर शांतिपद है ॥ जिस विषे वाणी की ग
म्य नहीं ॥ जो ऐसा कहीये ॥ अर तैसा कहीये ॥ ऐसा कहीये
इंद्रीयों का विषय है ॥ अर तैसा कहीये इंद्रीयों तें परे है ॥
जब तूं अपणे विषे स्थित होवैंगा ॥ तब जानैगा ॥ जो मेरे वि
षे अहं फुरणा भी नहीं ॥ अर आतमरूप सूर्य के साक्षात
कार कीये तें द्दस्यरूपी अंधकार का अभाव हो जावैगा ॥
सो आत्मा तेरा अपणां आप है ॥ केवल शांतिरूप है ॥ अ
र निर्मल है ॥ जैसे गंभीर समुद्र वाय तें रहित होता है ॥ तैं
से आत्मारूपी समुद्र संकल्परूपी वाय तें रहित गंभीर

ध्रुध होता है ॥ अर इह संसार चित का चमतकार है ॥ सो चित
निरंस है ॥ जिस विषे अंस अंसी भाव नहीं ॥ अद्वैत है ॥ हे रा
मजी जब ऐसे बोध विषे स्थित होवहिगा ॥ तब इह वि
श्व कों भी आतमरूप देषैगा ॥ अर बोधतें न देषैगा ॥ त
ब विश्व ही भान न होवेगी ॥ तांतें हे रामजी बोध विषे स्थित
होवो ॥ बोध कहीये ज्ञानस्वरूप आतमा तिस विषे स्थि
ति होवो ॥ इति श्री निर्वाणप्रकर्णे ब्रह्मएकताप्र
तिपादनं नाम सर्गः ॥ ६० ॥ श्रीवशिष्ठ उवाच ॥ हे राम
जी सदाशिव आदि फुर्णे हूया है ॥ जो त्रिनेत्र ॥ अर विश्व
का संहार कर्णी ॥ अर रुद्रों की माला धारणी ॥ अर ब्रह्मा
के चार मुष ॥ अर चारों वेद हाथों विषे ॥ अर संसार की उ
त्पति करणी ॥ ऐसे फुर्ने हूया है ॥ हे रामजी ब्रह्मा विष्नु
अर सदाशिव इह तीनों एकरूप है ॥ अर चेष्टा इनकी
स्वना विकहीब नवडी है ॥ न राग करकें अंगीकार कीया १. संज्ञा
है ॥ अर न द्वेष करकें तिसका त्याग करते हैं ॥ अर इह नीलो
कों के देषणेमात्र है ॥ अपणे ज्ञान विषे कछु नहीं करते
जो बोध विषे जागते हैं ॥ सो बोध विषे जागते क्या कही
ये ॥ अर कैसे होता है सो श्रवण कर ॥ एक सांष्यमार्ग
कर होता है ॥ सांष्यमार्ग कहीये ॥ तत अर मिथ्या को वि
चारणा ॥ तत कहीये मैं आतमा हों ॥ अर सत हों ॥ अर
चैतन्य हों ॥ अर मिथ्या सर्व दृस्य है जड है ॥ अर असत
है ॥ मेरे विषे अज्ञान करकें कल्पित है ॥ मैं आत्मा हों ॥ मेरे १. अद्वैत
विषे अर दृस्य दोनों नहीं ॥ इस निश्चै विषे स्थित होव २. अज्ञान
णा ॥ सो सांष्य विचार है ॥ अर योग कहीये प्राणों को (
स्थिति करणी ॥ जब प्राण स्थिति होता है ॥ तब मन भी स्थि
ति हो जाता है ॥ अर जब मन स्थिति होता है तब प्राण भी
स्थिति होते हैं ॥ इनका परस्पर संबंध है ॥ श्रीरामोवा
च ॥ हे भगवन जो प्राण स्थिति हूये तें मुक्ति होती है ॥ त
ब मरत्यक पुरुष के प्राण जो नहीं रहते ॥ निवर्त हो जाते हैं
तब सर्व मुक्ति हूये चाहीयें ॥ श्रीवशिष्ठ उवाच ॥ हे
रामजी प्रथम तो मरणा श्रवण कर जो क्या है ॥ इह जी

१०४

104

वपुर्यष्टका विषे स्थित होकर जैसी वासना करता है ॥
शरीर को त्याग कर आकाश विषे स्थित होता है ॥ इस
का नाम मरण है ॥ तिस वासना रूप प्राण कर के बहुर
इस को संसार का ज्ञान होता है ॥ अर जब प्राणों की वा
सना क्षय होती है ॥ तब ही मुक्ति होता है ॥ अर ज्ञानी की
वासना क्षय हो जाती है ॥ तातें जन्म मरण सों रहित हो
ता है ॥ जैसे भुना बीज अंकुर नहीं उगमता ॥ तैसे ही
ज्ञानी को वासना के अभाव तें जन्म मरण नहीं होता ॥
हे रामजी जन्म मरण दोनों मार्गों कर निवृत्ति होता है
अर दोनों का फल एक कहा है ॥ हे रामजी ज्ञान कर के
चित सत पद को प्राप्त होता है ॥ अर योग कर के प्राण वा
यु स्थिति होती है ॥ तब वासना क्षय हो जाती है ॥ जब स्व
रूप की प्राप्त होती है ॥ तब संसार के पदार्थों को अभा
व हो जाता है ॥ जैसे रसायण कर तांबा सोना भया ॥ तां
बा नाम नहीं रहता ॥ तैसे ही विश्व रूप जो है तांबा ति
स की संज्ञा न रहेगी ॥ जैसे तांबा भाव जाता रहता है ॥
तैसे ही ज्ञान कर के जब चित सत रूप हूया ॥ फेर संसा
री नहीं होता ॥ अर आत्मा विषे न बंध है ॥ न मुक्ति है ॥ ए
क परमातम ही अद्वैत है ॥ तो बंध कहा ॥ अर मुक्ति कहा
बंध अर मुक्ति चित के कल्पे हूये हैं ॥ अर चित शांत क
रने का जो है उपाय सो कहा है ॥ तिस कर शांति होता है
इसी को मुक्ति कहते हैं ॥ अब और बंध मुक्ति को सुन ही
चित के उदय होणे का नाम बंध है ॥ चित का शांत हो
णे ही मुक्ति है ॥ हे रामजी जब मन अपणे वश होता
है ॥ तब आत्मपद प्राप्त होता है ॥ अथवा प्राण स्थिति
होते हैं ॥ तब आतमपद प्राप्त होता है ॥ अर इह संसार
मृगतृष्णा के जलवत मिथ्या है ॥ जब वासना निवृत्त हो
ती है ॥ तब आत्मपद विषे स्थित होती है ॥ जैसे मेघ जल
संयुक्त होते हैं ॥ तब गर्जते हैं ॥ अर वर्षा नी करते हैं ॥ जब
वर्षा कर रहते हैं ॥ तब शांति हो जाते हैं ॥ तैसे ही जब वास

नां छाय होवेगी ॥ तब चित शांति होजावैगा ॥ जैसे सर
तकालका समा आवता है ॥ तब बरफ अर कुहीड
निवर्त होजाते हैं ॥ अर शुध निर्मल आकाशही रह
ता है ॥ तैसे वासनारूप बरफ अर कुहीडके निवर्त
हूयेतें ॥ आतम शुध केवल चैतन्यही भासता है ॥ ए
कमहूर्तभी चितु विनास्थिति होवे ॥ तब तेरे ताई आ
तमपद प्राप्त होवे है ॥ जबतक चितकी वासनां छाय
नहीं होती ॥ तबलग बंधनमकों देषता है ॥ हे रामजी
इह संसार मृगतृष्णाका जलरूप है ॥ ऐसे है ॥ अ
भासमात्र पुडा फुरती है ॥ तिस ऊपर एक उपाख्यान जो
आगे हूया है ॥ सो कहता हों ॥ तूं श्रवण कर ॥ अथ
कथा वेतालकी लिष्यते ॥ मंडोचल दक्षिण दिशा
विषे है ॥ तिसकी अटवी विषे एक वेताल रहता था ॥
अर महां भयानक तिसका आकार था ॥ अर मनुष्यों
कों आहार करता था ॥ तिसके मन विषे विचार उपजा ॥
जो किसी नगरकों भोजन करों ॥ अर वेताल एक साध
का संगी करता था ॥ जो कछु तिस साधके कोई आन चा
ढै ॥ सो तिस वेतालकों भोजन करावता था ॥ तब साध
संगके प्रसाद वेतालके मन विषे एह उपजी ॥ जो मेरी
कवन गति होयगी ॥ जो मेरा आहार मनुष्य होरहे हैं ॥ अ
र मानुषोंकों भोजन करता हों ॥ सो बडी हत्या है ॥ तांते मैं ए
क व्रत करों ॥ जो मूर्ख अज्ञानी मनुष्य हैं ॥ तिनकों भोज
न करों ॥ अर जो उतम पुरुष हैं ॥ तिनकों आहार न करों ॥
हे रामजी ऐसा व्रत तिस वेतालने कीया ॥ जदिप छुधा
कर आतुर भी होवे ॥ अर नेले मनुष्य ज्ञान प्राप्त नहीं हो
वें ॥ तब उनकों आहार न करे ॥ ऐसे होतें समें तें ॥ एक स
में छुधाकर बऊत व्याकुल भया ॥ तब रात्रिके समें घ
र तें बाहिर निकस्या ॥ तब उस नगरका राजा भी बार
यात्राकों रात्रके समें निकस्या था ॥ तिस राजाकों देष
कर वेतालने कहा ॥ कि हे राजा तूं मेरे ताई अब आइ प्रा
प्त भया हैं ॥ तेरे ताई मैं भोजन करता हों ॥ तूं कहां जावैगा
॥ तब राजेने कहा ॥ कि हे रात्रके विचरणेहारे वेता

ल॥ जब तूं मेरे तें किंचित् प्रमाद कर आवैगा॥ तब तेरा
सीस सहस्र टूक करि होवैगा॥ अरु तूं गिड पडैगा॥ तब
वैताल कहा॥ कि हे राजा मैं तेरे तें डरता नहीं॥ अरु
हे आत्म महात्मा रे॥ मैं तेरे ताई भोजन करोंगा॥ जो वैं के-
सा बलीतें होवें॥ मैं डरता नहीं॥ परंतु एक प्रतग्या मेरी
है॥ जो अग्यानीयों को भोजन करता हों॥ अरु ग्यानीयों को नहीं
मारता॥ जो तूं ग्यानी होवैंगा तो न मारोंगा॥ जो तूं अग्यानी
होवैंगा॥ तब जैसे बाज चिरी को मारता है॥ तैसे ही तुझ
को मारोंगा॥ जो तूं ग्यानी हैं॥ तो मेरे प्रश्नों का उतर दे॥ एक
प्रश्न एह है॥ जिस विषे ब्रह्मांड रूपी अणु हैं॥ सो सूर्य क-
वन है॥ अरु दूसरा प्रश्न इह है॥ जो जिस पवन विषे आ-
काश रूप अणु उदते हैं॥ सो पवन कवन है॥ अरु तीस-
रा प्रश्न इह है॥ जो केले के वृक्ष की न्याई जिस विषे अ-
वर कछु नहीं निकसता॥ जैसे केले के छिलते अवर क-
छु नहीं निकसता॥ सो कवन वृक्ष है॥ अरु चौथा प्रश्न इ-
ह है॥ वह पुरुष कवन है॥ जो स्वप्ने तें स्वप्ना बहुड तिस वि-
षे अवर स्वप्ना देषता है॥ अरु एकही रहिता है॥ प्रणाम कों
नहीं प्राप्त होता॥ इन प्रश्नों का उतर कहो॥ जो प्रश्नों का
उतर न देवैंगा॥ तब तेरे ताई अहार करोंगा॥ इति श्री
क्त निरवाणप्रकरणे वैताल प्रश्नो नाम सर्ग॥
॥ ६१॥ राजोवाच॥ हे वैताल इन प्रश्नों का उतर सुण
ब्रह्मांड रूपी एक मरीच बीज है॥ अरु तिस विषे तीष्ण
ता आत्मा चैतन्य सतपद है॥ ऐसी मरीचें एक डास सा-
थ अनेक सहस्र लगी हूई हैं॥ अरु ऐसे डास एक वृ-
छ साथ कई सहस्र लगी हूये हैं॥ अरु ऐसे वृछ एक ब-
न विषे कई सहस्र हैं॥ अरु ऐसे कई सहस्र बन एक
शिषर पर स्थित हैं॥ अरु ऐसे कई सहस्र शिषर ए-
क पर्वत पर स्थित हैं॥ अरु ऐसे कई सहस्र पर्वत एक
नगर विषे हैं॥ अरु ऐसे कई सहस्र नगर एक दीप विषे
हैं॥ अरु ऐसे कई सहस्र दीप एक नव पृथिवी विषे
हैं॥ अरु ऐसे कई सहस्र पृथिवी नव [illegible] एक अंड वि

षे हैं॥ अरु ऐसे केई सहस्र अंड एक समुद्र विषे लहरीं
हैं॥ अरु ऐसे केई सहस्र समुद्र एक समुद्र की लहरी
हैं॥ ऐसे केई सहस्र समुद्र एक पुरुष के उदर विषे हैं
अरु ऐसे केई पुरुष एक पुरुष के गल विषे मालापरो
ई हूई है॥ ऐसे केई लाष कोट सूर्य के अणु हैं॥ जिस
सूर्य कर सर्व प्रकाशमान है॥ सो ऐसा सूर्य आत्मा है॥
जिस विषे अनंत सृष्टी स्थित हैं॥ हे वैताल जैसे इह सृ
ष्टी भासती है॥ इदं कर के तैसे ही सर्व सृष्टी जान॥ जो इ
ह सृष्ट सत है॥ तो सर्व सृष्टी सत जाण॥ अरु जो इह सृ
ष्ट स्वप्न है॥ तो सर्व सृष्टी स्वप्न जाण॥ अरु आत्मा ऐसा
सूर्य है॥ जिसतें इतर अवर अणु नी कछु नहीं॥ अरु
सदा अपने आप विषे स्थित है॥ इसतें अवर क्या पूछ
ता हैं॥ ऐसे आत्मा विषे स्थित हो॥ सो आत्मा सतामात्र
पद है॥ जिस सतामात्र पद तें काल सता हूआ है॥ तिसी
तें आकाश सता हूआ है॥ तिस ऐसे सत पद तें सर्व सता
प्रगट हूई है॥ सो सत न संकल्प तें उदे हूये हैं॥ अरु संक
ल्प के लय हूयें सत न लय हो जाते हैं॥ अरु तैं ने जो प्रश्न
कीया था॥ जो वह कवन सूर्य है॥ जिसतें ब्रह्मंड रूप अ
ण होते हैं॥ सो उह ब्रह्म सूर्य है॥ जिसतें इतर अवर क
छु नहीं॥ अरु केला वृछ तैं ने पूछा था॥ सो केले की न्याई
अंतर बाहिर आत्मा विश्व के स्थित है॥ जैसे केले के
अंतर फोल्ये तें शून्याकाश ही निकसता है॥ तैसे विश्व
के अंतर आत्मा तें इतर होर सार कछु नहीं निकसता
जो अद्वैत है॥ तिसतें अवर कछु नहीं॥ अरु उह पवन ब्र
ह्म है॥ जिस पवन विषे ब्रह्मंडों के समूह पडे उडते हैं॥
अरु उह पुरुष स्वप्न तें स्वप्नों आगे अवर स्वप्नां देषता
है॥ अरु एक अपने स्वतह विषे स्थित है॥ स्वप्नां कहीये
जो चित कला फुरती है॥ तब अनंत ब्रह्मंड भान होते हैं
तो नी इतर कछु हूया नहीं॥ एक ही रूप नष्ट वत रहता

है॥ इह सम आज्ञानुसारी की मोवर्तते हैं॥ अरु सूक्ष्मतें
सूक्ष्म है॥ स्थूलतें स्थूल है॥ अरु जिस विषै मेरु आचल
पर्वत भी अणु है॥ ऐसा स्थूल है॥ अरु जिस विषै वा॥
णी की गम्य नहीं॥ अपणे आपही विषै स्थिति है॥ इं
द्रीयांते जो अगोचर है॥ इस कर सूक्ष्मते सूक्ष्म है॥
अरु पूर्णता कर के स्थूलतें स्थूल है॥ हे मूरिष वैताल
तूं अहार किसको करता हैं॥ अरु क्षुधा कर व्याकुल
किउं भया हैं॥ तूं तो आत्मा अद्वैतरूप हैं॥ अरु आनंद
रूप हैं॥ तूं अपणे स्वतह विषै स्थिति हो॥ जब ऐसे प्र
श्नों का उत्तर देकर राजे उपदेश कीया॥ तब वैताल
उहांतें चल्या॥ जो एकांत स्थान विषै स्थिति हो बौं॥ ऐ
से रूच संसार मृगतृष्णा के जल विषै मेरे तांई क्या प्र
योजन है॥ तब एकांत स्थान विषै जाय कर स्थिति
हूया॥ अरु ध्यान लगाय बैठा॥ ध्यान कहीये जो ए
क धारा प्रवाह का प्रवाह स्थिति हूया॥ धारा प्रवाह
क प्रवाह कहीये॥ आत्मा का अभ्यास दृढ कीया॥ आ
त्मातें इतर वृत्ति फुरे नहीं॥ एकहीरस स्थिति हूया॥ इ
सी का नाम ध्यान है॥ ऐसे ध्यान विषै स्थिति होकर॥ वै
ताल सत पद कहीये आत्म पद को प्राप्त हूया॥ हे राम
जी॥ इह राजे अरु वैताल का उपाख्यान तेरे तांई श्रव
ण कराया है॥ सो आतमा कैसा है॥ जिस विषै ब्रह्मांड
अणोंकी न्याई स्थिति हैं॥ तां ते निर्विकल्प आतम प
द विषै स्थिति हो॥ अरु इंद्रीयों को बाहिरतें संकोच क
र स्थिति कर रहु॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे राज
वैताल संवादे वैताल ब्रह्मपद प्राप्ते नाम सर्गः॥
॥६२॥ श्री वशिष्ठोवाच॥ हे रामजी एक उपाख्यान
आगे हूया है सो श्रवण कर॥ अथ कथा भगीरथ
की॥ एक भगीरथ नाम राजा था॥ जैसे उसकी मृदता
गई है॥ अरु स्वात्तिचित होकर आतमपद विषै स्थित
हूया॥ अपणे पवित्र प्रवाह विषै विचरता है॥ अरु अ

पणे धइ पुरुषार्थ करि स्वर्गलोक तें गंगाजी मध्य
लोक विषे लै आया है ॥ तैसे तूं विचर ॥ सो कैसा था जो
अर्थी आवता था ॥ सो तिसका अर्थ पूर्न करता था ॥ जि
स पदार्थ का कोई संकल्प करि आवै ॥ सो राजा उसका
पूरन करे ॥ अर जो राजा सों मित्र भाव है ॥ तिसकों चंद्र
मा रूप होवे ॥ जैसे चंद्रमा कों देषकर चंद्रमणि अंमृत
कों स्रवती है ॥ तैसे मित्र भाव कौं राजा था ॥ अर जो राजा
सों शत्रु भाव है ॥ तिन कों नाश करणहारा था ॥ जैसे
सूर्य के उदय तें अंधकार नाश होजाता है ॥ तैसे ही श
त्रुं कों नाश करणहारा था ॥ जैसे अग्नि तें अनेक वि
नगारे उठते हैं ॥ तैसे शत्रों कौं शस्त्रों की वर्षा करता था
अर पतन प्रवाह विषे स्थिति रहता था ॥ भले बुरे दुः
ष सुष विषे एक समान रहता था ॥ श्रीरामोवाच ॥
हे भगवन ऐसा जो राजा भगीरथ था ॥ सो तिसके चित
विषे क्या आई ॥ जो गंगा कौं लै आया ॥ श्रीवशिष्ठोवा
च ॥ हे रामजी एक समें अपणे नगर कौं देषत भया
जो लोक भले मार्ग त्याग कर ॥ अर बुरे मार्ग पाप कं
र्म विषे सन लागे हैं ॥ अर लोक मर्ष हूये हैं ॥ तब लोकों
पर उपकार के निमित तप करणे लागा ॥ ब्रह्मा अर मह
देव अर जग निरिष तिन को तप कर कै आराधन कीया
अर गंगा के ल्यावणे निमित मंत्र जपणे लागा ॥ सो गंगा
कैसी है ॥ जिसका एक प्रवाह स्वर्ग विषे चल्या है ॥ अर
एक प्रवाह पताल विषे चल्या है ॥ अर एक प्रवाह भगी
रथ राजे मध्य विषे चलाया है ॥ अउर कैसी गंगा है ॥ जि
सकर के पाताल के लोक भी ब्रह्मलोक को प्राप्त होते
हैं ॥ अर भगीरथ राजे गंगा के आनणे कर समुद्र पर
भी उपकार कीया है ॥ कैसा समुद्र है ॥ जो अगस्त मुनि
करि सुकाया है ॥ तिस गंगा कै आवणे कर समुद्र का दा
रिद्र भी निवर्ति हूया ॥ ऐसा जो राजा है ॥ तिसके मन वि
षे विचार उपजा ॥ संसार कों देषकर कहणे लागा ॥ जो

एकही कर्म वारंवार करणा वक्ता मर्षता है ॥ नितउ ही नो
गणा उही खावणा इत्यादिक कर्म बऊड बऊड करणे ॥
अर जिस कर्म कीये तें पाछें सुख निकसें ॥ तिसके करणे
का दुःखणा नहीं ॥ ऐसें वैराग्य के विचार उपजा ॥ जो संसा
र क्या है ॥ अर जो मन अवस्था था ॥ जैसे मारुथल विषे क
मल उपजणा आश्चर्य है ॥ तैसे जो मन अवस्था विषे वी
चार उपजणा आश्चर्य है ॥ हे रामजी जब राजा को ऐसे वी
चार उपजा ॥ तब घर सों निकस्या ॥ अर त्रितल रिषीश्वर
जो गुरु है ॥ तिसके निकट जाइ कर प्रश्न करते भया ॥
॥ राजोवाच ॥ हे भगवन वह कवन सुख है ॥ जिस सुख
के पाये तें जरा अर मृत्यु के दुःख निवृत्त होते हैं ॥ अर इस सं
सार के जो सुख हैं ॥ सो अंतर तें सत्य हैं ॥ इनके भ्रमणा म वि
षे दुःख है ॥ श्रीरिखोवाच ॥ हे राजा एक ज्ञेय है जानने
योग्य ॥ जो तिसको जाण्ये तें अनंत पद प्राप्त होता है ॥ सो
आत्मज्ञान है ॥ अर आतम सुख कैसा है ॥ न कदाचित उ
दे होता है ॥ न अस्त होता है ॥ जिउ का तिउ अपणे आप
विषे है ॥ हे राजा इह जरा अर मृत्यु तब लग भासता है ॥ ज
ब लग अज्ञानी है ॥ जब ज्ञानरूप सूर्य उदे होवेगा ॥ तब
अज्ञान अंधकार रूप निवर्त हो जावेगा ॥ केवल ज्ञांतिप
द विषे स्थिति होवेगा ॥ अर आतम अनादि है ॥ अर स
र्वत्र है ॥ जिसके जाणे तें चिद जड ग्रंथ टूट जाती है ॥ चि
द जड ग्रंथ कहीये ॥ अनात्मा देह इंद्रीयादि विषे आत
म अभिमान करणा ॥ सो निवर्त हो जाती है ॥ अर सब क
र्म भी निवर्त होते हैं ॥ संशय सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ऐसे शु
द्ध स्वरूप को पाय कर ज्ञानी स्थिति होते हैं ॥ सो सत्ता सर्व है
सर्वगति नित स्थिति है ॥ उदे अस्त तें रहित है ॥ राजोवा
च ॥ हे भगवन ऐसे मैं जानता हौं ॥ जो आत्मा चिन्मात्र है
सत है ॥ अर देहादिक मिथ्या हैं ॥ अर आतमा सर्वज्ञ है
अर ज्ञांतिरूप है ॥ निर्मल अच्युत रूप है ॥ ऐसे जानता
भी हौं ॥ परंतु ज्ञांति मेरे ताईं नहीं प्राप्त भई ॥ जो आतमा
कैंरके चिन्मात्र आतमतत्व मेरे ताईं नहीं भासता ॥ अर स्थिति

नहीं नई ॥ सो कृपा कर कहो ॥ जो मैं स्थित होवों ॥ रिषो
वाच ॥ हे राजा ज्ञान तेरे तांई कहता हों ॥ जिसके जाणे तें
बहुड़ दुःख कोई न रहेगा ॥ तिस ज्ञान कर ज्ञेय विषे तेरे
तांई निष्टा होवेगी ॥ तब तूं सर्वात्म रूप होइ कर स्थिति
होवेंगा ॥ जीवत्व भाव तेरा नष्ट हो जावेगा ॥ असंसक्त क
हीये देह इंद्रीयां दिक विषे आत्म अभिमान न करणा
इनकों आपने जानणां ॥ अरु अनविश्वंग कहीये पुत्र
स्त्री कुटुंब के दुख कर आपकों दुषी न जानणां ॥ अरु नि
त्य ही सम चित रहणां ॥ इष्ट अरु अनिष्ट की प्राप्त विषे
एक रस रहणां ॥ अरु चित कों आतमा विषे जोरणां ॥ अ
रु आत्मा ते इतर चित की वृत न जावे ॥ अरु एकांत देश
विषे स्थित होवणां ॥ अरु अज्ञानीयों का संग नहीं करणां
अरु अध्यात्म विद्या का सदा विचार करणां ॥ तत ज्ञान के द
र्शन निमित इह तेरे तांई ज्ञान के लछण कहे ॥ अरु इस
ते विपरीत है ॥ सो अज्ञान है ॥ हे राजा इह ज्ञेय जानणे यो
ग्य है ॥ इसके जाणे तें केवल ज्ञाति पद कों प्राप्त होवेगा
अरु देह का अहंकार भी निवर्त होवैगा ॥ हे राजा पहिले
अहं होता है ॥ तब पाछे मम होता है ॥ ता तें तूं अहं अरु म
म का त्याग कर ॥ जब अहं अरु मम का त्याग करेंगा ॥ त
ब आतम पद अहं प्रत्यय कर भासेगा ॥ सो आतमा सर्व
त है ॥ अरु सर्व भी आप है ॥ अरु सुत ह प्रकाश है ॥ अरु आ
नंद रूप है ॥ जो संसार के अनंद तें रहित है ॥ जब ऐसे
गुरु कहा ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन इह अहंकार तो चि
र काल का देह विषे रहिता है ॥ अरु अभिमानी है ॥ जैसे
पर्वत पर चिर काल का वृक्ष होता है ॥ अरु तिस का नाम स्थिति
प्रसिध होता है ॥ तैसे ही अहंकार चिर काल का देह वि
षे अभिमानी है ॥ तिस का त्याग कैसे करों सो कहो ॥ रि
षीवाच ॥ हे राजा अहंकार पुरुष प्रयतन कर के नि
वर्त होता है ॥ सो श्रवण कर ॥ प्रथम भोगों विषे दोष दृष्ट
करणी ॥ भोगों की भावनां न करणी ॥ विचार करणां ॥ इ
स कर के जीवत अहंकार तेरा निवर्त होवेगा ॥ हे राजा
जब अहंकार तेरा निवर्त होवैगा ॥ तब तेरे तांई सर्वात्मा

हीनासेगा ॥ अर तूं तरुपसुओं तें रहित सब प्रकार का हो वैं
गा ॥ हे राजन इह लज्जा रूप फासी जब लग निवर्त नहीं
होती ॥ लज्जा कहीये मैं हों अर मेरा है ॥ त्रिहमां ॥ अर स्त्री क
अर दुख ॥ अर नले क होवणे की इच्छा इत्यादिक जो मोह
के स्थान हैं ॥ सो लज्जा है ॥ जब लग इह निवर्त नहीं होती ॥
तब लग आतम पद की प्राप्त नहीं होती ॥ तो तैं तूं अहं मम
तें रहित हो ॥ अर तेरे जो शत्रु हैं ॥ जो तेरे राज लेणे की इच्छा
करते हैं ॥ तिन कों अपना राज देइ ॥ अर स्त्रीओं तें रहित
होकर पुत्र स्त्री अर बांधव इन के मोह तें रहित हो ॥ अ
र मेरे मोह तें भी रहित हो ॥ अर राज का त्याग करके एकां
त देश विषे स्थित हो ॥ अर तिन शत्रुओं के घर तें भिक्षा
मांग ॥ जो तेरे तांई न लेक होंवणे की इच्छा न रहे ॥ तो तैं उ
बडा है ॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे नगारथ उप
देशो नाम सर्ग ॥ ६२ ॥ श्री वसिष्ठ उवाच ॥ हे राम
जी इस प्रकार जब त्रितल रिषीश्वर उपदेश कीया ॥
तब राजा उठ खडा हूया ॥ घर कों गमन कीया ॥ गुरों का
उपदेश रिदे विषे धारकर अपणे राज विषे आन स्थि
त भया ॥ अर राज की चेष्टा करणे लागा ॥ मन विषे विचा
रनी करे ॥ जब केता काल बीतया ॥ तब राजे अग्निष्टो
म जग्य का आरंभ कीया ॥ अग्निष्टोम जग्य कहीये ॥ ध
न का त्याग करणा ॥ सो राजा धन का त्याग करणे लागा
दिन त्रय विषे धन का त्याग कीया ॥ हस्ती घोरे ॥ अर रथ
अर भूषण वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य था ॥ सो लोकों
कों दीया ॥ ब्राह्मणों अर भृत्यों कों दीया ॥ अर पुत्र स्त्री
यों कों ॥ अर अपणे जो शत्रु थे ॥ राजे तिन कों राज दीया
तब राजे जो थे शत्रु तिनो देख्या ॥ अब राजे बैराग्य वि
षे अकमक कछु नहीं रहा ॥ तब उन शत्रों आन कर इन
का देश लीया ॥ हवेलीयों पर आन स्थित भये ॥ जेते
राजे के स्थान थे ॥ सो रोक लीये ॥ राजा धोती अंगोछे सा
थ रहि गया ॥ अब रस नक्षत्रों ले लीया ॥ तब राजा तूं है
तें निकस्या ॥ श्री वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी जब अंगे सें रा
जा निकस्या ॥ तब बन कों गया ॥ बन तें अब र बनों कों

विचराकरे॥ अर शांतपद आत्मा विषे स्थित रहे॥ अरअ
निछित विचरे॥ जब केता काल व्यतीत भया॥ तब राजा
भगीरथ अपणे देश विषे आया॥ जो शत्रु राजा के थे॥
तिनके गृह होते भिक्षा मांगणे लागा॥ तब मित्र ऊ अरवो
कों देष्या॥ बहुत पूजा करी॥ अर कह्या कि हे भगवन् तु
म राज कों ग्रहण करो॥ तब राजे न ग्रहण कीया॥ जैसे पृ
थवी पर पडा तृण तुछ बुधि करके नहीं ग्रहण करी
ता॥ तैसे ही ग्रहण न कीया॥ केता काल ऊहां रहि के ब
हुड चल्या॥ तब त्रितल रिषि जो अपणा गुरु था॥ अति
छित तहां गया॥ तब गुरु ने आत्मत्व करके ग्रहण की
या॥ अर शिष्य भी गुरु कों अपणा आप करके ग्रहण
कीया॥ गुरु की भावना अर शिष्य की भावना कर दोनों
रहित हूये फुरेक कहु नहीं॥ केता काल इकस्थान विषे र
हे॥ बहुडे इक वन विषे विचरणे लागे॥ अर शांत आ
तमपद विषे दोनों स्थित रहे॥ अर तिनकों राग दोष तें
रहित उपजी॥ केवल एक रस स्थित रहे॥ अर तिनकों
न देह त्याग की इछा॥ अर न देह राषणे की वांछा॥ अति
छित प्रारब्ध विषे स्थित रहें॥ तब स्वर्ग लोक के जो सि
ध हैं॥ तिनों आन कर पूजा करी॥ अर बडे ऐश्वर्य चढाये
अर बहुत स्त्रीयां अपसरा आईयां॥ अर जेते ऐश्वर्य
पदारथ भोग थे॥ ते ते आन स्थित हूये॥ तिन ऐश्वर्यों कों
तुछ जानया॥ जो आतम सुष कर चित्त न ये थे॥ अर केव
ल आकाशवत निर्मल थे॥ प्रकाश रूप॥ अर समचितर
हें॥ अर कलंकता रूप मल तें रहित हे॥ हे रामजी जैसे रा
जा भगीरथ स्थित हूया है॥ तैसे तुम भी स्थित होवो॥ इ
ति श्री निर्वाण प्रकर्णे भगीरथ निर्वाण वर्ननं नाम
सर्गः॥ ६४॥ श्री वशिष्ठोवाच॥ हे रामजी केताइक
काल बीतया॥ तब भगीरथ ऊहां ते चलेया॥ एक देश का
राजा शांत हूया था॥ तिस की जो लक्ष्मी थी॥ सो राजा कीया
चना करती थी॥ तिस काल विषे अनिछित राजा भगी
रथ भिक्षा मांगता आया॥ तब उस राजे के जो मंत्री थे ति
न राजा भगीरथ कों देषया॥ तब क्या देष्या॥ जो जेतेक बु

१०९

109

गुणराजा विषे होते हैं ॥ तैसे ही इस विषे हैं ॥ तब राजा
भगीरथ को कहा ॥ हे भगवन तुम इस राज को अंगीका
र करो ॥ काहे तें जो तुम को अनिछित आइ प्राप्त हूया है ॥
तब राजे राज का ग्रहण कीया ॥ अरु न कछु भला जाना
या अरु न बुरा न जानेया ॥ ऐसे ग्रहण कीया ॥ तब राजा
हस्ती पर आरूढ हूआ ॥ अरु सेना कर सोभता भया ॥ दि
स अरु स्थान सैना कर पूर्ण भये ॥ जैसे मेघ कर ताल पू
र्ण होते हैं ॥ तैसे ही दिस अरु स्थान सैना कर पूर्ण कते
नेया ॥ जब निगारे अरु साज बाजने लागे ॥ तब राजा
का गेह विषे गया ॥ सभ महल स्त्रीयां आन विद्यमान भई
तब उह देवता जो राजा का पहिला था ॥ तिस देवता के जो क
आये मंत्री अरु प्रजा आन कर कहा ॥ कि हे हे भगवन
जिन शत्रुओं को तुम राज दीया था ॥ सो तिन को मृत्यु भोज
न कर लीया ॥ जैसे मछी को मल में सग्रास लेता है ॥ तैसे
ही राजा को मृत्यु भोजन कर लीया ॥ तांते तुम राज करो
जदपि तुम को इछा नहीं ॥ तो भी राज करो ॥ काहे तें जो व
स्तु अनिछित आइ प्राप्त होवे ॥ तिस का त्याग करणा श्रे
ष्ट नहीं ॥ तांते तुम राज करो ॥ तब राजे राज का अंगीका
र कीया ॥ अरु राज करणे लागा ॥ तब पिछे जो वृतांत
राजे श्रवण कीया ॥ जो मेरे पितर कपल मुन के श्राप तें
भस्म हूये हैं ॥ अरु कूप विषे पडे हैं ॥ तब राजे चितवनां
करी जो मैं तिन का उधार करों ॥ तब राजा अपने मंत्रीयों
कों राज दे कर एकला बन को चल्या ॥ अरु व्रत कीया
जो तप करों ॥ तब राजा एक स्थान विषे स्थित होकर त
प करणे लागा ॥ ब्रह्मा को अरु शिव को ॥ अरु ज[illegible]न रि
षि का ॥ तिस तप कर गंगा के ल्यावणे की अराधन करी
सहस्त्र वर्ष पर्यंत तप कीया ॥ तब गंगाजी मध्य मंडल
विषे आई ॥ सो कैसी है गंगाजी ॥ धर्म की मूर्त्ति है ॥ अरु त
रंग जिसके नचपल हैं ॥ अरु घुमर घेर जिसके स्वर्नव
त अंग हैं ॥ अरु विष्णु भगवान के चरणों ते प्रगट भई है

बहुड कैसा है ॥ मानो भगीरथ राजा है जिसका प्रवाह च
लाया है ॥ तिस गंगाजी के प्रवाह को पितरों के उधार
न निमित्त ले आया है ॥ बहुड राजा भगीरथ सम चित राजा २
और शांत पद विषे स्थित होकर विचरने लगा ॥ जिस
विषे न कोऊ दोष है न कोऊ भय है और न कोऊ इच्छा
है ॥ केवल शांत पद है आतम पद तिस विषे स्थित
हूया ॥ जैसे पवन तें रहित समुद्र अचल होता है तैसे
ही संकल्प रूप पवन तें रहित होकर स्थित हूया ॥ इ
ति श्री निर्वाण प्रकर्णे भगीरथोपाख्याने समाप्ते
नाम सर्गः ॥ ६५ ॥ श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह
जो भगीरथ की दृष्टि तेरे ताई कही है ॥ इसी को आश्र
य कर के विचरो ॥ कैसी है इह दृष्टि ॥ जो सर्व दुखों का नाश
करती है ॥ और एक उपाख्यान ऐसा ही आगे व्यतीत भ
या है ॥ अथ कथा शिखरध्वज और चूडाला की ॥ ऐ
ऐसा ही शिखरध्वज होत भया है ॥ श्री रामोवाच ॥
हे भगवन उह शिखरध्वज कौन था ॥ और किस प्रकार
चेष्टा कर्त भया ॥ इह कृपा कर के कहो ॥ श्री वशिष्ठोवा
च ॥ हे रामजी राजा शिखरध्वज आगे था ॥ और बहुड
भी होवेगा ॥ सप्तम मन्वंतर जो व्यतीत भये थे ॥ और चौक
ड़ी चतुर्थ द्वापुर युग का था ॥ तिस काल विषे हूया है सो
कैसा राजा था ॥ जो संपूर्ण पृथिवी का तिलक था ॥ और जै
से शूरवीर हैं ॥ तिन तें उत्तम था ॥ और जेते ऐश्वर्य हैं ॥ तिस क
र संपन्न था ॥ और तिन विषे बंधमान न होत भया ॥ और जे
ते भोग हैं ॥ तिनके भोगने को समर्थ और भोगता था ॥ अ
रु बडे उजे कर संपन्न था ॥ उदारता और धीर्यवान था ॥ कि
सी पर जोर जुलुम न करता था ॥ और सम चित रहे ॥ अ
रु शांत पद विषे स्थित रहे ॥ और संपूर्ण दुखों तें रहित ॥ अ
रु जो कोई अर्थी होइ ॥ तिसका अर्थ पूर्ण करे ॥ ऐसा था
और बहुड भी होवेगा ॥ श्री रामोवाच ॥ हे भगवन ऐसा
ज्ञानवान जो राजा था ॥ सो बहुड जन्म किस निमित पावे
गा ॥ ज्ञानी तो बहुड जन्म नहीं पावता ॥ उह कैसे पावेगा ॥
श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जैसे एक समुद्र है ॥ तिस विषे

केई प्रतिना समान उवते हैं ॥ अर केई अर्थ करते हैं ॥ अ
रु एक विलक्षण भाव कर कुते हैं ॥ तैसे आतम समुद्र
विषे ॥ केई आकार एक जैसे कुते हैं ॥ केई अर्थ भाव कर कु
ते हैं ॥ अर केई विलक्षण भाव करके कुते हैं ॥ जो समान
कुते हैं ॥ तिसकी चेष्टा अर आकार एक जैसा हष्ट आव
ता है ॥ तां तें जाणीता है जो वही है ॥ तैसे शिषरध्वज की ग
ति भी आगे जैसी होवेगी ॥ हे रामजी इस सर्ग विषे सप्त मन्व
न्तर व्यतीत भये ॥ अर चौकडी चतुर्थ द्वापुर युग का ॥ तब
जंबूद्वीप मालवा देश विषे श्रीमान शिषरध्वज इहे रा
जा मालवा देस का होत भया ॥ पर शिषरध्वज उह न हो
वेगा ॥ उस जैसा होर होवेगा ॥ जब आर्बला षोडश वर्ष की
में राजकुमार था ॥ तब एक समें में राजा सिकार मों ति
कस्या ॥ अर वसंत रुत का समा था ॥ तब राजा अपणे बा
गमों जाइ स्थित हूया ॥ तहां फूलों के अंब भास्या न बने
हूये हैं ॥ तहां कमलनीयां मानों स्त्रीयां हैं ॥ अर थडके कि
णके तिनके नषण हैं ॥ अर पुरुष तिनके समीप वृछ
हैं ॥ इसी प्रकार नेवरी अर नवरे सुंदर लीला देषत भ
ये ॥ तब राजा के मन चितवना भई ॥ जो मेरे ताई स्त्री प्राप्त
होवे ॥ तब मैं चेष्टा करों ॥ अर अधिक चितवना भई ॥ जो
कब मेरे ताई प्राप्त होवेगी ॥ अर कब फूलों की सहाय
रसे न करोंगा ॥ इत्यादिक जो भोगों की वृत है ॥ सो राजा चि
तवना करने लागा ॥ तब मंत्रीयों देष्या जो हमारे राजा के
मन स्त्री ऊपर है ॥ जैसे होवै जो राजा का विवाह करीये
सोम मंत्री राजा के त्रिकालज्ञ नरा बते थे ॥ शरीर का अव
स्था जानते थे ॥ इसी तें जानत भये ॥ तब एक राजा था ॥ तिस
की कन्या बहुत सुंदर अर वर भाली थी ॥ तिस राजा की पु
त्री साथ राजा शिषरध्वज का विवाह कीया ॥ शास्त्र की
विध सहित ॥ तब राजा बहुत प्रसन्न होकर अपणे घर
आया ॥ अर तिस स्त्री का नाम चूडाला था ॥ नेत्र तिसके क
मल की न्याई सुंदर थे ॥ अर तिस विषे राजा का हित बहु
त हूया ॥ अर स्त्री का हित राजा विषे बहुत हूया ॥ जो कहु

राजाके मन विषे चितवनां होवै ॥ सो राणी आगैं सिध कु
र देवै ॥ इसी प्रकार परस्पर प्रीत आपस मों बढी ॥ जैसे भौं
रे और भौंरी की प्रीत होती है ॥ तब एक समे राजा राजमंत्री
यौं को देषकर बन कों गया ॥ और बन विषे नाना प्रकार के
चेष्टा करते भया ॥ और बन विषे विचरें ॥ जैसे सदाशिव अ
र पार्वती ॥ जैसे विष्णु भगवान और लक्ष्मी विचरें ॥ ते
सेहीं राजा और राणी विचरणें लागे ॥ बहुड कला सीष योग
नें लागे ॥ तब राणी राजा कों कला सिषावै ॥ संपूरन
कला कर संपन हूये ॥ परंतु चूराला का बुधि राजा की
बुधि तें तीक्षण ही जानती थी ॥ बहुड राजा कों
सिषावै ॥ इसी प्रकार बहुत चेष्टा करी ॥ और विचरें ॥
॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे शिषरध्वज चूराला
ख्यात नाम सर्गः ॥ ६६ ॥ श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे राम
जी इसी प्रकार राजा और राणी अनंत भोग भोगते ॥ त
ब जैसे छिद्र कर सनैं सनैं कुंभ तें जल निकस जाता
है ॥ तैसे सनैं सनैं जोबन के गये तें वृद्ध अवस्था आ
इ प्राप्त भई ॥ तब राजा और राणी कौं वैराग्य का कारण
का उत्पति भया ॥ तब वैराग्य करि इह विचार करणे
लागे ॥ जो इह संसार मिथ्या है ॥ और बिनासी है ॥ एक
जैसा नहीं रहिता ॥ और इह बिषय भोग भी मिथ्या हैं ॥
जो एता काल हम भोगते रहे ॥ तौ वि हमां पूरन न भई
वधाई ॥ हे राम जी इस प्रकार राजा और राणी और वै
राग्य कर विचार करते भये ॥ जो इह भोग मिथ्या हैं ॥
और इन का सुष एता काल है ॥ जब लग इन का संजो
ग इंद्रीयां साथ है ॥ और बहुड परणाम विषे दुष होते
हैं ॥ और हमारी जोबन अवस्था भी व्यतीत हो गई ॥ जै
से बिद्युली का चमतकार छिण मात्र होकर व्यतीत हो
जाता है ॥ तिसी प्रकार जोबन व्यतीत हो गया ॥ और मृत्यु
निकट आइ गई ॥ जैसे नदी का वेग तले कों चल्या जाता
है ॥ तैसे ही आरबला व्यतीत होजाता है ॥ जैसे हाथ ऊपर
जल पाया वहि जाता है ॥ तिसी प्रकार जोबन निवर्त होजा

ताहै ॥ अर इह शरीर कैंसा है ॥ जैंसे जल विषै बुदबुदे
अर तरंग उपजकर लीन होजाते हैं ॥ तैंसेही सरीर
छिण भंगुर है ॥ अर जहां चित जाता है ॥ तहां दुख भी इ
सके साथ चल्ये जाते हैं ॥ निवर्त नहीं होते ॥ जैंसे मांस
के टुकड़े के पाछें इल पंछी चल्या जाता है ॥ तैंसेही ज
हां अज्ञान है ॥ तहां दुख भी पाछें जाते हैं ॥ अर इस शरी
र भी निवर्त होजाणा है ॥ जैंसे अंब पका तब ब्रछ के साथ
नहीं रहिता गिड़ पड़ता है ॥ तैंसे शरीर भी नष्ट होजा
ता है ॥ अर जिस शरीर अवस्था गिड़ती है ॥ तिसका आ
स्या करनां क्या है ॥ जैंसे सूका पात ब्रछ के साथ है ॥ अर
गिड़ पड़ता है ॥ तैंसेही इस शरीर गिड़ पड़ता है ॥ तातें
हम ऐसा कछु करें ॥ जो संसार रूपी विसूचका तें
निवर्त होवें ॥ सो संसार रूप विसूचका ब्रह्म विद्या के
मंत्र कर निवर्त होता है ॥ ब्रह्म विद्या करके ज्ञान उपज
ता है ॥ अर आत्म ज्ञान कर सर्व दुख निवर्त होते हैं ॥ इस
तें अवर उपाव कोउ नहीं ॥ तातें आत्मज्ञान के निमित्त
संतो पास जावैं ॥ हे रामजी तब इस विचार करके राजा
अर चुराला संत जो हैं ॥ आत्मज्ञानी तिस पास चल्ये ॥
अर आत्मज्ञान की वार्ता करें ॥ आत्मज्ञान विषे तिनको
चित अरु भावनां ॥ अर आपस मों विचारनां ॥ अर चर
चा करणी ॥ आतम परायण होकर संतों पास गये ॥ सो
संत कैंसे हैं ॥ जो संसार समुद्र तें तरावणे वाले हैं ॥ अर
आतमवेता हैं ॥ तिन पास जाइकर पूजा करत भये ॥ अ
र उनको प्रसन्न कीया ॥ तब राजा अर राणी ब्रह्म विद्या
उनसों श्रवण करणे लागे ॥ आत्मा शुद्ध है ॥ अर आनंद
रूप है ॥ जिसके पायें तें दुख निवर्त होजाते हैं ॥ चैतन्य है ॥
अर एक है ॥ इस प्रकार सुनत भये ॥ तब हे रामजी राणी
चुराला विचार विषे लागी ॥ जब राजा उसको कोउ टह
ल कहे तब टहल करे ॥ पर उसकी चितवृत विचार विषे
रहे ॥ सो विचार इह है ॥ जो मैं क्या हों ॥ अर इह संसार क्या

है॥ अरु संसार की उत्पत्ति किसते है॥ ऐसा विचार सो मैं
कर जानणे लागी॥ जो इह पंचतत का शरीर है॥ मैं
नहीं॥ काहेतें जो शरीर जड है॥ अरु कर्म इंद्रीयां जो हैं
सो इह भी जड हैं॥ जैसा शरीर॥ तैसे शरीर के आवय
व हैं॥ अरु इह जो चेष्टा करते हैं॥ सो ज्ञान इंद्रीयां करके
करते हैं॥ सो ज्ञान इंद्रीयां भी मैं नहीं॥ काहेतें जो इह भी
जड हैं॥ सो मन कर इन की चेष्टा होती है॥ अरु मन भी
जड है॥ तिस विषे संकल्प विकल्प चेतना है॥ सो बुधि
कर फुरते हैं॥ अरु बुधि भी जड है॥ जो तिस विषे निश्चा
चेतना है॥ सो निश्चा अहंकार कर होता है॥ अरु अहं
कार भी जड है॥ जो तिस विषे अहंकार चेतना करके
होता है॥ सो चैतन्यता भी जीव कर होती है॥ अरु जीव भी
मैं नहीं॥ काहेतें जो जीवत है इह जीव फुरनां रूप है॥ अ
रु मेरा स्वरूप अफुर है॥ अरु सदा उदै रूप है॥ अरु सर्व
त्र है॥ बेदा आश्चर्य है॥ जो चिरंकाल करके मैं अपने
स्वरूप को पाया है॥ सो कैसा पद है॥ अनंत है॥ अरु मैं आ
त्मा हों॥ जैसे सरत काल का आकाश निर्मल होता है॥
तैसे ही मैं निर्मल हों॥ अरु विगत ज्वर हों॥ राग द्वेष रूप ता
पतें रहित हों॥ अरु आलस की न्याई हों॥ अरु सनमात्र पद
हों॥ अहं अरु त्वं तें रहित हों॥ मेरे विषे फुरनां कोऊ नहीं
इसी तें शीत हों॥ जैसे क्षीर समुद्र मंदराचल पर्वत तें रहि
त शांत है॥ तैसे चित तें रहित अचल हों॥ अरु अद्वैत हूं
कदाचित स्वरूप तें प्रणाम को नहीं प्राप्त भया॥ ऐसा जो
सनमात्र पद है॥ तिसकी ब्रह्मवेत्तों नें संज्ञा करी है॥ जो ब्र
ह्म है॥ अरु चैतन्य है॥ परमात्मा है॥ इत्यादिक नाम राखे हैं॥
आचार्यो॥ अरु इह आत्मा ही मन बुधि आदिक दृश्य अ
रु संसार रूप होइकर पसरता है॥ अरु स्वरूप तें अच्युत है
गिड्या कदाचित नहीं॥ अरु फुरने करके आकार भासते
हैं॥ तो भी आत्मा तें इतर कछु नहीं॥ जैसे बडा पर्वत होता
है॥ तिसके पथ्थर वटे होते हैं॥ तो भी पर्वत तें इतर कछु न

हों ॥ अरु प्रकार कैसे हैं ॥ जैसे गांधर्वनगर होइ ॥ तिस
विषे नाना प्रकार होइ कर भासते हैं ॥ तैसे इह संसा
र है ॥ ज्ञानवान कौं एकरस है ॥ अरु अज्ञानी कौं भेद
भावना है ॥ जैसे बालिक मृतका के खिलौने कल्पता
है ॥ हस्ती घोडा राजा प्रजा तें आदि लेकर नाम राषता
है ॥ अरु जिसकौं मृतका का ज्ञान है ॥ तिसकौं एक मृत
का ही भासती है ॥ तिसतें इतर कछु नहीं ॥ तैसे अज्ञा
न कर के नाना रंग भासते हैं ॥ अब मैं जान्या है जो ए
करस हों ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इस प्रकार
चुराला आप कौं जानत भई ॥ जो मैं सन्मात्र हों ॥ अरु
अछेद हों ॥ अरु अदृश्य हों ॥ अरु स्वच्छ हों ॥ अरु अमृत
रहों ॥ अरु निर्मल हों ॥ मेरे विषे अहं अरु त्वं एक अरु द्वै
त भाव कोऊ नहीं ॥ अरु जन्म मृत्यु भी कोऊ नहीं ॥ इह
संसार चित कर भासता है ॥ अरु आत्मस्वरूप है ॥ देव
ता अरु यक्ष स्थावर जंगम इत्यादिक सब चेतनरूप
हैं ॥ जैसे तरंग अरु बुदबुदा समुद्र विषे जल बिन कछु न
हीं ॥ तैसे ही आत्मा ते भिन्न वस्तु कछु नहीं ॥ अरु दृश्य
दृष्टा दर्शन इह भी आत्मा की सत्ता कर चेतन हैं ॥ इन
कौं आप तें सत्ता कछु नहीं ॥ अरु मेरे विषे अहंकार उप
जत कदाचित नहीं ॥ आपको आप विषे स्थित हों ॥ अब
इसी पद कौं आश्रय कर के चिरकाल इस संसार विषे
विचरोंगी ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे चुराला प्र
बोध वर्ननं नाम सर्गः ॥ ६८ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥
हे रामजी इस प्रकार चुराला विचार करती भई ॥ सो चु
राला कैसी है ॥ निवर्त भई है [त्रिष्णा?] जिसकी दुष ॥ अ
रु भय ॥ अरु भोग वासना भी निवर्त भई है ॥ अरु केव
ल शांति पद जो है आतम पद ॥ तिसकौं पाय कर सो
भत भई है ॥ जो पावने योग्य पद है ॥ तिसकौं पाइ कर
जानत भई ॥ जो एता काल मैं अपने स्वरूप तें गिरी रही
हों ॥ अब मेरे ताईं शांत हूई ॥ अरु दुष सर्व मिट गये हैं ॥
अब मेरे ताईं ग्रहण त्याग कछु नहीं ॥ हे रामजी अप

णी जो प्रकृति है महतत कहीये सुभाव आत्मा तिस वि
षे स्थित भई ॥ अरु राणी कौं तब बैठके समाध विषे लागी
जैसे वृध गौ पर्वत की कंदरा को पाइकर बहुड त्रि
ण घास कर प्रसंन होती है ॥ तैसे अपणी जो आनंद स्वरू
प है ॥ तिसकौं पाइकर चुडाला स्थित भई ॥ हे रामजी ऐ
से आनंद विषे स्थित भई ॥ जिसकौं वाणीकर कहि
नहीं सकीता ॥ तब राजा शिखरध्वज आया ॥ राणी की
और देखा ॥ देखकर आश्चर्य कौ प्राप्त भया ॥ अरु क
हा ॥ हे अंगने बहुड जोबन अवस्था कौं प्राप्त भई है ॥
अरु तेरे ताई कोऊ बड़ा आनंद प्राप्त भया है ॥ अरु के
दाचित तैं ने अमृत का सार पान कीया है ॥ तातें अ
मर भई हैं ॥ अथवा तेरे ताई जोगेश्वर किसी कला
कौ प्राप्त कीया है ॥ अथवा त्रिलोकी का राज तुझे प्रा
प्त भया है ॥ हे अंगने तेरे ताई कवन वस्तु प्राप्त भई है ॥
अरु तेरे चित की वृत्ति ऐसे मैं जानता हौं ॥ जो अमृत
का सार तैं ने पान कीया है ॥ अरु त्रिलोकी के राज तैं
भी तैं ने कोऊ अधिक पदारथ पाया है ॥ अरु तैं बडे
आनंद कौं प्राप्त भई हैं ॥ तिस आनंद का आदि अंत
कोऊ नहीं देखीता ॥ शांत होगई है ॥ जैसे सरत काल का
आकाश निर्मल होता है ॥ अरु तेरे जो इह चित बाज
हैं सो बडे सुंदर दृष्ट आवते हैं ॥ सो कहु तेरे ताई क्या
वस्तु प्राप्त भई है ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन इह जो कछु
देखीयत है ॥ सो किंचित है ॥ अरु इस तें जो रहित है नि
ह किंचित पद ॥ तिस कौं मैं पाया है ॥ तिस का अकार नि
ह किंचित है ॥ अरु इसरे का अभाव है ॥ तिसी कौं मैं पा
या है ॥ इसी तें मैं शोभामान हौं ॥ अरु जेते कछु भोग हैं ॥ ति
नका त्याग कीया है ॥ अरु अभोग कौं भोग्या है ॥ तिस
भोग कर तृप्त भई हौं ॥ अभोग कहीये आत्मज्ञान ॥ ति
स कौं मैं पाया है ॥ अरु आत्मा विषे आराम पाया है ॥ स
दा शांतिरूप शोभामान हौं ॥ हे राजन जेते कछु इह राज

१२३

113

सुषभोग हैं॥ तिनको त्याग करि परमसुषभोगता हौं॥ रा
ग अरु द्वेषतें रहित होकर॥ मैं कैसी हौं जो मैं न हौं॥ अ
र मैं ही स्थिर हौं॥ अरु जेता कछु नेत्रों कर देषीता है॥ अ
रु इंद्रीयों कर जाणीता है॥ अरु मन कर चितवनां करी
ता है॥ सो सर्व मिथ्या है॥ स्वप्नवत॥ अरु मैं तहां स्थित हौं
जहां नेत्रों की गम्य नहीं॥ अरु इंद्रीयां मन की गम्य भी न
हीं॥ जहां इनकी गम्य नहीं॥ तिस पदकों मैं पाया है॥ जि
स विषे अहंकार को उत्थान भी नहीं॥ अरु सर्व का आ
धार है॥ अरु सर्व का आत्मा है॥ अरु सर्व जो अंमृत हैं॥ ति
स का सार मैं अंमृत पान कीया है॥ तातें मेरा नाश क
दाचित नहीं॥ अरु जन्म भी कदाचित नहीं॥ वसिष्ठ उवाच
हे रामजी इस प्रकार राणी जब कहा॥ तब राजा शिष
रध्वज तिनके वचनकों न जानत भया॥ हासी करी अर
कहत भया॥ हे मूरिष स्त्री इह तूं क्या कहती है॥ जो सत
वस्तकों दूर कहती हैं॥ अरु कहती हैं मैं नहीं देषती
अरु जो असत है॥ देषीयत नहीं॥ सो तिसकों सत कह
ती हैं॥ अरु मैं देषता हौं इह वचन तेरे कवन मानैंगा
इन वचनों वाला सो भा नहीं पावता॥ अरु कहती हैं जो
इस ईश्वर्य कों त्याग कर श्रीमान होत भई हौं॥ तिह कि
चित कों पाय कर॥ इस वचनों वाला सो भा नहीं पावता
अरु कहिती हैं॥ इन भोगों का त्याग कीया है॥ अरु इन
तें रहित जो अभोग है॥ तिनकों मैं भोगती हौं॥ तातें मूर
िष है॥ अरु तूं कहती है मैं कछु नहीं॥ बहुरि कहती
है मैं ईश्वर हौं॥ इसतें महामूरिष दृष्ट आवती है॥ अ
रु जो इसा विषे तेरा चित प्रसंन है॥ तो षेलो विचरो
परि इह बात सुणकर सत कोउ न मानैगा॥ जैसे ते
री इछा है॥ तैसे तूं कर॥ परंतु इह तेरे तांई शोभता न
हीं॥ हे रामजी ऐसें कहिकर राजा उठ षड़ा हूया॥ म
ध्यान का समा हूया॥ स्नान के निमित गया॥ तब राणी
मन विषे बहुत शोकवान भई॥ अरु विचार कीया

जो वल्मीकष्य है ॥ जो राजे आत्मपद विषे स्थित न पाई ॥
अर मेरे वचनों कों न जानत भया ॥ राणी ऐसे मन विषे
धार कर अपणें आचार विषे प्रवर्त्तणें लागी ॥ बहुड
अपणें निश्चय राजे कों न दिखाया ॥ जैसे अज्ञान काल
विषे चेष्टा कर्ती थी ॥ तैसे ही ज्ञान कों पाय कर चेष्टा क
रणें लागी ॥ तब एक समें राणी के मन विषे आई ॥ जो मैं
प्राणों कों ऊपर चढावौं ॥ अर अधः कों ले आवौं ॥ अप
णें वश्य करों ॥ उदान अर अपान वाइ कों ॥ किस निमित
जो आकाश कों भी उडों ॥ अर अधह कों भी गमन करों ॥
ऐसे चिंतवना कर राणी योग विषे स्थित भई ॥ प्राणाया
म करणें लागी ॥ रामोवाच ॥ हे भगवन इह संसार संक
ल्प तें उत्पति भया है ॥ संसार रूपी वृक्ष है स्थावर जंगम
रूप ॥ अर संकल्प इस का बीज है ॥ तो वह कवन प्राण
याम पवन है ॥ जिस कर के आकाश कों उडते हैं ॥ अर
बहुड तले कों आवते हैं ॥ अर ज्ञानी पुरुष यत्न क
र कैसे सिध कर्ते हैं ॥ अर ज्ञानवान कैसे लीला कर वि
चरते हैं ॥ इस का उत्तर कहो ॥ श्रीवसिष्टोवाच ॥ हे रामजी ती
न प्रकार की सिध होती है ॥ सो श्रवण कर ॥ एक तो उपा
देय है ॥ जो इह वस्त मेरे ताई प्राप्त होवे ॥ तिस निमित य
त्न करते हैं अज्ञानी ॥ अर एक हेय है ॥ जो इह दुःख मेरा
निवृत होवे ॥ जो मैं सुखी होवों ॥ महा अज्ञानी जो हैं ॥ तिन कों
इह चिंता रहती है ॥ अर एकाह है ॥ जो मैं कर्म कर्ता हों
इस का फल मेरे ताई सिध होवे ॥ इह भी अज्ञानी है ॥ का
हे तें जो आप कों कर्ता मानता है ॥ अर ज्ञानवान इन तें उ
लंघ वर्तता है ॥ कदाचित ज्ञानवान इस विषे वर्तता भी
है ॥ तो भी तिस के निश्चे विषे इह है ॥ जो मैं न कर्ता हों ॥ न
भोक्ता हों ॥ अर सिध जो हैं ॥ सो इस प्रकार योग कर सिध
होते हैं ॥ जो देव्याक कों ॥ अर काजल कों ॥ अर वस्तक कों
अर हृदयाक कों ॥ हृदयाक ही चे मुख विषे गुटका राष
णें ॥ तिस कर कें जहां चाहे ॥ तिसी ठौर विषे जाइ प्राप्त होवे

अरु अंजन नेत्रों विषै पावणां जिसकों देष्या चाहै ॥ ति
से देषलेवै ॥ अरु षड्ग हाथ विषै धारकर संपूर्ण
पृथ्वी कौं वसकर लेणां तप की इह तौ ह्या
पदार्थ हैं ॥ अरु देश जो सर्वत्र हैं ॥ तिस विषै केते पी
व हैं ॥ अरु वटा उत्तम है ॥ अरु इह जो सिध होते हैं सो
श्रवण कर ॥ जो कैसे होते हैं ॥ आधार चक्र के ऊप
र अरु नाभ के तले एक कुंडलनी शक्ति है ॥ सर्प
णी की न्याई कुंडल जिस विषै हैं ॥ कुंडल को मार
बैठी है ॥ अरु वासना ही जिस विषै विष है ॥ अरु जेती
नाडी हैं ॥ तिनका स्पंद उही है ॥ तिस कुंडलनी विषै
जब मनन होता है ॥ तब मन होइकर प्रगट होता
है ॥ अरु जब निश्चा होता है ॥ तब बुधि प्रगट होती है
अरु जब अहं भाव होता है ॥ तब अहंकार प्रगट हो
ता है ॥ अरु जब स्मर्ण होता है ॥ तब चित प्रगट होता
है ॥ अरु जब तिस विषै स्पर्श की इछा होती है ॥ तब प
वन प्रगट होता है ॥ इसी प्रकार पंचतन्मात्रा ॥ अरु अं
तहकर्ण चतुष्टय प्रगट होते हैं ॥ अरु आत्मा का प्रग
ट होवणां भी तिसातें जाणीता है रामोवाच हे भग
वन आत्मा का प्रगट होवणां तिसतें कैसे जाणीता
है ॥ आत्मा तौ देश काल वस्तु के परछेद तें रहित है
सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु कर पूर्ण है वसिष्ठोवा
च हे रामजी जैसे सूर्य का प्रतिबिंब जल विषै देषीय
त है ॥ अरु धूप सर्व ओर देषीयत है ॥ तैसे ब्रह्म सत्ता
समान है ॥ अरु प्रगट सात्विक गुण विषै देषीयत है
जेती कछु नाडी हैं ॥ अरु इंद्रीयां हैं ॥ तिनका उदे होणां
है ॥ सो कुंडलनी शक्ति है ॥ अरु जब इह जीव कुंडलनी
शक्ति विषै स्थित होयकर पवन कौं स्थिर करता है ॥ त
ब जेती कछु अंतर प्राण वायु है ॥ सो सर्व इसके वस हो
ते हैं ॥ जैसे सैना सभ राजा के वस होती है ॥ तैसे ही सर्व
इंद्रीयां इसके वस होती हैं ॥ अरु जब प्राण वायु इसके

इसके वस नहीं होती ॥ तब इसकों आधि व्याध रोग
उपजते हैं ॥ रामोवाच ॥ हे भगवन आधि अर व्याधि
कैंसे होता है ॥ सो कहो ॥ वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी आधि
नाम है मन की पीडा का ॥ अर व्याध नाम है देह के दुः
ख का ॥ आधि तब होती है ॥ जब इसकों संकल्प होता
है ॥ जो सुख मेरे तांई प्राप्त होवै ॥ अर उह वस्तु इसकों
प्राप्त नहीं होती ॥ तब चिंता करके दुख पावता है ॥ अ
र व्याध तब होती है ॥ जब बात पित कफ का विकार
शरीर विषे होता है ॥ अर देह दुख पावता है ॥ जब म
न अर शरीर का दुख एकठा होता है ॥ तब आधि व्याध
दुख एकठे होते हैं ॥ जब भिंन भिंन होते हैं ॥ तब दुख भी
भिंन भिंन होते हैं ॥ अज्ञानी कौं ॥ अर ज्ञानवान कों न आ
धि होती है ॥ न व्याध होती है ॥ अर इह जोग की कला मैं
विस्तार करके मैं नहीं कही ॥ काहे तें जो पूर्व ले ज्ञानें कौ कम
प्रसंग रहि जाता है ॥ अर जेती कला है सो मैं जाणता हौं
परंतु इह कला ज्ञान मार्ग कों रोकणेहारी है ॥ इसी
तें विस्तार करके नहीं कहिता ॥ अर वासनां चार प्रकार
की है ॥ सो श्रवण कर ॥ एक वासनां सषुप्त है ॥ अर एक
वासनां स्वप्न है ॥ अर एक वासनां जाग्रत है ॥ अर एक
वासनां क्षीण है ॥ स्थावर जोन कों सुषुप्त वासना है ॥ अ
र तिर्यग योन कों स्वप्न वासनां है ॥ जो उनकों वासना का
ज्ञान भी नहीं ॥ अर जंगम जो हैं ॥ मानुष अर देवता तें आ
दिकों कों जाग्रत वासनां है ॥ जो वासनां ही विषे लागे हैं
इह तीन वासनां अज्ञानी कों हैं ॥ अर क्षीण वासनां ज्ञान
वान की है ॥ जो वासनां की सतता नष्ट भई है ॥ तिसकों वा
सनां को छू नहीं ॥ जब इस प्रकार वासना की निवृत भई
तब आगे संसार भी नहीं रहिता ॥ अर जब कुंडलनी शा
क्ति तें वासना फुरती है ॥ तब पंचतन्मात्रा द्वारा संसार भा
न होता है ॥ संसार रूप वृक्ष का बीज वासनां ही है ॥ अर द
सो दिशा संसार वृक्ष के पत्र हैं ॥ अर शुभ अशुभ कर्म

तिसके फल हैं ॥ जैसी जैसी वासना पुरुषार्थ का साथ मि
लकर जीव करता है ॥ तैसा तैसा आगे होता है ॥ हे रा
मजी तातें वासना का त्याग करो ॥ वासना ही संसार
रूप वृक्ष का बीज है ॥ एही पुरुष प्रयत्न है ॥ जब निर
वास होवेगा ॥ तब विश्व कदाचित न भासेगी ॥ जैसे सू
र्य के उदे हूयें अंधकार रूप रात्रि नहीं रहती ॥ तैसे ही
ज्ञान रूप सूर्य के उदे हूयें संसार रूप अंधकार निवृ
त हो जाता है ॥ हे रामजी इह आध व्याध वडे रोग हैं ॥
सो आध भी मन कर होती है ॥ अर व्याध भी मन कर हो
ती है ॥ रामोवाच ॥ हे भगवन आध लोग तो मन कर होता
है ॥ अर व्याध तो शरीर का रोग है ॥ मन कर कैसे होता
है ॥ वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी व्याध दो प्रकार का है ॥ एक स
मान्य है ॥ अर एक सार है ॥ समान कहीये जो शरीर को
को दुःख आन प्राप्त होवे ॥ अर पुन्य करके अथवा स्ना
न करके अथवा जप करके निवर्त होवे ॥ इह तो समा
न कहीये ॥ अर सार व्याध सो कहीये जो जन्म मरन क
भी रोग है ॥ सो वडा रोग है ॥ सो मन के शांत हूयें विना निव
र्त नहीं होता ॥ इसी तें आध व्याध दोऊ मन कर होते हैं ॥ त
ब रामजी कहा हे भगवन ॥ आध मन कर के कैसे होती
है ॥ तब वसिष्ठजी कहा हे रामजी जब चित्त शांति होता
है ॥ तब रोग कोऊ नहीं रहिता ॥ अर जब लग चित्त शां
ति नहीं होता ॥ तब लग आध भी होती है ॥ अर व्याध भी
होती है ॥ सो श्रवण कर जो कैसे होती है ॥ जो कछु बा
ह्य अग्नि कर पच्यक होती है ॥ अर तिसको भोजन क
रते हैं पुरुष ॥ तब अंतर कूं फल नीजो है पुरयष्ट का सा
थ मिली जीव कला अर सर्व प्राणों की समष्टता ॥ अ
र उदान पवन जो ऊर्ध्वमुख कर फुरती है ॥ उदान अर
अपान आवस विषे युध राखते हैं ॥ अर तिन के क्षोभ तें
अग्नि उठता है ॥ सो हृदे कमल विषे आइ स्थिति होती
है ॥ तब उह बाहिर मुख अग्नि का पका भोजन हृदे अग्नि

त

अर अपान पवन
जो तिस तें अरध्व
के फुरती है

परबऊड परपक्कु होता है ॥ अरु सर्व नारी अपले अ
पलेना गरस कौं ले जाती हैं ॥ तब वीर्यवाली नारी वी
र्य करके राषती है ॥ अरु रुधिरवाली नारी रुधिरक
र राषती है ॥ इसी प्रकार रस नें अपले अपलें रस कौं
ले जाती हैं ॥ तब इह पुरुष सुषेन रहिता है ॥ अरु अपु
ले स्वभाव विषे रहिता है ॥ जब राग अरु द्वेष करके चि
त कुंडलनी शक्ति विषे क्षोभ होता है ॥ तब नारी अप
ले अपलें स्थानों कौं छाड देती है ॥ अन्नभी अंतर पर
पक नहीं होता ॥ तिसकचे रसकर रोग उगता है ॥ जैसे
राजा कौं क्षोभ होता है ॥ तब सेना कौं भी क्षोभ होता है ॥ अ
र जब राजा कौं शांत होती है ॥ तब सेना कौं भी शांति हो
ता है ॥ तैसे ही जब मन विषे क्षोभ होता है ॥ तब रोग होता
है ॥ अरु जब मन विषे शांति होती है ॥ तब नाडी अपले अ
पले स्थान विषे स्थित होती है ॥ रोग कोउ नहीं होता ॥ तातें
हे रामजी आधव्याध तब होती है ॥ जब तके पुरुष का (
चित निरवास नहीं होता ॥ जब चित शांत होता है ॥ तब रो
ग कोई नहीं रहता ॥ तातें निरवासपद विषे स्थित होवो ॥
तब रामजी कहा ॥ हे भगवन पाछै तुमों कहा जो मंत्रों क
र भी रोग निवर्त होता है ॥ सो कैसे निवर्त होता है ॥ सो कहो ॥
तब वशिष्टजी कहा ॥ हे रामजी प्रथम पुरुष कों श्रधा
होती है ॥ जो इस मंत्र कर मेरा रोग निवर्त होवैगा ॥ अरु पुं
न्य क्रिया जो दानादिक हैं ॥ अरु संतजनां की संगत होती
है ॥ अरु यरलवइह जो अहार हैं ॥ इनके जाप करके ॥ अ
रु जेते कछु जाप मंत्र हैं ॥ सो इन अहरों कर सिध होते हैं ॥
जब इनका जाप करता है भावनां सहित ॥ तब व्याधरोग
निवर्त हो जाता है ॥ अरु योगेश्वर का क्रम अणु अरु स्थू
ल ॥ सो श्रवण कर ॥ जब इह प्राण अपान कुंडलनी श
क्ति विषे स्थित होते हैं ॥ अरु इनकौं वस करके भी रहो
ता है ॥ जैसे मरूपक विषे पवन ॥ इसी प्रकार पवन कौं
वस करके ॥ कुंडलनी सुषमनां विषे प्रवेश करती है ॥
तब ब्रह्मरंध्र विषे जाइ स्थित होती है ॥ जो मुहूर्तपर्यं

९८ 116

ततहां आकाश विषे रहता है ॥ तब सिधां कों देष
ता है ॥ तब रामजी कहा हे भगवन इह जीव कला कूं
अर डलिनी नेत्रों मूं देषते हैं ॥ अरु भ्रारारई हो पडार
हता है ॥ नेत्रों बिनां सिध कैसे देषते हैं ॥ तब वशिष्ट
जी कहा हे रामजी इह पुरुष जब सोवता है ॥ तब स्व
प्न विषे जैसे देषता है ॥ तिसे बुधि नेत्रों साथ देषता
पदार्थ है ॥ अर स्वप्न विषे जो देषे हैं जाग्रत विषे सो प्रत्यक्ष
नहीं होते ॥ किसकर जो अंतहकर्ण मलिन हैं ॥ अर
इस योगेश्वर का अंतहकर्न निर्मल है ॥ बुधि नेत्रों क
र जाग्रत की चेष्टा प्रत्यक्ष देषता है ॥ बहुड स्थूल की
भावना करता है ॥ तो स्थूल हो जाता है ॥ अर जो सूक्ष्म
= जब की भावना करता है ॥ तब सूक्ष्म हो जाता है ॥ जो प्राण
सेवनां करता है ॥ एक वाइ सूर्य है ॥ अर एक चंद्रमा है ॥
अर त्रिदे कमल के मध्य स्थित है ॥ अर मध्य ताके सू-
ल के ॥ उनय रूप कमल है ॥ एक भाग ऊर्धका जो है सो
सूर्य है ॥ अर अधह का भाग चंद्रमा है ॥ अर अग्नि सो
म कूं ता कूं कों कहते हैं ॥ जो उष्मता अर सीतलता है
अर चार प्रकार का अन्न कूं ता कूं ते पचता है ॥ उष्मता
अर सीतलता देह मों ता कूं की है ॥ धूम मार्ग अर दी
प्त मार्ग कूं ता कूं कों कहीता है ॥ उत्तराइण अर दछ
णाइण तिनहीं का है ॥ जो जोगेश्वर उतराइण का
ल सूर्य के देह त्यागता है ॥ तब ताकों पुनह गर्भवास न
हीं होता ॥ अर जो दछणाइण काल सूर्य के देह छूट
ता है ॥ तब पुनह गर्भवास होता है ॥ सो वह उतराइण
एह है ॥ जो जब सूर्य चंद्रमां कों बछेन कर जाता है ॥
कूं अर तहां अभाव सहोता है ॥ अर विषवतीसंक्रांत ना
कूं कों कहते हैं ॥ जो दिन अर रात समान होता है ॥ अ
रता काल योगी देह का त्याग करता है सत्य है ॥ जो ताकों
पुनह गर्भवास नहीं होता ॥ जो तान रूप अनन्नव आ

काशमध्य हृदेकमलकेवहीएकनवरीहे ॥ अरसू
र्यकेप्रकाशतें ॥ एकमलप्रफुलितहे ॥ जैसेसूर्यमु
षीकमल सूर्यकेप्रकाशकरप्रफुलितहोताहे ॥ तै
सेवहमहाजोतीकीजोतहे ॥ अरमहाप्रकाशतें अ
तिप्रकाशहे ॥ अरमहातेजोतें अधिकतेजहे ॥ अ
रमहाज्ञानीतें अतिदिव्यज्ञानरूपहे ॥ जबतहांचित
सिधकास्थितिरहे ॥ अरतदाकारवृत्तिहोइ ॥ तबजा
जासिधकोचितवे ॥ तांकोतदाकारभासे ॥ अरतांको
अैसीशक्तिहोतीहे ॥ जोईहांहांबेगविष्मजीकेदेह
कोस्पर्शकरे ॥ अरचतुरदशलोकोंकाकोतक ईहां
हीबेगदेषे ॥ हेरामजी इहसर्वकलाअभ्यासकरके
योगतेंहोतीहे ॥ अरअैसेसिधकोंपुनःगर्भनहीं ॥ जो
उतराइणनामज्ञानकाहीहे ॥ अरदक्षराइणधूममा
र्गनामअज्ञानकाहीहे ॥ जोतामोदेहछूटताहे ॥ तब
पुनःगर्भनिवासहोताहे ॥ अधःमार्गदक्षराइणहे ॥
अरऊर्धमार्गउत्तराइणहे ॥ अरषट्चक्रहीमासहे
जबसूर्यचक्रऊर्धहीकेमोंविचरताहे ॥ तबचंद्रमाके
आपहीमोंलीनराषताहे ॥ अरजबचहताहे ॥ तबचं
द्रमांकोंउकलेदकताहे ॥ अरजबबडऊंडलीनकीया
चहताहे ॥ तबलीनकरताहे ॥ जैसेबडवाअग्निजलको
भस्मकरताहे ॥ जोएहीईधनहे वहअग्निका ॥ अर
बडऊंडधेमवार वर्णाहीकतीहे ॥ अरकारणदेहोंका
एहीउभयपहें ॥ जोसूर्यचंद्रमाजोंकोकहतेहें ॥ अरदेह
वहीसूर्यकरभानहोताहे ॥ अरसूर्यदेहकरभासताहे
जोनिराकारअकारतेंइतरअंगकरनहींभासते ॥ अ
रअधिष्टानवहीसूर्यहे ॥ अरदेहादिकविवहारतांका
कच्चनहे ॥ अरवहीपराशक्तिकुंडलनीहे ॥ अरजीवश
क्तिजोफुरताहे ॥ तांहूकेअवरनामहे ॥ हेरामजीजोगी
कोंजोअणिमातेंआदिसिधीप्रापतहोतीहें ॥ सोभवणक
र ॥ जबकुंडलिनीत्रिदेमोंआइस्थितिहोतीहे ॥ अरअहं

अंबरा हैं अतप्रकाशवान
उजलवर्नकेसदरिउंश्र
रबाहूकोसूरियकहते
हैंअरमध्यहिदेकमलके

प्रत्यययोगी का तौंमै होइ ॥ जो वह कौं अपनां आप जा
नै ॥ तब तौं कें जैंसी सिध की इछा होइ ॥ तैंसे ही ततकाल
होती है ॥ अर जो चाहे मैं सूक्ष्म होवौं ॥ अथवा स्थूल होवौं
वह तहां ततकाल ही तद्रूप देषता है आपकौं ॥ जो वह
कुंडलनी अति प्रकाशरूप है ॥ अर रुद्र तां के मौं कण
प्रकाशवान वत ॥ अर तामरस स्वर्नरूप वत प्रकाशती है
जैंसे मेघ श्याम धूम्र मैं विद्युत चमकत है ॥ तैंसे तां के रिदै मौं
चमतकार होता है ॥ अर जैंसे कंचन द्रवत्वरूप होता
है अग्नि के संयोग तें ॥ तैंसे जोगी जब अनन्तवे रूप प्र
काश मैं स्थित होता है ॥ तब तां का संपूर्ण देह प्रकाशवा
न ॥ अर सोभावान होता है ॥ श्रीमान अर शक्तिमान हो
ता है ॥ अर सर्व दुषौं तें मुक्ति होइ कर चिदाकाश के म
ध्य लीला करती है ॥ अर जो चाहे दिवाकर चक्र के मध्य प्र
वेश करे ॥ वह मेघमंडल के मध्य विषे स्थित होइ ॥ वह जं
लौं मौं डूबे नां ही ॥ वह अति सूक्ष्म सौं सूक्ष्म पदार्थौं मौं प्र
वेश करे ॥ इह सर्वशक्तीं तिसकौं प्राप्त होती हैं ॥ हे रामजी
सर्व इह विस्तार योग का मैं तुझे कहा है ॥ अर परमें जोग ए
ही है ॥ अब सुण ॥ जो सिधी ज्ञान कूं तैं होती है ॥ अर प
रमें जोग ता ज्ञान कौं कहते हैं ॥ जब ज्ञानी ता पद मौं
अतिधृड होता है ॥ तब तां कौं इह सिधी आइ प्राप्त
होती हैं ॥ हे रामजी आदि सर्ग कि केवल चिद्रूप ही था
जौं न कोऊ देह थी ॥ अर न कोऊ गुण कूं या था ॥ अर न
कोऊ पदारथ ही था ॥ केवल चिद्रूप आतमा आप है
सोई था ॥ अर तां सौं प्रथम ही फुरनी शक्ति जो जीव श
क्ति है ॥ सो उदै भई ॥ अर तां ने देह का नाम करता ॥ अर
नाम कर नाम कौं प्रत्यक्ष देषत भई ॥ जैंसे बालिक ना
म करय क्षां कौं देषता है ॥ तैंसे तां नै अकार देह कौ दे
षा ॥ अर बहुडूं अनंत रूप पदारथ कल्पनां कौं अपणे
मौं देषत भई ॥ अर तैनीत होकर तां कौं अपनां मल

विस्मर्न भया ॥ अर जब भ्रांत जो देह है अपनां जानता
है ॥ तब अत्यंत अंधकार के मध्य पडता है ॥ जो कोटसूर्य
के प्रकाश तें हूं ॥ तां कौं अंधकार दूर नहीं होता ॥ अर
जब काहू ज्ञानी का संग करता है ॥ तब ज्ञानरूप चांद
नें सों भ्रम अंधकार का नास करता है ॥ अर अपने नि
जस्वरूप कौं पावता है ॥ अर बडे तां सों भ्रम का त्या
ग होता है ॥ अर देह नाम यहां का अभाव करता है ॥ जुंता
केवल चिद्रूप सों देहादिक स्वप्न भ्रमवत् नासते हैं ॥ जु
मूलरूप तां का अतिसूक्षम है ॥ अर निरंजन निराका
र है ॥ तां कौ अपनां जानके पुनः देह अर जगत कौं न
हीं देषता ॥ जैसें बालिक नैं भीत यक्ष भावनां कर नि
भ्रा कौं होता है ॥ अर तां कौं कोउ दीप प्रकाश दिषा
इ कर ॥ तां का भय दूर करे ॥ तैसें ज्ञानरूप दीप सों अं
कार भ्रम दूर होता है ॥ अर जो वही अपने अनन्त स्व
रूप सों स्थित पावे ॥ अर ताहू के मध्य संकल्प अप
नां धडरावे ॥ तब जैसें चितवे तैसें ही होता है ॥ जोइ
ह संकल्परूप जीव चित्त प्रकाश वाहू का है ॥ विद्या
अर अविद्या उभयरूप तिसके ही है ॥ जब विद्यामें
धट अभ्यास करता है ॥ तब अविद्या का नाश होता है
अर सर्वज्ञशक्तिवान होता है ॥ जो तां का सर्वज्ञता कौं का
निजरूप बीज है ॥ अर तां कौं अपणां आप है ॥ जब
ताहू में अपनां वास करता है ॥ तब सभ ही शक्ती तां कौं
नमस्कार करती हैं ॥ अर जाहू पे रहुपाल होइ ॥ ताहू कौं
आप समान करता है ॥ अर ज्ञान मूल का पाइ कर जी
वत अपने का नाश करता है ॥ जैसें तेल सों रहत दीप
क अस्त होजाता है ॥ तैसें वासनां कूं दूर नये वह कूं
कल्पित अकार अपनो नाश करता है ॥ अर मूलरूप
होइ रहिता है ॥ अति आनंदी महासुखवान होता है
हे रामजी इस प्रकार ज्ञानवान कौं महां दिव्य शक्तीं प्रा
प्त होती हैं ॥ उवरप्रकार कूं जो हैं ॥ अर तां सों समान भो
वहै ॥ तां से कूं जो सिधां प्राप्त होती है ॥ सो अवर्णकर

अरजो विस्नुजी काकूं कारणतें मन्वंतरों में अवतार
लेता है॥ अरबोधरूप अवतार धारता है॥ अरतीन सिधयां
तआपमों राषता है॥ जो विज्ञानजां के बोधक हते हैं
सूत्र अर माधमक जो बिलक है॥ इहवाक्य सेवकों प्र
ति कहते हैं॥ अरसेवकवां के वह सिधांतकों पाइकर सि
धीको पावते हैं॥ जो जबतास सिधांतमों तदाकार होते हैं॥
तब वह कूं सिधी पावते हैं॥ जो इह समान उपावों तें सिधी
होती है॥ जो आवर्णसंजुक्त ज्ञान है॥ अर प्रमवत कर
प्रम्य ही कों देषते हैं॥ तामों अभाववस्तु ही आवर्ण है॥
अरविज्ञान जो बुधि है॥ ताकूं कोसत जानते हैं॥ तामों बु
धि ही आवर्ण है॥ अरततीय माधमक जो ज्ञानं नेगव
तहैं॥ तामों वही आवर्ण है॥ अरचित्तकी वृत्त तामों तदा
कार करनेतें सिधी होती हैं॥ हे रामजी जा पुरुषकों नि
रावर्ण ज्ञान होता है॥ तांकों स्वभावक ही सर्व चारों सि
धी की आइ प्राप्त होती है॥ अजतन ही॥ जो केवल चिद्रूप
आपकों बूझता है॥ हे रामजी एक इहकूं सिध है॥ जो जब
योगी अवरचहता है॥ जो मैं देहका त्याग करों॥ अर अव
रदेहमों प्रवेश करों॥ तब वह रेचक प्राणायाम करके
मार्ग पवनके कुंडलनी जो अपनां आप है॥ सो निकस जा
ती है॥ अरदेह गिर पडता है॥ तैसे ही अवरदेहमों प्रवेश
करता है सिध॥ अरजब चहता है॥ अवर आकार कल्प
कर मध्यता के प्रवेश करता है॥ वह चहता है॥ जो वही पु
रवदेहमों प्रवेश करों॥ तब वहीमों प्रवेश करता है॥ हे
रामजी इह देहरक्त अरबिंद कर उपजता दीसता है॥
अरवह जोगी चाहे॥ जो मैं देह अपनी कज्यों॥ तो वह कल्प
नामात्र ही तातकाल देषता है॥ जो इह सर्व धर्म संकल्प
के ही हैं॥ अर जो जो पदार्थ का घट मैं कल्प करता है॥ ता
कूं ताकूं मों तदीसत है॥ अर पदार्थों कों देषता है॥ हे राम
जी इह कल्पनां जो मनकी वासना है॥ सर्व भावंउ कों चित
वत है॥ अरतातकाल ही तद्रूप हो जाता है॥ अरजो वह
चिद्रूप आतमामों धट अभ्यास करे॥ जो पुरुषप्रयतन न

जाकौ कहते हैं॥ अरु तत्कौं तदाकार राषीये॥ अरु वास
नां ताकौ नास होइ॥ अरु मध्य ताकूं के विचरे॥ जो जाकौ ब्र
ह्म भावना कहते हैं॥ सर्व जोगों अरु सर्व सिधों का फल ए
ही है॥ जो तौ चिद्रूप सो जो अपनां आप है॥ सर्व का एक
ता होइ॥ अरु तत्तदाकार होइ॥ जो महा मुक्ति जो विदे
ह मुक्ति॥ अरु जीवन मुक्ति बाकूं प्रकार कूं ईयत है॥ अर
निर्विकल्प समाध होता है॥ हे राम जी इह सर्व कला जोग
की मैंने अति विस्तार करकै कहिकही है॥ अरु अति उत्तम
भावना तौ मो वर्नन न भया है॥ अरु प्रयोजन एही है॥ जो तौ अर आध ब्याध दुषों का नास होइ
महा निरवान पद मों इस्थित होइ॥ अरु आत्मा ब्रह्म की
एकता होइ॥ जो पुनः दुःष जन्मादिकों का न होइ॥ अरु सु
भाव मों स्थित होइ॥ अर आध ब्याध दुषों का नास होइ॥ नि
जु ब्रह्म सत्चित आनंद रूप ही है॥ अरु सुभाव मात्र है॥ जो
का नृतत की सत्ता सौं रहित अपनों आप है॥ अर चिद
वप है॥ अर अनंत व आकाशात्मा है॥ जो एक वार तां
मों तदभाव होइ॥ तब सदेव ही तदभाव रहै॥ अर सर्व दु
ष तां के नास होइ॥ सर्वज्ञता कौ का धनी होइ॥ अर अविद्या
का मूल नास करे॥ हे राम जी वह चुराला नाम देवी व त
जो देवी है॥ जब इह अभ्यास जोग और अभ्यास वती जो
न सों होते नई॥ तब सर्व शक्ति संजुक्त होइकर अएमु
दि सिधों ताकौ प्राप्त होते नई॥ तब मध्य आकाश के उमे
एक निशा मों राजा सैन कर रहा था॥ अर ताने ऐंवू का शा
पाया॥ अर मध्य आकाशचारी के जोइकर बडु तस्या नो मों वि
चरते नई॥ अर मध्य देवी लोक के कालीरूप॥ अर विद्यु
तवत लोचन अति चंचल धार के गमन करते नई॥ अर दे
मध्य दिग्गजों के जाते नई॥ अर मध्य देवतों के॥ अर मध्य दे
लोंके॥ अर मध्य राक्षसों के॥ अर मध्य विद्याधरों के॥ अर
मध्य सिधों के॥ अर मध्य सूर्य लोक के॥ अर मध्य चंद्र लो
कके॥ अर मध्य तारामंडल के॥ अर मध्य मेघमंडल के॥
अर मध्य इंद्र लोक के जाते नई॥ अर ताका कौतक देषक
र॥ बडुड अधः लोक कों आवते नई॥ अर मध्य समुद्र के
प्रवेशा कर कें॥ बडुड मध्य अग्नि के प्रवेशा करते नई॥ अरप
वन विषे पवन रूप होते नई॥ अर मध्य नाग लोक के क्रीडा
करंता

अरभ्रमरा

कर्तभई ॥ अरमध्यबनोंके ॥ अरमध्यपर्वतोंके ॥ अरमध्य
नतोंके ॥ अरमध्यअपत्सराके ॥ अरमध्यत्रिलोकीके ।
विचरतभई ॥ अरलीलाकर्तभई ॥ अरएकच्छणमोंता
स्थानमोंआवतभई ॥ जहांराजासैनकररहाथा ॥ समी
पराजाकेसैनकररही ॥ जैसेभ्रमरीकमलनीकेमध्यसै
नकरतेहे ॥ अरराजातांकोनजानतभया ॥ जोराणीक
आगईथीवानआईथी ॥ अरबहुडवालिन्नापूरणहोत
भई ॥ अरप्रातहकालभया ॥ अरराजास्नानशालाको
जाइस्नानकर्तभया ॥ अरप्रवाहकर्मजोवेदोक्तहे ॥ सो
कर्तभया ॥ अरराणीकूंप्रवाहकर्मकर्तभई ॥ अरराजा
कोंसनैसनैउपदेसततकाउपदेसकीयाकरे ॥ जैसेपि
तापुत्रकोंप्रतिश्रेष्टवाणीकरउपदेसदेताहे ॥ अरप
ढतोकूंकोंकहतभई ॥ जोराजाकोतुमउपदेसकरो ॥
जोइहजागतस्वप्नवृतभ्रमहे ॥ अरदीरघरोगहे ॥ अर
दुःषहूकाकारणहे ॥ अरआत्मज्ञानकुंऔषधतेना
शहोताहे ॥ अबरइसदुःषकाऔषधनहीं ॥ ऐसेकर
आपकूंतहांराजाकोउपदेसकरे ॥ अरपंडतोसोउप
देसकरावे ॥ अरराजातहांज्ञानकोनप्राप्तभया ॥ अर
मध्यविचारताकेहीरहा ॥ अरउतमपदमोंविश्राम
नपावतभया ॥ जोअपणाआपहे ॥ अरवहकेवलचि
द्रूपहे ॥ अरसमस्तकाआत्माहे रामोवाच ॥ हेमहामु
नजीवहराणीतोसर्वशक्तिसंपन्नभईथी ॥ जोजोग
कलामोंकूंप्रतिचतुर ॥ अरतानकलामोंकूंतदवतहो
तभई ॥ अरराजाकूंप्रतिमूढनथा ॥ वाकोंतांकाउपदे
शधरकोंनहोतभया ॥ अरराणीकूंताकोंअतिप्रीतक
रउपदेशकीयाकरे ॥ वहकारनकोथा ॥ जोअपनेप
दमोंस्थितनहोतभया ॥ वसिष्टोवाच हेमानदजैसे
अछिद्रमोतीमोंतागाप्रवेशनहींकर्ता ॥ तेसेउपदेश
चुरालाकातोकोनविधतभया ॥ जोजबलगआपवीचा
रनकरे ॥ अरतांकोतासोंधरइअभ्यासनहोइ ॥ तबलग
श्रेष्ठाकूंउपदेशाकरे ॥ तोतांकोनवेधे ॥ काहेतेंजोआ
त्माआपहीकरजानाजाताहे ॥ अरइन्द्रीयोंकाविषय

नहीं॥ जो अधिष्टानरूप है अरु सत्तावमात्र है॥ अरु आ
पही आपकों देषता है॥ अरु काहू मन आदिके इंद्रे को
विषै नही॥ अरु सर्वका अपणां आप है॥ तबरामजीक
हा॥ हे भगवन जो अपणे आप कर देषीता है॥ तो गुरु
अरु शास्त्र उपदेश किसनमित करते हैं॥ तबवसि
ष्टजीकहा॥ हे रामजी गुरु अरु शास्त्र जणाइ देते हैं
जो तेरा स्वरूप आत्मा है॥ पर इद्देकरके नहीं दिषावते
अरु विचारते त्रसों आपकों आप ही देषता है॥ अरु वि
चारसों रहित तो कोन ही देषसकीता॥ जैसे कोहू पुरु
षकों आंसिको उदिखावता है सचचु॥ अमुके स्थानमों
देषजो उदै है॥ जो वह हूं सचन्न होता है तब देषता है
अरु जो वह अंधहोइ॥ वा मंददृष्टीहोइ॥ तो देषनहीस
कता॥ तैसे गुरु अरु शास्त्र आत्माका रूपवर्नन करते
हैं॥ अरु वांकों लषावते हैं॥ जो वह विचारने त्रसों देष
ता है॥ तब कहता है जो मैं देष्या॥ अरु अवर काहू के दि
षावनेको जोग होता है॥ हे रामजी आतमा काहू इंद्री कौ
विषय नही॥ जो अपणां आप मूलरूप है॥ इंद्रियकलि
तरूप है॥ अरु जो कहैं कि तुम हूं तो उपदेश इंद्रीयऊ
करके तेहो॥ तो तूं सर्व इंद्रीयऊ कों विस्मर्नकर॥ जो मृ
ल अपनां तुजेनासे॥ अरु अनावत इंद्रीयांकों तेतेरा
अभाव नहोवेगा॥ हे रामजी इसीपर एक इतिहास किरा
टका है॥ सो श्रवणकर॥ अथ इतिहास किराटका॥
एक किराट था॥ उसपास धन अरु अनाज बहुत था
अरु इहु पण भी था॥ जो किसीको देता कछु नथा॥ अरु अ
वर धनकी तृष्णा करतारहे॥ जो किसी प्रकार चिंतामणि
मेरे ताईं प्राप्त होवै॥ सदा एही वांछा करै॥ इसी वांछा कर
एक समें घरते बाहिर निकसा॥ अरु पृथिवीकी ओर दे
षताजावे॥ तब एक स्थान था॥ तहां घास अरु तुस पडी
था॥ तिसविषे एक कौडी दृष्टपडी॥ तब कौडीकौं उठाय
लीया॥ अरु बहुरि देषने लागा॥ जो मतक हूं अवर भी नि
कसे॥ तब दूसरी कौडी निकसी॥ इसीप्रकार ढूंढते हूं ये
दिन त्रय व्यतीत भये॥ तब चार कौडी निकसी॥ बहुरि अ

ष्टनिकसी ॥ जबदिनत्रय अवर व्यतीत भये दृढत्वं ॥
तब चिंतामणि चंद्रमा की न्याई प्रगट देषी ॥ तब मणि
को लेकर अपने घर आवत भया ॥ अरु वो हर्ष के
प्राप्त भया ॥ तैसे हे रामजी गुरु अरु शास्त्रों कर ॥ तत्व
मसि अहं ब्रह्मास्मि का पछांणना ॥ सो कौडीयों का
षोजना है ॥ अरु आत्मा चिंतामणि रूप है ॥ परंतु जै
से कौडीयों के षोजते चिंतामणि पाई ॥ षोजे विना न
ही पाई ॥ तैसे गुरु अरु शास्त्रों कर आत्मपद पाईता
है ॥ गुरु शास्त्रों विना नहीं पाईता ॥ धन कर के ॥ अरु तप
कर के ॥ अरु कर्म कर के आत्मा पाईता नहीं ॥ केवल अप
णे आप कर पाईता है ॥ हे रामजी राजा शिषरध्वज जो
था ॥ सो चूडाला पासों उठ कर स्नान को गमन कीया ॥
ए तब राजे के मन मों वैराग उपजा ॥ जो यह संसार मिथ्या है
बहुत भोग भी हम भोगे ॥ तो भी हृदे विषे शांत न भई ॥
अरु इन भोगों का प्रमाण मध्य दाइक है ॥ जब मन वि
षे ऐसा विचार उपजा ॥ तब राजे गौयां ॥ अरु पृथिवी अ
रु स्वर्ने अरु मंदर अवर सामिग्री बहुत दान करी ॥ जो
ते कछु ऐश्वर्य पदार्थ हैं ॥ सो दान कीये देवतों अरु ब्रा
ह्मणों अरु पितरों के अर्थ दीया ॥ अरु अवर गरीबों के
अतिथों को दीया ॥ जैसे जैसे किसी का अधिकार देषा
तैसे दीया ॥ अरु राणी भी ब्राह्मणों कों अरु मंत्रीयों कों
कहा ॥ जो राजा को तुम एही उपदेश कीया करो ॥ जो इ
ह भोग मिथ्या हैं ॥ इन विषे सुष कछु नहीं ॥ अरु आ
त्म सुष वडा सुष है ॥ जिस सुष के पायें तें जन्म अरु मृ
त्यु से मुक्ति होवीता है ॥ इसी प्रकार राजा ब्राह्मणों तें श्र
वण करे ॥ अरु अपने मन विषे भी वैराग उपजाया ॥ त
ङ्ष ब राजा कहे ॥ कि इस संसार तें रहित होवों मैं ॥ यह संसा
र वडा दुष है ॥ इस विषे सदा जन्म मरण है ॥ तब राजा के
मन विषे फुरया जो मैं तीर्थों को जावों ॥ अरु स्नान करों ॥
तब राजा तीर्थों को चला ॥ तब स्नान नीकरो ॥ अरु दान

नीकरते॥ इसीप्रकार देवता अरतीर्थ अरसिधों के दर्शी
न कीये॥ अर बहुत स्नान करके घर मों आया॥ तब आ
य कर रात्र के समें राणी साथ सैन कीया॥ अर राणी कों क
हा॥ कि हे प्रिया अब मैं बन कों जाता हों॥ तप करणे कि नि
मित॥ जो इह भोग मेरे ताई दुष दाइक भासते हैं॥ अर
राजश्री बन की न्याई उद्याड भासता है॥ तांते मैं तप कु
निमित बन कों जाता हों॥ अर इह भोग बहुत काल पर्यं
त हम भोगते रहे॥ तो भी इन विषे सुष न हृदैं आया॥ तां
ते मेरे ताई अट का वर्णन नहीं॥ मैं बन कों जाता हों॥ तब रा
णी कहा॥ कि हे राजन अब तेरी कवन अवस्था है॥ जो तं
बन कों जाता हैं॥ अब तो हम राज भोगें॥ जैसे बसंत रुत
विषे फल सोभा पावते हैं॥ अर सरत काल विषे नहीं सोभ
ते॥ तैसे हम भी वृध होवेंगे॥ तब बन को जावेंगे॥ अर ब
नही विषे सोभा पावेंगे॥ जैसे बन के फल स्वेत होवेंगे॥ तैसे
हमारे वाल स्वेत होवेंगे॥ तब सोभा पावेंगे॥ अब तो राज क
रैं॥ कि हे रामजी इस प्रकार जब राणी कहा॥ तब राजा का
चित वैराग्य विषे रहा॥ राणी का कहणां चित मों न ल्यावत
भया राज का सुष॥ जो तीर्थों के स्नान कर अर दान कर राजा
को वैराग उपजा॥ परंतु शांत न पाई॥ जैसे चंद्रमा बिनां क
मलनी शांत नहीं पावती॥ तैसे ज्ञान बिनां राजा कों शां
त न प्राप्त भई॥ परंतु वैराग्य कर के कहिणे लागा॥ हे रा
णी अब मेरे ताई अट का वर्णन नहीं॥ अब राज मेरे ताई
फीका लागा है॥ मेरे ताई बन कों गया जाए॥ जो व हिरा
उ मेरा ई हां नहीं होता॥ जब तक हे हम तेरी ई हां टहल
करते थे॥ पाछे कवन करेगा॥ तब पृथिवी ही हमारी ट
हल करेगी॥ अर बन की वीथीयां ही स्त्रीयां होवेंगी॥ अ
रन मों के बालिक पुत्र हैं॥ अर आकाश हमारे वस्त्र हैं॥
अर फलों के गुछे हमारे भूषन हैं॥ ऐसे राजे कहा॥ तब
आगे रात्र का समा भया॥ अर राजा उहां तें चलया॥ तब
उहां तें राणी अरसैना भी रूप हर तैं पाछे ही चली॥ बदीन
यान कर रात्र विषे चल्ये॥ कोई हीं केवी च जा स्थित भये

तब राजा अर रानी सोये ॥ जैसे नवरा अर नवरी सोवते हैं
सें ना अर सहेलीयां सब सो इ गये जो आये थे ॥ धर्म निंद्रा क
र जड होगये ॥ जैसे पथर की सिला जड होती है ॥ जब अर्धरा
त्र बतीत भई ॥ तब राजा जाग्या ॥ अर देख्या जो सब सो गये
हैं ॥ तब ब्रालोतें उठकर रानीके वस्त्र एक और करके हा
थ विषे खड्ग लेकर निकस्या ॥ जैसे क्षीरसमुद्र तें विष्णु भ
गवान लक्ष्मी सों उठता है ॥ तैसे उठ्या ॥ अर सब लोकों को लं
घता आया ॥ जब दरवाजे कोट के पर आया ॥ तब अर्ध मानु
ष्य जागते थे ॥ अर अर्ध सोये थे ॥ तब उनउं राजा को देख्या ॥
अर राजे कहा हे वीरपालो तुम ईहां ही बैठे रहो ॥ मैं एकला
हीं वीरयात्रा को जाता हों ॥ तब राजा तीक्षण वेग कर चल्या
आया ॥ अर बाहिर निकस कर कहा ॥ हे राजलक्ष्मी तुज
को नमस्कार है ॥ अब मैं बन को चल्या हों ॥ एक बन विषे आ
या जहां सिंह अर सर्प अवर भयानक जीव हैं ॥ तिनके श
ब्द सुणे ॥ अर आगें चल्या गया ॥ तिसतें आगें अवर बेला आ
या ॥ तिसको भी लंघ गया ॥ जब आठ पहर राजा चल्या ग
या ॥ तब एक ठौर आइ स्थित भया ॥ जब सूर्य उदे हूया ॥ त
ब राजे स्नान करके संध्या कर्म कीये ॥ अर फल बृक्षोंके ले
कर भोजन कीये ॥ बहुड आगें चल्या जो मेरे ताईं पाछें तें को
ई आय कर मति अटकावता होवे ॥ इसी निमित्त तीक्षण
चल्या ॥ बडे पहाड अर नदीयां अर बेले राजा उलंघ कर
दिन रात्र पर्यंत चल्या गया ॥ जब मंदराचल पर्वत के
निकट गया ॥ तब एक बन विषे स्थित जाय हूया ॥ अर स्ना
न करके कछु भोजन कीया ॥ तहां ते पत्र ले कर मेघ अर छा
या के निमित्त रूपडी बनाई ॥ अर तहां स्थित भया ॥ अर बा
सन हूं स्थापन कीये ॥ तिन विषे फूल फल नराय पाकरे ॥ जब
प्रात हकाल होय तब स्नान करके प्रहर पर्यंत जाप करे ॥ ब
हुड देवताके पूजन निमित्त फल चुणे ॥ अर द्वतीय स्नान क
रें एक प्रहर ऐसे ब्यतीत करे ॥ जब तीसरा प्रहर होवे ॥ तब
फल भोजन करे ॥ अर चतुर्थ प्रहर मों बहुड संध्या जप जाप
करे ॥ इसी प्रकार दिन अर रात्र ब्यतीत करे ॥ कछुइक का

लरात्रकौंसैंनकरैं॥ अवरजपमोंब्यतीतकरे॥ इसप्रकारदिन
अररात्रकौंब्यतीतकरे॥ तबवशिष्टजीकहा॥ हेरामजीरा
जाकीतोइहअवस्थाभई॥ अबराणीकीअवस्थाश्रवणक
र॥ जबअर्धरात्रतेंपाछेंराणीजागी॥ तबक्यादेष्याजोराजा
ईहांनहीं॥ बनकौंनिकसगयाहे॥ अरशय्याखालीपडीहे॥
तबराणीसहेलीयांकोजगाया॥ अरकहिणेलागी॥ जोबडो
कष्टहे॥ जोराजानिकसगया॥ अरबडेभयानकबनको
जावैगा॥ ऐसेकहिकरमनबिषेविचारकीया॥ जोराजाकोदे
ष्याचाहीये॥ तबयोगबिषेस्थितिहोकरआकाशकोंउडी॥
आकाशकीमांइदेहकोंअंतर्धानकरकैं॥ जैसेयोगेस्वरीभ
वानीउडतीहे॥ तैसेउडी॥ अरआकाशबिषेस्थितहोकर
देष्या॥ जोराजाचल्याजाताहे॥ तबराणीकेमनबिषेआई
जोइसकामारिगरोकों॥ बहुडएकक्षणमात्रस्थितहो
करभविष्यतकोंविचारणेलागी॥ जोराजाअरमेरासयो
गनेतकैसेरच्याहे॥ तबदेषतभई॥ जोराजाअरमेरामि
लापहोवणेबिषेबहुतकालरहताहे॥ अरअबसमेव
मिलापहोवणहे॥ मैंउसेउपदेसकरजगावणहे॥ परए
तेकालकों॥ अबीइसकाकछाइपकानहीं॥ तांतेंअबरा
जाकामारिगरोकणानहीं॥ तबराणीबहुडअपणेगृह
मोंआई॥ अरशय्यापरसेनकीया॥ अरबडीप्रसन्नताको
प्राप्तभई॥ जबरात्रब्यतीतभई॥ तबमंत्रीयोंकोंकहणेला
गी॥ जोराजाएकतीर्थपरसणेंगयाहे॥ दर्शनककैंबहुड
आवैगा॥ ऐसेमंत्रीयांअरप्रजाकोंकहा॥ अरमंत्रीयांकोंआ
ज्ञाकरी॥ जोतुमअपणेकार्यबिषेविचरो॥ तबमंत्रीअप
णेंचेष्टाबिषेवर्तणेलागे॥ इसीप्रकारराणीअष्टवर्षप
र्यंतराजकीया॥ अरप्रजाकौंसुषदीया॥ जैसेबागवानक
मलोंकेकियारेकौंसुषीपालताहे॥ तैसेराणीप्रजाकौं
सुषदीया॥ अरउहांराजाकौंअष्टवर्षतपकरतैंब्यतीतभ
ये॥ अरराजाकेअंगदुर्बलहोगये॥ अरईहांराणीसज
राजकीया॥ जैसेभमराऔरगोरहोवे॥ अरभमरीअव
रगोरहोवे॥ तैसेइनकोंब्यतीतभया॥ अवरअवरगोरवि
व॥ तबराणीविचारकीया॥ आजराजामेरेवचनौंकाअ

धिकारी भया है ॥ जो अंतहकर्न राजाका तपकर्के शुध
हूया है ॥ अब राजाको देषीये ॥ तब राणी उन्हां अकाश
को गई ॥ तब आकाश विषे नंदन बन जो है इंद्रका सो दे
ष्या ॥ अरु तहां के जो दिव्य पवन हैं ॥ तिनका स्पर्श हूया ॥
तब राणी के चित विषे आई ॥ जो मेरे ताई भर्था कब मिले
गा ॥ अरु बहुड कहिने लागी ॥ जो बडा आश्चर्य है ॥ जो मैं
तो सतपद को प्राप्त भई थी ॥ तो भी मेरा मन चलायमान
भया है ॥ तब इतर जीवों की क्या कहिणी है ॥ तब उहां ते
चली ॥ आगे कमल फल देष्या ॥ अरु देष कर कहणे ला
गी ॥ जो मेरे ताई उह स्त्री कब मिलेगी ॥ जिस कर भर्था को पा
ईता है ॥ मैं काम आरत भई हों ॥ बहुड मन को कहणे ला
गी ॥ हे दुष्ट मन तूं तो सतपद को प्राप्त भया था ॥ तेरा भर
था आत्मा है ॥ अब तूं मिथ्या पदार्थों की अभिलाषा का
हे को करता है ॥ बहुड कहिणे लागी ॥ जब तक देह है ॥ त
ब तक देह का स्वभाव भी साथ रहता है ॥ जो मेरे ताई इ
ह अवस्था प्राप्त भई है ॥ तो इतर मूर्षों की बात क्या कहि
णी है ॥ तब राणी मेघ के स्थान को लंघी ॥ बडे पर्वत अरु न
दीयां को लंघी ॥ समुद्र अरु बेले बडे नयानक स्थानों को
लंघी ॥ अरु मंदराचल पर्वत पास जो बन है ॥ तिस विषे आ
इ स्थित भई ॥ अरु कहणे लागी जो मेरा भर्था कहां है ॥ स
माध विषे स्थित होकर देष्या ॥ जो अमुके स्थान मों बैठा
है ॥ तप करके अंग महा दुर्बल हो गये हैं ॥ अरु ऐसे स्था
न विषे प्राप्त भया है ॥ जहां अवर जीवों की गम्य न हो ॥ अ
रु महा बेताल की न्याई चल्या आया है राव को ॥ तो तै अ
पके प्रमाद करके जड है ॥ अब ऐसे होवे जो किसी प्रका
र अपणे स्वरूप को प्राप्त होवे ॥ परंतु मेरे इस शरीर क
र तो न इस को नेत्र पजेगा ॥ काहे ते जो राजा को प्रथम इ
ह अभिमान होवेगा ॥ जो मेरी स्त्री है ॥ अरु बहुड कहेगा
जो मैं इन ही के निमित राज छोडा है ॥ बहुड मेरे ताई
उपदेश को आई है ॥ ताते मैं अवर शरीर बनाय सिंचा राका

अरु महा विषु जी केजल चमकार है
तिनको भी जो कै लंघ्या ।७

धारें॥ जैसें विचारक कें ज्ञाी ग्रहें ब्रह्मचारी का स
रीर धारत भई॥ जैसें जल का तरंग एक स्वरूप
कौं छोडता है॥ अर अवर हो जाता है॥ तैसें महा सुं
दर सरीर कौं धार कर राणी दुरणे लागी॥ जो ए
क गिष्ट पृथवी तें ऊपर चलणे लागी॥ अर हाथ
विषे रुद्राक्ष की माला॥ अर कमंडल कौं धारे॥ अ
र मृगछाला कौं धारे॥ अर मस्तक पर भभूत लगा
या॥ जैसें सदाशिव के मस्तक पर चंद्रमा विराजे है॥
तैसें ही सुंदर भभूत कों लगाया॥ अर स्वेत ही यज्ञो
पवीत कों पाया॥ ऐसें चिन्हों कौं धार कर चली॥ तब
राजा देष कर आगे तें उठ खडा हूया॥ अर नमस्का
र कीया॥ अर जल फल चरनों पर चढाये॥ अर आप
ने स्थान पर बैठाया॥ अर कहिणे लागा॥ हे देवपुत्र
आज मेरे बडे भाग हैं॥ जो तुमारा दर्शन पाया है॥ हे
देवपुत्र तुमारा आवना कैसें हूया है॥ तब देवपुत्र
कहा॥ हे राजपुत्र हम बडे बडे पर्वत देषते आये हैं
अर तीर्थ करते आये हैं॥ पर जैसी भावनां तेरे विषे
देषी है॥ तैसी किसी विषे नहीं देषी॥ हे राजन तैं नें ब
डा तप कीया है॥ अर इंद्री जित दृष्ट आवता है॥ अर
मैं जानता हों॥ जो तेरा तप षंडे की धारा वृतती होणा है
तां तैं तूं धंन्य है॥ अर तेरे तांई नमस्कार है॥ पर हे राज
न कछु आतम योग के निमित नीं तप कीया है॥ अग्य
वा नहीं कीया॥ सो कहु॥ तब राजे बडूड जो फलों की
माला देवपूजन के निमित राषी थी॥ सो देवपुत्र के ग
ले मों पाई॥ अर पूजा करी॥ अर राजे कहा॥ हे देवपु
त्र तुम सारिषों के दर्शन दुर्लभ हैं॥ अर अतिथ का पू
जन तो देवता तें भी अधिक है॥ हे देवपुत्र तेरे अंग बडु
त सुंदर दृष्ट आवते हैं॥ ऐसें ही मेरी स्त्री के अंग थे॥
नष सिष पर्यंत तेरे तुं ही अंग दृष्ट आवते हैं॥ पर तूं तो
तपस्वी हैं॥ तेरी मूर्त शांति कों लीयें हूये है॥ मैं कैसें कहों
जो तुं ही है॥ तां ते हे देवपुत्र कहु जो पुत्र किसका है॥ अ

रईहैंकिसनमित्तआयाहैं॥अरुआगेंकहांजावैंगा
इहसेंश्रायमेरानिवर्तकरो॥तबदेवपुत्रकहा॥हे
राजपुत्रएकसमेंनारिदमुनसुमेरपर्वतकीकंदरा
विषेआयाथा॥जोमहांसुंदरकंदराहे॥जहांआश्च
र्यकेवृक्षअरमंजरीअरफूलफलोंसाथसंपूर
नहैं॥तिसस्थानकोंदेषकरनारिदमुनब्रह्मवृत्ति
तहांप्राप्तहूया॥आलयोंकीकुटीतहांबणीहूईहे॥
अरगंगाजीकाप्रवाहचलताहे॥तहांनारिदजीसमा
धलगायबैठे॥जहांसिधोंकीगम्यहे॥अवरजीवोंकी
गम्यनहीं॥तबकेताइककालसमाधविषेस्थितिर
हे॥जबसमाधतेंउतरे॥तबनेत्रनौंकोइछाहूया॥
तबनारिदकेमनविषेमहांआश्चर्यभया॥तबउठक
रदेषणेलागा॥जोगंगाजीकाप्रवाहचल्याआवता
हे॥तहांउर्वसीतेंआदिलेकरजोअपसराहैं॥सोस्ना
नकरतीहैं॥वस्त्रोंकोउतारेहूयेमहांसुंदरहैं॥जब
उनकोदेष्या॥तबनारिदजीकोविवेकआवर्तनभया
अरवीर्यचलगया॥तिसकेपाससुंदरवलीथी॥तिस
केपत्रपरजाइस्थितिभया॥चंद्रमाकीन्याईउज्वल
अैसेश्रवणकरश्रीरघुबरजप्रश्नकीया॥राजोवाच॥
हेदेवपुत्रअैसाब्रह्मवित्तनारिदसर्वज्ञ॥अरबडा
मुनीश्वरमननशीलतिसकावीर्यकिसनमित्तच
ल्या॥तबदेवपुत्रकहा॥हेराजनजबलगसरीर
हे॥तबलगज्ञानीकाभीशरीरस्वभावनिवर्तनहीं
होता॥अरुअज्ञानीकाभी॥परंतुएकभेदहे॥जबज्ञा
नवानकोंदुषआनप्राप्तहोताहे॥तबदुषनहींमान
ता॥अरजोसुषआनप्राप्तहोवै॥तबसुषनहींमानता
अरहर्षवाननहींहोता॥अरजबअज्ञानीकोंदुःष
आइप्राप्तहोताहे॥तबशोकवानहोताहे॥अरजबसु
षआइप्राप्तहोताहे॥तबसुषमानताहे॥अरहर्षवान
होताहे॥जैसेश्वेतवस्त्रकोंकेसरकारंगशीघ्रहीचड
जाताहे॥तैसेहीअज्ञानीकोंसुषदुःषकारंगशीघ्रही

चढ जाता है ॥ अरु जैसे मोम जामा वस्त्र होता है ॥ तिस
को रंग किसी का नहीं चढता ॥ तैसे ही जो कोई ज्ञानरूपी
मोम चढा है ॥ तिस ज्ञानवान को सुख दुःख का रंग न
हीं चढता ॥ अरु जिसको ज्ञानरूपी मोम नहीं चढी ॥ ति
स अंतहकर्न रूप वस्त्र को सुख दुःख का रंग शीघ्र
ही चढ जाता है ॥ ज्ञानवान मए वर्तता है ॥ उसके अंतर
सुष दुष नहीं होता ॥ अरु अज्ञानी को होता है ॥ जो दुःख
की नाडी भिन्न है ॥ अरु सुष की नाडी भिन्न है ॥ जब सु
ष की नाडी विषे इस्थित होता है ॥ तब दुष को उह नहीं
देषता ॥ जब दुःख की नाडी विषे स्थित होता है ॥ तब सु
ष नहीं देषता ॥ अज्ञानी को कोउ सुख का स्थान है ॥ को
उ दुःख का स्थान है ॥ अरु ज्ञानी को एक आत्मा सम
त्र दिखाई देता है ॥ अरु बंधायमान नहीं होता ॥ जब
लग इसको अज्ञान सा थसंबंध है ॥ तब लग दुःष का
अभाव नहीं होता ॥ तब राजे कहा ॥ वीर्य जो गिरता
है ॥ नला वीर्य किंउ कर निवर्त होता है ॥ तब देवपुत्र
कहा ॥ हे राजन जब लग इसका चित्त वासना कर के
क्षोभवान होता है ॥ तब नाडी भी क्षोभन करती है ॥ अरु अ
पने स्थान को त्यागने लागती है ॥ तब वीर्य वाली ना
डी जो है ॥ तिसते सुभाविक ही वीर्य नीचे को चल्या जा
ता है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र स्वभाव कया कहीये ॥ त
ब देवपुत्र कहा ॥ हे राजन पुत्र आदि पर्मात्मा शुध चै
तन्य विषे जो फुर्ना फुर्या है ॥ फुर्ना कहीये उत्थान ॥ ति
स क्षण मात्र चित्त शक्ति ते उत्थान कर आगे प्रपंच बण
गया है ॥ तिस विषे जो आदि नेत फुरी है ॥ जो इह घट
है एह पट है ॥ एह अग्नि है इस विषे उष्णता ही है ॥ अ
रु इह जल है इस विषे सीतलता ही है ॥ तैसे ही नेत है
जो वीर्य ऊपर ते नीचे को आइ प्राप्त होता है ॥ जैसे पर्व
त ते जो पथर गिरता है ॥ सो नीचे ही को चल्या आवता
है ॥ तैसे वीर्य भी नीचे को चल्या आवता है ॥ तब अैसे श्र
वण करके राजे बहुत प्रश्न कीया ॥ राजोवाच ॥ हे दे

वपुत्र इसको दुषकैंसे होता है॥ अरु सुष किंउ कर हो
ता है॥ अरु सुष दुष का अभाव किंउ कर होता है॥ त
बदेवपुत्र कहा॥ हे राजन जब इह जीव कै मलनी शा
क्ति विषे स्थित होता है॥ अरु हृस्य जो है अंतहकर्न चतु
ष्टय अरु इंद्रीयां अरु देह॥ तिन विषे अभिमान करके सु
षी दुषी होता है॥ इन के दुषसाथ दुषी होता है॥ अरु इन
के सुषसाथ सुषी होता है॥ जैसा जैसा आगे प्रतिबिंब
होता है॥ तैसा तैसा दुष सुष भासता है॥ जैसे उद्यल म
णि जो है स्फुटिक॥ तिस विषे प्रतिबिंब पडता है॥ अरु जब
ज्ञानरूप आवर्णक कें आगे प्रगट होता है॥ तब प्रतिबिं
ब नहीं पडता॥ ज्ञान कहीये जो देहादिक अभिमान तें
रहित होवणा॥ जो न देहादिक हैं॥ अरु न मैं इन कर क
छु कर्ता हों॥ जब ऐसे निश्चै होवै॥ तब दुष सुष का ज्ञान
न होवै॥ काहे तें जो संसार का सुष दुष इस की भावना ही
विषे है॥ जब वासना तें रहित होवेगा॥ तब दुष सुष नी
सन नष्ट होजावेंगे॥ जैसे वृक्ष ही जल जाता है॥ तब पत्र
फल फल सन दग्ध होजाते हैं॥ तैसे ज्ञानरूप वास
ना के दग्ध हूये तें दुष सन निवर्त होजावेंगे॥ ऐसे श्रव
ण करके॥ राजे कहा॥ हे भगवन तुमारे वचन श्रवण
करनें कूंयें मेरे ताई त्रिप्त नही होती॥ जैसे मेघ का शब्द सु
णतें मोर को त्रिप्त नही होती॥ तातें कहो जो तुमारी उत्प
त्ति कैसे भई है॥ तब देवपुत्र कहा॥ हे राजन जो कोउ आ
श्रम करता है॥ तब वडे जो हैं तिस का अनादर नहीं करतें
तातें जो तें पूछता हैं सो कहता हों॥ हे राजरिष उह जो वी
र्य था॥ सो नारिद मुन के पास एक मट की पडी थी॥ तिस
मट की विषे पाया॥ अरु कैसी मट की थी जो स्वर्न वत ति
स का उज्जल चमत्कार॥ तिस विषे वीर्य को पाया॥ अरु उ
पर उसके दूध पाया॥ दूध साथ मट की कों पूर्न कीया॥
अरु वीर्य कों एक कोण और कीया॥ अरु मंत्रों कों उचार
कीया॥ अरु अकृत कीये॥ नली प्रकार पूजन कीया॥ जब
एक मास मतीत भया॥ तब तिस मट की तें बालिक प्रगटा

ट भया ॥ सो कैसा बालिक है ॥ जैसे चंद्रमा छीरसमुद्रतें
निकस्या है ॥ तिस बालिक कौं लेकर नारिद आकाश
कौं उडत भया ॥ तब नारिद का पिता जो है ब्रह्माजी ॥ तिस
के पास ले गया ॥ अर जाइकर नमस्कार कीया ॥ तब बा
लिक कौं पितामह जी गोद विषे बैठाया ॥ अर आशीर्वा
द कीया ॥ जो तूं सर्वज्ञ होवैंगा ॥ अर ब्रह्मा अपणे स्वरू
प कौं प्राप्त होवैगा ॥ अर कुंभ ते उपजा जो बालिक है ॥ सो
बालिक का नाम भी कुंभ राख्या ॥ सो कुंभ सर्वज्ञ मैं हों ॥ नारि
द का पुत्र हों ॥ अर ब्रह्माजी का पोत्रा हों ॥ सरस्वती मेरी माता
है ॥ अर गायत्री मेरी मासी है ॥ मेरे ताईं सर्व ज्ञान है ॥ तब
राजे कहा ॥ हे देवपुत्र तुम सर्वज्ञानी हो दृष्ट आवते हो ॥ तु
मारे वचनों कर मैं जानता हों ॥ तब देवपुत्र कहा ॥ हे रा
जन जैसे तुम पूछ्या सो मैं कहा ॥ अब कहु जो तूं कवन हैं
अर इहां कर्म क्या करता है ॥ तब राजे कहा ॥ हे देवपुत्र
आज मेरे बडे भाग उदे हूये हैं ॥ जो तुमारा दर्शन भया है
तुमारा दर्शन बडे भाग सों प्राप्त होता है ॥ यज्ञो अर तपो
ते तुमारा दर्शन न भी दृष्ट है ॥ तब देवपुत्र कहा ॥ हे राज
न अपना नांव तां तक हो ॥ जो तूं कवन हैं ॥ तब राजे कहा
हे देवपुत्र मैं राजा हों ॥ शिखरध्वज मेरा नाम है ॥ अर राज
का मैंने त्याग कीया है ॥ जो संसार मेरे ताईं दुखदाइक दृष्ट
आया ॥ तिसके भय कर मैं राज का त्याग कीया है ॥ अर बा
रंबार जन्म अर मृत्यु संसार विषे दृष्ट आवता है ॥ तां ते रा
ज का त्याग कर ई हां तप करणे लागा हों ॥ तुम त्रिकाल
ज्ञान राषते हो ॥ अर जानते हो ॥ तथापि तुमारे पूछने कर
कछुक कह्या चाहीये ॥ त्रिकाल संध्या करता हों मैं ॥ अर जप
जाप करता हों मैं ॥ तो भी मेरे ताईं शांत नहीं प्राप्त भई ॥ तांते
जिस कर दुख मेरे निवर्त होवें सोई उपाव कहो ॥ हे देवपु
त्र मैं तीर्थ बहुत फिरता हों देस बहुत ॥ अवर स्थान फि
र इस बन विषे आइ बैठा हों ॥ तो भी मेरे ताईं शांत न प्रा
प्त भई ॥ तांते जिस कर दुख मेरे निवर्त होइ ॥ अर शांत की
प्राप्त होइ सो कहो ॥ तब देवपुत्र कहा ॥ हे राजरिषि तैंने
राज का त्याग कीया ॥ अर बहुत पदार्थ पटोरा विषे आइप

डाहैं ॥ इहक्या कीया है ॥ जैसे पृथवीका द्रुम बडूड पृथ
वीविषे रहिता है ॥ तैसे ही तूं एक दोये को त्यागकर बडू
ड दोये विषे पडा है ॥ अर जिस नृमितराज का त्याग की
या ॥ तिसकों नजानत भया ॥ अर ईहां आइकर एक लावी
अर मृगछाला राषी ॥ अर फलराषे ॥ इनकर तो शांत न
हीं प्राप्त होती ॥ तातें आपणे स्वरूप विषे जाग ॥ जब स्वरू
प विषे जागेंगा ॥ तब दुष सर्व निवर्त होवेंगे ॥ अर इस पर ए
क समें ब्रह्माजी तें मैंने प्रश्न कीया था ॥ जो हे पितामहजी
कर्म श्रेष्ट हैं ॥ अथवा ज्ञान श्रेष्ट है ॥ दोनों विषे क्या श्रेष्ट
है ॥ जो मुजको कर्तव्य है ॥ तब पितामहजी कहा ॥ ज्ञा
न के पाये तें दुष कोऊ नहीं रहता ॥ अर सर्व आनंदों का आ
नंद ज्ञान है ॥ जिसतें आगें आनंद कोऊ नहीं ॥ अर अज्ञा
नी कों कर्म श्रेष्ट हैं ॥ काहेतें जो पाप कर्म करेगा ॥ तब नर्क
कों प्राप्त होवेगा ॥ तातें तप करने तें अर दान करने तें स्वरूप
की प्राप्त नहीं होती ॥ तातें अज्ञानी कों श्रेष्ट है ॥ जो नर्क
भोगणे तें स्वर्ग भोगणा श्रेष्ट है ॥ जैसे पट का वस्त्र श्रेष्ट
है ॥ परंतु पट का वस्त्र न पाईए ॥ तब कंबल भी भला है ॥ तै
से ज्ञान पट के वस्त्र की न्याई है ॥ अर तप कर्म कंबल की
न्याई है ॥ कर्म कर शांत नहीं प्राप्त होती ॥ तातें हे राजा तूं का
हे कों इस दोये विषे पडा है ॥ आगें राजवासी था अब बनवा
सी भया ॥ तातें इह क्या कीया ॥ जो अज्ञान ही विषे गडा रह
हैं ॥ तातें मूर्षता के वस पडा है ॥ जब लग तेरे ताईं इछ्या भी
न होती है ॥ जो मैं इह करों ॥ तब लग प्रमाद है ॥ इस कर दुषों
की निवर्त न होवेगी ॥ तातें निर्वासी होकर आपणे स्वरूप वि
षे जाग ॥ निर्वासी होवणा मुक्त है ॥ अर वासनां सहित बंधन है
पुरुष प्रयत्न एही है ॥ जो निर्वासी होवणा ॥ जब लग वासनां
सहित है ॥ तब लग अज्ञानी है ॥ जब चित्त निर्वासी होवे ॥ तब ज्ञे
य है ॥ निर्वासना कहीये सदा ज्ञेय की भावना करणी ॥ अर
ज्ञेय कहीये आत्म स्वरूप ॥ तिसको जाण कर बडूड इछ्या
पद कोऊ न रहे ॥ केवल चिन्मात्र विषे स्थिति होवणी ॥ इसी का ना
म ज्ञेय है ॥ जो जानणे जोग था सो जान्या ॥ तब अवर वासनां
नहीं रहती ॥ केवल स्वछ ही होता है ॥ हे राजन तौ नें आपने

आप

स्वरूप कौं जानणा था ॥ तं अवरजं जाजो बिबेकि सति
मित पड़ा है ॥ आत्म ज्ञान बिनां अवर अनेक यत्न करे
तौ भी शांत न प्राप्त होवेगी ॥ जैसे पवन तें रहित वृक्ष शां
तिरूप होता है ॥ जब पवन होता है ॥ तब छोभनकौं प्रा
प्त होता है ॥ तैसे जब वासना निवृत होवेगी ॥ तब शां
तिपदकौं प्राप्त होवेगा ॥ अर छोभनकौं न रहेगा ॥ ज
ब अैसे देवपुत्र कहा ॥ तब रिषिबरदज बोल्या ॥ हे
भगवन तुम मेरे पिता हो ॥ अर तुम ही गुरु हो ॥ अर तुम
ही कृतार्थ करणेवाले हो ॥ अब मैं वासना करकें ब
हुत दुःख पाया है ॥ जैसे कोऊ वृक्ष होहै ॥ अर तिसके पत्र
फूल फल अर डास सब सूक जावें ॥ अर एकला ठूं
ठ रहि जाता है ॥ तैसे ज्ञान बिनां मैं भी ठूंठसा हो रहा हौं
ताते कृपा करकें मेरे ताईं शांत कौं प्राप्त करौ ॥ तब दे
वपुत्र कहा ॥ हे राजन तैंनें त्याग करकें संतों के पास रह
ह प्रश्न करणीया संग करकें ॥ कि हे भगवन बंध क्या है ॥
अर मुक्ति क्या है ॥ अर मैं क्या हौं ॥ अर इह संसार क्या है ॥
अर संसार की उत्पति किस कर होती है ॥ अर संसार
लीन कैसे होता है ॥ तैंनें इह क्या कीया है ॥ जो संतों बिनां
लुटे बनका आश्रय कर सेवन कीया है ॥ अब तूं संत ज
नौं कौं प्राप्त होइ कर निर्वासी होइ ॥ अैसे ब्रह्मादिकौं भी
कहा है ॥ जो जब निर्वासी होता है ॥ तब सुखी होता है ॥ त
बराजे कहा ॥ हे भगवन तुम ही संत हो ॥ जिस प्रकार
मेरे ताईं शांति प्राप्त होइ ॥ सो कहो ॥ तब कुंभ बोल्या
॥ हे राजन मैं उपदेश करता हौं ॥ जो तूं हृदय बिषे धार
लेवें ॥ अर जो हृदे बिषे धारें नहीं ॥ तब मेरे कहणे कर
क्या होता है ॥ जैसे टास पर कौया होता है ॥ अर श्रद्ध.
भी फलवण पड़ा कहता है ॥ तौ भी अपने कौं ये सब नाव कौं
नहीं छोड़ता ॥ तैसे ही जो तूं भी कौये की न्याईं होवें ॥ सो मे
रे कहणे का काम प्रयोजन है ॥ अर जो तोता पंछी होता है
तिसकौं जो कहीता है ॥ सो ग्रहण कर लेता है ॥ तौ तैं तोते
आदिक पंछी की न्याईं तूं होइ ॥ तब रिषिबरदज कः

हे भगवन जो तुम आज्ञा करोगे ॥ सो मैं करोंगा ॥ जैसे शा
स्त्र वेद के कहे कर्म कर्ता हो ॥ तैसे ही तुमारा कहणा क
रोंगा ॥ इह मेरा नेम है ॥ जो तुम आज्ञा करोगे ॥ सो मैं करों
गा ॥ तब देवपुत्र कहा ॥ हे राजन प्रथम ते तांई ऐसा नि
श्चा कर ॥ जो मेरा कल्याण इन वचनों कर होवेगा ॥ अर
ऐसे जाण जो जैसे पुत्र को पिता कहता है ॥ सो शुभ ही क
हता है ॥ तैसे मैं जो तेरे तांई कहोंगा ॥ सो शुभ ही कहोंगा ॥
अर तेरा कल्याण होवेगा ॥ तां ते निश्चै जाण ॥ जो इन वच
नों कर मेरा कल्याण होवेगा ॥ तां ते एक उपाख्यान जो आ
गें व्यतीत भया है ॥ सो श्रवण कर ॥ अथ कथा पंडित
की ॥ एक पंडित था ॥ जो धन अर गुणों कर संपन्न था ॥ अ
रु सर्वदा चिंतामणि पावणे की इच्छा करे ॥ जैसे शास्त्रों क
र उपाय कहे हैं ॥ तैसे ही उपाय करता था ॥ जब केता का
ल व्यतीत भया ॥ तब जैसे चंद्रमा का प्रकाश है ॥ तैसे प्रका
शवान चिंतामणि आइ प्राप्त भई निकट ॥ जो हाथ कर
उठाय लीजे ॥ जैसे उदयाचल पर्वत के निकट चंद्रमा
उदे होता है ॥ तैसे ही चिंतामणि निकट आइ प्राप्त भई ॥
तब पंडित के मन विषे विचार हूया ॥ जो इह चिंतामणि
है ॥ अथवा कछु अवर है ॥ जो चिंतामणि होवे तो मैं उठा
य लेवऊं ॥ जो चिंतामणि न होवे ॥ तो किस निमित पकरों
बऊड़ि कहे पकिर लेता हो मणि ही होवेगी ॥ अर जो मणि
नानी होवे ॥ तो काप करों इह मणि नहीं ॥ मेरे तांई सुखेन
होवणी प्राप्त कों आ हो ॥ इस ते जाणीता है जो इह मणि नहीं ॥ जो
सुखेन प्राप्त होती होवे ॥ तो सभ ही लोक धनी हो जावे ॥ पर सु
खेन नहीं पाईती ॥ इसी ते जाणीता है ॥ जो इह चिंतामणि नहीं
जब ऐसे संकल्प विकल्प विचार पंडित करणे लागा ॥
अर इसी कर चित तिसका आवर्ण भया ॥ तब मणि छिपन
होगई ॥ काहे ते जो सिद्धां हैं ॥ अर तिन का मान आदर न क
रीये ॥ तो उलट आपदे ती हैं ॥ जिस वस्तु का अबाहन करी
ता है ॥ अर उसका पूजन न करीये ॥ तब त्याग जाती है ॥ अर
आपदे ती है ॥ जब उह चिंतामणि अंतर्ध्यान होगई ॥ तब पं
डित जो मूर्ख था ॥ सो बड़े दुख कों प्राप्त भया ॥ जो चिंतामणि मेरे

पासतें निकस होगई ॥ अर बहुत यत्न करणे लागा ॥ जब बहु
त उपाय कीया ॥ तब कचकी मणि किसी हासी करके इसके गो
गें डार दई ॥ सो इसके पास आइ पडी ॥ तिस कों इह देषतने
या ॥ उसको देषकर इह कहणे लागा ॥ जो एही चिंतामणि
है ॥ तब उसको उठाय लीया ॥ लेकर अपणे घर आया ॥ अबो
धके वसतें उसकों चिंतामणि जानत भया ॥ जैसे मोह कर अज्ञको
सर्वज्ञ जाणता है ॥ कुंज को सर्प जानता है ॥ दो चंद्रमा ॥ मित्र शत्रु
विषे अंमृत रूप ॥ तैसे इह कच कों चिंतामणि जानत भया ॥ अ
र जेता कछु अपणा धन था सो लुटाय दीया ॥ अर कछुक काल त्या
ग कीया ॥ अर कहिणे लागा ॥ जो मेरे तांई चिंतामणि प्राप्त भई है
अब कछु वसाथ का प्रयोजन न है ॥ अर घर तें निकस कर बन
कौं गमन करत भया ॥ अर बन विषे कचकी मणि साथ वन में दुष
कों प्राप्त भया ॥ जो कचकी मणि साथ प्रयोजन सिध कछु न भ
या ॥ तैसे ही हे राजन जो विद्यमान वस्तु होइ ॥ तिस को मूर्ष त्या
गते हैं ॥ अर तिस का महातम नहीं जानते ॥ अर नहीं पावते
॥ इति श्री निरबाण प्रकरणे चिंतामणि व्रतांत नाम सर्गः
॥ ९८ ॥ ॥ देवपुत्रोवाच ॥ इस पर एक अवर आख्यान कह
ता हों ॥ सो श्रवण कर ॥ ॥ अथ कथा हस्ती की लिख्यते ॥
मंद्राचल बन विषे एक हस्ती रहता था ॥ सो सर्व हस्ती
यों का राजा था ॥ अर कैसा था ॥ मानो मंद्राचल पर्वत है ॥ जि
सको अगस्त मुनि रोक्या था ॥ ऐसा जो मंद्राचल पर्वत है ॥
तिस विषे रहिता था ॥ अर बडे हैं दंत जिसके ॥ इंद्र के वज्र
की न्यांई तीक्ष्ण दंत थे ॥ बडा बलवान ॥ अर प्रकाशवान
जैसे प्रलै की वाडवाग्नि होती है ॥ अर बलवान ऐसा
जो सुमेर पर्वत कों दंतो साथ उखाडे ॥ ऐसा जाणीये ॥ तिस
हस्ती कों ॥ तिस हस्ती कों महावत बल छल कर के बांध्या ॥
जैसे बलराजा कों विष्णु भगवान बांध्या ॥ तैसे लोहे के संग
ल हस्ती कों पाये ॥ अर महावत आप जो निकट वृछ था ॥
तिस पर चढ बैठा ॥ किस निमित बैठा ॥ जो कदाकर हस्ती के
ऊपर चढ बैठें ॥ अर हस्ती संगलों कर महा कष्ट कों प्राप्त भ
या ॥ कैसे दुष कों प्राप्त भया ॥ जो बाणी कर कह्या नहीं जाता
जब ऐसा दुष पाया ॥ तब हस्ती के मन विषे विचार उपजत भ
या ॥ जो अब मैं बल साथ संगलों को तोरोंगा नहीं ॥ तब कब

छूटेगा॥ तिनसंगलों कों बलकर तोरदीया॥ अरमहावतजो
वृक्षपर बैठा था सो गिड़ा॥ तबहस्ती के चरणों पर आइ गिडा॥
अरनयकों प्राप्त भया॥ जैसे फल गिड पडता है॥ तैसे नयपवन
रूपकर महावत गिड पडा॥ जब इस प्रकार महावत गिरा॥ तब
हस्ती विचार कीया॥ जो इह मृतक समान है॥ तो तिस मृये का क्या मार
णा है॥ जदिप मेरा शत्रु है॥ तो भी मैं नहीं मारता॥ इस के मारने कर
मेरा क्या पुरुषार्थ सिध होता है॥ तो ते मैं नहीं मारता॥ हे राजन
पमु जब ऐसे दया करके हस्ती महावत कों न मारता॥ जो पशु जो
न विषे भी दया है॥ तब महावत को हस्ती छोडके बन विषे गे
या॥ जैसे बैंनकों पाणी तोडता है॥ अरु शीघ्र ही वेग कर चल
ता है॥ तैसे संगलों कों तोडकर बन कों चल्या॥ जैसे स्वर्ग कि धा
र तोडकर दैत्य जाय प्रवेश करते हैं॥ तैसे संगलों को तोड
कर हस्ती बन विषे जा प्रवेश कीया॥ अरु हस्ती के गयादे
ष के महावत जो पडा था सो उठ बैठा॥ अरु आपणे स्थान
विषे स्थित भया॥ बहुड़ हस्ती के पाछैं चल्या॥ अरु हस्ती कों
षोज लीया॥ जैसे बदल्यों के विषे चंद्रमा को राह षोज लेता
है॥ तैसे बन विषे हस्ती कों षोज लीया॥ देष्या जो वृक्ष के त
ले सोया पड़ा है॥ जो संगलों को तोडकर आय सोया है॥ जैसे
सरमां संग्राम कों जीतकर निश्चिंत होता है॥ तैसे हस्ती कों निश्चिं
त सोया पडा देष्या॥ तब महावत विचार कीया॥ जो इस
कों वस करीये अरु एही उपाव करणे लागा॥ बेलने के
चौफेर षाही करीये॥ जैसे ब्रह्मा जी विश्व कों उत्पत्ति क
र के पृथवी के चौफेर समुद्रचक्र कीया है॥ तैसे ही बेलने के
चौफेर षाई करके चक्र कर लीया॥ अरु षाई के ऊपर
कछुक तृण घास पाया॥ जैसे सर्त काल का आकाश हो
ता है॥ तिस विषे बदल देषणे मात्र होते हैं॥ तैसे तृण घा
स षाई पर देषणे मात्र दृष्ट आवें॥ अरु बीच षाही करी
तब एक समे हस्ती उठकर जावणे लागा॥ अरु षाही के बी
च गिड पडा॥ जब गिड पडा तब महावत हस्ती के निक
ट आया॥ अर संगलों साथ बांध्या॥ जैसे दैत्य छल कर के
देवतों कों वस करते हैं॥ जैसे अगस्त मुनि छल कर के मं
द्राचल कों रोक छोडा था॥ तैसे ही हस्ती को महावत व
स कीया॥ अर हस्ती गिड पडा॥ जैसे सके समुद्र विषे प

र्वत गिर पडता है ॥ तैसे षाई विषे हस्ती गिर पडा ॥ अर
वह दुष को प्राप्त हूया ॥ सो अब तक दुष पडा पावता है ॥
बन विषे ॥ का हेते दुष पावता है ॥ जो भविष्यत का विचार
न कीया ॥ अज्ञानी को भविष्यत का विचार नहीं ॥ इसी ते
दुष पावता है ॥ वर्तमान काल विषे विचार नहीं करता ॥ जो
आगें क्या होएगा है ॥ इसी तें अज्ञानी हस्ती दुष कों प्राप्त भ
या ॥ हे राजन इह जो उपाख्यान तेरे ताई श्रवण कराया
है ॥ एक मणि का ॥ अर एक हस्ती का ॥ तिस को तूं जब समझे
गा ॥ तब आगें मैं उपदेश करोंगा ॥ इति श्री निरवाण
प्रकर्णे हस्ती उपाख्यानं नाम सर्गः ॥ ६८ ॥ जब देव
पुत्र ऐसे कहा ॥ तब राजे कहा ॥ हे देवपुत्र इह जो दोउ
पाख्यान मणि अर हस्ती के तुम ने कहे हैं ॥ सो तुम जानते हो
मैं तो कछु नहीं समझा ॥ ताते षोल कर तुम ही कहो ॥ त
ब देवपुत्र कहा ॥ हे राजन तूं शास्त्र के अर्थ विषे बहुत
चतुर हैं ॥ सब अर्थ का तूं ज्ञाता हैं ॥ जैसे सूर्य सुमेर के स्था
नों कों जानता है ॥ पर स्वरूप विषे तेरे ताई स्थित नहीं ॥ जै
से आकाश विषे पर्वत नहीं ठहिरता ॥ ताते मैं जो वचन क
हता हों ॥ सो बुधि कर ग्रहण कर ॥ जो हस्ती क्या है ॥ अर चिं
तामणि क्या है ॥ प्रथम सर्व त्याग जो तुम कीया था ॥ तिस के
निकट तूं प्राप्त भया था ॥ अर सुषी भया था ॥ जब तिस कों तूं
अपूर्णे पास राषता ॥ तब दुष सर्व निवर्त हो जाते सो मणि
कों तैं अनादर कीया ॥ जो तिस कों त्यागा ॥ अर कचकी म
णि तप क्रिया कों प्रापत भया ॥ अर दरिद्री ही रहा ॥ हे राज
न सर्व त्याग रूप चिंतामणि थी ॥ अर इह क्रिया का आरंभ
कचकी मणि है ॥ सो तैं ने ग्रहण करी है ॥ तिस तें दारिद्र की
निवर्त नहीं होती ॥ ताते तूं दुषी रहा ॥ त्याग रूप चिंतामणि का
आवाहन था ॥ अर क्रिया आरंभ तिस का अनादर है ॥ हे रा
जन सर्व त्याग तैं ने नहीं कीया ॥ कीया भी था परंतु कछु इक
रहा था ॥ तिस के रहणे तें बडे विस्तार को प्राप्त भया ॥ जैं
से बडा बद्दल वायु कर क्षीण होता है ॥ अर सूक्षम सार हता
है ॥ अर पवन के रहे तें बडे विस्तार कों पावता है ॥ अर सू
र्य कों छपाय लेता है ॥ सो बदल क्या है ॥ अर सूर्य क्या है ॥ अर

सोचिंतामणि था

था राजा रहिणा क्या है ॥ सो श्रवण कर ॥ जे ताहीं ऐश्वर्य का त्या
ग करणा था ॥ जो इस्त्रीयां अरु कुटुंब तें आदि का त्याग की
या ॥ अर अहंकार इन विषे कर्णा सो वदा बदला है ॥ अर
वैराग्य रूपी पवन के बदले रूप राज अरु कुटुंब का
त्याग कीया ॥ अर देहादिक विषे अहंकार रहा ॥ सो सूक्ष्म
बदल रहा ॥ सो बहुड़ वधा गया ॥ अनात्मा विषे अभिमा
आतमाजो
न के क्रिया का आरंभ कीया ॥ इसी कर्के [illegible] सूर्य रूप अग्न
पणा आप है ॥ सो अहंकार रूप बदल कर छाया गया है ॥
ज्ञान रूप चिंतामणि अज्ञान रूप कच की मणि कर जैसे
छपन नेई ॥ जब ज्ञान कर के आत्मा को जाणेगा ॥ तब आ
त्मा प्रकासेगा ॥ अन्यथा न भासेगा ॥ जैसे कोऊ पुरुष घोड़े प
र चढ के दउड़ावता है ॥ तिस की वृत घोड़े मय हो जाती है
तैसे जिस पुरुष कों आत्मा विषे तिष्ठा होता है ॥ तिस कों आ
त्मा तें भिन्न कछु नहीं भासता ॥ हे राजन आत्मा का पावणा
सुगम है ॥ सो सुखे नहीं पाईता है ॥ अर वहि आनंद की प्राप्त
होती है ॥ अर तप आदिक जो क्रिया है ॥ तिस को कष्ट कर सि
ध करीता है ॥ पर सरूप सुख की प्राप्त नहीं होती ॥ हे राजन मैं
जानता हों ॥ तूं मूरिष नहीं शास्त्रों का ज्ञाता हैं ॥ बहुत चतुर है
तथापि तेरे ताईं स्वरूप विषे स्थित नहीं ॥ जैसे आकाश वि
षेप घर नहीं ठहिरता ॥ तां ते मैं उपदेस करता हों ॥ तिस कों ग्र
हण कर ॥ तेरे दुख निवर्त हो जावेंगे ॥ अर पाछें जो राज कूं त्या
ग आया हैं ॥ जैसे ब्रह्मा की रात्र विषे संसार का अंत होता है
तैसे त्याग पाया ॥ हे राजन इह सर्व तें श्रेष्ट ज्ञान कह्या है ॥ अर
कहिता हों ॥ तैं ने जो तप क्रिया का आरंभ कीया है ॥ तिस तप
का जो फल तैं ने जान्या है ॥ तिस ज्ञान तें श्रेष्ट ज्ञान कहा है ॥
अर कहता हों ॥ जो तेरा भ्रम निवर्त हो जावेगा ॥ हे राजन चिं
तामणि का वृतांत संपूर्ण तेरे ताईं कहा ॥ अब हस्ती का वृ
तांत जो आश्चर्य रूप है ॥ सो श्रवण कर ॥ जिस के समझणे
कर अज्ञान दूर हो जावेगा ॥ मंद्राचल पर्वत का जो हस्ती था
सो तूं है ॥ अर महावत जो था सो तेरे ताईं अज्ञानता है ॥ इस
अज्ञानता तेरे ताईं बांध्या है ॥ अर हस्ती जो संगलों साथ बा
ध्या था ॥ सो आसा रूप संगलों कर तें बांध्या था ॥ अर संगलों

१८

तैंने तूं अपणे कूं बांध्या हैं ॥ जो संगलतौ मसतै नी हैं ॥ अरु आ
सारूप फासी घटता नहीं ॥ दिन दिन बढती जाती है ॥ हे रा
जन आसारूप फासी करतूं महादुखी हैं ॥ अरु हस्तीके दं
त बडे थे ॥ जिसकर संगलों को तोरता था ॥ सो तेरे दंत विवे
क अरु वैराग्य हैं ॥ जो तैंने विचार कीया जो मैं बल करके
छूटौं ॥ अरु राजक दुंने पृथवी को त्याग कर आया ॥ अ
रु फांसको काटा ॥ जब आसारूप रसे को काटे ॥ अरु अज्ञा
नरूप महावत नय को प्राप्त भया ॥ अरु तेरे चनें कि तले
आय पडा ॥ जैसे वृक्ष ऊपर वैताल रहता है ॥ अरु को वृ
वृक्ष कौं छेदन आवता है ॥ तब वैताल नय कूं प्राप्त हो
ता है ॥ तैसे ही तैंने वैराग अरु विवेकरूप दंतो करकें आ
साके फास काटे ॥ तब अज्ञानरूप महावत गिडया
अरु तैंने एक घाउ (फट) तिसकों लगाया ॥ पर मारत न टारता
तब महावत तेरे तैं भाग गया ॥ जैसे वृक्ष पुर वैताल रह
ता है ॥ जब वृक्ष कों कोउ काटणे लागता है ॥ तब वैताल
भाग जाता है ॥ हे राजा तैसे वृक्ष को काटा तैंने वैरागरूप
शस्त्र करकें ॥ तब अज्ञानरूप वैताल भागा ॥ पर मूरखता
करकें महावत कों तैंने न मारता ॥ तिसकूं छाद कर तूं बन
विषे गया ॥ जब तूं बन विषे आया ॥ तब अज्ञानरूप मह
वत तेरे पाछैं चल आया ॥ आय कर तेरे चौफेर षाई
करी ॥ जो तपादिक क्रिया का आरंभ न कीया ॥ सो षाई विषे
तूं गिडपडा ॥ अरु महादुख कों प्राप्त भया ॥ तब तेरे ताई
संगलों साथ बहुड बांध्या ॥ अरु लागा देषणे ॥ जो अबे
तक दुख पावता है ॥ अरु तूं कैंसी षाही विषे गिडया हैं ॥
जो आत्मा विषे अभिमान करकें ॥ ईहां तपादिक क्रिया
का आरंभ न कीया है ॥ जो मैं कहता हों ॥ ऐसी षाही विषे तूं
पडा हैं ॥ हे राजन तूं जानके षाही विषे नहीं पडा ॥ षाही के
ऊपर तृण घास पड्या था ॥ छल करकें तूं गिड पडा ॥ सो छ
ल अरु तृण कवन हैं ॥ तूं श्रवण कर ॥ प्रथम जो अज्ञानरू
प शत्रु को न मारता ॥ अरु संगलों के नयक करकें नागा ॥ जो बे
नमै रो कल्याण करेगा ॥ संतों अरु शास्त्रों के वचनों कों

क्रानज्ञान
ल तप

नजान्या॥ जो तेरे दुषकों निवर्त करेंगे॥ उन ऋ वचनों रूप
बाई ऊपर त्रिणादिक था॥ मूर्खता करके तूं गिडा॥ जैसे ब
ल राजा पताल विषे छल करके बांध्या हूया है॥ तैसे ही तैं
नें न विष्पत का विचार न कीया॥ जो अज्ञान शत्रु रह्या हूया
मेरा नास करेगा॥ तिस विचार बिना तूं बहुत दुषी हूया॥
जो इह विचार न कीया॥ सर्व त्याग तो कीया॥ परंतु ऐसे न
जान्या जो मैं अक्रय हों॥ इह ह्रुया का आरंभ काहे कों क
ती हों॥ इसी तें तूं बहुत फासी साथ बांध्या॥ हे राजन जो पुरु
ष इस फासी तें मुक्ति भया॥ सो मुक्ति है॥ अर जिसका चि
त अनात्म अभिमान कर बांध्या हूया है॥ जो इह मेरे तांई
प्राप्त होवे॥ तिस कर के दुषकों पावता है॥ जिस पुरुष वैरा
ग अर विवेक दंतों कर के आसा रूप जंजीर नहीं काटी
सो कदाचित सुख नहीं पावता॥ विवेक तें वैराग उत्पति
होता है॥ अर वैराग तें विवेक उत्पति होता है॥ विवेक कही
ये सत्त कों सत्त जाणनां॥ अर असत देहादिकों कों अस
त जाणना॥ जब ऐसे जान्या॥ तब असत की ओर भावनां
नहीं जाती॥ सोई वैराग हूया॥ अर वैराग तें विवेक होता है
विवेक तें वैराग उत्पति होता है॥ इस विवेक अर वैराग
रूप दंतों कर आसा रूप संगलों कों तोडना॥ हे राजन इह
हस्ती का वृतांत जो तुझ कों कहा है॥ इसके विचार कीये तें
मोह तेरा निवर्त हो जावेगा॥ हे राजन हस्ती वडा बली था
अर महावत छोटा बली था॥ तिस अज्ञान रूप महावत
कों मूर्खता करके न बांध्या॥ तिस कर के पडा दुष पावता है
तां ते तूं वैराग अर विवेक रूप दंतों कर के॥ आसा रूप फा
स कौं तोडे॥ तो दुष मिट जावेगा॥ इति श्री निर्वाण प्रक
रणे हस्ती वृतांत वर्ननं नाम सर्गः॥ ८०॥ देवपुत्रोवाच॥
हे राजा ऐसी जो तेरी स्त्री चूडाला ब्रह्मवित थी॥ अर स
र्व तान्यों ते श्रेष्ट साक्षात ब्रह्मस्वरूप॥ अर अ सत्यवादी
तिस नें तेरे तांई उपदेश कीया॥ अर तैं ने तिस के वचनों
कों किस निमित निरादर कीया॥ मैं तो सर्व जानता हों॥ जो
त्रिकालज्ञ हों॥ तो भी तूं अपने मुख तें कहु॥ जो तिस का उ

नमारणा

पदेश अंगीकार किउं न कीया ॥ एक तो इह मूर्खता करी
जो उपदेश न अंगीकार कीया ॥ अर दूसरी इह मूर्खता
है ॥ जो सर्वत्याग करके बड़े बन अंगीकार कीया ॥ जो स
र्वत्याग करता ॥ तो सर्व दुःख मिट जाते ॥ जब ऐसे देवपुत्र
कहा ॥ तब बडे राजा बोलत भया ॥ हे देवपुत्र मैं तो
सर्वत्याग कीया है ॥ स्त्रीयां अर पृथिवी मंदर अर हस्ती
इत्यादिक जो ऐश्वर्य है ॥ अर कुटंब है ॥ सो सर्वत्याग की
या है ॥ तूं काहे कों कहता हैं ॥ जो त्याग नहीं कीया ॥ तब चूड
ला जो देवपुत्र है तिस कहा ॥ हे राजन तैं ने क्या त्याग की
या है ॥ राज विषे तेरा क्या था ॥ जैसे ऐश्वर्य आगे था ॥ तैसे अ
ब भी है ॥ अर स्त्रीयां भी जैसे अवर मानुष थे ॥ तैसे स्त्रीयां
थी ॥ तिन विषे तेरा क्या था ॥ जो त्याग कीया ॥ पृथिवी अर मं
दर हस्ती जैसे आगे थे ॥ तैसे अब भी हैं ॥ तिन विषे तेरा
क्या था जो त्याग कीया ॥ हे राजन सर्वत्याग तुझ अब भी न
हीं कीया ॥ जो तेरा होवे तिस का तूं त्याग कर ॥ जो निर्दुःख प
द कों प्राप्त होवें ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जब इस
प्रकार देवपुत्र कहा ॥ तब सूरबीर अर जितेंद्रिय जो रा
जा है ॥ मन विषे विचारत भया ॥ जो इह बन मेरा है ॥ अर बृ
छ फल फल मेरे हैं ॥ तिन का त्याग करों ॥ अर बोलत भया
हे देवपुत्र बन अर बृछ फल फल जो मेरे थे ॥ तिन का मैं
त्याग कीया ॥ अब तो सर्वत्याग हूया है ॥ तब देवपुत्र कहा
हे राजन अब भी सर्वत्याग नहीं भया ॥ जो बन अर बृछ
फल फल तेरे तें आगे थे ॥ इन विषे तेरा क्या है ॥ जो तेरा है
तिस कों त्यागें तब सुखी होवें ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे राम
जी जब इस प्रकार देवपुत्र कहा ॥ तब राजा मन विषे वि
चारत भया ॥ जो मेरी बावली है जलपान की ॥ अर मेरे ब
गीचे हैं ॥ तिन का त्याग करों ॥ जो सर्वत्याग सिध होवे ॥ अर क
हा ॥ हे भगवन मेरी इह बावली है ॥ अर बगीचे हैं तिन का
त्याग कीया ॥ अब तो मेरा सर्वत्याग सिध भया ॥ तब देवपु
त्र कहा ॥ हे राजन सर्वत्याग अब भी नहीं भया ॥ जो कछु
तेरा है तिस कों त्यागेंगा ॥ तब शांत पद कों प्राप्त होवेंगा ॥ श्री
वशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जब इस प्रकार देवपुत्र कहा ॥ त
ब राजा विचारत भया ॥ जो अब मेरी मृगछाला अर कुटी

130 हे ॥ इसका त्याग करों ॥ तब राजे कहा ॥ हे देवपुत्र मेरे पास एए
क मृगछाला है ॥ अरु एक कुटी है ॥ तिसका त्याग कीया ॥ अब
मैं सर्वत्यागी भया ॥ तब देवपुत्र कहा ॥ हे राजन मृगछाला
विषे तेरा क्या है ॥ इह तो मृग की त्वचा है ॥ अरु कुटी विषे ते
रा क्या है ॥ कुटी तो माटी अरु सिलौं की है ॥ इसकर तो सर्वत्या
ग सिध नहीं होता ॥ जो कछु तेरा है ॥ तिसकों त्यागें तब सर्व
त्याग होइ ॥ अरु तूं सर्व दुषों तें रहित होइ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच
हे रामजी जब इस प्रकार कुंभन कहा ॥ तब राजा मन विषे
विचारतं भया ॥ जो अब मेरा एक कमंडल है ॥ अरु एक मा
ला है ॥ अरु एक लाठी है ॥ इसका त्याग करौं ॥ ऐसे विचार
कर राजा शांतकों लीयें बोलत भया ॥ हे देवपुत्र मेरी लाठी
अरु करमंडल अरु एक माला है ॥ तिसका भी अब त्याग
कीया ॥ अब मैं सर्वत्यागी भया ॥ तब देवपुत्र कहा ॥ हे रा
जन कमंडल विषे तेरा क्या है ॥ करमंडल तो बन का तूं
बा है ॥ तिस विषे तेरा क्या है ॥ अरु लाठी भी बन के बांस
की है ॥ अरु माला भी काष्ठ की है ॥ तिस विषे तेरा क्या है ॥ जो
कछु तेरा है तिसका त्याग कर ॥ जब तिसका त्याग करेंगा
तब दुःषतें रहित होवेंगा ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी
जब इस प्रकार कुंभन कहा ॥ तब राजा शिषरध्वज मन वि
षे विचारतं भया ॥ जो अब मेरा आकार रहता है ॥ तब देष्या
जो एक आसन रहिता है ॥ अरु बासन है ॥ जिस विषे फल
फूल रषीते हैं ॥ अब इनका त्याग करौं ॥ तब राजे कहा
हे भगवन आसण अरु बासण इह मेरे पास रहिते हैं
अब तिनका भी त्याग कीया ॥ अब तो सर्वत्यागी भया ॥ त
बकुंभन कहा ॥ हे राजन अब भी सर्वत्यागी नहीं भया ॥ आ
सण तो भेद की उनका है ॥ बासन मृतका के हैं ॥ इनों विषे
तेरा क्या है ॥ जो कछु तेरा है ॥ तिसका त्याग कर जो सर्वत्या
ग होइ ॥ अरु दुषतें निवर्त हो जावें ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥
हे रामजी जब इस प्रकार कुंभन कहा ॥ तब राजा उठ खडा
हूया ॥ अरु बनकीयां लकडीयां एकठी करी ॥ अरु अग्नि
लगाई ॥ जब वहां अग्नि जागी ॥ तब लाठी को हस्त विषे
लेकर कहणे लागा ॥ जो हे लाठी मैं तेरे साथ बहुत दिनों
कारट न कीया है ॥ परंतु तुज मेरे साथ उपकार कछु न

कीया॥ अब मैं कुंनमुन की क्रिपा तैं तरोंगा। तेरे ताईं नमस
कार है॥ ऐसे कहि कर अग्नि विषे डार दीनी॥ बहुड मृ
गछाला कों हाथ विषे लेकर कहा॥ हे मृगछाला मृग
की त्वचा बहुत काल मैं तेरे ऊपर आसन कीया॥ परं
तु उपकार कछु न कीया॥ अब कुंनमुन की क्रिपा करत
रोंगा॥ तेरे ताईं मेरा नमस्कार है॥ ऐसे कहि कर मृग
छाला कों अग्नि विषे डार दीया॥ बहुड कमंडल कों
लेकर लागा कहिणे॥ हे कमंडल तूं धंन्य हैं॥ मैं तेरे ता
ईं धारता॥ अर तुझ मेरे जल कों धारता॥ तैं ने मेरे ताईं
गुण गोप नहीं कीया॥ तब भी हे कमंडल जैसे प्रविर्त
त्यागणी है॥ तो निर्वृत की कल्पना भी त्यागणी है॥ तां
ते तेरे ताईं नमस्कार है॥ तुम जावो॥ ऐसे कहि कर क
मंडल कों भी अग्नि विषे जला दीया॥ बहुड माला
कों हाथ विषे लेकर लागा कहिणे॥ हे माला तेरे म
णके जो मैं फेरते हैं॥ सो मानों अपणे जन्म गणे हैं॥ ते
रे संबंध कर जाप कीया है॥ अर दिशा विदिशा गया
हों॥ अब तेरे ताईं मेरा नमस्कार है॥ ऐसे कहि कर
माला कों भी अग्नि विषे डार दीया॥ इसी प्रकार फल
फूल कुटी आसन सब जलाय दीया॥ वन्हि अग्नि जा
गी॥ अरु वन्हि प्रकाश भया॥ जैसे सुमेर पर्वत के पास त
सूर्य चढै॥ अर प्रकाश होइ॥ अर मणी का भी प्रकाश
होवै॥ तो प्रकाश बडा होता है॥ तैसे वन्हि अग्नि जागी॥
अर राजे संपूर्ण सामिग्री का त्याग कीया॥ जैसे पके फ
ल कों वृक्ष त्यागता है॥ अर जैसे पवन धूड कों साथ
ले जाता है॥ अर जब चलणे तैं रहि रता है॥ तब धूड
का त्याग करती है॥ तैसे ही राजा सर्व सामिग्री कों त्याग नि
र्विघ्न हूया॥ अर संपूरन सामिग्री अग्नि विषे प्रवेश की
या॥ अर अग्नि रूप होत भई॥ जैसे नदीयां समुद्र विषे
जाइ प्रवेश करती हैं॥ अर समुद्र रूप हो जाती हैं॥ तैसे
सब सामिग्री अग्नि रूप होत भई॥ इति श्री निर्वाण प्रक
र्णे सर्व त्याग वर्णनं नाम सर्गः॥ ७१॥ श्री वशिष्ठोवा॰

हे रामजी जब राजे संपूर्ण समिग्री जलाई ॥ सो भस्म होगई ॥
जैसे सदाशिव के गणों ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ को स्वाहा
कर दीया ॥ तैसे जेती कछु समिग्री थी सो स्वाहा होगई ॥ अ
रु बन बडा प्रज्वलत भया ॥ जेते कछु वृक्षों के रहिएवाले
पंछी थे ॥ सो भाग गये ॥ अरु मृग पशू केई आहार करते ॥ के
ई जो गाली कते थे सभ नठ जागये ॥ जैसे पुर को आग लागे
तें पुरवासी भाग जाते हैं ॥ तैसे भाग गये ॥ तब राजा मन विषे
विचारत भया ॥ राजा विचारत भया ॥ जो अब कुंभ की कृ
पा तें बडे आनंद को प्राप्त भया हों ॥ अब दुख मेरे मिट गये
हैं ॥ जेती कछु वस्तु मन के संकल्प कर रची थी ॥ जो मेरी है
सो जल दई ॥ तिस का मेरे ताई न हर्ष है न शोक है ॥ जेते
कछु दुख होते हैं सो ममत्व कर होते हैं ॥ सो मेरा ममत्व अ
ब किसी साथ नहीं रहा ॥ तां ते दुख भी कोउ नहीं ॥ अब मैं
ज्ञानी भया हों ॥ अब मेरा जय है ॥ अब निर्मल भया हों ॥ अ
रु मैं ने सर्व त्याग कीया है ॥ ऐसे राजा विचार करके उठ ख
डा हूया ॥ अरु हाथ जोड के कहिने लागा ॥ हे देवपुत्र अ
ब मैं सर्व त्याग कीया है ॥ जो आकाश ही मेरे वस्त्र हैं ॥ अर
पृथिवी मेरी शय्या है ॥ ऐसे कहा ॥ तब कुंभ कहा ॥ हे रा
जन अब भी सर्व त्याग नहीं कीया ॥ जो तेरा है तिस का
त्याग कर ॥ जो दुख तेरे निवर्त हो जावै ॥ जब ऐसे कुंभ कहा
॥ तब राजे कहा ॥ हे भगवन अब अवर मेरे पास कछु
नहीं रहा ॥ नागा होकर तुमारे आगे खडा हों ॥ अब एक
रक्त मांस का देह है ॥ इंद्रीयों के धारणहारा ॥ जो कहें तो
इस का भी त्याग करों ॥ पर्वत ऊपर जाइकर मार देवों ॥
ऐसे कहि कर राजा पर्वत को दौडा ॥ जो देह को डार दे
वों ॥ तब कुंभ कहा ॥ हे राजा ऐसे पुन्य देह को किउं त्या
गता हैं ॥ इस के त्यागे तो सर्व त्याग नहीं होता ॥ जिस के त्या
गे तें सर्व त्याग होवै ॥ तिस का त्याग कर ॥ इस देह विषे क्या
दूषन है ॥ जैसे वृक्ष के साथ फल फूल होते हैं ॥ जब पवन
चलता है ॥ तब फल फूल गिडते हैं ॥ तो फल फूल गिड
ने का कारण पवन होता है ॥ वृक्ष को दूषन कछु नहीं ॥

तैसे देहको दूषन कछु नहीं ॥ जो देहके पालणेवाला अभिमानी
है ॥ तिसका त्याग कर ॥ जो सर्व त्याग जिसकर सिध होवै ॥ अर
देह तो गुंगा है ॥ जो कछु इसको दीया सो लेता है ॥ आगे तो बोल
ता कछु नहीं जड है ॥ इसके त्यागणेतें क्या सिध होता है ॥ हे रा
जन जैसे पवन कर बृक्ष हलता है ॥ अर भूकंप कर पर्ब
त हीलते हैं ॥ तैसे देह आप कछु नहीं करता ॥ ईश्वरकी प्रे
री चेष्टा करती है ॥ जैसे पवन करके समुद्र विषे तरंग होते हैं ॥
अर घासके तृणकूं को जल जहां इछा होइ तहां ले जाता है
घास आपों नहीं जाता ॥ तैसे ही देह आपते कछु नहीं करती
देहका जो प्रेरणेवाला है ॥ तिसकर देह चेष्टा करती है ॥ तांते
देहके प्रेरनेवालेका त्याग कर ॥ जो दुषतें रहित होवै ॥ हे रा
जा जिसकर सर्व है ॥ अर जिस विषे सर्व नष्ट हैं ॥ अर जो स
र्व ओरतें त्यागणे योग्य है ॥ तिसका त्याग कर ॥ जो तेरे सर्व दुः
ख मिट जावै ॥ तब राजे कहा ॥ हे भगवन तुह कवन है ॥ जो
सर्व है ॥ अर जिस विषे सर्व नष्ट हैं ॥ अर जो सर्व ओरतें त्याग
णे योग्य है ॥ हे तत्ववेत्तो विशेष कहो ॥ जिसके त्यागतें जरा मृत्यु
भी नष्ट होता है ॥ तब कुंभ कहा ॥ हे राजा जिसका नाम चि
त है ॥ अर प्रान है ॥ अर देह है ॥ ऐसा जो चित है ॥ तिसका त्याग
कर ॥ अर बाहिर जो नाना प्रकार के आकार जो दृष्ट आवते
हैं ॥ सो चित ही कर दृष्ट आवते हैं ॥ तांते चित ही का त्याग क
र ॥ हे राजा जैसे सर्प पुद विषे बैठा होवै ॥ तो पुदका दूषन क
छु नहीं ॥ विष जो है सो सर्प विषे है ॥ जिसकर डंसता है ॥ तिसके
नास करणेका उपाय कर ॥ अर सर्व नष्ट भी इस चित विषे हैं
अर आत्मा जो है सो मात्र पद है ॥ जिस विषे न एक कहणा है
न द्वैत कहणा है ॥ अर सर्व ओरतें इसी चितका त्याग करणा
है ॥ जब इस चितका त्याग करेगा ॥ तब त्यागरूप अमृत कर
अमर होवेगा ॥ अर जरा मृत्युतें रहित होवैगा ॥ अर जो चित
का त्याग न करेगा ॥ तो बहुड देहको धारेगा ॥ अर दुषको भी भो
गेगा ॥ जैसे एक छेत्रतें अनेक दाणे उत्पति होते हैं ॥ अर जो छेत्र
ही जल जाता है ॥ तब अन्न नहीं उत्पति होता ॥ तैसे देह जो देह
है ॥ अर जरा अर मृत्यु दुष संसार इनका बीज चित है ॥ जैसे
अन्नका कारण छेत्र है ॥ तैसे दुःख संसारका कारण चित है

हे राजा तातैं चितहीका त्यागकर ॥ जब इसीका त्यागकरेंगा ॥
तब सुषीहोवैंगा ॥ हे राजा जिससर्वत्यागकीया है ॥ सो सुषी हू
या है ॥ सुण ॥ जैसे आकाश सर्वपदार्थोंका त्यागकीया है ॥ किसी
का स्पर्श नहीं करती ॥ अर सर्वतें बडा है ॥ अर सुषी है ॥ अर सर्वप
दार्थ नष्ट होजाते हैं ॥ तो भी रहता है ॥ जो आकाश सर्वत्यागकी
या है ॥ हे राजा तें भी सर्वत्यागी होइ ॥ राजादिक अर देहादिक
अर कुटुंब अर गेह स्त्री आदिक जो आश्रम हैं ॥ सो सर्व चि
तकल्पे हैं ॥ हे राजा एकको त्यागता हैं ॥ तब औरकौ ग्रहण क
ता हैं ॥ जो कछु इक त्यागै ॥ तो सर्वत्याग नहीं होता ॥ जब चितनही
का त्याग करैं ॥ तब सर्वका त्याग होता है ॥ हे राजा इह धर्म अर
वैराग पई श्वर्य तीनों जो हैं ॥ सो भी चितके कल्पे हैं ॥ जब चित पु
न्य दृष्टियासों लागता है ॥ तब पुन्य ही प्राप्त होता है ॥ जब पापदृष्टि
यासों लागता है ॥ तब पापही प्राप्त होता है ॥ अधर्म अवैरा
ग अर दरिद्र होता है ॥ जब पुंन्यका फल उदै होता है ॥ तब सु
ष प्राप्त होता है ॥ जब पापका फल उदै होता है ॥ तब दुष प्राप्त
होता है ॥ दुष मिटते नहीं ॥ जब चितका त्याग होता है ॥ तब दुष स
ने नष्ट होजाते हैं ॥ हे राजा जो कोऊ पुरुष किसी वस्तकौं चह
ता नहीं ॥ जो मैं नहीं लेता ॥ तब तिसकी पूजा बहुत होती है ॥ अ
र जो कोऊ कहता है ॥ जो मैं इस वस्तकौं लेवऊं ॥ मेरे ताई इह
देवै ॥ तब उसकौं देता कोऊ नहीं ॥ तातें सर्वत्यागकर जो सुषी
होवैं ॥ अर सर्वत्याग कीये तें सर्वतें ही होवैंगा ॥ सर्वात्मा होवैं
गा ॥ अर संपूर्ण त्रैलोक्य आपले वस देषैंगा ॥ जैसे माला के म
णकौं विषै तागा होता है ॥ अर मणके भी सूत्रै होते हैं ॥ तिस वि
षै अवर कछु नहीं होता ॥ तैसे ही देषैंगा ॥ जो सर्व मैं ही हो ॥ अर
इतर कछु नहीं ॥ हे राजा जिस सर्वत्याग कीया है ॥ सो सुषी है
अर समुद्र की न्याई स्थित है ॥ तिसकौं दुष कोऊ नहीं ॥ ताते तूं
चितका त्यागकर ॥ जो राग अर दोष मिटजावैं ॥ अर इस चि
तके एते नाम है ॥ चित्त ॥ मन ॥ अर अहंकार ॥ जीव ॥ अर माया ॥
सर्व चितही के नाम हैं ॥ हे राजन राजत्याग ऐसे अवरों की निहा
तें ऐसे तो चित वस नहीं होता ॥ चितत बहीं वस होता है ॥ जब पु
रुष निर्वीस होता है ॥ जब लग चित फुरता है ॥ तब लग सर्व

त्यागनहीं होता ॥ जबवाही फुर्ने निवर्त होता है ॥ तब चित
का त्याग होता है ॥ अरचित के त्याग करने ते ताके अ
भिमान ते रहित होवर्णा ॥ ऐसे भूत्य जब पाछे रहेगा ॥ त
ब सर्वात्मा होवेगा ॥ जब चित के त्यागेगा ॥ तब ऐसे पद
को प्राप्त होवेगा ॥ जो जेता ऐश्वर्य है ॥ अरजेता सुष है ॥ ति
नका आश्रय है ॥ अरजेते दुःष हैं ॥ तिनका नास कर्ने हा
रा है ॥ अरजिसके जाणे तें किसी पदारथ की इछा न रहे
गी ॥ काहे ते न रहेगी ॥ जो सर्वानंदों के धारणहारा तेरा
स्वरूप है ॥ बहुड इछा किसकी रहे ॥ जैसे आकाश के आ
श्रे देवलोक तें आदि सर्व विश्व रहते हैं ॥ अरु प्रकाश
को इछा कछु नहीं ॥ जो इछा नहीं करता ॥ तो तो सर्व आका
श ही विषे हैं ॥ अरसभन का धारन हारा है ॥ हे राजा जब
तें भी इछा किसी की न करेंगा ॥ तब निर्वास होइकर अ
पणे स्वरूप विषे स्थित होवेगा ॥ अर जाणेगा जो सर्व के
आत्मा मैं ही हों ॥ अरसर्व को धारर ह्या हों ॥ अर भूत भ
विष्यत वर्तमान काल भी मेरे आश्रे हैं ॥ जैसे समुद्र के आ
श्रे तरंग हैं ॥ तैसे मेरे आश्रे काल है ॥ अरचित का
संबंध तेरे तांई प्रमाद करके है ॥ अर प्रमाद एही है जो
सन्मात्र पद विषे चित होइकर फुरता है ॥ अरचित के
सा है जो जड भी है ॥ अर चेतन्य भी है ॥ इसी का नाम चि
जुड ग्रंथ है ॥ जब इह ग्रंथ षुल जावेगी ॥ तब अपणे आ
पको वासदेव रूप जाणेगा ॥ जब निर्वास होवेंगा ॥ तब
संसार रूप वृछ नष्ट हो जावेगा ॥ इह संसार चित ही
विषे है ॥ जैसे बीज विषे वृक्ष होता है ॥ सो बीज के जल
णे तें वृक्ष भी जल जाता है ॥ तैसे वासना के दग्ध हूये
तें संसार भी दग्ध होता है ॥ हे राजा जैसे एक दबा होता
है ॥ तिस विषे बहुते रतन होते हैं ॥ तो रतनों के नास हू
ये तें दबा नष्ट नहीं होता ॥ जब दबा नष्ट होवे ॥ तब रतन
न नष्ट होते हैं ॥ सो दबा क्या है ॥ अर रतन क्या हैं ॥ अव एक
र दबा चित है ॥ अर रतन देहा हैं ॥ तां ते चित नष्ट होए

कउपाव करीये ॥ जब चित नष्ट होवै ॥ तब देह तें रहित होवैं
गा ॥ देह के नष्ट हूये तें चित नष्ट नहीं होता ॥ अरु चित के ना
श हूये तें देह नष्ट होजाता है ॥ जब चित रूप धूर तें रहित
होवैगा ॥ तब केवल शुध आकाश होवैगा ॥ इति श्री निर्वा
णप्रकर्णे चित त्याग वर्णनं नाम सर्गः ॥ ७२ ॥ श्री वशि
ष्ठोवाच ॥ हे राम जी जब इस प्रकार कुंभ कहा ॥ जो चित का
त्यागणा सर्व त्याग है ॥ तब शिषरध्वज कहा ॥ हे भगवन
मैं चित कों स्थित कैसे करों ॥ आकाशरूप संसार का चित
रूप धूड है ॥ अरु संसार रूप वृछ का चित रूप बीतर है ॥
जो कबहूं स्थित नहीं होता ॥ तांतें ऐसे चित कों मैं कैसे व
स करों ॥ तब कुंभ कहा ॥ हे राजन चित का रोकणा तो
सुगम है ॥ नेत्रों के खोलणे अरु मूंदणे विषे भी कछु यत्न है
पर चित के रोकणे विषे यत्न कछु नहीं ॥ पर किन कों सुग
म है ॥ जो दीरघदरसी हैं ॥ अरु अज्ञानी कों चित रोकणा क
ठिन है ॥ जैसे चंडाल चक्रवर्ती राजा होवणा कठिन है ॥ अरु
तृण कों सुमेर होवणा कठिन है ॥ तैसे अज्ञानी कों चित का
रोकणा कठिन है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र वज्र का तोर
ना कठिन है ॥ तो भी टूटता है ॥ जो कोऊ कहै तो मानीये ॥ प
र मन का रोकणा कठिन है ॥ जैसे बंदे मछ कों बालिक रो
क नहीं सकता ॥ तैसे मैं चित कों रोक नहीं सकता ॥ हे देव
पुत्र तुम कहते हो जो मन का रोकणा कठिन नहीं ॥ अरु
मेरे ताईं ऐसे भासता है ॥ जैसे मूर्ति महा सुंदर लिखी हूई
है ॥ अरु अंध पुरुष कों नेत्रों सें नहीं दृष्ट आवती ॥ उह हो
यमो कैसे लखै ॥ तैसे चित कों वस करणा मेरे ताईं कठन है
प्रथम चित का रूप मेरे ताईं कहु जो क्या है ॥ तब कुंभ क
हा ॥ हे राजन इस चित का रूप वासना है ॥ जब वासना
नष्ट होवै ॥ तब चित भी नष्ट होजावै ॥ तांतें चित का बीज तत
ष्ट कर ॥ जो बडुड चित रूप वृछ भी नष्ट होवै ॥ न कोऊ डास
रहै ॥ न कोऊ फूल न फल रहै ॥ अरु जो डासों कों काटेंगा ॥ तब
बडुड होवैगा ॥ डास के काटे तें वृछ नष्ट नहीं होता ॥ बडु

कों

उके ईटास होते हैं ॥ जब बीज कों नष्ट करै ॥ तब वृक्ष भी नष्ट
होजावै ॥ तब राजे कुहा ॥ हे भगवन संसार रूप सुगंध है ॥ तिस
का चित रूप फूल है ॥ अर संसार रूप तत है ॥ तिसका चित
रूप भेह है ॥ देह रूप तृण है ॥ तिसके उदावले वा जो चित रू
प पवन है ॥ अर जु रोम सु अध्यात्मक अधिभूतक तेल है
तिनका एतिल है ॥ जिसतें तेल उपजता है ॥ अर संसार रू
प अंधेरी है ॥ तिसका आकाश एचित है ॥ जो आकाश विषे के
ई अंधेरीयां होती हैं ॥ अर हृदय रूप कमल का भवरा है ॥
तिसका बीज भी कहो ॥ अर टास भी कहो ॥ जो क्या है ॥ अर टा
सों का काटणां क्या है ॥ अर वृक्ष क्या है ॥ अर फल फल क्या है
सो कृपा करके कहो ॥ कुंभोवाच ॥ हे राजन चेतन्य सरूप चेतन है
स्वच्छ निर्मल अर तिस विषे अहं भाव जो है ॥ सो बीज है ॥ अर
इसी कों अहंकार कहते हैं ॥ अर इसी कों चित कहते हैं ॥ अ
र इसी कों मन कहते हैं ॥ अर इसी कों जड कहते हैं ॥ अर इ
सी कों मिथ्या कहते हैं ॥ तिस अहं विषे जो संवेदना है ॥ सोई
देह इंद्रीयां होकर पसरा है ॥ तिस विषे निश्चा है ॥ एमैं हो ॥ ए
संसार है ॥ एमैं जो हों वणां है ॥ सो जीव अहंकार है ॥ अर अहं
कार इस वृक्ष का बीज है ॥ अर वासनां जो हैं ॥ सो इस चित रूप
वृक्ष के टास हैं ॥ अर सुख दुख इस चित रूप वृक्ष के फल हैं ॥
हे राजा इस टासों का जो काटणां है ॥ सो श्रवण कर ॥ एकांत
बैठ कर ॥ अर चितवनां तें रहित होइ ॥ एक आत्म को त्या
ग करणा ॥ अर दूसरे का अंगीकार करणा ॥ ऐसा जो स्थित हो
वणां ॥ जो मैं ऐसा त्यागी हों ॥ इसकी चितवनां एही टासों का
काटणा है ॥ इन टासों के काटे तें ॥ हे राजन वृक्ष नष्ट नहीं हो
ता ॥ काहे तें जो ऐसा होकर स्थिति होवणां जो मैं हों ॥ अर वा
सनां त्याग करे कछु फुरे नहीं ॥ जब कछु वासनां फुरे ॥ तब
वृक्ष रूप चित के टास हो आवते हैं ॥ जब अहं रूप बीज नष्ट
हो जाता है ॥ तब चित रूप वृक्ष नष्ट हो जाता है ॥ काहे तें जो इ
सका बीज अहं है ॥ जब अहं भाव नष्ट हूया ॥ तब वृक्ष भी न
ष्ट हो जाता है ॥ ताते चित का बीज तें नष्ट कर ॥ राजोवाच ॥
हे देवपुत्र तुमारा निश्चा मैं एही जान्या है ॥ जो चित के त्याग तें
चित का नष्ट करणां श्रेष्ट है ॥ हे भगवन एता काल मैं टासों कों
काटता रहा हों ॥ इसी तें दुःख मेरे नष्ट नहीं भये ॥ अर तुम मों क

हा जो अहंही दुषदाई है॥ सो अहंकाउत्पति होवणें कैसे हो
ता है॥ कुंभोवाच॥ हे राजन शुधचित्त विषे जो चेतउन्मुख
त्व होवणां॥ चेतउन्मुखत्व कहीये अहंफुरणां॥ इह जो होवणां
जो मैं हों॥ सो दृस्यरूप हूया है॥ सो मिथ्या संवेदना कर हूया
है॥ जैसे शांति समुद्र विषे पवन करके लहरी तरंग होते हैं
सत नहीं मिथ्या हैं॥ तैसे शुध आत्मा विषे अहं इह जो संवेद
ना है॥ तिस चितकर के संसार हूया है॥ ताते अहंभाव को नष्ट
कर॥ जो शांति पद विषे स्थिति होवें॥ जो दुषदाई वस्त है ति
सी कों नस्ट कर॥ जो शांति होवे॥ तब राजे कहा॥ हे भगवन
दुकवन वस्त है॥ जो जलावणे योग्य है॥ अर दुकवन अग्नि
है॥ जिस कर जलती है॥ कुंभोवाच॥ हे भगवानों विषे श्रे
ष्ट राजा तेरा जो आपना स्वरूप है॥ तिसको विचार कर जो मैं
क्या हों॥ अर संसार क्या है॥ इह जो दृढ विचार करणां सो ईअ
ग्नि है॥ अर मिथ्या अहं जो अनात्मा देह इंद्रीयां आदिक वि
षे अहंभाव है॥ तिसको वास्तव रूप विचार अग्नि कर के
जलावणें॥ जब विचार अग्नि कर के अहंभाव बीज कों जलां
वेगा॥ तब केवल चिन्मात्र होवेगा॥ हे राजा मेरे उपदेश क
के तें आपकों क्या जानता भया हैं॥ सो मेरे तांई कहु॥ राजो
वाच॥ मैं राजा भी नहीं॥ अर भूम जो है पृथिवी सो भी नहीं॥
अर पर्वत भी मैं नहीं॥ अर मैं आकाश भी नहीं॥ अर मैं दसों
दिशा भी मैं नहीं॥ अर रुधिर मांस की देह भी नहीं॥ अर मैं
कर्म इंद्रीयां॥ अर ज्ञान इंद्रीयां भी नहीं॥ अर मैं मन बुधि भी
नहीं॥ अर मैं अहंकार भी नहीं॥ इनते रहित शुध आत्मा हों
परंतु हे भगवन अहंरूप कलंक ता मेरे तांई कहां सो लागी
है॥ तिस कलंक के दूर करणें कों मैं समर्थ नहीं॥ कुंभोवाच॥
हे राजा इस अहं का त्याग कर॥ जो मैं त्याग कीया है॥ इह फु
रणें भी न फुरे॥ संन होरहु॥ जब इसका त्याग करेंगा॥ तब चै
तन्य आकाश होवेगा॥ हे राजा तें आपणे स्वरूप विषे जाग
कर देष॥ जो कवन हैं॥ तब राजे कहा॥ हे भगवन इह मैं
जानता हों॥ जो मेरा स्वरूप आत्मा है॥ सो सर्व का आत्मा है॥ अ
र मैं आनंद रूप हों॥ अर सर्व मेरा प्रकाश है॥ पर इह नहीं जा

नता ॥ जो अहंभाव कलंककता का है सो लागा है ॥ इसके नास
करणेंको मैं समर्थ नहीं ॥ अर मैं जान्या है ॥ जो इस संसार का
बीज चित है ॥ अर चित का बीज अहंभाव है ॥ तुमारी कृपा तें
मैं जान्या है ॥ जो मेरा स्वरूप आत्मा है ॥ अर मेरे बिषे अ
हंत्व कोऊ नहीं ॥ तथापि इस अहं रूप कलंककता को दूर क
र रहा हौं ॥ मेरे तें दूर नहीं होता ॥ बहुडि आइ फुरता है ॥ जो मैं
शिखरध्वज हो ॥ इस अहं करकें मैं संसारी हो ॥ इसके नास
करणेंका उपाय तुम कहो ॥ कुंभोवाच ॥ हे राजा कारन बि
नां कार्य नहीं होता ॥ अर जे कार्य बिनां कारण भासे ॥ तब
जाणीये जो नाममात्र है ॥ अर मिथ्या है ॥ अर जिसका का
रण पाईये ॥ सो जाणीये जो सत है ॥ तातें तूं कहु जो इस अहं का
कारण क्या है ॥ तब मैं उत्तर कहोंगा ॥ राजोवाच ॥ हे भगव
न अहं का कारण शुध आत्मा है ॥ शुध आत्मा बिषे जो जान
णा हूया है ॥ जानणे मात्र बिषे जो जानणे का उत्थान हूया
है ॥ जो इसकी ओर लागा है ॥ जानणें संवेदन नहीं अहं का का
रण है ॥ कुंभोवाच ॥ हे राजा इस जानणे का कारण क्या है
प्रथम इह कहु ॥ तब पाछें दूर करणें का उपाव मैं कहोंगा ॥
हे राजा जिसका कारण सत होता है ॥ तो कार्य भी सत होता
है ॥ अर जो कारण जड़ होता है ॥ तब कार्य भी जड़ होता है ॥ जैं
सें भ्रम दृष्ट करकें दूसरा चंद्रमा आकाश बिषे दिषायत है
अर कारण तिसका भ्रम है ॥ तातें इस जानणें संवेदन का का
रण मेरे तांई कहु ॥ जो क्या है ॥ जो जानणें संवेदन दृग रूप
दृश्य रूप होकर स्थित भई है ॥ अर दृश्य दृग रूप होइ कर
स्थित भई है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र जानणें का कारण देहा
दिक दृश्य है ॥ काहे तें जो जानणां तब होता है ॥ जो आगें जान
णें जोग वस्तु होती है ॥ जो आगें वस्तु नहीं ॥ तब वस्तु का जानणा
भी नहीं होता ॥ तातें जानणें का कारण देहादिक ही हूये ॥ कुं
भोवाच ॥ हे राजन इह देहादिक जो हैं ॥ सो मिथ्या हैं ॥ भ्रम क
रि हूये हैं ॥ इन का कारण तो कोऊ नहीं ॥ राजोवाच ॥ हे देवपु
त्र देह का कारण तो प्रतछ है ॥ अर षाता पीता है ॥ अर पिता तें इ
सकी उत्पत्ति भई है ॥ अर प्रतछ ही कार्य करता दृष्ट आवता है ॥
तुम कैसें कहते हो ॥ जो कारण बिनां हैं ॥ अर मिथ्या हैं ॥ कुंभोवा
च ॥ हे राजा पिता का कारण कवन है ॥ पिता भी मिथ्या है ॥ अर जैं

सेस्वप्ने विषे पिताभी देषीये ॥ अरपुत्रभी देषीये ॥ सो दोनों मि
थ्या हैं ॥ तातें कहु पिता का कारण कवन है ॥ राजोवाच ॥
हे भगवन पुत्र का कारण पिता है ॥ अर पिता का कारण
पिता ला ॥ इसी प्रकार परंपरा करके सर्व का कारण ब्रह्मा
प्रतक्ष जाणीता है ॥ सो सर्व की उत्पति ब्रह्मा है ॥ कुंभोवाच
हे राजा ब्रह्मा तें आदि काष्ट पर्यंत सर्व सृष्ट संकल्प कीर
ची है ॥ अर देह भी भ्रम कर के भासता है ॥ जैसे मृगतृष्णा
के जल का भान होता है ॥ जैसे सिपी विषे रूपा भासता है ॥
तैसे आत्मा विषे देह भासता है ॥ जैसे आकाश विषे दो चंद्र
मैं भ्रम कर के प्रतक्ष देषीते हैं ॥ तैसे ही इह संसार भ्रम कर
के आत्मा विषे भासता है ॥ अर जो तूं कहे है याके से दृष्ट
आवता है ॥ तब सुण ॥ जैसे कोऊ कहे है वंध्या के पुत्र कों भूष
ण पहिरे हैं ॥ अर भूषित कीया है ॥ जो वंध्या का पुत्र ही न
हीं ॥ तो भूषण किस पहिरे ॥ सो भ्रम कर के भासता है ॥ जै
से स्वप्न विषे सभ क्रिया होती है ॥ सो भ्रम मात्र है ॥ तैसे इह सं
सार तेरे भ्रम विषे है ॥ जब भ्रम निवर्त होवैगा ॥ तब आत्मा
ही केवल भान होवैगा ॥ हे राजन जैसा तूं आपनां देह जान
ता हैं ॥ तैसे ब्रह्मा को भी जाण ॥ ब्रह्मा का कारण कवन है ॥ तां
ते भ्रम तें जाग ॥ जो तेरा भ्रम निवर्त हो जावे ॥ राजोवाच ॥ हे
भगवन मैं जाग्या हों ॥ अब मेरा भ्रम नष्ट भया है ॥ अर मैं ने
इह संसार भी मिथ्या जाना है ॥ जो केवल संकल्प मात्र है ॥ जो
कछु दृश्य है ॥ सो मिथ्या है ॥ अर एक आत्मा ही मेरे निश्चे वि
षे सत्य भया है ॥ हे भगवन ब्रह्मा का कारण भी ब्रह्म है ॥ अर
अद्वैत है ॥ अविनासी है ॥ अर सर्वात्मा है ॥ ब्रह्मा का कारण इ
ह भया ॥ कुंभोवाच ॥ हे राजन कारण अर कार्य द्वैत विषे
होते हैं ॥ सो असत हैं ॥ जो तिस कारण को देशातें भी अंत होता
है ॥ वस्त तें अर काल तें अंत होता है ॥ अर परणामी होता है
जो परणामी होवे ॥ सो मिथ्या है ॥ हे राजा आत्मा अद्वैत है ॥ र
जिस विषे न एक कहणा है ॥ न द्वैत कहणा है ॥ न भोक्ता है ॥ न
प्रांपत भोग्य है ॥ न कर्म है ॥ अद्वैत है ॥ जो स्वरूप तें गुणाम कौं नहीं न

या ॥ अर सर्वात्मा है ॥ जो सर्व देश है ॥ अर सर्व काल भी है ॥ अ
र सर्व वस्तु विषे पूर्ण है ॥ अर अद्वैत है ॥ जो अद्वैत है तो का
र्य किसका होवे ॥ अर कारण किसका होवे ॥ अर कार्य का
रण का संबंध तहां होता है ॥ जहां द्वैत होता है ॥ अर पूर्ण
भी होता है ॥ अर जिसको देश काल कर अंत होता है ॥ अर
आत्मा अद्वैत है ॥ तिस विषे न कोऊ देश है ॥ न कोऊ काल है
न कोऊ वस्तु है ॥ सन्मात्र पद है ॥ हे राजा मैं जानता हूं ॥ जो
तूं जागृत होवेगा ॥ जो मत तेरा नष्ट होता जाता है ॥ जैसे बरफ
गली तब जल ही होता है ॥ जैसे बरफ का पुतली सूर्य की कि
रणों साथ क्षीण होती जाती है ॥ तैसे तेरा अज्ञान नष्ट होता
जाता है ॥ अज्ञान के नष्ट हूये तूं आतमा ही होवेगा ॥ तू अ
पणे प्रत्यक चेतन स्वरूप विषे स्थित हो ॥ अर देष जो बला
दिक सर्व पर्मात्मा का कचन है ॥ परमात्मा ही ऐसे स्थिति
होय कर रह्या है ॥ अर जो दृष्ट पडता है ॥ तिस सर्व का अ
पणा आप आत्मा है ॥ जो जागे सो जाणे ॥ जागे बिना नही
जानता ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन तुमारी कृपा ते मैं जागया
हों ॥ अर जानता हों ॥ जो मेरा स्वरूप आत्मा है ॥ अर मैं निर्भय
हों ॥ अब मेरा मुझ को नमस्कार है ॥ एक मैं ही हों ॥ मेरे ते अ
वर कछु नहीं ॥ अब मैं आप को जान्या है ॥ इति श्री निर्वा
णप्रकरणे राजा विश्रांत वर्ननं नाम सर्गः ॥ ७३ ॥ राजो
वाच ॥ हे भगवन तुम कैसे कहते हो ॥ जो ब्रह्मा का कारण
कोऊ नहीं ॥ आतमा ऐसा ईश है ॥ जो अनंत है ॥ अर अच्यु
त है ॥ अव्यक्त है ॥ अर अद्वैत है ॥ प्रमाणों का विषय नहीं ॥
अर परम ब्रह्म है ॥ सोई ब्रह्मा का कारण है ॥ कुंभोवाच ॥
हे राजा तूं ही कहता हैं ॥ जो आतमा अनंत है ॥ जो अनंत है ॥ ति
सको देश काल वस्तु का परछेद नहीं ॥ सर्व देश सर्व काल
सर्व वस्तु पूरण है ॥ सो कारज कारण किसका होवे ॥ कारण
तब होता है ॥ जो प्रथम द्वैत होवे ॥ सो आत्मा अद्वैत है ॥ अर का
रण तिसको कहते हैं ॥ जो कार्य ते पूर्व होवे ॥ अर पाछे भी तु
ल्य होवे ॥ जैसे घट के आदि मृतका है ॥ अर अंत भी मृतका हो
ता है ॥ तिस को कारण कहीता है ॥ सो आत्मा विषे न आदि है

नअंतिहै॥ आत्मा अनंत है॥ अरकारण तब होता है॥ जो परिणाम
होता है॥ सो आत्मा अच्युत है॥ अपणे स्वरूपतें कदाचित गि
डता नहीं॥ अरु भोग भोक्ता तब होता है॥ जहां द्वैत है॥ सो आत्मा
अद्वैत है॥ भोक्ता भोग्य दोनों नहीं॥ अरु आत्मा कर्म भी नहीं॥ जो
तें आत्मा आदिको जु नहीं॥ जिसतें आत्मा सिध होवे॥ अरु कि
सीका कार्य भी नहीं॥ जो कार्य होता है॥ सो इंद्रीयां का विषय
होता है॥ सो आत्मा अव्यक्त है॥ अरु जो कार्य होता है॥ तिसका
कारण भी होता है॥ सो आत्मा सर्वका आदि है॥ तिसका कार
णको जु नहीं॥ जो सर्वात्मा है॥ अरु स्वच्छ है॥ अरु आकाशवत नि
र्मल है॥ सो तेरा स्वरूप है॥ राजोवाच॥ हे भगवन अबदा आ
श्चर्य है॥ मैं जान्या है॥ जो आत्मा अद्वैत है॥ सो न किसीका कार्य
है॥ न कारण है॥ अरु अनुभवरूप है॥ सो मैं हों॥ अरु निर्मल हों॥
अविद्या अरु विद्याके कार्यतें रहित हों॥ अरु निर्वाणपद हों॥
अरु निर्विकल्प हों॥ मेरे विषे फुरणेको जु नहीं॥ बहुड कैसा हों॥
जो मैं नहीं॥ अरु मैं हों हों॥ ऐसा जो सर्वात्मा हों॥ मेरा मुजको नम
स्कार है॥ इति श्री निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वज विश्रामो
नाम सर्गः॥ ८४॥ श्री वशिष्ठोवाच॥ हे रामजी राजा शि
खरध्वज कुंभका प्रबोध्या हूया॥ ऐसे वचन कहिकरके वल
निर्वाणपद विषे स्थित भया॥ अरु निर्विकल्प फुरणेतें र
हित एक मुहूर्त पर्यंत स्थित रहा॥ जैसे दीपक वायतें रहित
हो स्थित होता है॥ कुंभोवाच॥ तब कुंभ जगायकर कहा हे
राजन तैं ने समाध साध्या है॥ अरु उत्थान साध्या है॥ तूं तौ
केवल आत्मत्वमात्र है॥ अरु मैं जानता हों॥ जो तुं परम ज्ञान क
केसो भत न भया है॥ जैसे दबे विषे रत्न होते हैं॥ अरु तिन का प्र
काश बाहिर दृष्ट नहीं आवता॥ जब दबे सो निकास कर
देषीये॥ तब वह प्रकाश दृष्ट आवता है॥ तैसे अविद्यारूप
दबेतें निकस्या है॥ अरु परम ज्ञानक केसो भत न भया है॥ हे राज
न तेरे विषे भकोउ हौ नहै॥ न कोउ उपाध है॥ अरु संसारके
रागद्वेषतें रहित भया है॥ शांतिरूप जीवन्मुक्त होयक
र विचिर॥ तेरे तांई उपाध कोउ न लागेगी॥ श्री वशिष्ठोवा
च॥ हे रामजी जब इस प्रकार कुंभने कहा॥ तब राजा शांति हो
गया॥ अरु कहा॥ हे भगवन जो कछु तुम आज्ञा करी॥ सो स

र्वजली प्रकार मैं जान्या है ॥ अब एक प्रश्न अवर है ॥ ति
सका उत्तर कृपा कर कहो ॥ जो मैं धृड स्थिति पावों ॥ हे
भगवन आत्मा तो एक है ॥ अरु शुध है ॥ निराभास है
केवल आकाश रूप है ॥ चैतन्य मात्र है ॥ तिस विषे दृष्टा
दर्शन दृस्य कहां ते उपजा है ॥ कुंभोवाच ॥ हे राजा जो
कछु स्थावर जंगम संसार है ॥ सो महाप्रलय पर्यंत है
जब महाप्रलय होती है ॥ तब केवल आत्मा ही शेष
रहता है ॥ अरु स्वछ निर्मल होता है ॥ तहां न तेज होता है
न अंधकार होता है ॥ केवल अपणे आप स्वभाव विषे
स्थित होता है ॥ अरु जेता कछु आनंद है ॥ तिस का अधि
ष्ठान आत्मा है ॥ अरु सत कहीये जिसको बुधि इदं क
र के कहै ॥ अरु असत कहीये जिसको नाहीं कहै ॥ ति
स सत असत तें रहित ॥ अरु सर्व लक्ष्मी कर संपन्न है
जो अपना स्वभाव मात्र है ॥ जिस विषे उपाधि कोऊ नहीं
अरु सर्वदा प्रकाशमान है ॥ अरु सर्वदा उदै रूप है ॥ ति
स परमात्मा का इह संसार चमत्कार है ॥ जैसे रतन का च
मतकार लाटां होती है ॥ तैसे इह संसार ब्रह्म रतन का च
मतकार है ॥ तां ते ब्रह्मरूप है ॥ इतर कछु नहीं हूया ॥ के
वल ब्रह्मरूप है ॥ अरु ब्रह्म ते इतर कहे से मिथ्या है ॥ भ्रम
जानणा ॥ जो कछु आकार भासता है सो मिथ्या है ॥ हे राजन
जो सब आकार मिथ्या है ॥ तो तेरी संवेदन भी मिथ्या है ॥
आत्मा विषे अहंत्व का उथान कोऊ नहीं ॥ केवल ज्ञानमा
त्र है ॥ अरु केवल सत्य रूप है ॥ अरु आनंद रूप है ॥ अरु अ
विद्या तम तें रहित है प्रकाश रूप है ॥ अरु प्रमाणों कर न
ही जानीता ॥ जो इंद्रीयों का विषय नहीं ॥ अरु मन का चित
वना तें रहित है ॥ काहे ते जो सर्व का दृष्टा है ॥ अरु सर्व का
अपणा आप अनभव रूप है ॥ हे राजा तिस विषे स्थित हो
व रहु उ आत्मा कैसा है ॥ जो वडे ते वडा है ॥ अरु सूक्ष्म ते सू
क्ष्म है ॥ अरु स्थूल ते स्थूल है ॥ जिस विषे आकाश भी एक
किसी ओर अणु जैसा पाईता है ॥ अरु ब्रह्मांड भी तिस विषे
अणु समान पाईते हैं ॥ अरु अपणे आप कर पूरण है ॥ अ
रु अपणे आप कर घूर्म है ॥ अरु किंचित भी तिस ते उत्पत्ति

नहीं भया ॥ अरु नाना प्रकार रूप के स्थिति भया है ॥ अरु फु
रनै कर के जगत भासता है ॥ फुरने के निवर्त हूये तें केव
ल शुध आतमा है ॥ तब राजे कहा ॥ हे भगवन तुम क
हते हो ॥ जो संसार संवेदन मात्र है ॥ अरु आतमा शांत रू
प है ॥ शुध है ॥ अरु निर्विकल्प है ॥ तो तिस विषे संवेदन
फुरणा कहां ते आया है ॥ तब कुंभ कहा ॥ हे राजन फुरनां
भी आतमा का चमतकार है ॥ जैसे पवन विषे फुरने की शक्ति
भी है ॥ अरु निस्पंद रहिने की शक्ति भी है ॥ जब फुरता है ॥
तब स्पर्श चलना प्रगट होता है ॥ जब ठहिर जाता है ॥ त
ब प्रगट नहीं होता ॥ तैसे संवेदन जब फुरती है ॥ तब ना
ना आकार होते हैं ॥ अरु जगत भासता है ॥ जब फुरनां मि
ट जाता है ॥ तब केवल शुध आतमा भासता है ॥ हे राजा
आतमा सत्ता मात्र है ॥ अरु संसार भी चिन्मात्र आतमा ही है ॥
जो सम्यक द्रिष्ट कर देषीये ॥ तो आतमा ही भासता है ॥ जो
असम्यक द्रिष्ट कर देषीये ॥ तो दुषदाइक जगत भास
ता है ॥ जिसके मन विषे संसार भावनां है ॥ तिसको दुषदा
ई भासता है ॥ अरु जिसके रिदे विषे आतम भावनां होती है
तिसको आतमा ही भासता है ॥ अरु सुषरूप होता है ॥ का
हे तें जो आतमा नाम अपनां है ॥ जिस जगत को अपनां आ
प जान्या है ॥ तिसको दुष काहे ते होवै ॥ हे राजन इह संसा
र भावनां मात्र है ॥ जैसी जैसी भावनां होती है ॥ तैसे ही द्रिष्ट
आवता है ॥ जिसकी भावनां विष विषे अंम्रत की होती है ॥
तब विष भी अंम्रत ही है ॥ अरु जिसकी भावनां अंम्रत वि
षे विष की होती है ॥ तब विष हो जाती है ॥ काहे तें जो संसार
भावनां मात्र है ॥ जैसी भावनां द्रिढ करता है ॥ जेदिप आगे
उह वस्त न होवै ॥ तो भी हो जाती है ॥ तां ते संसार भावनां मात्र
मिथ्या है ॥ ग्यानवान को दुषकदा चित नहीं देता ॥ अरु अ
ग्यानी को दुषदाई होता है ॥ हे राजन अहंता अरु संवेदन ॥ चि
त अरु चेतन इह भी आतमा की संज्ञा है ॥ जैसे आकाश को कही
ये ॥ षम कहीये ॥ नभ कहीये ॥ इह सर्व संज्ञा आकाश की हैं ॥
तैसे सर्व संज्ञा आतमा की हैं ॥ आतमा ते इतर कछु नहीं ॥ अहं
त्व सर्व आतमा के आश्रय हैं ॥ जैसे सुषन सृष्टि के आश्रय हो

इसपंद

तेहैं ॥ अर स्वर्न भी प्रणाम होइ कर भूषण होता है ॥ जो पूर्व
रूप को त्यागता है ॥ आतमा तैसे नहीं ॥ केवल एकरस है
अर अपणे आप विषे स्थिति है ॥ कदाचित प्रणाम कों नहीं
प्राप्त भया ॥ इह संवेदन आत्मा का चमतकार है ॥ अर स
त असत तें परे है ॥ जेती कछु दृस्य है सो आत्मा विषे नहीं
चित कर के रची है ॥ इसी तें परे है ॥ हे राजन सो कारन का
रज किसका होवे ॥ कारन कार्य तब होता है जो दृस्य होती
है ॥ सो आत्मा किसी का विषे नहीं ॥ कार्य कारन किसका हो
वे ॥ अर विश्व की आदि भी आत्मा है ॥ अर अंत भी आत्मा है
तो मध्य विषे भी आत्मा ही है ॥ जो कछु अवरना से सो भ्रम
मात्र है ॥ जैसे आकास विषे घर मंदर पुर दृष्ट आवते हैं
तिन की आदि भी आकास है ॥ अर अंत भी आकास है ॥ तो
मध्य भी आकास है ॥ जो घर मंदर पुर दृष्ट आवते हैं ॥ सो
मिथ्या हैं ॥ जैसे अग्नि नाना प्रकार दृष्ट आवती है ॥ सो अका
र मिथ्या हैं ॥ एक अग्नि ही है ॥ तैसे सर्व की आदि अंत मध्य
एक आत्मा ही सार है ॥ हे राजन जैसे जल विषे देस भी होता
है ॥ अर काल भी होता है ॥ काहे तें जो दृस्य है ॥ इंद्रीयां का वि
षय है ॥ प्रथम जाना जो इह तरंग अमुके स्थान तें उपजा
है ॥ अर अमुके स्थान जाइ लीन भया है ॥ तो स्थान देस हू
या ॥ अर उपज कर एता काल रहा है सो काल हूया ॥ अर
जिसकों इंद्री विषय न कर सके ॥ तिस विषे देस कैसे होवे
अर काल कैसे होवे ॥ तब राजे कहा ॥ हे भगवन मैं भली प्र
कार जाणा है ॥ जो आत्मा चिन्मात्र है ॥ अर ज्ञान इंद्रीयां अर
कर्म इंद्रीयां तें परे है ॥ अर देस काल इंद्रीयां [illegible] मन कर मैं
जाणीता हैं ॥ जो अमुका देस है ॥ अर अमुका काल है ॥ जहां
इंद्रीयां अर मन नहीं ॥ तहां देस काल कहां है ॥ तब कुंभ क
हा ॥ हे राजन जो ऐसे जाण्या है तो तैं ॥ तो जाण्या आतमा
विषे देस काल कोऊ नहीं ॥ इह मन इंद्रीयां कर जाणीता है
जो इह देस है ॥ अर इह काल है ॥ जब इन तें रहित होकर
देखे ॥ तब केवल आत्मा ही भासे ॥ अर जो इन कर सहित देखे
तो संसार ही दृष्ट आवेगा ॥ हे राजन इन तें रहित होकर देख
जो संसार तेरे विषे कोऊ नहीं ॥ जो अमुका प्रथम कीया ॥ अर

138

अमुकाग्रहमकरों॥ संसारतबलगहोताहै॥ जबलगइन
काअपणेसाथसंयोगहोताहै॥ हेराजनब्रह्मकरकेब्रह्म
कोदेष॥ अरपूर्णकरकेपूर्णकोदेष॥ जोतूंपूर्णहोवैं॥ ज
बपूर्णहोवैंगा॥ तबसर्वओरआपकोंजानेगा॥ अरुसर्व
संज्ञातेराहीहोवैंगीयां॥ अरनिर्वाचपदकोंप्राप्तहोवैंगा॥
जहांइंद्रीयांकीगम्यनहीं॥ केवलआकाशरूपहै॥ जैसे
आकाशअपणींअनंतताकरकेंपूर्णहै॥ तैसेंतूंअपणेचेत
न्यस्वभावकरकेआपपूर्णहोवैंगा॥ जबमनसहितषट
इंद्रीयांतेंरहितहोकरदेषैंगा॥ अपनेंआपकेउ॥ बहुडइ
नसहितभीदेषैंगा॥ तबभीतेरेतांईचेतन्यआत्माहीदृष्टि
आवैंगा॥ संसारशब्द॥ अरतिनकाअर्थतेरेहृदेतेंउडजा
वैंगा॥ शब्दइहहै जोसंसारशब्दहै॥ तिसकोंसतजानणांइ
हशब्दकाअर्थहै॥ सोभावनांतेरीनिवृतहोजावैंगा॥ केवल
आकाशरूपआत्माहीभासेगा॥ अरसंसारसंवेदनमात्र
है॥ संवेदनांकहीयेचितशक्तिकाचमत्कारहै॥ अरणहीचि
तशक्तिब्रह्माहोकरस्थितभईहै॥ अरब्रह्माहोइकरसं
सारकौंदेषणेलागीहै॥ जबअंतरमुषहोतीहै॥ तबआ
त्माहीदृष्टिआवताहै॥ आतमासदाएकरसहै॥ जबबहि
रमुषहोतीहै॥ तबसंसारदृष्टिआवताहै॥ जैसीइहभाव
नांकरताहै॥ तैसेंहीआगेंदृष्टिआवताहै॥ जोसंसारकीभा
वनांहोतीहै॥ तबसंसारहीभासताहै॥ अरजोआत्माकीभा
वनांहोतीहै॥ तोआत्माहीदृष्टिआवताहै॥ अरआतमास
दाएकरसहै॥ अरअसंसारीहै॥ तातेंहेराजनतूंआत्माकी
भावनांकर॥ जोतेरेतांईआत्माहीभासै॥ इतिश्रीनिर्वा
णप्रकरणेश्रीबरवजविबोधनंनामसर्गः॥ ६५॥ कुं
भोवाच॥ हेराजनइहसंसारजोतेरेतांईभासताहै॥ सोआ
त्माविषेनहीं॥ केवलशुधआत्माविषेजुअहंउत्थानहै॥
नै सोईसंसारहै॥ अहंकाजोचमत्कारहै॥ सोअसतहै॥ नअसत
है॥ नअंतरहै॥ नबाह्यहै॥ नअन्यहै॥ केवलअपणेआपवि
नी षेअद्वैतआत्मास्थितहै॥ संसारकाअहंसाभाववैंनहीं॥ अहंसा
भावतिसकोंकहीताहै॥ जोपहिलेंहोवैपाछेंनासहोवे॥ सोसं
सारकाउदेहोणां॥ अरनहोणां॥ आत्माविषेनहीं॥ केवलअ
पनेंआपविषेस्थितहै॥ इसतेंइतरकछुनहीं॥ इहकल्पणांभी

आत्मा विषे नहीं ॥ जो केवल आपणे आप विषे स्थित है सु
ना त्रिक ॥ तिस विषै वाणी की गम्य नहीं ॥ वाणी तिस कों क
हती है ॥ जहां दूसरा होता है ॥ जहां दूसरा न होवै ॥ तहां वा
णी क्या कहै ॥ इह कहणा भी तेरे उपदेश निमित कहा है
आत्मा विषे किसी शब्द का प्रवितु नहीं ॥ हे राजन ऐसा
आत्मा कारण कार्य किस का होवै ॥ आत्मा शुध है ॥ अर
निराकार है ॥ अर प्रमाणों तें रहित है ॥ जो किसी लक्षण
कर न जाणीये है ॥ सो आकार हो कर स्थित भया है ॥ अर
शांति रूप है ॥ हे राजा ऐसा आत्मा कारण कार्य किस का
होवै ॥ कारय कारण तब होता है ॥ जब प्रथम मैं प्रणाम कों
प्राप्त होता है ॥ अर दोनों कों प्राप्त होता है ॥ सो आत्मा शांत
रूप है ॥ अर कारण तब होता है ॥ जो क्रिया कर के कार्य कों
उत्पति करता है ॥ सो आत्मा अक्रिय है ॥ क्रिया तें रहित है
अर कारण कों कार्य तें जाणीता है ॥ सो आत्मा चिन्हों तें
रहित है ॥ अर प्रमाणों का विषय नहीं ॥ ताते कारण कार्य
आत्मा किसी का नहीं ॥ अर आत्मा कों कार्य कारण मान
णा मेरे तांई आश्चर्य आवता है ॥ हे राजन जो वस्तु उपज
ता है ॥ सो नष्ट भी होता है ॥ अर जो नष्ट होता है सो उपज
ता भी है ॥ सो आत्मा सर्व की आदि है ॥ अर अजन्मा है ॥ आ
त्मा विषे विकार कोऊ नहीं ॥ तिसी विषे स्थिति होइ ॥ जो ते
रा संशय निवर्त हो जावै ॥ ए संसार अज्ञान कर के भासता
है ॥ जब तूं स्वरूप विषे स्थित हो कर देषेंगा ॥ तब संसार
न भासेगा ॥ अर ऐसा भी न भासेगा जो संसार आगे था
अब निवर्त हूया है ॥ एक रस आत्मा ही भासेगा ॥ केवल
सत् आकाश हो जावेंगा ॥ सून कहीये संसार तें रहित हो
जावेंगा ॥ स्वरूप चैतन्य कर के नाना भी उही है ॥ अर एक भी
उही है ॥ संन है ॥ अर सून तें रहित है ॥ द्वैत रूप भी उही है ॥ अ
द्वैत रूप भी सोई है ॥ ऐसे भासेगा ॥ इति श्री निर्वाण प्र
करणे शिषरध्वज प्रथम बोधनं नाम सर्गः ॥ ७६ ॥ कु
म्भोवाच ॥ हे राजा जो कछु देषीता है सो केवल चैतन्य घन
है ॥ जिस विषे अहं त्वं शब्द कोऊ नहीं ॥ अर अहं त्वं शब्द भ्रम
दृढ कर के होते हैं ॥ जब आत्मा विषे स्थित हो कर देषेंगा ॥ त
ब आत्मा तें इतर कछु न भासेगा ॥ जो अहं त्वं शब्द कहां भासे
हे राजन नाना प्रकार की संज्ञा चित्त ने कल्पी है ॥ जब चित्त तें

रहित होवैंगा ॥ तब नाना संज्ञा अरु एक संज्ञा कोऊ न रहे
गी ॥ हे राजन सर्व ब्रह्म है ॥ एवाक वेद का सार है ॥ जब इस
वाक विषे दृढ भावना होवै ॥ ऐसी बुधि होवैगी ॥ तब ए
करस आत्मा ही दृष्ट आवैगा ॥ अरु चित नष्ट हो जावैगा ॥
जब चित नष्ट हूया ॥ तब केवल महा शुध आकाश की
न्याई स्थित होवैंगा ॥ तब जावै विदेह होइ ॥ जावै सदेह हो
इ ॥ जावैं रहै ॥ जावैं चलै ॥ तेरे ताई कष्ट कोऊ न होवैगा ॥
निर्दुष पद कौ प्राप्त होवैंगा ॥ जो पद सर्व का आदि है ॥ अ
रु सर्वदा मुक्ति रूप है ॥ तब राजे कहा ॥ हे भगवन तु
मो कहा ॥ जो चित के नष्ट हूये तें दुष कोऊ न रहेगा ॥ सो
चित नष्ट का उपाइ तुम कहा है ॥ परंतु मैं दृढ कर के नहीं
समझा ॥ तां तें मेरे दृढ होणे के निमित बहुड़ उपाकर के
कहो जो चित नष्ट कैसे होवै ॥ तब कुंभ कहा ॥ हे रा
जन ए चित न किसी काल का है ॥ अरु न किसी को है ॥ न ए
दृषीता है ॥ चित ही है नहीं तो मैं तेरे ताई क्या कहौं ॥ अरु जो
चित तुझ को दृष्ट आवता है ॥ तो तें आतमा जाणै ॥ आत
मा तें इतर वस्त कछु नहीं ॥ हे राजन महां सर्ग के आदि
अरु अंत सर्ग के मध्य कोऊ नहीं ॥ केवल आतमा है ॥ अर
एक हणनी आतमा विषे नहीं ॥ मैं तेरे जनावणे के निमि
त कहा है ॥ अरु मध्य जो कछु दृष्ट आवता है ॥ सो अज्ञा
नी की दृष्ट विषे है ॥ आत्मा विषे सृष्ट कोऊ नहीं ॥ आत्मा
किसी का उपादान कारण अरु निमित कारण नहीं ॥ का
हे तें अच्युत जो है ॥ प्रणाम को नहीं प्राप्त भया ॥ अरु उपादा
न भी प्रणाम कर होता है ॥ आतमा शुध है ॥ अरु निराकार
है ॥ आकाश रूप है ॥ सो कारण कार्य किसका होवै ॥ अरु चि
त भी वासना रूप है ॥ वासना तब होती है ॥ जब वास होती है
वास कहीये वासना का लीया ॥ जो आगे सृष्ट ही नहीं ॥ तो
वासना किसकी फुरै ॥ अरु चित विषे संसार की स्थिति कैसे
होवै ॥ तां तें चित कछु नहीं ॥ इह विश्व आतमा का चमत्कार
है ॥ अरु सृष्ट आतमा विषे कोऊ नहीं ॥ निराले बंध अपणे आ
प विषे स्थित है ॥ हे राजन संसार भी नहीं भया ॥ तो अहं त्वं आ

ष्टभी आत्मा विषे कोऊ नहीं ॥ दृश्य तब होते हैं ॥ जब चित्त
होता है ॥ अरु चित्त तब लग है जब लग वासना है ॥ जब निर्वा
ण पद को प्राप्त भया ॥ तब कल्पना कोऊ नहीं रहती ॥ हे राजन
इह संसार महाप्रलै विषे नष्ट हो जावैगा ॥ सत असत संसार
कोऊ न रहेगा ॥ एक आत्मा ही शेष रहेगा ॥ जो निराकार अरु
शुद्ध है ॥ जब लग महाप्रलय नहीं भई ॥ तब लग संसार है ॥ सो
महाप्रलय क्या है ॥ श्रवण कर ॥ एक चिन्मात्र आत्मा का साक्षात
कार होवणा ॥ तिस कर के सृष्टि का शेष भी न रहेगा ॥ सो ज्ञान
ही महाप्रलै है ॥ अरु अब जो दृष्ट आवता है सो मिथ्या है ॥ इह
छाया भी मिथ्या है ॥ अरु इस का ज्ञान होवणा भी मिथ्या है ॥ जै
से स्वप्न की छाया भी मिथ्या है ॥ अरु तिस का ज्ञान होवणा भी मि
थ्या है ॥ तैसे जाग्रत संसार स्वप्न मात्र है ॥ कारण बिना होइ दृष्ट
आवता है ॥ जो कारण बिना है ॥ सो मिथ्या है ॥ इस का कारण
अज्ञान नहीं है ॥ जो आपको न जानणा ॥ जब आपको जान्या ॥ त
ब अपना आप ही भासैगा ॥ जैसे स्वप्ने विषे अपने न जान
णे कर तिन आकार भासते हैं ॥ जब आपको जान्या ॥ तब अ
पणा आप जानीता है ॥ जो मैं ही था ॥ हे राजन मेरे ताई तो एक
आत्मा ही दृष्ट आवता है ॥ अरु आत्मा ही है ॥ आत्मा ते इतर
संसार कोऊ नहीं ॥ अरु इस संसार को स्थिर मानणा मूर्खता
है ॥ सदा चलरूप जाणीता है ॥ वेद शास्त्र अरु लोक भी कहते
हैं ॥ जो संसार मिथ्या है ॥ अरु आप भी जाणता है ॥ जो नष्ट हो जा
ता है ॥ जो दृष्ट आवता है ॥ तिस विषे आस्था करणी मूर्खता है
आत्मा विषे संसार नाना अरु अनाना कोऊ नहीं ॥ आत्मा स
र्वदा अपने आप विषे स्थित है ॥ शुद्ध है ॥ अरु अच्युत जिउ
का तिउ है ॥ इति श्री निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोध
नं नाम सर्गः ॥ ८८ ॥ शिखरध्वज उवाच ॥ हे भगवन अब
मेरा मोह नष्ट भया है ॥ अरु अपणा आप मैं जान्या है ॥ तुम्हा
री कृपा ते संसार भ्रम नष्ट भया है ॥ अरु शोक समुद्र को मैं
तरता हों ॥ अरु शांत पद को प्राप्त भया हों ॥ अरु मेरे विषे अ
हंत्वं शब्द कोऊ नहीं ॥ निर्वाण पद को प्राप्त भया हों ॥ अच्युत
हों ॥ चिन्मात्र हों केवल हों ॥ अरु शुद्ध हों ॥ कुंभ उवाच ॥ हे रा
जन आत्मा शुद्ध आकाश की न्याई निर्मल है ॥ आकाश ते भी
अति निर्मल है ॥ तिस विषे अहं मम है ॥ सो अहं मोह ते उप

जीहै॥ मोहकहीयेअविचार॥ जबविचारहोताहै॥ तब
अहंकोनहींपाईता॥ इहविश्वसंवेदनांमोंहे॥ संवेदना
सर्वकेआदिहोकरस्थितिभईहै॥ जबसंवेदनाअंत
नहीं
र्मुषहोतीहै॥ तबसर्वलीनहोजाताहै॥ संवेदविषेबंध
अरमुक्तिहै॥ जबबाहिरमुषहोतीहै॥ तबबंधहोता
है॥ जबअंतर्मुखहोतीहै॥ तबमोक्षहोताहै॥ जिसनेमन
अरइंद्रीयोंतेंरहितहोकरअपनांआपदेष्याहै॥ तिस
कोजिउकातिउदृष्टआवताहै॥ अरजोमोहसंयुक्तिदेष
ताहै॥ तिसकोविवर्तदृष्टआवताहै॥ जैसेसंम्यकदृष्टक
केभूषनोंविषेस्वर्नदृष्टआवताहै॥ जबभूषनोंकेआ
कारजातेहैं॥ तबभीसोनांहीहै॥ अरजोमूर्षहै॥ तिसकौं
सोनेंविषेभूषनदृष्टआवतेहैं॥ चिरकालकेअभ्यास
अरजोज्ञानीको=
करकें बुधिइनविषेभीफुरतीहै॥ तोभीप्रारब्धकेबे
=तो=
गपर्यंतचेष्टाहोइहै॥ तबचेष्टाविषेभीआत्माहीदृष्टआ
तातेंकेवल आतमांकाचम तकाराही दृष्ट आवताहै
वताहै॥ कंचनहोताहै॥ जैसेसोनेंविषेभूषनअरआका
शविषेनीलमा॥ अरवाइविषेस्पंदहै॥ तैसेआत्मावि
षेसृष्टिहै॥ जैसेआकाशविषेनीलमादेषणेमात्रहै
वास्तवकछुनहीं॥ तैसेआत्माविषेसृष्टिकछुनहीं॥ वा
स्तवकरकेंभ्रांतिमात्रहीहै॥ जबभ्रांतिनिवर्तहोवैगी॥ त
बजगतकाशब्दअरअर्थसर्वओरतेंत्यागहोवैगा
= पर
शब्दअरअर्थकीभावनांतेंचेष्टाभीहोतीहै॥ तोरसजो
है॥ रागअभिलाषतिसतेंरहितहोतीहै॥ अरदुषको
उनहींहोता॥ तिसीकौंमुनीश्वरनिरवाणकहतेहैं॥ ज
बैऐसानिर्वाणपदहूया॥ तबशांतअरसंतनपदकौं
पाइकरस्थितिहोताहै॥ हेराजनजबअहंकाउत्थान
हूया॥ एहीबंधनहै॥ अरअहंकानिरवाणहोवणांइही
मुक्तिहै॥ अरअहंकेहोवणेकरइसीतेंसंसारदुषहै
जबलगअहंकाउत्थानहै॥ तबलगसंसारहै॥ अरजब
लगसंसारहै॥ तबलगअहंकाउत्थानहै॥ जबसंसारकी
सत्ताजातीरहै॥ तबअहंजोसंवेदनहै॥ सोभीनष्टहो

जावैगा ॥ जब संवेदन नास भई ॥ तब अहंभान नष्ट होजावै
गी ॥ जब अहं नष्ट भई ॥ तब केवल सुध आत्मा ही शेष र
हेगा ॥ अर अनामय कहिये निरदुष ही भान होवैगा ॥ अ
हं ब्रह्म का उत्थान भी न रहेगा ॥ अर चैतन्य मात्र ही रहेगा
हे राजन जिसको सर्व ब्रह्म की बुधि भई है ॥ तिसको संसा
र की बुधि नहीं ॥ अर जिनको संसार बुधि है ॥ तिनको ब्रह्म
बुधि नहीं ॥ जैसी जैसी भावना दृढ होती है ॥ तैसा ही आगै
दृष्ट आवता है ॥ जिसको ब्रह्म भावना दृढ होती है ॥ सो ब्र
ह्म रूप होजाता है ॥ अर जिसको जगत की भावना होती है
तिसको जगत है ॥ हे राजन अब तूं जो आपा है ॥ अर ब्रह्म स्व
रूप हूया है ॥ जो सुध है ॥ अर निर्मल है ॥ अर अस तर्क है
जो किसी दृष्ट अर लक्षण का विषे नहीं ॥ अर इंद्रियों का
विषय नहीं ॥ हे राजन ऐसा आत्मा कार्य कारण किसका
होवै ॥ जो केवल अद्वैत है ॥ अर विश्व आत्मा का चमत्का
र है ॥ जैसे समुद्र विषे नाना प्रकार के तरंग पवन करि उ
पजते हैं ॥ तो भी समुद्र तें इतर नहीं ॥ तैसे आत्मा विषे नाना
प्रकार की विश्व संवेदना करके उपजती है ॥ आत्मा तें इत
र कछु नहीं ॥ फुरनें मात्र है ॥ जैसे चंद्रे विषे मनोराज करकें
कोऊ पुरुष विश्व कल्पता है ॥ अर नाना प्रकार की चेष्टा क
रता है ॥ उनकी चेष्टा तब लग है ॥ जब लग संकल्प है ॥ ज
ब संकल्प निवृत्त हूया ॥ तब सनथं भा ही रहिता है ॥ जैसा
आगे भी संनथा ॥ अर तिसका संवेदन विषे भ्रष्ट था ॥ तैं
से ही इह संसार संवेदन मात्र है ॥ जब संवेदना अंतरमु
ख भई ॥ तब संसार की सत्ता जाती है ॥ हे राजन संसार सत्ता
तब जाती है ॥ जो आगे ही असत है ॥ अर जो सत वस्तु होती
है ॥ तिसका नास कदाचित नहीं होता ॥ ताते केवल संवेद
ना कल्पी है ॥ जैसे एक सिला विषे पुरुष पुतलीयां कल्पता
है ॥ तो सिला विषे पुतली तो कोऊ नहीं ॥ जो ज्यों की त्यों सि
ला ही है ॥ तैसे संवेदना करके आकार दृष्ट आवते हैं ॥ ज
ब चित संवेदना तें रहित होवैगा ॥ तब आत्मा कों अपणां

पात्रहोटे

आपु जाणैगा ॥ अरु अद्वैत पद कों प्राप्त होवैगा ॥ जो शांत
पद है ॥ अरु शुध आकाश रूप है ॥ हे राजन सर्व अर्थ अ
रु सर्व शब्द की भावना इह ब्रह्म अर्थ है ॥ जहां कोउ कल्प
ना नहीं ॥ जब सम्यक दर्शी होता है ॥ तब शेष आत्मा ही दृष्टि
आवता है ॥ अरु इह भावना भी उठ जाती है ॥ जो एक संसार
है ॥ एक ब्रह्म है ॥ केवल ज्ञेय मात्र होइ ही रहता है ॥ कैं सात्ते
य रहता है जो सिला की न्याई ज्ञान है ॥ ऐसे शेष रहता है ॥
॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे शिषरध्वज बोधनं नाम स
र्गः ॥ ७८ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन जैसे तुम कहते हो सो
सत है ॥ अरु मैं ऐसे जानता हों जो संसार आत्मा का कार्य है
अरु आत्मा कारण है ॥ जो आत्मा कार्य कों क्रया तो आत्म स्वरू
प क्रया आत्मा तें इतर नहीं ॥ कुंभोवाच ॥ हे राजा आत्मा
चैतन्य मात्र है ॥ कार्य कारण किसी का नहीं ॥ जो आत्मा अप्र
तर्क है ॥ अरु क्रया तें रहित है ॥ अच्युत है ॥ अरु तिरिछ है ॥ जो
अशब्द है ॥ सो कार्य कारण किस का होवै ॥ अरु कारण कों
कार्य द्वारा जानीता है ॥ अरु आत्मा किसी प्रमाण का विषय
नहीं जो अप्रतर्क है ॥ चिन्ह तें रहित है ॥ अरु कारण तब होता
है ॥ जो क्रया होती है ॥ आत्मा क्रया तें अतीत है ॥ अच्युत है ॥ अ
रु बाणी का विषय नहीं ॥ निरीच्छ है ॥ न किसी का कारण है
न कार्य है ॥ न कर्म है ॥ केवल जिंउ का तिंउ अपणे आप विषे
स्थिति है ॥ अरु चैतन्य मात्र है ॥ शिव रूप है ॥ अरु शुध है ॥ इह
विश्व भी चैतन्य मात्र है ॥ जैसे आकाश विषे आकाश स्थिति
होवै ॥ तैसे आत्मा विषे विश्व आत्म रूप कर स्थिति है ॥ ऐ
से जो विश्व चैतन्य मात्र है ॥ तिस विषे असम्यक दरशी अ
ज्ञान कर कें नाना प्रकार कल्पता है ॥ अज्ञान कहीये वस्तु का
न जानणा ॥ सो वस्तु परमात्मा है ॥ तिस के प्रमाद कर के वास
ना रूप जो चित है ॥ सो विश्व कों कल्पता है ॥ सो विश्व शब्द मा
त्र है ॥ शब्द कहीये नाम मात्र है ॥ अर्थ कछु नहीं ॥ जैसे दूसरा
चंद्रमा आकाश विषे देषीता है ॥ अरु जैसे समुद्र विषे तरंग
मृगतृष्णा के जल विषे जो जल ॥ जैसे बालिक कों पिशाच वे वि
षे वैताल भ्रम कर कें भासता है ॥ तैसे असम्यक दरशी आत्मा

विषे विश्व कल्पता है ॥ अरु सम्यक दर्शी ऐसे जानता है
जो आत्मा शुध है अजन्मा है ॥ अरु अविनासी है परम है ॥
अरु निराकार है ॥ हे राजन जब तूं सम्यक दृष्ट कर देषैगा
तब संसार का अहं स्वाभाव लीन देषैगा ॥ काहे ते जो चित का
कल्पा हूया है ॥ अरु चित अज्ञान करके उपजा है ॥ अरु स्वरू
प विषे न चित है ॥ न अज्ञान है ॥ न संसार है ॥ केवल अद्वैत मा
त्र ही है ॥ तहां एक कहां ॥ अरु द्वैत कहां केवल मात्र पद है ॥ ज
ब ज्ञान नष्ट हूया ॥ तब अहंत्वं संवेदन चित समेत नष्ट हो जा
वैगा ॥ बहुड़ नेम न दृष्ट आवैगा ॥ हे राजन आत्मा ते इतर जो
कछु दृष्ट आवता है ॥ सो अज्ञान करके है ॥ विचार कीये ते नहीं
रहता ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन अज्ञान क्या है ॥ अरु नास कैं
से होवै सो कहो ॥ कुंभोवाच ॥ हे राजन एक ज्ञान है ॥ अरु
एक अज्ञान है ॥ ज्ञान एह है जो पदारथ यथारथ जानणां
अरु इह अज्ञान है ॥ जो पदारथ कों न जाणनां ॥ अरु एक ज्ञा
न भी अज्ञान है ॥ सो श्रवण कर ॥ मृगत्रिष्णा का जल देषक
र जो आस्था करणी जो इह है ॥ अरु जेवडी विषे सर्प सिपी
विषे रूपा देषणां ॥ अरु तिस कों सत जानणां ॥ इह ज्ञान भी
अज्ञान है ॥ काहे ते अज्ञान है ॥ जो सम्यक दर्शी होय कर न
हीं देष्या ॥ इह दृष्टांत है ॥ अरु दार्ष्टांत एह है ॥ जो शुध आत्मा
निराकार अच्युत विषे मैं हों ॥ अरु मेरा अमुका वर्णाश्रम
है ॥ अरु नाना प्रकार की विश्व जानणी सो ज्ञान भी अज्ञान
है ॥ अरु मूर्खता है ॥ हे राजन न कोऊ जन्मता है ॥ न मृत्यु होता
है ॥ जिंउ का तिंउ आत्मा स्थित है ॥ तिस विषे जन्म मरणादि
क विकार देषणे ॥ ऐसा जो ज्ञान है सो अज्ञान है ॥ हे राजन
जैसे कोऊ ब्राह्मण होइ ॥ अरु ऊंचा बाहों करके कहै जो मैं श
द्र हों ॥ मेरे ताईं वेद का अधिकार नहीं ॥ जैसे कोऊ पुरुष क
हे जो मैं मूया हों ॥ तिस कों मैं जानता हों ॥ तैसे आप कों कछु
वर्णाश्रम का अभिमान लेकर कहणां सो मूर्खता है ॥ काहे
ते जो असम्यक दर्शी है ॥ जब जिंउ का तिंउ जाणे तब बहु
री न होवै ॥ हे राजन ऐसा ज्ञान जो सम्यक दर्शन कर नष्ट
हो जाता है ॥ सो अज्ञान है ॥ जैसे सूर्य की किरण विषे जल
की प्रतीत होती है ॥ किरणों के ज्ञान ते जल का ज्ञान नष्ट हो जा

आदि इंद्रयों ते रहित

अ

मैं हौं

ताहै॥ सोजगतकाजानणेंअग्ज्ञानथा॥ जैसेजेवडीविषेस
र्पकाजानणा॥ सोसर्पकाज्ञानजेवडीकेज्ञानतें नष्टहो
ताहै॥ सोअग्ज्ञानहै॥ तैसेशुधचिन्मात्रविषेंआपकोंदे
हइंद्रीयांअरविश्वदेषणांइहजोज्ञानहै॥ सोअग्ज्ञान
है॥ सम्यकदर्शनकर्केनष्टहोताहै॥ जबऐसासम्यक
दर्शीहोवैंगा॥ तबअध्यात्मिकतापनिवर्तहोजावैगा
अरशुधहोवैंगा॥ जोआत्माहै॥ अजहै॥ अरअनंतरूपहै
सतअरअसतसर्वात्माहै॥ तिसतेंइतरकछुनहीं॥ अ
रप्रकाशरूपहै॥ सोऐसातूंहै॥ हेराजनअग्ज्ञानतेंभीअ
वरकोउनहीं॥ इसचित्तकेउदेहोणेकानामअग्ज्ञानहै
अज्ञानकाकारणचित्तहै॥ अरजोपदार्थचित्तकरकै
याहै॥ सोचित्तकर्केनष्टहोताहै॥ तांतेतूंचित्तकर्केचित
कोंनाशकर॥ जैसेअग्निपवनकरकेउपजताहै॥ अ
रपवनहीकरशांतिहोजाताहै॥ तैसेचित्तकोंचित्तकर
नष्टकर॥ हेराजनतूंहैं॥ नमैंहों॥ नइंद्रीहैं॥ नअहंकार
है॥ नइहजगतहै॥ केवलशुधआत्माहै॥ हेराजनजोचि
तहीनहीं॥ तौचित्तकाकार्यविश्वकहांहोवै॥ इहअग्ज्ञा
नकोंदृष्टआवताहै॥ जोचित्तहै॥ अरविश्वहै॥ केवल
अपनेंआपविषेंआत्मास्थितिहै॥ हेराजनचित्तका
उदेहोणेंअग्ज्ञानतेंहै॥ जबअग्ज्ञाननष्टहूया॥ तबचि
तअरअहंत्वंसर्वनष्टहोजातेहैं॥ हेराजनतूंशुधआ
त्माहैं॥ अरएकहैं॥ अरप्रकाशरूपहै॥ अच्युतहैं॥ अर
निरंतरहैं॥ अरदेहइंद्रीयांआदिकरूपहोकरभीतूं
हीस्थितभयाहैं॥ इछाअरअनिछाभीतूंहीहैं॥ जैसेचं
द्रमाकीकिरणचंद्रमातेंभिन्ननहीं॥ तैसेतूंहैं॥ अरनि
र्विकल्पहैं॥ कछुफुरणातेरेविषेनहीं॥ तूंकेवलनिजिंउका
तिउस्थितिहैं॥ इतिश्रीनिरवाणप्रकरणेपरमार्थ
उपदेशोनामसर्गः॥८२॥ श्रीवशिष्टोवाच॥ हेराम
जीजबऐसेंकुंभनेकहा॥ तबशिखरधजश्रवणकरके
शांतकोंप्रापतभया॥ नेत्रमूंदकेसर्वअंगोंकीचेष्टातेंर

हित भया॥ जैसे शिला ऊपर पुतली लिषी होती है॥ तैसे २
स्थित हूया॥ एक महूर्त पर्यंत निर्विकल्प स्थित रहा॥
अरु बहूडि उठ्या॥ तब कुंभ कहा॥ हे राजन आत्मा
जो निर्विकल्प है तिस निर्विकल्पता समाधि बिषै तैंने से
न कीया है॥ अरु ज्ञेय जो जानने योग्य है सो तैंने जानी
है॥ अब अज्ञान तेरा नष्ट भया है॥ अथवा नहीं भया॥ अ
रु आनंद कौं प्राप्त भया है॥ अथवा नहीं भया॥ सो कहु॥
॥ तब राजे कहा॥ हे भगवन तुमारी कृपा तें मैं उत्तम
पद कौं प्राप्त भया हौं॥ हे भगवन तत्ववेत्ता के संग तें जो
अमृत पाईता है॥ सो क्षीरसमुद्र तें भी नहीं पाईता॥ अ
रु देवतों बिषै भी नहीं पाईता॥ तुमारी कृपा तें ऐसे अं
मृत पाया है॥ जिसका आदि अरु अंत कोऊ नहीं॥ अनं
त है॥ अरु अमृतसार है॥ अब मेरे दुष सभ नष्ट हो ग
ये हैं॥ अब मैं जागया हौं॥ अरु आपनें आपकौं जानया
है मैं आतमा हौं॥ मेरे साथ चित्त कोऊ नहीं॥ मैं केवल अ
पणे आप बिषे स्थित हौं॥ अब इछा मेरे ताई कोऊ न
हीं॥ अपणे स्वभाव कौं पाया है॥ अरु सर्व के आदि पद
कौं प्राप्त भया हौं॥ जिस बिषै कोऊ क्षोभ नहीं॥ ऐसे नि
र्विकल्प पद कौं प्राप्त हूया हौं॥ हे भगवन ऐसा अपणा
आप है मेरा॥ जिसकर सर्व प्रकाशते हैं॥ तिसके पाये
बिना कोटि जन्म पाये हैं॥ अरु दुष मेरे नास भये॥ अ
ब तुमारी कृपा तें एक क्षण बिषै जाना है॥ आगै अब वण
नी कर्ती था॥ सो कारण एक वचन था जो आगै न जान्या॥ अ
ब जान्या है॥ कुंभोवाच॥ हे राजन तेरे कषाइ अब
परपक हूये हैं॥ कषाइ कहीये वासना॥ जब वासना
परपक होती है॥ तब पके फल की न्याई गिड पडती है
जैसे फल वृक्ष साथ परपक होता है॥ तब यत्न विना।
गिड पडता है॥ तैसे तेरी वासना अब परपक भई थी
जो अंतहकरण शुध भया है॥ अब अज्ञान तेरा नष्ट
भया है॥ जब अंतहकरण मलिन होता है॥ तब संतों के

वचन नहीं लागते ॥ जब अंतहकर्न शुध होता है ॥ तब सं
तो के वचन लागते हैं ॥ जैसे कोमल देह कों बाण लागे ॥ त
ब शीघ्र ही वेध्या जाता है ॥ तैसे शुध अंतहकर्न विषे शी
घ्र ही उपदेश प्रवेश कर्ता है ॥ हे राजन अब तेरी वासनां
भोगों की नष्ट भई है ॥ अर स्वरूप जानने की तेरी इछा भ
ई है ॥ तो तें जाग्या है ॥ हे राजन मैं उपदेश तब कीया है ॥
जो तेरा अंतहकर्न शुध भया है ॥ अर प्रतिमा भी तहां प
डती है ॥ जहां निर्मल गेड होती है ॥ जैसे स्वेत वस्त्र होता
है ॥ अर केसर का रंग तिस कों शीघ्र चढता है ॥ अर रंग
भी उजल होता है ॥ तैसे शुध अंतहकर्ण विषे संतो के व
चन प्रवेश करते हैं ॥ अर सोभा पावते हैं ॥ हे राजन जब
लग अंतहकर्न मलिन होता है ॥ ता वें जेता उपदेश क
राये ॥ तो भी स्थित नहीं होता ॥ जब भोगों विषे वैराग हू
या ॥ तब वासनां को नहीं रहती ॥ केवल आत्मपद की
इछा होती है ॥ तब स्वरूप साक्षात्कार होता है ॥ हे राज
न अब तेरा सर्वत्याग सिध हूया है ॥ अर अज्ञान नष्ट
हूया है ॥ जो अवर उपाध को नहीं ॥ चित ही बडी उपा
ध है ॥ जब चित नष्ट हूया ॥ तब दुःख को नहीं रहता ॥
अब तूं सुखेन ही विचर ॥ तेरे ताई दुख को नहीं ॥ अर
शोक को नहीं ॥ भै को नहीं ॥ तें अनंत पद को प्राप्त भ
या हैं ॥ तब राजे कहा ॥ हे भगवन अज्ञानी कों चित
का संबंध है ॥ अर ज्ञानवाने कों चित का संबंध नहीं हो
ता ॥ जो स्वरूप विषे स्थित है ॥ तो चित बिना जीवन्मुक्ति
हूया विबेक सें वर्तता है ॥ चेष्टा विषे कैसे वर्तता है ॥ त
ब कुंभ कहा ॥ हे राजन तूं सत कहता हैं ॥ जो ज्ञानी कों
चित का संबंध नहीं ॥ सो ज्ञानी विषे चित कदाचित न
हीं ॥ जैसे पथर की सिला विषे अंगरी नहीं होती ॥ तैसे
ज्ञानी कं चित का संबंध नहीं ॥ हे राजन चित जो है सो वा
सनां रूप है ॥ सो वासनां जन्म मरन का कारण हैं ॥ सो वा
सनां जीवन्मुक्ति कों नहीं रहिती ॥ ज्ञानवान का चित सत
पद कों प्राप्त भया है ॥ अर अज्ञानी चित विषे स्थित है ॥

तिसकरके जन्मता नहीं है ॥ अरु मृतक नहीं होता है ॥ अरु जो चि
त सत विषे स्थित है ज्ञानी ॥ सो ऽधानुवर्त प्रारब्ध भोग
भोगता है ॥ अरु सर्वात्मा ही देषता है ॥ जद्यपि इंद्रीयां कर
चेष्टा भी करता है ॥ तो भी सर्व आत्म देषता है ॥ क्रियाके क
रणे तें रहित होता है ॥ अभिमान तें ॥ जो मैं कर्ता हों ॥ अरु भो
गता हों ॥ अरु जो अज्ञानी आपको कर्ता मानता है ॥ तिसको
संसार सत भासता है ॥ अरु सत जानके संकल्प विकल्प
करता है ॥ सो ज्ञानवान को संसार की सत्यता नहीं भासती ॥ अ
रु आपको अकर्ता अभोक्ता देषता है ॥ अरु अभिलाष पू
र्वक चेष्टा नहीं करता ॥ हे राजन संसार को सत जानणा ॥ अरु
आपणे विषे क्रिया देषणी तब लग होता है जब लग चित
का संबंध होता है ॥ जब चित ही नष्ट होगया ॥ तब संसार अ
रु कर्म कहां रहे ॥ हे राजन अब चित का तैंने त्याग कीया है
तो तैं सर्व त्यागी भया है ॥ अरु आगे सर्व त्याग न भया था ॥ अ
ब अहं भाव तेरा दूर भया है ॥ जो अज्ञान का कार्य था ॥ जब
अज्ञान नष्ट भया ॥ तब अहंता न रहा ॥ अहं के त्यागणे क
र सर्व त्याग सिध भया ॥ अरु आगे तैं ने राज का त्याग कीया
था ॥ सो राज विषे तेरा कछु न था ॥ बहुड तपादिक त्याग की
या ॥ बहुड बन तें आदि लेकर सर्व सामिग्री का त्याग कीया
था ॥ अब तिसका त्याग कीया है ॥ जो त्यागणेवाला है अहं
भाव ॥ तो तैं सर्व त्यागी भया ॥ अरु जो कछु जानणे योग्य है
तिसको जान्या है ॥ अरु शांत पद को प्राप्त भया हैं ॥ हे राजन
तूं आत्मा हैं सर्व दुषों तें रहित हैं ॥ जैसे मंदराचल पर्वत तें र
हित क्षीरसमुद्र शांत को प्राप्त भया ॥ तैसे ही अज्ञान रूप मं
दराचल तें रहित तूं शांत पद को प्राप्त भया हैं ॥ अब तैं जा
न्या हैं ॥ अरु चित का त्याग कीया है ॥ तो तैं सर्वात्मा भया हैं ॥
अरु अद्वैत हैं ॥ हे राजन जब दो अक्षर होते हैं ॥ तब तिनकी
संज्ञा नाना प्रकार होती है ॥ जो अंतर विषे सुष दुष धर्म
अधर्म होते हैं द्वैत ॥ अरु जो एक का एक ही अक्षर रहे तब सर्व
का आत्मा है ॥ तैसे दूसरा अज्ञान नष्ट भया है ॥ अरु सत पद
को प्राप्त भया हैं ॥ अरु शुद्ध निर्मल हैं ॥ हे राजन जो ज्ञानवा
न है ॥ तिस चित का त्याग कीया है सम्यक दृष्टि कर कैं ॥ बहुड

दु तिनकों दुषके तूं नहीं होता ॥ सोतं तिसपदकों प्राप्त भया
हैं ॥ जिसविषे दुषको नहीं ॥ अरु तिसपदकें प्राप्त भया
हैं ॥ जहां स्वर्गादिक सुष तुछ हैं ॥ स्वर्ग विषे भी ॥ दोष अरु अ
त्से होता है ॥ अगत्से कहीये बंदे पुन्य करणेहारा ॥ जो अ
पसें उर्ध देषता है ॥ तब चहलता है जो मैं भी इसा जैसा हो
वों ॥ अरु नीचे कहीये मैं ति इस सुषसें गिड्या मैं जो ॥ दोनों
प्रकार दुष होता है ॥ सो पुन्य अरु पाप दोनोंका त्याग की
या है ॥ तांतें तें सर्वत्यागी हैं ॥ अरु अज्ञानी जो पापी जीव हैं
तिनकों स्वर्ग भी भला है ॥ जैसे स्वर्नका पात्र न पाईये ॥ तो
पितलका भी भला है ॥ तैसे स्वर्नका पात्र जो ज्ञान है ॥ जब
लग प्राप्त न होवै ॥ तब लग पितलका पात्र जो है स्वर्गादि
क ॥ सो नर्कतें भला है ॥ अरु तुम सारषों कों कछु नहीं जो
आत्मा विषे सर्व पदार्थों की पूर्नता है ॥ अरु सर्वकी उत्प
ति आत्मातें हैं ॥ हे राजन वर्न अरु आश्रमादि विषे का आ
स्था करणी है ॥ जहांतें इनकी उत्पति है ॥ अरु जहां लीन हो
ते हैं ॥ अरु मध्य विषे जिसके अज्ञानतें दृष्ट आवते हैं ॥ ति
स विषे स्थित होवीये ॥ जिसके ज्ञानतें सर्व लीन होजाते हैं
हे राजन संकल्प विकल्प जो उठते हैं ॥ तिन विषे स्थित म
ति हो ॥ जिस विषे उत्पति अरु लीन होते हैं ॥ तिस विषे स्थि
त हो ॥ अरु तपादिक क्रिया कर क्या सिध होता है ॥ जिस
कर तपादिक सिध होते हैं ॥ तिस विषे स्थित हो ॥ जैसे बूंद
उत्पति विषे क्या स्थिति होवणा है ॥ जिस मेघतें बूंद स्थिति होती
है ॥ तिस विषे स्थिति होवीये ॥ हे राजन जैसे स्त्री होवै अरु
भरतातें के उपदारथ चाहे ॥ अरु आपन कहे ॥ तैसे तपा
दिक जो क्रिया है ॥ तिस कर क्या सिध होता है ॥ जो तिनकर
तो इनकर प्राप्त होता नहीं प्राप्त आत्मपदकों इछा करेन हीं ॥ अपने आपकर पावे है ॥ हे
राजन आत्मा तेरा अपना आप है ॥ तिसी कर सर्व सिधता
होती है ॥ जो वस्तु पाछे त्याग करणी होइ ॥ तिसकों ज्ञानवा
न प्रथम ही नहीं अंगीकार करता ॥ अरु जो ती कछु तपादि
क कंथा है ॥ तिनको चित कर क्या रचते हैं ॥ अपणा आप
आप कों देष जो ज्ञानानंद स्वरूप है ॥ अरु सर्वदा अपणे निरंतर वि

षेस्थितहै॥ जबतूंअपणेआपकरआपकोंदेषेंगा॥ तब
तपादिकक्रियाकोंदूरकरसोभापावेगा॥ जैसेबदलोंके
दूरभयेचंद्रमाप्रकाशमानसोभापावताहै॥ तैसेतूंभीभो
गोंकीचपलताकोंत्यागकरसोभापावैगा॥ जबइंद्रीयां
कोंजीतेंगा॥ अरकिसीपदार्थविषेआसक्तनहोवैंगा॥ अ
रसर्ववासनांकोंत्यागकरेंगा॥ तबज्ञानवानहोवैंगा॥ अ
रजिससर्ववासनांकात्यागकीयाहै॥ तिसकोंविदमुजा
नणो॥ जोसर्वराजोंकास्वामीहै॥ जिसमनजीत्याहै॥ सोचेष्टा
विषेभीज्योंकात्यौंरहताहै॥ अरसमाधिविषेभीज्योंका
त्यौंहै॥ जैसेपवनस्पंदअरनिस्पंदजोहै॥ फुरनेंअरन
हिंफुरनेंतिसविषेतुल्यहै॥ तैसेज्ञानवानकोंभेदहोतान
हीं॥ तबराजेंकहा॥ हेसर्वसंज्ञायोंकेछेदनहारेस्पंद
अरनिस्पंदविषेज्ञानीज्योंकात्यौंकैसेरहताहै॥ सोकृ
पाकरकहो॥ कुंभोवाच॥ हेराजनचैतन्यआकाश
जोहै॥ सोआकाशतैंभीनिर्मलहै॥ तिसकासाक्षातका
रहूया॥ तबजड़हीदेषतेहोचैतन्यहींभासताहै॥ जैसे
समुद्रकेजाणेतैंतरंगबुदबुदेसर्वजलहीभासतेहैं॥
तैसेचितबिनांआत्माकेदेषेहूयेफुरनेंविषेभीआ
त्माहीदृष्टिआवताहै॥ अरजिनआत्माकोंनहींजान्या॥
तिसकोंनानाप्रकारजगतभासताहै॥ जैसेजलकेजा
नेंविनांतरंगबुदबुदेभिन्नभिन्नदृष्टिआवतेहैं॥ अ
रजलकेजाणेतैंतरंगभीजलमईभासतेहैं॥ हेराजन
सम्यकदर्शीकोंजगतआत्मस्वरूपहै॥ असम्यकद
र्शीकोंजगतहै॥ तातैंतूंसम्यकदर्शीहोकरदेषजोज
गतभीआतमरूपहै॥ अरसम्यकदर्शनजैसेप्राप्तहो
ताहै॥ सोश्रवणकर॥ सतशास्त्रोंकाविचारकरणों॥ सं
तोंकासंगकरणों॥ जबदृढभावनाकरीयें॥ तबकेतेका
लतैंस्वरूपकासाक्षातकारहोताहै॥ काजनकीअपेछा
धउविचारकेनमितकहीहै॥ जबदृढविचारहोताहै
तबसाक्षातकारहोताहै॥ जबस्वरूपकासाक्षातका
रभया॥ तबस्पंदअरनिस्पंदविषेएकसमानहोताहै॥
हेराजनजिसकेसमीपहीमायाहोवै॥ सोमायाकेनमित

कः हू

पर्वतकों जोजे अरदोरे ॥ तैंसेही तेरे घरविषे जुलवेताचु
रालाथी ॥ तिसका त्यागकरके तैंने बनविषे आइ तप
का आरंभ कीयाहै ॥ तौ तैं कष्टवंत पाया ॥ परंतु अबतैं
जाण्याहै ॥ अरदुष तेरे नष्टभए हैं ॥ अबतैं शांतिपदकों
प्राप्तभयाहैं ॥ जैसें जेवडीके नजानणे करके सर्पभास
ताहै ॥ अरभलीप्रकार जानणे करके जेवडी भासतीहै
तैंसेही भलीप्रकार निस्पंद होकर जिस अपणे आप
देष्याहै ॥ तिसकों फुरनेविषे भी आतमाही भासताहै ॥
जबमनकी चपलता मिटतीहै ॥ तब तुर्यातीतपदकों
प्राप्तहोताहै ॥ जिसपदकों वाणी विषय नहीं करसकती
हेराजा तैंभी तिसीपदकों प्राप्तभयाहैं ॥ जो मनअरवा
णीतें रहितहै ॥ अरतुर्यातीतपदहै ॥ तहां ध्यानकोभी नहीं
शांतपदहै ॥ इति श्री निर्वाणप्रकरणे शिषरध्वज
बोधवर्ननं नाम सर्गः ॥ ९० ॥ श्रीवशिष्ठ उवाच ॥ हेरा
मजी जबराजाकों कुंभनें ऐसें उपदेश कीया तिसकेउप
रांत कहा ॥ हेराजा अबहम जाते हैं स्वर्गकों ब्रह्माजीके
पास ॥ जो नारदमुनि आयेहैं ॥ देवताऊंकी सभाविषे जो
मेरेतांई नदेषैंगें ॥ तब क्रोधकरेंगे ॥ हेराजा जो कल्याण
रूतपुरुषहैं ॥ सो वडेंकी प्रसन्नता लेतेहैं ॥ तौ तैं मैं जा
ताहों ॥ अरउपदेश जो तेरेतांई कीयाहै ॥ तिसकों भलीप्र
कारविचारणां ॥ अरसारसंक्षेप काएही है ॥ जो संपूरनवा
सनौका त्यागकरनां ॥ किसी विषे चितकों बंधमान नहीं
करणां ॥ मेरे आवणे पर्यंत स्वरूपविषे स्थित रहणां ॥ अ
वरकिसी चेष्टाविषे नहीं लागणां ॥ अरस्वरूपकों भलीप्र
कारजाणके ॥ ना वें जैंसे विचरीयो ॥ ऐसें कहिकर कुंभउ
ठषडाहूया ॥ तबराजे अर्घ अरफल चढावणेके निमि
त हाथविषे लीये ॥ सो जलफल हाथविषे रहे ॥ जो कुंभमु
नि अंतरध्यान होतभया ॥ जबराजा कुंभमुनकों आपणे आ
गें नदेषतभया ॥ तब विचार लागा करनें ॥ देषो ईश्वर
कीनीत जो जाणीनहीं जाती ॥ जो नारदमुन कह्याथा ॥ अर

तिसका पुत्र कुंभक हों ॥ अर मैं शिषरध्वज राजा कहं ॥ तैं तत
होने कुं मुनि का रूप धार कर मेरे ताईं आइ जगाया है ॥ कुं अर
भमुन बनाइ कर आया ॥ जिस उपदेश कर मेरे ताईं जगा
या है ॥ अब मैं अग्यान रूप चिक्कड तैं निकस्या हों ॥ अर स्वरू
प विषे जाग्या हों ॥ अर संपूर्ण संशय नष्ट भये हैं ॥ अर नि इ
षपद कों प्राप्त भया हों ॥ अर अग्यान निद्रा तैं जाग्या हों ॥ बडा
आश्चर्य है ॥ हे रामजी ऐसे कहि कर राजा शिषरध्वज सं
पूर्ण इंद्रीयों अर प्राण ॥ अर मन स्थिति कीया ॥ अर चेष्टा तें
रहित भया ॥ जैसे सिला के ऊपर पुतलीयां लिषी होती
हैं ॥ जैसे पर्वत का शिषर स्थित होता है ॥ तैसे स्थित भया ॥
अर तहां चूडाला कुंभ रूप शरीर का त्याग करि कै आकाश
कों उडी ॥ चूडाला का रूप सुंदर धार कर उडी ॥ अर आका
श कों लंघ कर अपणे नगर विषे आवत भई ॥ अर अंतह
पुर जो था ॥ जहां स्त्रीयां रहती थी ॥ तहां प्रवेश कीया ॥ अर मं
त्रीयों कों आग्या करी ॥ जो तुम अपणे अपणे स्थान विषे
स्थित होवो ॥ अर राणी राजा के स्थान विषे स्थित भई ॥ भली
प्रकार प्रजा की षबर लीनी ॥ अर तीन दिवस रहि कर ति
स तैं उपरांत बहुड उडी ॥ जहां राजा बन विषे रहता था
तहां आइ प्राप्त भई ॥ अर कुंभ का रूप धार कर देष्या ॥
जो राजा समाधि विषे स्थित है ॥ देष कर बहुत प्रसन्न भ
ई ॥ हे रामजी ऐसे देष कर चूडाला प्रसन्न होय के विचा
रत भई ॥ बडा सुष कार्य हूया ॥ जो राजा को स्वरूप की प्रा
प्त भई ॥ अर शांत को प्राप्ति भया ॥ ऐसा विचार कीया जो
इस कों जगावों ॥ तब सिंह की न्याईं गर्जी ॥ अर बडा शब्द
कीया ॥ तब शब्द कर जेते बन के पशु पंछी थे ॥ सो सर्व
भय कों प्राप्त भये ॥ तो भी राजा न जाग्या ॥ बहुड हाथ कर
हलावत भई ॥ तो भी राजा न जाग्या ॥ जैसे शब्द कर कै पर्वत
का शिषर चलायमान नहीं होता ॥ तैसे राजा चलायमा
न न भया ॥ काष्ट अर पाषाण की न्याईं स्थिति रह्या ॥ तब रा
णी विचार कीया ॥ जो राजा शरीर न त्याग देवै ॥ तौ भला है
अर राजे शरीर का त्याग कीया होइ ॥ तो मैं भी त्यागोंगी ॥ जो

शरीर त्यागा है॥ तो मैं भी त्यागती हों॥ हे रामजी चूडाला शरी
र न त्यागया॥ परंतु अरंभ करणे लागी॥ जो राजा अरु मैं एक ग
शरीर त्यागणा है॥ बहुड विचार करनें लागी॥ जो इसकी न
विष्यत क्या होणी है॥ तब राजा के नेत्रों पर हाथ लगाया
अर देह साथ देह का स्पर्श कीया॥ तब देखा जो प्राण हैं रा
जा विषे॥ अर तिन विष्यत भी विचार कीया॥ जो इसकी स्वतंत से
घर रहती है॥ जीवन्मुक्ति होकर राज्य विचरना है॥ ऐसे अ
वण करके॥ तब रामजी कहा॥ हे भगवन तुमें कहा जो
राजा काष्ट अर पाषाण की न्याई स्थिति भया था॥ बहुड
कहा जो हाथ लगाइ कर देखा॥ जो इस विषे प्राण हैं॥ जीव
ता है॥ तो कुं न किं उकर जान्या॥ इह मेरे ताई संसा है सो दू
र करो॥ तब वशिष्ट जी कहा॥ हे रामजी जिस शरीर वि
षे पुर्यष्टका होती है॥ तिस विषे हरीयावल होती है॥ हे रा
मजी अज्ञानी का चित रहता है॥ अर ज्ञानी का सत्व रहता
है॥ जो प्रारब्ध वेग करके फुरता है॥ अर बलाकार वर्त्त
होता है॥ अर अज्ञानी चित फुरणे करके बहुड शरीर पा
वता है॥ अर ज्ञानी इष्ट अनिष्ट विषे एक समान रहता है
अर अज्ञानी का शरीर इष्ट विषे अवर मोति दे बीयत है
अर अनिष्ट विषे अवर मोति दे बीयत है॥ इष्ट विषे प्रस
न॥ अर अनिष्ट की प्राप्त विषे शोकवान दिषाई देता है
हे रामजी ज्ञानी जब शरीर कों त्यागता है॥ तब अलस समु
ड विषे स्थिति होता है॥ अर जब जागसत्व शेष है॥ तब ल
ग फुरता है॥ तिस विषे सहम संसार होता है॥ जैसे बीज वि
षे फल फल सूक्ष्मता करके स्थिति होता है॥ काल पाइ के
बहुड निकसता है॥ तिसी प्रकार राजे का शेष रहता था
तिस करके बहुड फुरेगा॥ तब चूडाला कुं न रूप विचार
कीया॥ जो इस के अंतर प्रवेश करों॥ अर जगावों॥ जो मैं न
जगावौंगी॥ तो भी इस ने तक रजागणा है॥ तो तेमें ही जगा
वौं॥ ऐसे विचार करके अपणे शरीर का त्याग कीया॥ चेत
न्यता विषे स्थिति होकर॥ अर फुर्ती कों लेकर उस विषे जा
इ प्रवेश कीया॥ जाइ कर उस की चेतन्यता जो सत्व शेष था

अर अज्ञानी शरीर
कों तेयागता है

तिसकौं फोडतभई ॥ बडाहृौमकीया ॥ जबराजा उथ्योंह
लया ॥ तब आपतिकसन्माई ॥ अर अपणे शरीरविषेप्र
वेशकीया ॥ जैसे आकाशविषेपंखेरू उडताहै ॥ अरबहु
ड आलणेविषे आइप्रवेश करताहै ॥ तैसे अपणे शरीर
विषे आइस्थितभई ॥ अरसामवेदकागायनकरणे
लागी ॥ महासुंदरस्वरसाथ ॥ तबराजेश्रवणकीया ॥ जो
कोउ सामवेदगावताहै ॥ अर श्रवणकरके जागतभ
या ॥ जागकरदेष्या जो कुंभमुनबैठाहै ॥ देषकरबहुतप्र
संनभया ॥ तबफलजलचढाया ॥ अरकह्या ॥ हे भगव
न अबमेरे वडेभागहैं ॥ जोतुमारादर्शनहूया ॥ हे भग
वन कुलाचलकुलनरूप जोपर्वतहै ॥ तिसपर्वतविषे
जो देहरूपवृक्षहै ॥ सो अबसफलभयाहै ॥ अबतुम प्रसनताथैहै
हमकौं पावनकीयाहै ॥ हे भगवन किसीकी समर्थता
नहीं ॥ जोतुमसारष्योंकौं चितविषेप्रवेशाकरै ॥ जिन
विषे सर्वदा आतमाका निवासहै ॥ तिसचितविषेमे
राश्मरण हूईहै ॥ जो दर्शनदीयाहै ॥ तांतेमेरे बडे भाग
हैं ॥ हे भगवन अंमृतरूपवचनौंकर ॥ प्रथमतुमनमेरे
तांई पवित्रकीयाथा ॥ अर अबजो चितकीयाहै ॥ सो
मेरेतांई पावनकीयाहै ॥ कुंभोवाच ॥ हे राजन तेरा
दर्शनकरके मैंभीबहुतप्रसंनहूयाहौं ॥ अरतुमजै
सीप्रीतमैं आगेकिसीकीनहीदेषी ॥ हे राजन तेरेन
मितमैं स्वर्गतेंआयाहौं ॥ स्वर्गविषे जोसुषहैं ॥ सोमेरेतां
ई भलेनलागे ॥ अरतूं मेरेतांई बहुतप्रीतमहैं ॥ इसी
नमितमैंस्वर्गतें आयाहौं ॥ अबमैं स्वर्गभीनहीं जाता
तेरेहीपासरहौंगा ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन जिस
ऊपर तुमसारष्योंकीकृपाहोतीहै ॥ तिसकौं भीस्वर्गा
दिकसुषभलेनहीलागते ॥ तुमसारष्योंकी बातक्या
कहताहै ॥ इहवनहै ॥ इहकुपरीहै ॥ इसीविषविश्रा कु
मकरीये ॥ मेरेवडेभागहैं ॥ जोतुमाराचितरहणेका
हूयाहै ॥ कुंभोवाच ॥ हेराजन अबतेरेतांई शांतिभा

प्राप्त भई है ॥ अरु संकल्प बीज भी नष्ट भया है ॥ जैसे नदी के
कनारे पर वल्ली होती है ॥ अरु जल के प्रवाह कर मूल स
मेत गिडती है ॥ तैसे तेरे संकल्प का बीज नष्ट भया है ॥ अ
ब तूं यथा प्राप्त विषे संतुष्ट हूया हैं ॥ अथवा नहीं हूया
है ॥ अरु उपादेय ॥ जो है ग्रहण ॥ अरु त्याग ॥ तिस तें रहित
हूया हैं ॥ अथवा नहीं हूया ॥ अरु जो पावणे जोग पद है
सो पाया है ॥ अथवा नहीं पाया ॥ अपनां अनुभव कहो
॥ राजोवाच ॥ हे भगवन तुमारी कृपा तें सर्व सें श्रेष्ट
पद मैं पाया है ॥ जहां संसार की सीमां का अंत है ॥ अब
मेरे तांई उपदेश का अधिकार नहीं रहा ॥ जो संपूरण
संसे मेरे नष्ट भये हैं ॥ अरु हे उपादेय के मारिग तें अ
मुरता तीत हों ॥ इस कर विचारतां हों ॥ अरु जो कछु जानने जो
ग था ॥ सो जाना है मैं ॥ अब कुछ मेरे तांई कोऊ नहीं ॥ सर्व
गैर मैं तृप्त हों ॥ अरु नित्य प्राप्त रूप हों ॥ अरु आत्मा हों ॥ अ
रु निर्मल हों ॥ अरु अपणे स्वभाव विषे स्थित हों ॥ अर
सर्वात्मा हों ॥ अरु निर्विकल्प हों ॥ मेरे विषे फुरनें को उन
हीं ॥ मैं शांति हूया हों ॥ अरु चिरपर्यंत सुखी हों ॥ ॥ श्रीवशि
ष्टोवाच ॥ हे रामजी इस प्रकार राजे अरु कुंभ का पर
स्पर तीन महूर्त पर्यंत संवाद हूया ॥ तिस तें उपरांत दो
नों उठ खडे हूये ॥ अरु चले एक निकट तलाव था
जहां बहुत कमलनीयां थी ॥ तहां आइ कर दोनों स्ना
न करते भये ॥ अरु गायत्री संध्या करी ॥ अरु पितरां कों
जल दीया ॥ पूजा करके बहुड उहां तें चले ॥ बन कुंजो
विषे आये ॥ तब कुंभ कहा चलीये ॥ तब राजे कहा भ
ली बात है चलीये ॥ तब चले ॥ बहुत नगर गिरां उ
देखे ॥ अरु तीर्थ देखे ॥ अरु नाना प्रकार के बनों विषे
विचरे ॥ जो फल फल संयुक्त थे तिनहु विषे विचरे
अरु मारुथलों विषे विचरे ॥ हे रामजी ऐसे राजसी
तामसी सातकी स्थानों विषे विचरे ॥ तीर्थादिक सात
की स्थान हैं ॥ अरु सुंदर बन तें लेकर राजसी स्थान हैं

आदि

अरमारुथल तें आदि लेकर तामसी स्थान हैं ॥ तिन ऊ
विषे विचरते ॥ तौ भी हर्ष शोक कों न प्राप्त भये ॥ समता
विषे रहे ॥ हे रामजी कुंभ का प्रयोजन फिरने का ए ही था
जो राजा शुभ स्थानों कों देषकर हर्ष कों प्राप्त होवेगा
अरु अशुभ स्थानों कों देषकर दोष करैगा ॥ अथवा
न करेगा ॥ तौ भी राजा कों हर्ष शोक न प्राप्त भया ॥ बडू
उबदे पर्वतों की कंदरा देषीयां ॥ बन अरु कुंजा बद
कष्ट के स्थान देषे ॥ अरु एक बन विषे जाइ स्थित भये
के तेक काल विषे राजा अरु कुंभ एक जैसे होगये ॥ एक वे
ही स्नान करे ॥ अरु एक जैसी मति ॥ अरु एक जैसे जाप
जपें ॥ देवता पूजें ॥ अरु पितरों को एक जैसी पूजा करें ॥ अ
रु एक जैसे दोनों सुहृद भये ॥ जो उपकार कों अपेक्षा
बिनां उपकारी भये ॥ किसी और माटी शरीर कों लगा
वें ॥ किसी और चंदन का लेप करें ॥ किसी और भस्म श
रीर कों लगावें ॥ किसी और दिव्य वस्त्र कों पहिरें ॥ किसी
और तुपर के लेके पत्र होवें ॥ किसी और फलों कों षा
होवें ॥ किसी और ऊंचे स्थानों विषे सैन करें ॥ हे रामजी ऐ
से शुभ अरु अशुभ और विषे भी दोनों जिऊं के तिऊं रहे ॥ जो
हर्ष शोक कों न प्राप्त भये ॥ केवल सत्व शुद्ध विषे स्थि
ति रहे ॥ आतमा बिनां अवर कछु न फुरया ॥ एक बन
विषे जाइ स्थित भये ॥ तब राणी के मन विषे विचार फु
रया जो इह मेरा भर्ता है ॥ मैं इसको भोगों ॥ जो हमारी अ
वस्था है ॥ अरु जोबन लैके तक की स्त्रीयां हैं ॥ तो भर्ता कों
प्रसन्न राषतीयां हैं ॥ अरु राजे का शरीर भी देवता जैसा
हूआ है ॥ अरु स्थान भी शुभ है ॥ जब लग शरीर है ॥ तब
लग शरीर के स्वभाव भी साथ हैं ॥ अरु बडे विचार की
या ॥ जो राजा की गतता करों ॥ जो क्या कहेगा ॥ तब कुं
भ कहा ॥ हे राजन अब हम स्वर्ग कों जाते हैं ॥ जो चैत्र सु
दी एकम कों ब्रह्मा जी सृष्टि उत्पति करी है ॥ अरु इसी दि
न वर्ष के वर्ष उत्सव होता है ॥ अरु नारद मुनि भी आव
हिंगे ॥ तातें हम जाते हैं ॥ अरु आज हीं फिर आवहिंगे ॥

148

मेरे आवणे पर्यंत तुम ध्यान विषे रहणा ॥ अर ध्यान ते उ
तरौं तब फूलों कों देषणां ॥ ऐसे कहि कर फूलों की मंज
री राजा को दीनी ॥ अर राजे नी कुंभ को फूलों की मंजरी
दीनी ॥ जैसे नंदन बन विषे स्त्री भर्ता के हाथ देवे ॥ अर
भर्ता स्त्री के हाथ देवे ॥ तैसे दोनों परस्पर दीया ॥ अर कुं
भ आकाश कों उड्या ॥ अर राजा पाछें देषता रहा ॥ जैसे
मोर मेघ कों देषता है ॥ जेते पर्यंत राजा की दृष्ट पडती थी
तब लग देषता रहा ॥ कुंभ का शरीर राष्या ॥ जब दृष्ट सों
अगोचर भया अकाश विषे ॥ तब फूलों की माला जो
पहिरी गले विषे थी ॥ सो तोड कर राजा के ऊपर डार दीनी ॥ अर
चूडाला सरीर धार के ॥ अर आकाश कों लंघ के अपणे
अंतहपुर जो था स्त्री के वसणे का ॥ तहां आइ प्राप्त भई
अर राज स्थान पर बैठ के मंत्रीयों कों बुलाइ कर ॥ अप
णे अपणे स्थानों पर स्थिति कीया ॥ अर प्रजा की षबर
लीनी ॥ बहुडे उहा सूर्य के किरणों के मार्ग मेघ मंडल
कों लंघती आई ॥ तहां राजा का स्थान था ॥ आइ कर देष्या
जो राजा का चित विछोड के कै शोकवान है ॥ अर कुंभ नी
दलगीर जैसा राजा के आगें स्थिति भया ॥ तब राजे क
हा ॥ हे भगवन शोक तुमारे ताईं कैसे प्राप्त भया है ॥ ऐ
सा कष्ट मार्ग विषे तुमारे ताईं कवन प्राप्त भया ॥ अर
सर्व दुषों का नष्ट करणहारा ज्ञान है ॥ सो तुम सारषों
ज्ञानीयों कों शोक होवे ॥ तब अवरों की क्या बात कहणी
है ॥ हे मुन तुमारे ताईं दुष का कारण कोऊ नहीं ॥ तुम किं
उं शोकवान होते हो ॥ अर तुमारे ताईं अनिष्ट क्या प्राप्त भ
या है ॥ तब कुंभ कहा ॥ हे राजन मेरे ताईं एक दुष है ॥
सो कहता हों ॥ जो मित्र पूछे तो सत कहा चाहीये ॥ अर
दुष ती नष्ट होता है ॥ जैसे मेघ जड होता है ॥ अर त्रपामनी
होता है ॥ पर उसका सज्जन जो है ॥ हो त्र अर पृथिवी ॥ तिसऊ
पर वर्षा करता है ॥ तिसकी जडता अर त्रपामता नष्ट होती
है ॥ तिस तें मैं तेरे ताईं कहता हों ॥ हे राजन स्वर्ग विषे जब
सना स्थिति थी ॥ तब मैं नारद के पास था ॥ जब सनाउकी

तब नारिद भी उठा ॥ अर मेरे ताईं कहा ॥ जहां तेरी इछा है ॥ त
हां जाउ ॥ अर मैं भी जाता हों ॥ जो नारिद एक ठौर विषे नहीं र
हरता ॥ विश्व विषे सेल करता फिरता है ॥ इसी ते मेरे ताईं क
हा जो जाउ ॥ तब कुंभ आकाश ते मैं चल्या ॥ अर सूर्य के पाछे एक
ठौर सूर्य साथ मिलाप हूया ॥ बहुड़ उ मैं आगे निकस चल्या
मेघों के मारिग तीक्षण वेग कर चलया हों ॥ जैसे नदीयां पर्व
तते तीक्षण वेग कर आवती है ॥ तैसे मैं तीक्षण वेग कर च
ल्या आवता था ॥ तब दुर्वासा रिषीश्वर उठता आवता है ॥ मे
घों की न्याईं श्याम वस्त्रों को पहिरे हूये ॥ तैसे ही भूषणों संयु
क्ति ॥ जैसे बिजुली का चमत्कार होता है ॥ तैसे भूषणों का चम
त्कार देषकर मैं दंडोत करके कहा ॥ हे मुनीश्वर तुमों ने एक पु
रूप धारा है ॥ इस्त्रीयरूप की न्याईं लागता है ॥ तब दुर्वासा मे
रे ताईं कहा ॥ दुर्वासोवाच ॥ हे ब्रह्मा के पोत्र तूं कैसे कु
वचन कहता है ॥ ऐसा वचन कहणा मुनीश्वर को उचित न
हीं ॥ हम क्षेत्र हैं ॥ जैसा बीज क्षेत्र विषे पाईता है ॥ तैसा उगम
ता है ॥ तैंने जो मेरे ताईं स्त्री कहा है ॥ तां ते तूं स्त्री होवहिंगा ॥ अ
र रात्र विषे तेरे अंग स्त्रीयों के होवहिंगे ॥ हे मुनजो कल्या
ण हुत पुरुष है ॥ अर जिनकों ज्ञान प्राप्त हूया है ॥ तिनकों न
म्रता होती है ॥ जैसे फलों संयुक्त वृक्ष नम्र होता है ॥ तैसे ज्ञानी
भी नम्र होता है ॥ ऐसा वचन तेरे ताईं कहणा न चाहीये ॥ ऐ
से श्रवण करके हे राजन मैं तेरे पास चल्या आया हों ॥ अर
अब मेरे ताईं लज्जा भी आवती है ॥ जो स्त्री का शरीर धारूंगा
देवतों विषे कैसे विचरोंगा ॥ एही मेरे ताईं शोक है ॥ तब रा
जे कहा ॥ क्या हूया जो दुर्वासे कहा ॥ अर स्त्री शरीर भया तु
म तो शरीर नहीं ॥ आतमा निर्लेप हैं ॥ जो किसी साथ लेप नहीं
हे मुनीश्वर तुम अपणी समता विषे स्थित रहते हो ॥ अर
जो ज्ञानी पुरुष हैं ॥ तिनकों हेय उपादेय किसी का नहीं रह
ता ॥ अपणी समता विषे स्थित रहते हैं ॥ तब कुंभ कहा ॥
हे राजन तैं सत्य कहता हैं ॥ मेरे ताईं क्या दुष है ॥ हे राजा जो श
रीर की प्रारब्ध होती है ॥ सो होती ही है ॥ तिस साथ हमारा क
हा प्रयोजन है ॥ ईश्वर की नीत है ॥ जब लग शरीर रहता
है ॥ तब लग शरीर के स्वभाव भी रहते हैं ॥ अर शरीर का स्व

भावद्दूरकरनेंभीमूर्षताहै ॥ जिसस्थानविषेज्ञानकाप्राप्त
होवै ॥ तिसीचेष्टाविषेविचरीयै ॥ अरइहभीमूर्खताहै ॥ जो
इंद्रीयांकोरोकणां ॥ अरमनकरविषयोंकाचिंतवनांक
रणा ॥ तातेइंद्रीयांअरदेहकीचेष्टाज्ञानवानभीकर
तेहैं ॥ अरतिसविषेबंधमाननहींहोते ॥ इंद्रीयांविषें
विषेवर्ततीहैं ॥ आदिनेतईश्वरकीइसीप्रकारहै ॥ हे
राजानेतनकात्यागकिसीसेंकीयानहीजाता ॥ तातेने
तनकात्यागक्योंकरीयै ॥ इहनेतनहै ॥ जोजबलगशरीर
है ॥ तबलगशरीरकेस्वभावभीरहतेहैं ॥ जैसेजबल
गतेलहै ॥ तबलगतेलभीहोताहै ॥ तैसेजबलगशरी
रहै ॥ तबलगशरीरकेस्वभावभीरहितेहैं ॥ जोज्ञानवा
नपुरुषहैं ॥ सोदेहइंद्रीयांकरचेष्टाभीकरतेहैं ॥ पर
बंधायमाननहीहोते ॥ अरअज्ञानीबंधायमानहोते
हैं ॥ अरचेष्टाज्ञानीभीकर्तेहैं ॥ अरअज्ञानीभीकरतेहैं
जैसेब्रह्माअरविष्णुअररुद्रतेंआदिलेकरजोज्ञानी
हैं ॥ चेष्टाभीकर्तेहैंसर्व ॥ परबंधायमानकिसीकरनही
होते ॥ तैसेहेराजाजोअनिछितआइप्राप्तहोइ ॥ अर
शास्त्रजिसकोंप्रमाणकरे ॥ तिसकेभोगणेविषेदूष
णकछुनहीं ॥ राजोवाच ॥ हेभगवनज्ञानवानकोंदू
षणकछुनही ॥ जोसत्तासमानविषेस्थितहैं ॥ तिसकर
केदुषकछुनहींहोता ॥ अरअज्ञानीकेशरीरविषेदु
षहोताहै ॥ सोअपणेंशरीरविषेदेषताहै ॥ अरज्ञानवा
नशरीरकेदुषअपणेंविषेनहीदेषता ॥ जैसेकहतें
सूर्यअस्तिहूया ॥ तबराजेअरकुंभदोनोंसायंकालकी
संध्याकरी ॥ अरजपकीया ॥ अरपितरोंकापूजनकीया
जबरात्रहूई ॥ तबतारोंकेगणनिकसे ॥ अरसूर्यमुषी
कमलनीयोंकेमुषमुंदेगये ॥ तबकुंभकहा ॥ हेराज
नदेषजोमेरेसिरकेवालबधतेजातेहैं ॥ अरवक्षभीगि
रतेंपर्यंतहोगयेहैं ॥ अरस्तनभीस्त्रीयोंकीन्याईहूयेहैं

इत्यादिक वस्त्र भूषन जेते कछु चेष्टा हैं ॥ सो इस्त्रीयों
की हुई है ॥ तब राजा कों भी शोक प्राप्त भया ॥ अर महा सु
दर स्त्री लक्ष्मी की न्यांई चूलांडो हो गई ॥ तिस कों देष क
र राजा कों एक महूर्त शोक रहा ॥ तिस के उपरांत सावं
धान हूया ॥ अर कहणे लागा हे मुनि इहु क्या हूया ॥ जो श
रीर स्त्री का हूया ॥ तुम तो शरीर नहीं ॥ तूं आत्मा हैं ॥ तां तें
शोक किंउ करीये ॥ तुम अपणी सत्ता समान विषे स्थि
त होवो ॥ तब रात्र हूई ॥ अर राणी महा सुंदर स्वरूप धा
रें ॥ फूलों की शय्या विछाई ॥ तिस पर दोनों एकठे सो
ये ॥ हे रामजी ऐसे संपूरण रात्र व्यतीत भई ॥ कोउ फुर्नी
न फुरता ॥ सत्ता समान विषे दोनों स्थित रहे ॥ अर मुष
सों कछु न बोल्या ॥ सो य गये ॥ जब प्रातह काल भया ॥ त
ब वैकुंठ कुंभ का शरीर धारता ॥ अर गायत्री तें आदि जो
कर्म हैं ॥ सो कीये ॥ अर पितरों का पूजन कीया ॥ इसी प्रका
र रात्र को स्त्री बन जावे ॥ अर दिन कों कुंभ पुरुष का शरी
र धारे ॥ जब कछु काल ऐसे व्यतीत भया ॥ तब ऊहां ते
चल्ये सुमेर पर्वत ऊपर गये ॥ मंदराचल अर अस्ताचल
तें आदि सर्व सुष स्थानों कों देषते भये ॥ हे रामजी एकी
दृष्ट कों लीयें रहें ॥ न कछु हर्षवान हूये ॥ न शोकवान
हूये ॥ जेउ के तिउ ही रहे ॥ जैसे सुमेर पर्वत पवन कर च
लायमान नहीं होता ॥ तैसे ही शुभ अशुभ स्थानों विषे स
मान रहे ॥ इति श्री निर्वाण प्रकरणे शिषरध्वज स्त्री
प्राप्त वर्ननं नाम सर्गः ॥ ८१ ॥ श्री वसिष्ठ उवाच ॥ हे
रामजी इस प्रकार विचरत्ये विचरतें मंदराचल पर्वत
की कंदरा विषे जाइ स्थित भये ॥ तब कुंभ रूप चुडाला
राजा कों परीक्षा के निमित कहत भई ॥ हे राजन मैं रात्र
कों स्त्री होता हों ॥ तब मेरे तांई नर्यों के भोगणे की इछा हो
ती है ॥ का हे तें जो नेत ईश्वर की ऐसी है ॥ जो स्त्री कों अवस्य
मेव पुरुष चाहीता है ॥ अर जो उतम कुल का पुरुष होता
है ॥ तिस कंन्या को विवाह करकें पिता देता है ॥ अथ वा जि

सकों स्त्री चाहे॥ तिसकों आप देष्या लेवै॥ तां ते हे राजन
मेरे तांई तेरे तें अधिक कोउ नहीं इष्ट आवृता॥ तूं हीं मे
रा नर्थ है॥ अर मैं हां तेरी स्त्री हों॥ तूं मेरे तांई अपूर्णी भा
र्या जानकर जो कछु स्त्रीयों साथ चेष्टा करती है॥ सो मे
रे साथ कीया कर॥ अर मेरी अवस्था भी जोबन है॥ अ
र तेरी भी सुंदर है॥ जो ज्ञानवान है॥ अनिछित प्राप्त हूये का
त्याग नहीं करते॥ यद्यपि तेरे तांई इछा न होवै॥ तो भी ई प्र
रका नेत जो इसी प्रकार है॥ तिसकों उलंघने कर के प्र
सिध होता है॥ जो कोउ अपणे स्वरूप सत्ता समान विषे
स्थित है॥ तिसकों ग्रहण अर त्याग की इछा कछु नहीं॥
परंतु जो नेत है॥ सो करा चाहीये॥ तब राजे कहा॥ हे सा
ध जो तेरी इछा है॥ सो करीये॥ मेरे तांई तो तीनों जगत आ
काश रूप इष्ट आवते हैं॥ प्राप्त होने कर मेरे तांई हर्ष क
छु नहीं॥ अप्राप्त विषे दुष नहीं॥ न कोउ मेरे हर्ष है॥ न शो
क है॥ जो तेरी इछा होवै सो करीये॥ तब कुंभ कहा॥ हे
राजन आज ही पूर्णमासी का नक्षत्र दिन है॥ संपूर्ण कला
कर के चंद्रमा संपूर्ण होवेगा॥ इह मैं ने आगे विचार कीया
था॥ अर लगन भी गण छोडा है॥ मंद्राचल पर्वत की कंद
रा विषे वेद के विवाह करीये॥ अर सामिग्री एकत्री क
रीये॥ तब राजा अर कुंभ दोनों उठ खडे हूये॥ जो कछु
सामिग्री आरम्भ की है॥ सो एकत्र करी॥ अर गंगाजी पर
स्नान कीया॥ अर वटणे संयुक्त राजा कों कुंभ स्नान क
राया॥ अर तहां हवेली भी पूजन करी॥ बहुड वस्त्र अर
फल फूल लेकर जो विवाह की सामिग्री है॥ सो कल्पवृ
क्ष सों लीनी॥ बहुड फलों कों भोजन कीया॥ तब सूर्य अ
स्त भया॥ मानों इसके विवाह के नमित सूर्य आप ही अ
स्त भया है॥ तब दोनों संध्यापासन करी॥ बहुड राजा कों
भूषन पहिराये॥ जेते कछु शरीर के भूषन हैं॥ तिनकों
मणी अर रत्न भूषणों अर फूलों साथ पूर्ण कीया॥ दिव्य व
स्त्र अर सिर पर मुकट पहिराया॥ बहुड कुंभ का शरी

तांडी

तैग्रादि

रत्याग कीया॥ अरु स्त्री का शरीर होत भया॥ तब कुंभ स्त्री
कहा॥ हे राजन अब तूं मेरे तांई भूषन पहिराय॥ तब रा
जा संपूर्न अंगों स्त्री के कौं भूषन अरु कंजे मणी अरु व
स्त्र पहिरावत भया॥ अरु पार्वती की न्यांई सुंदर बनी॥
श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी जब इस प्रकार भूषन प
हिराये॥ तब चूडाला कहा॥ हे राजा मैं अब तेरी स्त्री हों॥ ना
म मेरा अब मदनका है॥ अरु तूं मेरा नाथ है॥ अरु तूं का
मदेव तें भी सुंदर है मुझ कौं भावता है॥ हे रामजी इस प्रकार चू
डाली बहुत कछुक कहा॥ तो भी राजा का चित्त हर्ष को न
प्राप्त भया॥ अरु वैराग्य करके शोक कौं भी न प्राप्त भया॥
जैसे का तैसे रहा॥ तिसतें उपरांत विवाह का आरंभ की
या॥ बांसकी लकडीयां साथ वेदी होया अरु ध्या॥ अरु वृ
स्त्र कल्पवृक्ष सौं लीये॥ अरु पास रत्न के कलश राखे
ताल ये र राखे॥ अरु देवतों का पूजन कीया॥ अरु शास्त्र की म
र्यादा करके योगिनी॥ अरु पितरों॥ अरु नाग सभ का पूज
न कीया॥ अरु दीपक के स्थान तीन चिंतामणि राखे॥ जैसे
ब्रह्माजी सृष्टि कौं रचकर तीन दीपक सूर्य चंद्रमा तारे॥
कीये हैं॥ तैसे तीन चिंतामणि राखे॥ इत्यादिक जो शास्त्र
विधि थी॥ सो संपूर्न करी॥ अरु लावां भी लीयां॥ अरु लोक
संग्रह के निमित्त मंगल भी गायन कीया॥ जैसे विष्णु अरु
लक्ष्मी का॥ अरु महादेव पार्वती का॥ इंद्र इंद्राणी का मं
गल कीया है॥ तैसे ही मंगल कीया॥ अरु संकल्प इह दी
या॥ जो संपूर्ण ज्ञान निष्ठा है तेरे तांई दीनी॥ अरु राजा नी
संकल्प कीया॥ जो संपूर्ण ज्ञान निष्ठा तेरे तांई दई॥ इसी
प्रकार जो शास्त्र विधि है॥ सो संपूर्ण करी॥ जब रात्र एक
प्रहर रही॥ तब राजे अरु राणी फूलों की शय्या विछाई
सैन करके आप विषे चर्चा करते रहे॥ मैथुन न कीया॥ आ
गे तो चूडाला राजा की स्त्री थी॥ विवाह करके दूसरी बार स्त्री
भई॥ जब प्रातह काल हूया॥ तब स्त्री का स्वरूप त्याग कर
कुंभ का शरीर धारया॥ अरु स्नान कीया॥ गायत्री संध्या आ
दिक कर्म कीये॥ जपजाप कीया॥ देवता॥ अरु पितरों

कापूजनकीया ॥ इसीप्रकार रहे रामजी एकमास पर्यं
त मंद्राचलपर्वत विषे रहे ॥ जो रात्रकों स्त्रीका आकारि
र धारे ॥ अरु दिनको कुंभका आकार धारे ॥ जब तीस
रा दिन होवे ॥ तब राजाको सैनकराइकै राजकी सुध
आन लेवे ॥ बहुडे राजाके पास जाइ सैन करे ॥ इति
श्रीनिर्वाणप्रकरणे विवाहलीलावर्ननं नाम स
र्गः ॥ ९२ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जब ऊहां
सों चल्ये ॥ अस्ताचलपर्वत विषे रहे ॥ उदयाचलपर्व
त सुमेरपर्वत कैलासपर्वत इत्यादिक जो पर्वत अ
रु कंदरा अरु बनों विषे ॥ कहूं एकमास ॥ कहूं पंचद
श दिन कहूं सप्त दिन रहे ॥ जब एक बन विषे आये
तब राणी विचार कीया ॥ जो एते स्थान राजाको दिषा
ये हैं ॥ तो भी इसका चित किसी विषे बंधायमान नहीं
हूया ॥ इसीतें अब परीछा लेवों ॥ ऐसे विचार कर अ
पणी माया पसारी ॥ तब इंद्र तेतीस कोट देवता संयु
क्त किंनर अरु गंधर्व ॥ अरु सिध अपसरा आगे नृ
त्य करती आवती हैं ॥ अरु अवर भी जो इंद्रकी समिग्री
थी ॥ तिस संयुक्त इंद्रकों देषकर राजा उठ षडा हूया
बहुत प्रीत संयुक्त इंद्रकी पूजा करी ॥ अरु कहा ॥ हे त्रि
लोकी के पति इस बन विषे तुमारा आवणा कैसे हूया
है ॥ सो कहो ॥ तब इंद्र कहा ॥ हे राजा जैसे पंछी होता है
अरु ऊर्ध्वको उडता है ॥ तिसकी पेटी तागा होता है ॥ तिस
तागेकर उडता हूया भी नीचे आवता है ॥ तैसे हम ऊ
र्ध्वके वासी तेरा गुणरूप जो तागा है ॥ तैसेकू मन लछण
तिसकों श्रवण करके ॥ जो तागे समान हैं ॥ तिसकर हम
षैंचीते चल्ये आवते हैं ॥ इस बन विषे ॥ तातें हे राजा तें स्व
र्गको चल ॥ अरु स्वर्ग विषे स्थिति होकर दिव्य भोगोंकों
भोग ॥ इह ऐरावत हस्ती है ॥ तिसपर आरूढ होइ ॥ अथ
वा इह उचैश्रवा घोडा है ॥ जो षीरसमुद्रके मथन तें नि
कस्या है ॥ इसपर आरूढ होयकर चल ॥ अरु सिधी भी हैं

एक तो इह है ॥ तिस पर पांउ राषीये जहां इछा होइ तहां
पहुंचावै ॥ अरु एक बूटी है ॥ अरु एक षडग सिध है ॥
जो षडग कौं हाथ मों धार कर जहां इछा होती है ॥ तहां च
ल्या जावै ॥ अरु टकावै कोऊ नहीं ॥ अरु एक गुटका है ॥ जो
मुष मों राष कर जहां इछा होइ तहां इछाचारी जाईये ॥
इसतें लेकर इह अष्ट सिधी जो विद्यमान हैं ॥ जो इछा हो
इसो लेवो ॥ अरु स्वर्ग विषे चलो ॥ हे राजन तुम तत्ववेत्ता हो
तुमारे ताईं ग्रहण अरु त्याग करणें किसी का नहीं ॥ र
हा ॥ पर जो अनिछित आन प्राप्त होवै ॥ तिस का त्याग क
रणें योग्य नहीं ॥ तातें स्वर्ग विषे चलो ॥ राजोवाच ॥ हे
देवराज जाईता तहां है ॥ जहां आगे न होवीये ॥ अरु ज
हां आगें हीं होवीये ॥ तहां कैसे जाईये ॥ हे देवराज हम
कौं सर्व स्वर्ग द्रिष्ट आवता है ॥ जो इहां ही स्वर्ग होवै इहां
न होवै ॥ तो जाईयेभी ॥ परंतु जहां हम बैठे हैं ॥ तहां ही
स्वर्ग द्रिष्ट आवता है ॥ तातें हम कहां जावैं ॥ हम कौं तीनों
लोक आत्मा ही भासता है ॥ अरु सदा स्वर्ग रूप जो आ
त्मा है ॥ हम तिसी विषे स्थित हैं ॥ हमारे ताईं सर्वथा स्व
र्ग भासता है ॥ हम सदा विषे आनंद रूप हैं ॥ तातें कहां
जावैं ॥ इंद्रोवाच ॥ हे राजा जो विदित वेद्य पूर्ण बोधी
हैं ॥ तेभी यथा प्राप्त भोगन कौं सेवते हैं ॥ तुम किउं नहीं
सेवते ॥ ऐसे जब इंद्र कहा ॥ तब राजा ऐसे हीं कहि क
र चुप कर रहा ॥ बहुड इंद्र कहा ॥ भला जे तुम नहीं जाते
तो हम ही जाते हैं ॥ तेरा भला ॥ अरु कुंभ का कल्याण हो
वै ॥ हम जाते हैं ॥ हे रामजी ऐसे कहि कर इंद्र उठ खडा
हूया ॥ अरु चल्या ॥ जब लग द्रिष्ट आवता था ॥ तब लग
देवता भी द्रिष्ट आवते रहे साथ ॥ बहुड द्रिष्ट तें अगो
चर अंतरध्यान होगये ॥ जैसे समुद्र तें तरंग उठता है
बहुड समुद्र विषे लीन होता है ॥ अरु नहीं जानीता जो
कहां गया ॥ तैसे इंद्र अंतरध्यान होगया ॥ जब कुंभ रूप
चूडाला के संकल्प तें उठा ॥ अंतरध्यान हूया ॥ अरु

संकल्पलीन भया ॥ तब चूडाला देष्या जो ऐसीयां सिधी
अरु ईश्वर्य अपसराके प्राप्त भयें भी राजाका चित्त स
मता विषे रहा ॥ अरु किसी पदारथ विषै बंधायमान
न हूया ॥ इति श्री निरवाणप्रकरणे मायास्वर्ग व
र्णनं नाम सर्गः ॥ ८३ ॥ श्री वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी
जब चूडाला इंद्र का छल कर रही ॥ तब विचार कीया
जो ऐसा चरित्र राजाके मोहणे निमित्त कीया ॥ तो भी रा
जा किसी विषे बंधायमान न हूया ॥ जिउं का तिउं ही र
हा ॥ बडा कल्याण हूया ॥ जो राजा समता समान विषे स्थि
ति रहा ॥ तो तें बडा आनंद हूया ॥ अब और चरित्र क
रीये जो क्रोध होवे जिस विषे ॥ अरु बडा षेद होवे ॥ ऐ
सा विचार के चरित्र करीये ॥ राजा की परीक्षा निमित्त ऐ
सा विचार कीया ॥ तब सायंकाल हूया ॥ अरु राजा गंगा के
किनारे संध्या करने लागा ॥ अरु कुंभ बन विषे रहा ॥ त
ब बन विषे संकल्प का मंदर रचा ॥ जैसे देवतों कूं अ
गना होती है ॥ तैसे मंदर के पास फूलों की वाड पाई ॥ अर
नाना प्रकार के कल्पवृक्ष तैं आदि फूल फल संयुक्ति
वृक्ष रचे ॥ ऐसा बन का स्थान तिस विषे एक संकल्प की
शय्या रची ॥ अरु एक संकल्प का महा सुंदर पुरुष रचा
तिस साथ सोइ रही ॥ अंग के संग अंग जुगाय कर अर
गल विषे फूलों की माला डारी ॥ अरु काम चेष्टा करणे ला
गे ॥ तब राजा संध्या कर उठा ॥ अरु राणी कौं देषणे ला
गा हुए न आई ॥ ढूंढ ढूंढत्यें तिस मंदर के निकट
आया ॥ तब क्या देषे जो कौं मी [?] पुरुष साथ मदन का सो
ई हूई है ॥ अरु काम चेष्टा करते हैं ॥ तब राजे कहा नी [?]
अरु राम साथ सोये पडे हैं ॥ सोये रहें ॥ इन के आनंद विषे
विघन किंउ करीये ॥ हे रामजी इस प्रकार राजा अपणी
स्त्री कौं देष्या ॥ तो भी शोकवान न हूया ॥ अरु क्रोध भी न की
या ॥ जिउं का तिउं आंतिपद विषे स्थिति रहा ॥ तौन [?] कौं प्रा
प्त न भया ॥ अरु मंदर तें बाहिर निकस्या ॥ तहां एक स्वर्न
का सिला पडी थी ॥ तिस के ऊपर बैठ रहा ॥ अरु समाधि

बैठि स्थित भया ॥ पर अर्धउनमीलितलोचन ॥ तब मद
नका कामी पुरुषकों त्यागकर ॥ घडी दोय पाछे बाहिर
आई ॥ अर राजाके निकिट आइकर अंगोंको नगनकी
या ॥ अर बहुड वस्त्रोंसा पहरी ॥ जैसे अवरस्त्रीयांका म
करम्याकुल होती हैं ॥ तैसे चूडालाको देषकर राजे कहा
हे मदनका तें ऐसे सुषको त्यागकर किउं आई हैं ॥ तें तो
बडे आनंद कर मगन थी ॥ अब तहांही फेर जाइ ॥ मेरे ता
ई तो हर्ष शोक कछु नहीं मैं जितकाति उहो ॥ परंतु तेरा अ
र अरकामीपुरुषकी प्रीत परस्पर देषीहे ॥ परस्पर प्री
त संपूर्ण जगत विषे नहीं होती ॥ अर तुमारा देषी है ॥ तां
तें ते उसको सुष देउ ॥ अर उह तेरे ताई सुष देवै ॥ अब जा
इ ॥ तब मदनका लज्जासों सिरकों नीचे करके बोली
हे भगवन तुम क्षमा करो मेरे पर क्रोध न कर ॥ मेरे ते अ
विद्याबहा हूई है ॥ परंतु मै जानकर नहीं करी ॥ जैसे वृ
ति होत है ॥ तैसे श्रवण कर ॥ जब तुम संध्या करणे लागे थे
तब मैं बन विषे आई थी ॥ तहां एक कामी पुरुष का मि
लाप हूया ॥ मैं निर्बल थी उह बलीया था ॥ तिस मेरे ताई प
किड लीया ॥ अर जो पतिब्रता स्त्रीयोंकी मर्यादा है ॥ सो मै
मैं करी जो उसपर क्रोध कीया ॥ अर दूसरा तिसका तिरा
दर कीया ॥ अर तीसरा पुकार भी करी ॥ इह तीनों पतिब्र
ताकी मर्यादा हैं ॥ सो मैं करीयां ॥ अर तुम दूर थे ॥ अर उ
ह बलीया था ॥ मेरे ताई पकिड लीया ॥ अर गोद विषे बैठा
या ॥ जो कछु उसकी भावनां थी सो करी ॥ हे भगवन मेरे
विषे दूषन कछु नहीं ॥ तांते तुम क्षमा करो ॥ क्रोध न करो
॥ राजोवाच ॥ हे मदनका मेरे ताई क्रोध कदाचित न
ही ॥ जैसे आकाश विषे वृक्ष कदाचित नहीं होता ॥ तैसे
मेरे विषे क्रोध कदाचित नहीं ॥ जो मेरे ताई केवल आत ही
मां दृष्ट आवता है ॥ तो क्रोध किसपर करों ॥ मेरे ताई न क
छु ग्रहण है न त्याग है ॥ तथापि इह कर्म साधोंको करने दि
त है ॥ तांते मैं अब तेरा त्याग कीया ॥ सुषेन ही विचरोंगा ॥ अ
र जो हमारा गुरु कुंभ है ॥ सो हमारे पास ही है ॥ उह अर हम

सदा निरागरूपहैं ॥ अरु तूं तो दुर्वासाके स्रापतें उपजी
है ॥ तेरे साथ हमारा क्या प्रयोजन है ॥ तूं अब उसी पास
जाउ ॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे माया पिंजर ख
र्तन नाम सर्गः ॥ ९४ ॥ श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी
तब मदन का नाम जो चूडाला है ॥ तिस मन विषे विचा
र कीया जो बडा कार्य हूया ॥ जो राजा आत्मपद विषे
प्राप्त भया ॥ ऐसीयां सिधीं भी दिषाईयां ॥ अरु कुडस्या
तनी दिषाये ॥ तो भी राजा शुभ अशुभ विषे जिउं का
तिउं ही रहा ॥ ताते बडा कल्याण हूया ॥ आज राजा कों
शांति प्राप्त भई ॥ अरु राग द्वेष तें रहित भया ॥ अब प्र
वेरूप चूडाला का जो है सो दिषावौं ॥ अरु सर्व वृत्तांत रा
जा कौं जनावौं ॥ ऐसे विचार के मदन का शरीर तें चूडा
लारूप होय कर प्रगट भई ॥ भूषनों अरु वस्त्रों सहित
तब राजा देषकर महा आश्चर्य कों प्राप्त भया ॥ अर
ध्यान विषे स्थिति हो गया ॥ अरु देष्या जो इह चूडाला क
हां तें आई है ॥ बहुड बोल्या हे देवी तूं कवन हैं ॥ तेरे
ताईं देषकर मैं आश्चर्य कों प्राप्त भया ॥ जो ऐसी मेरी
स्त्री चूडाला थी ॥ अरु तूं ईहां किस निमित आई है ॥ अर
कब की आई हैं ॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन मैं तेरी
स्त्री चूडाला हौं ॥ अरु तूं मेरा स्वामी हैं ॥ हे राजन कुंभ तें
आदि अरु इह चूडाला शरीर पर्यंत सर्व चरित्र ते
रे जगावणे निमित मैं ही कीये हे ॥ तूं ध्यान विषे स्थिति
होकर देष ॥ जो इह चरित्र किस कीये हैं ॥ अरु अब मैं
अहंतम चूडाला का पूर्वला शरीर धारता हे ॥ हे राम
जी जब ऐसे चूडाला कहा ॥ तब राजा ध्यान विषे स्थि
त होकर देषणे लागा ॥ एक मकुंभ तें पर्यंत चरित्रों कों दे
ष लीया ॥ उपरांत राजा आश्चर्य कों प्राप्त होकर ॥ नेत्र षो
ल कै राणी के गल साथ कंठ लगाइ कर मिल्या ॥ अर
दोनो हर्ष कों प्राप्त भये ॥ जो सहस्र मुष साथ वर्ष प्रजं
त शेष नाग सुष कों वर्नन करे ॥ तो भी उस सुष कों गन
न सकै ॥ ऐसे स्नेहता समान विषे स्थित भये ॥ अरु शांत कों

प्राप्त भये ॥ जिस विषे क्षोभ कोऊ नहीं ॥ राजा अर राणी
जो गलकंठ मिल्ये थे ॥ सो अंगों विषे उद्यमता उपजी ॥ त
ब सनैं सनैं बोल दीया ॥ राजा हर्षमान होया ॥ रोमावल
खडे हो आये ॥ अर नेत्रों तें जल चलने लागा ॥ ऐसी अ
वस्था साथ राजे बोल्या ॥ हे देवी मेरे पर तैं ने बहुत अनु
ग्रह कीया है ॥ तेरी उस्तति करनें को मैं समर्थ नहीं ॥ कैं
से उस्तति करों ॥ जेते कछु संसार के पदारथ हैं ॥ सो सर्व
मायामय हैं ॥ अर मिथ्या हैं ॥ अर तैं नें मेरे तांई सत पद
को प्राप्त कीया है ॥ तां ते तेरी उपमा मैं क्या करों ॥ हे देवी मैं
विचार कीया है ॥ जो मैं जब राज का त्याग कीया था ॥ अ
रु सचूडाला के शरीर पर्यंत सर्व तेरे चरित्र हैं ॥ अर
मेरे निमित्त तैं ने बहुत कष्ट कीये हैं ॥ अर बहु जतन करे हैं
आवणा अर जावणा शरीर को स्वांग धारणा ॥ अर उ
डणा इत्यादिक तैं नें बडा कष्ट पाया है ॥ अर बहु जत
न करके मेरे तांई संसार समुद्र तें पार कीया है ॥ अर बडा
उपकार कीया है ॥ अर जेती कछु देवीयां हैं ॥ तिन सों तैं नें
श्रेष्ठ कार्य कीया है ॥ तां ते तूं सभनों तें अधिक है ॥ सो दे
वीयां कवन हैं ॥ जिन तें तूं अधिक है सो सुण ॥ अरुंधती
अर इंद्राणी ॥ अर ब्रह्माणी ॥ अर लक्ष्मी ॥ अर पार्वती ॥ निरादर
अर सरस्वती ॥ इत्यादिक देवीयां को तैं नें तिरस्कार की
या है ॥ हे देवी जो श्रेष्ठ कुल की कन्या है ॥ अर पतिव्रता
है ॥ सो जिस पुरुष को प्राप्त होती है ॥ तिस का सर्व कार्य सि
ध होता है ॥ सो कवन श्रेष्ठ इस्त्रीयां हैं ॥ सो श्रवण कर ॥
बुधि शांति अर दया ॥ अर शांति ॥ अर कोमलता ॥ अर
मैत्री इत्यादिक जो शुभ लक्षण हैं ॥ सो पतिव्रता स्त्री कर
प्राप्त होते हैं ॥ हे देवी मैं तेरे प्रसाद कर के शांत पद को प्रा
प्त भया हों ॥ अब मेरे तांई क्षोभ कोऊ नहीं ॥ ऐसे पद को
शास्त्र कर नहीं पाई ता ॥ अर गुरों करके भी नहीं पाई ता ॥ अ
र तप करके भी नहीं पाई ता ॥ जो पतिव्रता स्त्री कर पाई ता
है ॥ तब चूडाला कहा ॥ हे राजन तूं काहे कों मेरी उस्तति
करता है ॥ मैं तो अपना कार्य कीया है ॥ हे राजा जब तैं राज
का त्याग कर बन विषे आया ॥ तब मोह को साथ लीये आ

या॥ मोह कहीये अज्ञान॥ तिस अज्ञान करना चरूप्यान विषे
गिड़ा॥ जैसे कोऊ पुरूष गांगाजल का त्याग करके छिकड
के जल का अंगीकार करता है॥ तैसे तूं आत्मज्ञान अकृय
पद को त्याग कर तप का अंगीकार कीया॥ हे राजा मैं देख्या॥
जो तूं छिकड विषे गिड़ा है॥ तां ते तेरे निकासणे के निमित
मैं ने एते यतन कीये हैं॥ हे राजा मैं अपणां कार्य कीया है॥
राजोवाच॥ हे देवी मेरा एही आशीर्वाद है॥ जो जो कोऊ
पतिव्रत स्त्री होवे॥ सो सभ ऐसे कार्य करे॥ जैसे तुम कीया
है॥ जो पतिव्रत स्त्री तें कार्य होता है॥ सो अवर ते नहीं होता
हे देवी जेती अरुंधती आदि स्त्रीयां हैं॥ तिन विषे तूं प्रथम
गनी [illegible] गी॥ अर मैं जानता हों॥ ब्रह्माजी तेरे तांई क्रोध
कर उपजाया है॥ किस निमित जो अरुंधती आदि जो देवीयां
हैं॥ तिनहूं आप विषे गर्व कीया होवैगा॥ तिस गर्व को सुण
कर तिनहूं तें अधिक उसतति कीया है॥ हे देवी बहुड मेरे अं
ग लाग॥ जो तैं ने बहुत उपकार मेरे साथ कीया है॥ श्रीवशि
ष्ठोवाच॥ हे रामजी ऐसे कहिकर राजे बहुड राणी कों
गले के लगाया॥ जैसे नौला अर नौली मिलें॥ ऐसे आसे
जो मूर्ति की न्यांई लिखे हैं॥ तब चूडाला कहा॥ हे भगव
न एक तूं मेरे तांई इह कहु॥ जो ज्ञानरूप आत्मा के एक अं
स विषे जगत लीन हो जाते हैं॥ ऐसा जो तूं है॥ सो आप को
अब क्या जानता है॥ अर अब तूं कहां स्थित है॥ अर रज
तेरे तांई कछु दिखाई देता है॥ अथवा नहीं देता॥ अब तेरे
तांई इछा क्या है॥ शिखरध्वजोवाच॥ हे देवी जो स्वरूप
ज्ञान कर के तैं ने निश्चय कीया है॥ सोई मैं आप को जानता
हों॥ अर शांतरूप हों॥ इछा अनिछा मेरे तांई कोऊ नहीं र
ही॥ केवल अर्थ निरूप है॥ हे देवी जिस पद की ऊपेछा क
रके ब्रह्मा अर विष्णु अर रुद्र कायां मूर्तीनी शोक संयुक्त
तासता है॥ तिस पद को मैं प्राप्त भया हों॥ जहां उथान को
ऊ नहीं॥ अर निहकिंचित है॥ जिस विषे किंचित मात्र भी
जगत नहीं॥ अर जो मैं था सोई भया हों॥ इसते इतर कछु क
हों॥ हे देवी तैं ने संसार समुद्र तें मेरे तांई पार कीया है॥ तां तें

तूं मेरा गुरु है ॥ ऐसे कहि कर राजा चुडाला के चरनौं पर
गिडया ॥ अरु कहा ॥ अतानु मेरे ताई कदाचित स्पर्श न
करेगा ॥ जैसे तांबा पारस के संगाई हूया ॥ तब बहुड तां
बा नहीं होता ॥ तैसे मैं मोहरूप चिकडे तैं तेरे संग करति
कस्या हों ॥ बहुड कदाचित न गिडोंगा ॥ अब इस जगत के
सुष दुष कर नु तुष्ट हों ॥ न तो भवान हों जो कां तिं उस्थित
हों ॥ अरु रागद्वेष जो उगावणे वाला चित था सो मेरा नष्ट
हो गया है ॥ अब मैं प्रकाशरूप आपणे आप विषे स्थित हों
जैसे सूर्य का प्रतिबिंब जल विषे पडता है ॥ अरु जल के न
ष्ट होवणे कर प्रतिबिंब भी सूर्यरूप होता है ॥ तैसे मेरा चि
त भी आत्मरूप होतं भया है ॥ अब मैं निर्वाणपद को प्राप्त
भया हों ॥ अरु सर्व तें अतीत भया हों ॥ अरु सर्व विषे भी स्थित
हों ॥ जैसे आकाश सर्व पदार्थों तें अतीत है ॥ अरु सर्वव्यापी
भी है ॥ तैसे मैं भी हों ॥ अरु अहंत्वं आदिक शब्द मेरे नष्ट भ
ये हैं ॥ अरु शांत को प्राप्त भया हों ॥ अब मेरे विषे ऐसा अरु तैं
सा शब्द को भू नहीं मैं अदैत हों ॥ अरु चिनमात्र हों ॥ न सूक्ष्म
हों ॥ न स्थूल हों ॥ चूडालीवाच ॥ हे राजन जो तूं ऐसे स्थित
हूया है ॥ तो अब क्या करेंगा ॥ तेरे तांई क्या इछा है ॥ राजोवा
च ॥ हे देवी न मेरे कछू अंगीकार करने की इछा है ॥ न त्या
गणे की इछा है ॥ जो कछू तूं कहैंगी सो करेंगा ॥ तेरे कहणे
का अंगीकार करेंगा ॥ जैसे मणि प्रतिबिंब को अंगीकार कर
ती है ॥ तैसे मैं तेरे वचन को ग्रहण करेंगा ॥ चूडालोवा
च ॥ हे प्राणों के स्वामी अरु रिदे को प्यारे राजन ॥ अब तूं विहमु
हूया है ॥ अरु नलीका कार्य हूया जो तेरी इछा नष्ट भई है ॥ हे
राजा अब तूं अरु मैं मोह को त्याग करके अपणे प्रकृति आ
चार विषे विचरें ॥ बेद तें रहित होकर जीवन्मुक्ति हूये ॥ अ
पणे प्रकृति आचार को हम क्यों त्यागें ॥ हे राजा जो अपणे आ
चार को त्यागेंगे ॥ तो अवर किसी का ग्रहण करेंगे ॥ तां ते हम आचार
अपणे ही विषे विचरें ॥ अरु भोग मोक्ष दोनों को भोगें ॥ हे रा
म जी ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत भया ॥ अरु सायं
काल की संध्या राजा करतें भया ॥ बहुड सिजा का आरंभ की
या ॥ तिस ऊपर दोनों सैन करतें भये ॥ अरु रात्रि को परस्पर चर्चा

१५५

हांकतैरहे ॥ एकक्षणकीन्यांई रात्रकों व्यतीत कीया ॥ इ
ति श्रीनिरवाणप्रकरणे चूडालाप्रसंग नामसर्गः ॥
॥ ८५ ॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥ हेरामजी जब ऐसें से रात्र बी
ती ॥ तब सूर्य भगवान किरन पसारीयां ॥ कैंसा है सूर्य जो
संपूर्न जगत की चेष्टा किरनों कर उत्पति होता है ॥ अर सू
र्यमुषी कमलनीयो बिगसायो ॥ तब राजे स्नान का आ
रंभ कीया ॥ चूडाला मनके संकल्प कर कै रतनों अर म
णी की मुटकी रची ॥ अर हाथ पर धारी ॥ तिस विषे गंगादि
क संपूर्न तीर्थों के जल स्थित कीये ॥ अर राजा के ऊपर पा
ये ॥ अर राजा कों शुध कीया ॥ अर संध्यादिक सर्व कर्म कीये
तब चूडाला कहा ॥ हे राजन मोह कों नास करके सुषे
नहीं अपणे राजकार्य कों करें ॥ अर आनंद साथ भोग
भोगें ॥ राजोवाच ॥ हे देवी जो सुषभोगणे तांई तेरी इ
छा है ॥ तो स्वर्ग विषे भी हमारा राज है ॥ अर सिधों विषे भी
जो तेरे तांई इछा है ॥ तो स्वर्ग विषे विचरें ॥ चूडालोवाच
॥ हे राजन हमकों न सुषभोगणे की इछा है ॥ न त्यागकर
णे की इछा है ॥ हम ज्यों के त्यों हैं ॥ हे राजन इछा अर अनिछा
तब होती है ॥ जो आगों कछु पदारथ भासता है ॥ हमारे तां
ई तो केवल आकाश आत्मा दृष्ट आवता है ॥ स्वर्ग कहां अ
र नर्क कहां है ॥ हम सर्वदा एकरस विषे स्थित हैं ॥ हे राजा
जदि प हमारे तांई इछा कछु नहीं ॥ तथापि जब लग शरी
र का प्रारब्ध है ॥ तब लग शरीर भी रहिता है ॥ तो चेष्टा भी
हूई चाहीये ॥ अब र चेष्टा करणे तें अपणे महलन आचा
र कों क्यों नाश करें ॥ जो राग अर द्वेष त्याग कर अपणे
राज कों भोगें ॥ ता तें अब बडे व बडा होई ॥ अष्ट वसु के ते
ज कों धारकर राजके करणे को सावधान हो ॥ हे रामजी ज
ब ऐसे चूडाली कहा ॥ तब राजा कहते भया ॥ ऐसे ही हो
वे ॥ अर अष्ट वसु ते जसंयुक्त होत भया ॥ जब ऐसा तेज
राजे कों आइ भासत भया ॥ तब राजे कहा ॥ हे देवी तूं मेरी
पटराणी हैं ॥ अर मैं तेरा भर्ता हों ॥ तो भी एक तूं है ॥ अर ए
क मैं हों ॥ अवर की कछु नहीं ॥ अर राजा तब होता है जब सेना भी
होती है ॥ ता तें तूं सेना कों रच ॥ ऐसे राजे तें श्रवण करके चू

राजा संपूर्णसेनाकों रचतीभई ॥ हस्ती घोरे संपूर्ण ऐश्व
र्य अरु रथ नौबत नीस्यान अरु निगारे इत्यादिक जो
राजकी सामिग्री है सो रची ॥ सो प्रतीत होवै आगें आनी स्थित
भई ॥ अर नौबत निगारे तुरी स्वर नाई बाजणे लागे ॥ जो
कछु राजकी सामिग्री है ॥ सो अपणे स्थान विषे स्थित भई
अर राजाके सिर पर छत्र फिरने लागा ॥ अर बेरक बडी
हूई ॥ तब राजा अर राणी हस्ती पर आरूढ होइकर चल्ये
मंद्राचल पर्वततें ऊपर ॥ आगें पाछें सब सैंना भई ॥ अर रा
जा जिस जिस ठौर तप करता भया था ॥ सो राणीकों दिखाव स्थान
ता जावै ॥ जो इसकी ले विषे मैं एता काल रह्या हों ॥ जब राज
त्याग कीया था ॥ तब इस स्थान विषे एता रह्या हों ॥ ऐसे
दिखावता जावै ॥ अर तीरथ वेग कर चल्ये ॥ अर आगें जो
मंत्री अर पुरवासी अवर नगरवासी थे ॥ सो राजाकों ले
ते आये ॥ अर बहुत पूजन आदर सत्कार कीया ॥ तब अप
णे मंदिरें विषे आइ स्थित भये ॥ अष्ट दिन पर्यंत रा
जाकों मिलने निमित्त लोकपाल अर मंडलेश्वर आव
ते रहे ॥ तिसतें उपरांत राजा सिंहासन पर आइ बैठा ॥ अ
र राज करणे लागा ॥ समता दृष्टकों जीये दश सहस्र वर्ष
पर्यंत राज कीया ॥ चूडालासंयुक्त जीवन्मुक्ति होइकर वि
चरतें भया ॥ बहुड़ विदेहमुक्ति भये ॥ हे रामजी दश सह
स्र वर्ष राजे अर चूडाला राज कीया ॥ अर सत्तासमान वि
षे स्थित रहे ॥ किसी पदार्थ विषे रागवान न भये ॥ अर
द्वेषवान न कीया ॥ ज्यों के त्यों शांतपद विषे स्थित रहे ॥ जे
ती कछु राजकी चेष्टा है ॥ सो करते रहे ॥ पर अंतःकरण
करकें किसी विषे बंधमान न हूये ॥ केवल आत्मपद वि
षे अचल रहे ॥ बहुड़ राजा अर चूडाला विदेहमुक्ति
कों प्राप्त भये ॥ जैसे आपकों जाणते थे ॥ सोई केवल परमा
काश अद्वैतपद विषे जाइ स्थित भये ॥ जैसे तेल बिनां
दीपक निर्वाण होता है ॥ तैसे प्रारब्ध वेगके क्षय हूयें नि
र्वाणपद विषे प्राप्त भये ॥ हे रामजी जैसे शिखरध्वज अर चू
डाला जीवन्मुक्ति होकर भोगोंकों भोगते विचरते हैं ॥ तैसें तं
जी रागद्वेषतें रहित होकर विचरो ॥ इति श्री निरवाण प्र

कृतौशिषरध्वजचूडालापाख्यानेसमाप्तंनामस
र्गः॥ ९६ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हेरामजीसिषुरध्वजका
वृत्तांतमैंसंपूर्णतुजकोंकहाहे॥ ऐसीदृष्टकोंआश्रेक
रो॥ कैसीदृष्टहै॥ जोपापोंकानासकरतीहे॥ तिसदृष्टकों
आश्रेकर॥ जिसमारिंगकरसिषरध्वजततपदकोंप्रा
प्तभयाहे॥ अरजीवनमुक्तिहोइकरराजविवहारकीया
हे॥ तैंसेतुमभीततपदकोंआश्रेकरो॥ अरतिसापराइ
ताहोवो॥ आत्मपदपाइकरभोगमोक्षदोनोंभोगो॥ अर
तिसीप्रकारवृहस्पतिकाबेटा॥ कचभीबोधवानहूया
हे॥ श्रीरामोवाच॥ हेभगवनजिसप्रकारवृहस्पतिका
पुत्रकचबोधवानहूयाहे॥ सोप्रकारसभहीसंक्षेपतेंमु
षकरमुजकोंकहो॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ अथकथ
कचकालिष्यते॥ हेरामजीऐसाकचथाबालिकमा
रिंगजोहैअज्ञात॥ तिसकोंत्यागकरपदपदार्थोंकोंजा
नणेलागा॥ जबऐसाहूया॥ तबपितावृहस्पतिसोंप्रश्न
कीया॥ किहेपिताइससंसारपिंजरतेंमैंकैसेनिकसों॥
जेतासंसारहे॥ सोजीवतकरबांध्याहूयाहे॥ जीवतकही
ये॥ अनात्मदेहादिकोंमिथ्याविषेअहंकारकरणा॥ इसी
करबांध्याहूयाहे॥ जोअहंअरत्वंमानताहे॥ तिससंसा
रतेंमुक्तिकैसेहोवें॥ वृहस्पतोवाच॥ हेतातइसअन
र्थरूपसंसारतेंतबमुक्तिहोवीताहे॥ जबसर्वत्यागकरी
ताहे॥ सर्वत्यागकीयेविनांमुक्तनहींहोवीता॥ तांतेंतंस
र्वत्यागकरजोमुक्तहोवें॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हेरामजी
जबइसप्रकारवृहस्पतिकहा॥ तबकचऐसेपावनव
चनोंकोंश्रवणकरतेश्वर्यकोंत्यागकरबनकोंगया॥
बनमोंएककंदरामेंजास्थितभया॥ तपकरणेलागा॥
हेरामजीवृहस्पतिकापुत्रकचतिसकेजावलेकरउस
कोंषेदकछुनहूया॥ जोनानबानपुरुषकोंसंयोगवि
योगविषेसमतानावरहिताहे॥ हर्षअरशोककोंकदा
चितनहींप्राप्तहोता॥ जिउकातिंउहीरहिताहे॥ जबआ
ठवर्षपर्यंततपकीया॥ तबवृहस्पतिआया॥ अरदेख्या
जोकचएककंदराविषेबैठाहे॥ तहांकचकेपासआइ

स्थिति न पाई ॥ अरु कच पिता का पूजन गुरों की न्याई की
या ॥ अरु बृहस्पति कच कों कहने लगाया ॥ तब दुःख कर
गद्गद वाणी सहित कच प्रश्न कीया ॥ हे पिताजी अष्ट
वर्ष भए हैं जो मैं सर्व त्याग कीया है ॥ तो भी शांति को न प्रा
प्त भया ॥ जिस कर मेरे तांई शांति प्राप्त होवे सो कहो ॥ त
ब बृहस्पति कहा ॥ हे तात सर्व त्याग कर जो तेरे तांई शां
ति प्राप्त होवे ॥ ऐसे कहि कर बृहस्पति उठ खड़ा हूया ॥
अरु आकाश कों चलागया ॥ हे रामजी जब ऐसे बृहस्प
ति कहि कर चलागया ॥ तब कच आसन अरु मृगछा
ला अरु बन कों त्याग कर आगे बन कों चल्या ॥ एक कं
दरा विषे जाइ कर स्थिति भया ॥ तब तीन वर्ष ऊहां व्यती
त भये ॥ बहुड़ बृहस्पति आइ प्राप्त भया ॥ देख्या जो कच
स्थिति है ॥ तब कच नम्रीभूत कर गुरु की न्याई पूजन की
या ॥ अरु बृहस्पति कच को कहने लगाया ॥ तब कच क
हा ॥ हे पिता अब लग मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई ॥ अ
रु मैं सर्व त्याग भी कीया है ॥ जो आपणे पास कछु नहीं राख्या
तां तें जिस कर मेरा कल्याण होवे सो कहो ॥ तब बृहस्प
ति कहा ॥ हे तात सर्व त्याग नहीं कीया ॥ अब भी ॥ सर्व पद
चित का नाम है ॥ जब चित्त का त्याग करें ॥ तब सर्व त्याग हो
वे ॥ तां तें चित्त का त्याग कर ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी
ऐसे कहि कर बृहस्पति आकाश कों चलागया ॥ तब क
च विचारने लागा ॥ जो पिता ने सर्व पद चित कों कह्या है
सो चित क्या है ॥ प्रथम बन के पदार्थों कों देख कर विचार
ने लागा जो चित है ॥ तब देख्या जो इह भिन्न भिन्न हैं ॥ तां तें
इह चित नहीं ॥ अरु नेत्र भी चित नहीं ॥ जो नेत्र श्रवण तो नहीं
श्रवण नेत्रों तें भिन्न हैं ॥ श्रवण भी चित नहीं ॥ इसी प्रका
र सर्व इंद्रीयों चित नहीं ॥ जो एक विषे दूसरे का अभाव है
तां तें चित क्या है ॥ तिस कों जान कर त्याग करों ॥ बहुड़ वि
चारत भया ॥ जो पिता के पास स्वर्ग विषे जावों ॥ हे रामजी ऐ
से विचार कर उठ खड़ा हूया ॥ दिगंबर आकार धार आ
काश कों चल्या ॥ जब पिता के पास जाइ कर प्राप्त भया ॥ त
ब पिता का पूजन कीया ॥ अरु कह्या ॥ हे तेतीस कोटि

नागा वेस

देवत्यों के गुरु ॥ चित का रूप कया है ॥ चित का रूप कहो
जो मैं तिसका त्याग करौं ॥ बृहस्पतीवाच ॥ हे पुत्र चि
त जो है सो अहंकार का नाम है ॥ सो अज्ञान तें उपजा है
अर आत्मज्ञान कर के इसका नास होता है ॥ जैसे रस
डी के अज्ञान तें सर्प भासता है ॥ अर रसडी के ज्ञान
तें सर्प भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ ताते अहंकार जो है अहं
भाव तिसका त्याग कर ॥ अर स्वरूप विषे स्थित हो ॥ क
चोवाच ॥ हे पिता अहंभाव का त्याग कैसे करौं ॥ अहं
तो मैं हों ॥ बडो उपाय करि त्याग कर के स्थित कैसे होवों ॥
इसका त्याग करने महा कठन है ॥ बृहस्पतीवाच ॥
हे तात अहंकार का त्याग करणां तो महा सुगम है ॥ फू
ल के मलने विषे भी कछु यतन है ॥ नेत्रों के खोलणे अ
र मूंदणे विषे भी कछु यतन है ॥ पर अहंकार के त्याग
णे विषे यतन कछु नहीं ॥ हे पुत्र अहंकार वस्तु कछु न
हीं ॥ भ्रम कर के उठा है ॥ जैसे मूर्ष बालिक अपणे प
छांवे विषे वेताल कल्पता है ॥ अर जेवडी विषे सर्प क
ल्पता है ॥ अर मारूथल विषे जल कल्पता है ॥ अर आ
काश विषे भ्रम कर के दो चंद्रमें सिध होते हैं ॥ तैसे
गछिन्न जो है अहंकार सो अपणे प्रमाद कर के उप
जा है ॥ आत्मा शुध है ॥ अर आकाश तें भी निर्मल है ॥
अर देशकाल वस्तु के परछेद तें रहित है ॥ अर सत्ता
मात्र है ॥ अर चिन्मात्र है ॥ तिस विषे स्थित हो ॥ जो तेरा
स्वरूप है ॥ अर तूं आत्मा है ॥ तेरे विषे अहंकार कदा
चित नहीं ॥ हे साध आत्मा सर्वदा सर्व प्रकार सर्वत्र स
र्व विषे स्थित है ॥ तिस विषे अहंभाव ऐसा है ॥ जैसे स
मुद्र विषे धूड कदाचित नहीं ॥ तैसे तिस विषे अहंका
र नहीं ॥ कैसा है आत्मा जिस विषे न एक कहणा है ॥ न
दो कहणा है ॥ केवल अपणे आप विषे स्थित है ॥ अर
अहंकार जो दृष्ट आवता हैं ॥ सो चित के फुरने कर के है ॥
अर चित के नष्ट हूये तें आत्मा ही शेष रहिता है ॥ ताते

आपणें स्वरूप विषे स्थित हो॥ जो तेरे दुष नष्ट होजावें॥
अरु इह जो कछु दृष्ट भी आवता है॥ इस विषे भी आ
स्था है॥ जैसे पत्र फूल फल सर्व बीज तें उत्पति होते हैं
तैंसे सर्वात्मा का इह चमत्कार है॥ जैसे अनेक रसों
विषे रस एक ही है॥ तैंसे सर्वाकारों विषे आत्मा एक
ही है॥ इति श्रीनिरवाणप्रकरणे वृहस्पतिबोध
नं नाम सर्गः॥ ९६॥ श्रीवशिष्टोवाच॥ हे रामजी ज
ब इस प्रकार वृहस्पति उतम उपदेश कीया॥ तब क
च श्रवण करके स्वरूप विषे स्थित भया॥ अरु जो ग
जो है आत्मा॥ अरु परछिन्न अहंकार की एकता तिस
कों प्राप्त भया॥ अरु आत्मस्वरूप हूया॥ अरु जीवन्मु
क्ति होकर विचरत भया॥ हे रामजी जैसे कच जीवन्मु
क्ति होकर विचरता है॥ निरहंकार होकर तैंसे तूं भी
विचिर॥ अरु निरास होकर विचिर॥ केवल अद्वैत प
द कों प्राप्त हो॥ जो निर्मल अरु शुध है॥ जिस विषे एक
अरु द्वैत कहणां भी नहीं॥ तूं तिस विषे स्थित हो॥ तेरे वि
षे दुष कोऊ नहीं॥ तूं आत्मा हैं॥ अरु तेरे विषे अहंकार
ही नहीं॥ तूं ग्रहण अरु त्याग किसका करें॥ जो पदार
थ होवे ही नहीं॥ तिसका ग्रहण अरु त्याग क्या करें॥ हे
रामजी जैसे आकाश के बन॥ तिस विषे फल है नहीं॥ ति
स का ग्रहण क्या॥ अरु त्याग क्या॥ तैंसे आत्मा विषे अह
कार नहीं॥ जो ग्यानवान पुरुष हैं॥ सो अहंकार कों ग्रह
ण नहीं करते॥ अरु त्याग भी नहीं करते॥ अरु जो मूर्ष हैं॥
तिन कों एक आत्मा विषे नाना प्रकार भासते हैं॥ अरु कि
सी का शोक करणीं॥ अरु कछु हर्ष करणीं॥ अरु तूं कैसे दुष कों
नास चहता हैं॥ दुष तेरे विषे है नहीं॥ तूं कैसे नास करनें
कों समर्थ हूया हैं॥ अरु जे ते कछु आकार दृष्ट आवते
हैं॥ सो मिथ्या हैं॥ तिन विषे जो अधिष्ठान है॥ सो सत है॥ अ
र जो मूर्ष हैं॥ सो मिथ्या होकर सतकार स्थाकते हैं॥ जो मे
रे दुष नास होवेंगे॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन तुमारे प्र
साद कर में त्रिप्त हूया हों॥ तुमारे अमृतरूप वचनक के

तिसपर

अघाइ रहा हों ॥ जैसे पपीहा एक बूंद कों चहता है ॥ अर
कृपा करके मेघ वर्षा करता है ॥ अरु अघाइ जाता है ॥ तै
से मैं तुमारी सर्न आप्त हूया था ॥ अरु तुमारे मिलने की इ
छा बूंद की न्याई करता था ॥ अरु तुम ऊहु कृपा करके ज्ञान
रूप अंमृत की वर्षा करी है ॥ तिस वर्षा करके मैं अघाया
हों ॥ अब मैं शांति पद कों प्राप्त भया हों ॥ अरु तीनों ताप मे
रे मिट गाये हैं ॥ कोउ फुरना मेरे बिषे नहीं रहा ॥ अरु तुमा
रे अंमृत रूप बचनों कों मैं श्रवण करता तृप्त नहीं होता ॥
जैसे चकोर चंद्रमां कों देखकर अंमृत रूप किरणों ते
त्रिप्त नहीं होता ॥ तैसे तुमारे अंमृत रूप बचनों कर मैं त्रि
प्त नहीं होता ॥ तातें प्रश्न करता हों ॥ तिसका उतर कृपा क
रके हो ॥ हे भगवन मिथ्या क्या है ॥ अरु सत क्या है ॥ जिसकी
रष्या करते हैं ॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥ हे रामजी इस पर उ
पाष्यान है ॥ सो श्रवण करावता हों ॥ जिसके सुन्ने तें हासी
आवै ॥ अथ कथा मिथ्या पुरुष की ॥ एक आकाश वि
षे शून्य बन है ॥ तिस बिषे एक मनुष बालिक था ॥ जो आ
प मिथ्या है ॥ अरु सत के राषने की इछा करता है ॥ जो मैं इस
की रष्या करों ॥ जो आधिष्टान है ॥ सो सत है ॥ तिसकों नहीं जा
नता ॥ अरु मूर्षता करके दुष पावता है ॥ क्या जानता है ॥ तैं
श्रवण कर ॥ इह आकाश है ॥ मैं भी आकाश हों ॥ मेरा आका
श है ॥ मैं आकाश की रक्षा करोंगा ॥ ऐसे विचार करके एक
गृह बनाया ॥ गृह बिषे जो आकाश है ॥ तिसकी रक्षा करों
गा ॥ जो इसका नाश न होवे ॥ इस निमित गृह बनाया ॥ हे रा
मजी ऐसे विचार करके गृह का बनावना बहुत करा ॥ जब
किसी और ते टूटे ॥ तब बहुड़ बना लेवे ॥ जब केता काल
ब्यतीत भया इस प्रकार ॥ तब काल करके गृह गिड़ पड़ा ॥ तब
रुदन करने लागा ॥ हाइ हाइ मेरा आकाश नष्ट होगया ॥ जै
से एक ऋत ब्यतीत होवे ॥ अरु दूसरी आवै ॥ तैसे काल करके
गृह गिड़ पड़ा ॥ तिसके उपरांत एक घड़ा घाटा ॥ अरु कह
ने लागा ॥ जो एह आकाश न जावेगा ॥ जो इसकी भली प्रका
र रक्षा करोंगा ॥ हे रामजी इस प्रकार घड़े कों बनाइ कर

सुषमानया ॥ जबकेताकालबीता ॥ तबजैंसेसूकापातब
क्षतेंगिडताहै ॥ तैंसेकुयाभीगिडगया ॥ तबबडेशोककों
प्राप्तभया ॥ जोमेराआकाशगिडगया ॥ अरनष्टहोगया ॥ मैं
क्याकरोंगा ॥ ऐंसेशोकसंयुक्तकेताकालबीता ॥ तबएक
कुटीबनाई ॥ जैंसेअनाजराषणेनमितबनाईताहै ॥ तैंसे
बनाइकरकहणेलागा ॥ जोमेराआकाशकहांजावेगा ॥ मैं
अबइसकीभलीप्रकाररक्षाकरोंगा ॥ ऐंसेकुटीककें ब
हुतसुषमानया ॥ जबकेताकालव्यतीतभया ॥ तबउहकुटी
भीगिडपडी ॥ जोउपजीवस्तकाविनासहोवणां अवस्यहै ॥
बहुडरुदनकरणेलागा ॥ जोमेराआकाशनष्टहोगया ॥ ज
बकेताकालशोकसंयुक्तबीता ॥ तबएकघटबनाया ॥
अरघटाकाशकीरक्षाकरणेलागा ॥ तबकेतेकालकर
घटभीनष्टहोगया ॥ बहुडएककुंडबनाया ॥ अरकुंडाका
शकीरक्षाकरणेलागा ॥ केतेकालकरकुंडभीनष्टहोग
या ॥ अरशोकवानहूया ॥ बहुडएकहवेलीबनाई ॥ अर
कहणेलागा ॥ अबमेराआकाशकहांजावैगा ॥ मैंइसकी
भलीप्रकाररक्षाकरोंगा ॥ अरबडेहर्षकोंप्राप्तभया ॥ ज
बकेताकालव्यतीतभया ॥ तबउहहवेलीभीगिडगई ॥ ब
हुडदुषकोंप्राप्तभया ॥ जोहाइहाइमेराआकाशनष्टहोग
या ॥ मेरेतांईबडाकष्टप्राप्तहूया ॥ हेरामजीइसीप्रकारआ
त्मज्ञानबिनां ॥ अरआकाशकेजाणेंबिनांमूरिषबालिक
दुषपावतारहा ॥ जोआपकोंभीयथार्थजानता ॥ अरआ
काशकोंभीज्योंकात्योंजानता ॥ तोइहकष्टकाहेकोंपावता
॥ इतिश्रीनिर्वाणप्रकर्णेमिथ्यापुरुषआकाशरक्षो
वर्णनंनामसर्गः ॥ ८८ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हेभगवनमि
थ्यापुरुषकवनथा ॥ अरजिसकीरक्षाकर्ताथा ॥ सोआका
शक्याहै ॥ अरजिसघटकूपादिकविषेरक्षाकर्ताथा ॥ सो
क्याहैं ॥ प्रगटकरकहो ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हेरामजीमि
थ्यापुरुषजोसंवेदनफुरणेंतेंउपजाअहंकारहै ॥ अरआ
काशचिदाकाशहै ॥ तिसीतेंउपजाबहुडजानताहै ॥ जोमैं
आकाशाकीरक्षाकरों ॥ अरआकाशगृहतेंआदिबिषे
जोकहा ॥ सोगृहघटादिकदेहोंसमानहैं ॥ तिसबिषेआत
माजोअधिष्ठानहै ॥ तिसआतमाकेंरक्षाकर्णेकीइच्छाम

र्त्ताकरकें करता हे । आपकों नहीं जानता । जो मेरा स्वरूप
क्या हे । तिस अपणें स्वरूपके न जाणनें कर दुःख पावता हे ।
आप हे मिथ्या । अर मिथ्या होकर आगें आकाश कों कल्प
कर राषणेकी इछा करती हे । जो देह करकें देही के राषणेकी
इछा करता हे । जो मैं जीवता रहों । अर देह तो काजकर उप
जी हे । वडुड देह नष्ट होणे कर शोकवान होता हे । अर अ
पणे वास्तव वस्तरूपकों नहीं जानता । जो कदाचित नाश
नहीं होता । जैसे विचार तें रहित कलेश पावता हे । हे राम
जी जिस विषे नाममात्र उपजता हे । सो अधिष्टान सत नहीं होता
हे । सर्व का अपणां आप आत्मा हे । सो कदाचित नास न
हीं होता । तिस विषे मूर्षता करकें अहंकार संसार कों कल्प
ता हे । अर एते इसके नाम हें । अहंकार कहीये । मन क
हीये । जीव कहीये । चित कहीये । बुधि कहीये । माया क
हीये । प्रक्रित कहीये । दृस्य कहीये । ए सर्व इसके नाम हें ।
सो मिथ्या हें । अर इसका अत्यंताभाव हे । अणहोता उदे
हूया हे । जो मैं हों । अर स्त्री ब्राह्मण आश्रम वर्न मनुष्य देव
ता दैत्य इत्यादिक कल्पनां करता हे । हे रामजी इहु क
दाचित हूया नहीं । अर न होवैगा । न किसी काल न किसी
कों हें । अविचार मात्र सिध हे । विचार तें कछु नहीं । जैसे जे
वडी के अज्ञान तें सर्प कल्पता हे । अर जाणें तें नष्ट हो जा
ता हे । तैसे स्वरूपके प्रमाद करकें अहंकार उदे हूया हे ।
सो तेरा स्वरूप कैसा हे । श्रवण कर । आत्मा हे । अर प्रका
शरूप हे । निर्मल हे । जो विद्या अर अविद्या के कार्य तें र
हित हे । चैतन्यमात्र अर निरविकल्प हे । ज्यों का त्यों
स्थित हे । अद्वैत हे । अर प्रणाम कों कदाचित नहीं प्राप्त
होता । आत्मत्व मात्र हे । तिस विषे संसार कैसे होवे । अ
र अहंकार कैसे होवे । सम्यक दर्सी कों आत्मा तें इतर
नहीं भासता । अर असम्यक दरसी कों संसार भासता
हे । अर पदपदार्थों कों सत जानता हे । अर संसार कों
वास्तव जानता हे । जो अपणे वास्तव स्वरूप कों नहीं जा

नता ॥ जो मैं कवन हों ॥ जाणे तें अहंकार नष्ट होजाता
है ॥ अरु जेती कछु आपदा है ॥ तिसका षाण अहंका
र है ॥ सर्व ताप अहंकार तें उत्पति होते हैं ॥ इसके न
ष्ट हूये अपणे स्वरूप विषे स्थिति होता है ॥ अरु वि
श्व जो आतमा का चमत्कार है ॥ इतर नहीं जैसे समु
द्र विषे पवन कर तरंग भासते हैं नाना प्रकार के ॥ अरु
स्वर्ण विषे नाना प्रकार के भूषण भासते हैं ॥ सो समुद्र
ते तरंग भिन्न नहीं ॥ अरु स्वर्ण तें भूषण भिन्न नहीं ॥ तैसे
आत्मा तें भिन्न कछु नहीं ॥ अरु स्वर्ण जो परिणाम कर भूष
ण होता है ॥ अरु समुद्र जो परिणाम कर तरंग होता है ॥ अ
रु आत्मा अच्युत है ॥ परिणाम को नहीं प्राप्त भया ॥ तातें स
मुद्र अरु स्वर्ण तें विलक्षण है ॥ आत्मा विषे संवेदन कु
ही ये चमत्कार मात्र विश्व है ॥ सो आत्मा मात्र स्वरूप है
न कदाचित जन्मा है ॥ न कदाचित मृत्यु को प्राप्त होता
है ॥ न किसी काल विषे किसी को मृत्यु है ॥ ज्यों का त्यों आ
त्मा स्थित है ॥ जन्म मरण तब होता है ॥ जब द्वैत होता है
आत्मा तो अद्वैत है ॥ जिस विषे एक कहणा भी नहीं
तो दूसरा कहां ते होवे ॥ तातें प्रत्यक आत्मा अनन्त व
रूप है ॥ तिस विषे स्थित हो ॥ तब दुःख अरु ताप सर्व मि
ट जावैं ॥ सो आत्मा शुद्ध है ॥ अरु निराकार है ॥ हे रामजी
जो निराकार अरु शुद्ध है ॥ सो किस कर ग्रहण करीये
अरु त्याग कैसे करीये ॥ कवन समर्थ है ॥ जो त्याग करे
जैसे घट के नष्ट हूये घटाकाश नष्ट नहीं होता ॥ तैसे
देह नष्ट हूये देही आत्मा का नाश नहीं होता ॥ आत्म
सता ज्यों की त्यों है ॥ अरु जन्म मरन पुरुयष्टका कर भा
सता है ॥ जब पुरुयष्टका देह सों निकस जाता है ॥ तब
मृत्यु कर भासता है ॥ अरु पुरुयष्टका संयुक्त है ॥ तो जी
वता भासता है ॥ आत्मा सूक्ष्म तें सूक्ष्म है ॥ अरु स्थूल तें
स्थूल है ॥ तिसका ग्रहण कैसे होइ ॥ अरु त्याग कैसे करी
ये ॥ अरु सूक्ष्म स्थूल जो उपदेस समझावणे के निमित
कहणा है ॥ आत्मा वाणी तें अगोचर है ॥ अरु भावाभाव

रूपसंसारतें रहित है ॥ सर्व का अनन्तरूप है ॥ तिसवि
षे स्थिति होकर अहंकार का त्याग कर ॥ अपणे स्वरू
प प्रत्यक् आत्मा विषे स्थिति हो ॥ इति श्री निरवाण
प्रकरणे मिथ्यापुरुषपाख्याने समाप्तं नाम सर्गः
॥ ८२ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह जो संसार है
सो आत्मरूप है ॥ जैसे इसकी उत्पत्ति भई है सो श्रव
ण कर ॥ शुध आत्मा निर्विकल्प विवर्त चेतनलक्षण
मन होकर स्थिति हूया है ॥ अर आगे तिस जगत कल्प
नो करी है ॥ सो मन कैसा है ॥ जैसे समुद्र विषे तरंग ॥ अर
स्वर्न विषे भूषण ॥ जेवडी विषे सर्प ॥ अर सूर्य की किरनो
विषे जल भासता है ॥ तैसे ही आत्मा विषे विवर्त मन है ॥
सो आत्मा तें इतर कछु नहीं ॥ जिसको तरंगों का ज्ञान है ति
सकों समुद्र बुध नहीं होती ॥ अर तरंगों को अवर जान
ता है ॥ अर जिसको भूषनो का ज्ञान है ॥ सो स्वर्न को नहीं जा
नता ॥ अर सर्प के ज्ञान कर जेवडी को नहीं जानता ॥ अर
जल के ज्ञान कर किरनों कों नहीं जानता ॥ तैसे नानाप्र
के कारकी विश्व ज्ञान कर परमात्मा कों नहीं जानता ॥ जैसे
जिस पुरुष समुद्र कों जान्या है ॥ जो जल है ॥ तिसकों तरं
ग बुदबुदे भी जल ही भासते हैं ॥ तरंग बुदबुदे को भि
न नहीं जानता ॥ सो पुरुष निर्विकल्प है ॥ अर जिसकों जे
वडी का ज्ञान हूया है ॥ तिसकों सर्प बुध नहीं होती ॥ अर जि
सकों स्वर्न का ज्ञान हूया है ॥ तिसकों भूषन बुध नहीं होती
ऐसा जो पुरुष है ॥ सो निर्विकल्प है ॥ अर जिसकों किरनों
का ज्ञान हूया ॥ तिसकों जल बुध नहीं होती ॥ तैसे जिस पुरु
षकों निर्विकल्प आत्मा का ज्ञान हूया है ॥ तिसकों संसार
भावना नहीं होती ॥ तिसकों ब्रह्म ही भासता है ॥ ऐसा जो मु
नीश्वर है ॥ सो ज्ञानवान है ॥ हे रामजी मन भी आत्मा तें इत
र नहीं ॥ आदि जो परमात्मा तें मन होकर फुरता है ॥ सो अ
हं त्वं आदिक होकर फुरता है ॥ मात्रपद विषे जो अहं भा
व होवणां ॥ सो उत्थान है ॥ अर बाहिर मुष होणें कर के अ
पणे निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मा स्वरूप का प्रमाद हूया है

तिसप्रमादहोलेकरआगेंविश्वहूईहै ॥ अरमनजीवकें
साहै ॥ जोकदाचितउदैनहींहूया ॥ अरआत्मस्वरूपहै
सोउदैहूयेकीन्याईभासताहै ॥ मनअरसंसारजोसत
नहीं ॥ अरअसतभीनहीं ॥ जोदूसरीवस्तहोवै ॥ तोसतअ
थवाअसतकहीये ॥ आत्माअद्वैतओंकालोंस्थितिहै ॥
तिसकाभीनविवर्तहोकरफुरयाहै ॥ सोईमनकीडाहै ॥
अरसोईमनबलाहै ॥ बडुडअलामनोराजकरकेस्था
वरजंगमप्रपंचकल्पाहै ॥ सोनसतहै ॥ नअसतहै ॥ हेराम
जीसर्वप्रपंचमनकल्पाहै ॥ तिसीनैंनानाप्रकारकेविका
ररचेहैं ॥ मनबुधिचितअहंकारजीवसर्वमनकेनामहैं ॥
जबमननष्टहोजावै ॥ तबनकोउसंसारहै ॥ नकोउविका
रहै ॥ अरजबलगमनदृश्यसाथमिलकररहै ॥ जोमैंसं
सारकाअंतलेवों ॥ तबकदाचितभीअंतनआवैगा ॥ का
हेतैंजोसंसारनहीं ॥ संसरनेसंयुक्तिसंसारकाअंतकहां
तेंआवै ॥ अंतलेवणेवालाबणकरआगेंफुरकरदेख
ताहै तोअंतकहांतेंआवै ॥ जैसेकोउपुरुषदोडताजा
वै ॥ अरकहेमैंअपणेपछावेंकाअंतलेवों ॥ जोकहांल
गजाताहै ॥ हेरामजीजबलगपुरुषचल्याजावै ॥ तबल
गपछावेंकाअंतनहींआवता ॥ अरजबपुरुषठहिर
जावै ॥ तबपछावेंकाअंतहोजाताहै ॥ तैसेहीजबलगफु
नेंहैं ॥ तबलगसंसारकाअंतनहींआवता ॥ जबफुरनान
ष्टहोजावै ॥ तबसंसारकाभीअंतहोवै ॥ आतमाहीदृष्टआ
वै ॥ अरसंसारकाअत्यंतअभावहोवै ॥ अरजोफुनैंसं
युक्तदेखैगा ॥ तबसंसारहीदृष्टआवैगा ॥ हेरामजीजिस
पदार्थकोंइहदेखताहै ॥ सोपदार्थपूर्वकोउनहीं ॥ चितके
फुरनेंकरउदैहोतेहैं ॥ जबचितफुरया ॥ जोइहपदार्थहै
तोआगेपदार्थहूया ॥ अरफुनैंतेंरहितहोकरदेखे ॥ तोप
दार्थकोउनहींभासता ॥ केवलअद्वैतपदहै ॥ हेरामजीइह
जोनानाप्रकारकीकल्पनाहै ॥ तिसतेंरहितनिर्विकल्प
ब्रह्मपदविषेअहंकारकोत्यागकरस्थितिहो ॥ अहंका
रजोहैवनोंभ्रम[illegible]मायाकरकल्पा ॥ तिसविषेअहं

गाव॥ जब तिस तें रहित होइ कर देवैंगा॥ तब केवल स
च्चिदानंद आत्म पद जो परहेगा॥ जब इस पद कों अप
णा आप जाणेंगा॥ तब तूं ही सर्वात्मा होकर विचरेंगा॥ दु
ख तेरे तांई कोऊ न रहेगा॥ हे रामजी मन ही संसार है॥ मन
ही ब्रह्मा है॥ अरु मन ही कीडी है॥ मन ही सुमेर है॥ मन ही त्रि
ण है॥ मन ही सर्व विश्वरूप होकर स्थित भया है॥ सो मन
कैसा है॥ जो आतमा तें इतर कछु नहीं॥ जैसे फल ही विषे
सपूरण वृक्ष है॥ तैसे आतमा तें मन भिंन कछु वस्तु नहीं॥
आतम स्वरूप ही है॥ ऐसे जाणकर आतम स्वरूप ही हो
वैंगा॥ इह जो सेंना है बंध अरु मोक्ष तिन कों त्याग कर॥ न
बंध की वांछा कर॥ न मोक्ष की इछा कर॥ इह जो कल्पना
है तिस कों त्याग कर॥ ऐसा भी न हो जो मैं मुक्ति हों॥ अरु इह
अवर बंध है॥ केवल सत्ता समान जो है आतम पद तिस
विषे स्थित हो॥ एही भावना कर॥ जो तेरे सर्व दुख नष्ट हो जा
वैं॥ ऐसा जो कोऊ पुरुष है॥ तिस का चित नहीं रहता॥ सर्वात
मा ही तिस कों दृष्ट आवता है॥ जैसे जिस पुरुष सूर्य को जा
न्या है॥ तिस कों किरणों भी सूर्य दृष्ट आवती हैं॥ तैसे जिस
कों आत्मा का साक्षात्कार हूया है॥ तिस कों जगत भी आ
तम स्वरूप भासता है॥ हे रामजी ऐसा शुध स्वप्रकाश आ
त्मा है॥ तिस विषे स्थित हो॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे
परमार्थ योगो उपदेशो नाम सर्गः॥ ६१॥ श्री वशिष्ठो
वाच॥ हे रामजी महां कर्ता हो॥ अरु महां भोक्ता हो॥ अरु महां
त्यागी हो॥ सर्व संसार कों त्याग कर निरंतर धीर्य धार कर स्थि
त हो॥ श्री रामोवाच॥ हे भगवन महां कर्ता क्या कहीये॥
महा भोक्ता क्या कहीये॥ अरु महां त्यागी क्या कहीये कृपा
कर कहो॥ श्री वशिष्ठोवाच॥ हे रामजी तेरे प्रश्न ऊपर
एक उपाख्यान है॥ सो श्रवण कर॥ अथ कथा भृंगीश गा
था की॥ एक समें सुमेर पर्वत उतर दिशा के शिखर तें स
दाशिव जी आइ प्राप्त भये॥ सो कैसे हैं सदाशिव॥ चंद्रमा कों
मस्तक विषे धारे हूये॥ अरु सर्व गणों संयुक्त॥ अरु भवा
नी अंग विषे धारे हैं॥ तिस संयुक्त सुमेर पर्वत के शिखर

परऽआइस्थित भये ॥ तब भृंगीगण जो है सदाशिव का
तिस हाथ जोड़ कर प्रणाम कीया ॥ कैसा है भृंगीगण महा तेज
वान ॥ अरु उपजा है आत्म जिज्ञासा जिसकों ॥ तिसने इह
प्रणाम कीया ॥ कि हे भगवन देवताओं के देव लोकों नाथ
जगतपति हे परमेश्वर ॥ इह संसार मिथ्या लोम है ॥ तिस
विषे मैं सत्य पदार्थ कोऊ नहीं देखता ॥ सदा चेजड़रूप दृ
ष्ट आवता है ॥ अरु जो सत पदार्थ है ॥ तिसकों मैं नहीं जा
नता ॥ तिसतें मेरे ताप नहीं नष्ट हूये ॥ अरु मैं शांत कों नहीं
प्राप्त भया ॥ तातें आपकों दुखी देखता हों ॥ जिसकर शां
ति प्राप्त होवै सो कृपा करके कहो ॥ अरु चेष्टा मों विचरों
भी खेद तें रहित होकर ॥ अरु खेद तें रहित तब होवीता
है जब कोऊ आसरा होता है ॥ अरु जेता कछु संसार है
सो मिथ्या है ॥ मैं किसका आश्रे करों ॥ तातें सोई मेरे ताईं
कहो ॥ जिसकों आश्रे कीयें दुख मेरे नष्ट होवैं ॥ ईश्वरो
वाच ॥ हे भृंगी तूं महाकर्ता हो ॥ अरु महाभोक्ता हो ॥ अरु म
हात्यागी हो ॥ सर्व संकल्पों कों त्याग कर निरंतर धीर्य कों आ
श्रय करैं ॥ तब तेरे दुख नष्ट होवैं ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे
रामजी ऐसा जो है भृंगीगण ॥ जिसकों सदाशिव पुत्र क
र राख्या है ॥ उस फलक के प्रणाम कीया ॥ हे परमेश्वर
महाकर्ता का कहीये ॥ अरु महाभोक्ता का कहीये ॥ अरु
महात्यागी का कहीये ॥ सो कृपा कर जिउ का तिउ मेरे ता
ई कहो ॥ श्रीईश्वरोवाच ॥ हे पुत्र सर्वात्मा जो है अनन्त
वरूप तिसकों आश्रे करके विचेर ॥ दुखों तें रहित होवैं
अरु इन तीनों व्रतों कर दुख तेरे नष्ट हो जावैंगे ॥ जो कछु
शुभ अशुभ ने कृया आन प्राप्त होवै ॥ तिसकों रागका त्याग
के करे ॥ ऐसा जो पुरुष है सो महाकर्ता है ॥ धर्म अध
र्म कृया जो अनिच्छित आइ प्राप्त होवै ॥ तिसकों राग अरु
द्वेष त्याग करके करे ॥ ऐसा जो पुरुष है सो महाकर्ता है
जो पुरुष भोंता निरहंकार निर्मानी है ॥ मत्सर तें रहित ऐ
सा जो पुरुष है ॥ सो महाकर्ता है ॥ अनिच्छित प्राप्त हूये का
त्याग न करे ॥ अरु जो नहीं प्राप्त हूया ॥ तिसकी वांछा न करे

ऐसा जो पुरुष है ॥ सो महाकर्ता है ॥ अरु पुन्यपाप हूया
जो अनिछित आइ प्राप्त होवै ॥ तिसको अहंभावतें रहि
त होकर करै ॥ पुंन्य हूया तें मैं पुंन्यवान होवोंगा ॥ अरु पा
प कीया तें मैं पापी होवोंगा ॥ ऐसे आपको नहीं देषता ॥ स
दा आपकों अकर्ता जानता है ॥ ऐसा जो पुरुष है सो महा
कर्ता है ॥ अरु जो सर्वत्र विषे विगतस्नेह है ॥ अरु सतुवत
स्थिति है ॥ निरइछ वर्तता है कार्यों विषे ॥ सो महाकर्ता है ॥
जो दुषके प्राप्त हूयें शोक नहीं कर्ता ॥ अरु सुष प्राप्त हूयें
तें हर्षमान नहीं होता ॥ अरु सुभाविक चित्त समता को दे
षता है ॥ कदाचित विषमता को प्राप्त नहीं होता ॥ जो सुष
अरु दुषकी भिन्न भिन्न विषमता है तिसतें रहित है ॥ ऐ
सा जो पुरुष है ॥ सो महांकर्ता है ॥ अरु जिस पुरुष सुष अ
रु दुषका त्याग कीया है ॥ जो सुष अरु दुषकी भावनां नहीं फु
रती ॥ एही त्याग है ॥ जो कछु अवर नहीं फुरता ॥ ऐसा जो
पुरुष है ॥ सो महाकर्ता है ॥ हे रांम जो पुरुष प्राप्त हूई वस्त
कों रागद्वेषतें रहित होकर भोगता है ॥ सो महाभोगता है
अरु जब कदाकष्ट आइ प्राप्त होवै ॥ तिस विषे द्वेष नहीं
कर्ता ॥ अरु बडे सुषकी प्राप्ति विषे हर्षवान नहीं होता ॥ सो
पुरुष महाभोगता है ॥ अरु जो बडे राजसुष भोगणे विषे
आपको सुषी नहीं जानता ॥ राजके अभाव होवणे अर
भिक्षा मांगणे विषे आपको दुषी नहीं मानता ॥ सदा स्व
रूप विषे स्थित है ॥ सो महांभोगता है ॥ अरु जो मानता अ
हंकार अरु चिंतवनां तें रहित है ॥ केवल समता वि
षे रहता है ॥ सो महांभोगता है ॥ अरु जो कोऊ कछु देवे अ
रु आपकों लेणेवाला न माने ॥ अरु षटनां षटने को हूया वि
षै भोगता हूया आपकों कर्तत्व भोगतृत्व नहीं मानता
सो पुरुष महाभोगता है ॥ अरु जो मिष्ट कटु तीक्षण सलूं
णांको छोडि इहरस प्राप्त होते हैं ॥ तिनके भोगणे विषे समचि
त रहता है ॥ अरु समजानता है ॥ सो महांभोगता है ॥ जो र
सवान पदार्थ प्राप्त हूये हैं ॥ हर्षवान नहीं होता ॥ अरु वि
रस के प्राप्त हूयें द्वेषवान नहीं होता ॥ ज्योंका त्यों रहता है ॥

जैसा आइ प्राप्त होता है ॥ भला बुरा तिसकों दुषतें रहित
भोगता है ॥ ऐसा जो पुरुष है ॥ सो महाभोगता है ॥ अर जेती
कछु हूया है शुभ अशुभ भावाभाव तिनके दुष अर सु
षतें चलायमान नहीं होता ॥ सो पुरुष महाभोगता है ॥
अर जिसकों मृत्युका भय नहीं ॥ अर जो वलेको हर्ष नहीं
उदै अस्त विषे जो समान है ॥ सो महाभोक्ता है ॥ वहु सुषकी
प्राप्त विषे हर्षमान नहीं होता ॥ अर दुषकी प्राप्त विषे शोक
वान नहीं होता ॥ ज्योंका त्यों रहिता है ॥ सो महाभोक्ता है ॥ जो
कछु अनिछित आइ प्राप्त होवै ॥ तिसकों कर्ता हूया अहंभा
वतें रहित है ॥ सो पुरुष महाभोगता है ॥ जो शत्रु मित्र सुहृ
द विषे सम बुधि रहता है ॥ विषमताको कदाचित नहीं प्रा
प्त होता ॥ ऐसा जो पुरुष है ॥ सो महाभोक्ता है ॥ अर जेता कछु
शुभ अशुभ दुष सुष आइ प्राप्त होता है ॥ तिनको धार लेता
है ॥ कदाचित विषमताको नहीं प्राप्त होता ॥ जैसे समुद्र वि
षे नदीयां आइ प्राप्त होतीयां हैं ॥ तिनकों धार समान रहि
ता है ॥ तैसे ज्ञानवान शुभ अशुभको धारकर सम रहता है
अर जो संसार अर इंद्रीयां द्वार देह अर अहंकारकी स
त्ताको त्यागकर स्थित हूया है ॥ अर जानता है न मैं देह हों
न मेरा देह है ॥ मैं इनका साक्षी हों ॥ इस ज्ञातकों धारता है ॥ सो
महात्यागी है ॥ अर जो सर्व चेष्टा करता है रागद्वेषतें रहित
होकर ॥ सो महात्यागी है ॥ अर शुभ अशुभ इनके प्राप्त हूये
कों ॥ अहंकारतें रहित होकर करता है ॥ सो महात्यागी है ॥ अ
र जो मन इंद्रीयां देह कर इछातें रहित होकर सर्व चेष्टा
भी करती है ॥ सो महात्यागी है ॥ अर जो पुरुष समचित जि
तिंद्रय ॥ अर क्षमावान है ॥ सो महात्यागी है ॥ हे रामजी जिस
पुरुष धर्म अधर्मकी देहकी संसारकी ॥ मद ॥ मान ॥ मननकी
इसतें लेकर जो कलना है ॥ जिसने इनका त्याग कीया है ॥
सो महात्यागी है ॥ हे रामजी इस प्रकार भृंगीगणको सदा
शिव उपदेश कीया ॥ सो कैलास दक्षिण है ॥ षंकर को ल
ष विषे धारे ॥ अर बाघंबरको लीये हूये ॥ अर मस्तक वि
षे चंद्रकों धारे ॥ तिन सुमेरके सिषर ऊपर उपदेश कीया

हे रामजी तूं नीइसारतत कों धारकर विचिर ॥ तेरे सर्व दु
षनष्ट हो जावेंगें ॥ इति श्री निरवाणप्रकरणे महाक
र्तादिउपदेशो नाम सर्गः ॥ ८१ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे
मुनीश्वरजी तुमों उपदेश कीया ॥ सो मैं जानया है ॥ अ
र तुमों का क्र उपशमप्रकरण विषे उपदेश कीया
था ॥ जो आत्मा अनंत है ॥ अर शुध है ॥ अर मैं ग्रहण की
या था ॥ तो इह कलनां कैसे उपजी है ॥ जैसे समुद्र नि
र्मल है ॥ तिन विषे धूड़ कैसे होवे ॥ तब तुमों कहा इस
का उतर हम सिधांतकाल विषे कहेंगे ॥ सो अब मैं सिधां
त का पात्र हो ॥ मेरे ताई कहो ॥ जैसे स्त्री भर्ता सों ग्रहण कु
रती है ॥ अर भर्ता कृपा करके उपदेश करता है ॥ तैसे मैं
तुमारी सरनं हों ॥ कृपा करके मेरे ताई उतर कहो ॥ जो आ
सा अर त्रिष्णा के मेरे फास टूटे हैं ॥ अर आसा रूप जा
लसों निकस्या हों ॥ अर संशय रूप धूड़ मेरे रिदे विषे
उडी है ॥ तिसकों वचनरूप वर्षा करके सांत करो ॥
अर संशयरूप मेरे रिदे विषे अंधकार है ॥ वचनरू
प किरनों कर तुम निवर्त करो ॥ तुमारे वचनरूप अं
मृत कर मैं त्रिपत नहीं होता ॥ हे भगवन अपने विचार
ज्ञान कर इह नहीं सो भता ॥ बिना गुरु के उपदेश की
ये ॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥ हे रामजी जो पुरुष ज्ञानवान
है ॥ अर क्षेमावान है ॥ अर जितेंद्रय है ॥ अर मन की
रूपा संकल्प विकल्प कों जीता है ॥ सो सिधांत का पा
त्र है ॥ तातें उपदेश करता हों ॥ अर जो पुरुष रागद्वेष
सहित क्रिया विषे स्थित हैं ॥ अर इंद्रीयां के सुष कर
जिसकों आराम है ॥ सो सिधांत के वाक्यों कों ॥ अह ब्र
ह्मास्मि सर्व ब्रह्म कों श्रवण कर कैं भोगड़ विषे स्थि
त होता है ॥ अधः गति कों पावता है ॥ काहे तें जो उसकों
निश्चै नहीं होता ॥ अर रिदा तिसका मलिन है ॥ तातें इं
द्रीयां के सुष कर आप कों सुषी मानता है ॥ इसातें नीच
स्थानों कों प्राप्त होता है ॥ अर जो पुरुष क्षेमा आदिक
साधनों कर पवित्र हूया है ॥ तिसकों अहं ब्रह्मास्मि

सर्वत्र सके श्रवण करके ही आत्मपद की प्राप्त हो
ती है॥ भावनां कर के॥ अर तुम सारषे जो पुरुष हैं॥ अर
श्रेम आदि साधनों कर पवित्र हूये हैं॥ तिन कों स्व
रूप की प्राप्त सुगम होती है॥ अर जिन का अंतष्करण म
लन होता है॥ तिन कों प्राप्त होवणां कठन है॥ जैसे भुनां
हूया बीज होवै॥ अर कलर की पृथिवी विषे बोईये॥
तो उस का अंगुरा नहीं होती॥ तैसे इंद्रीयां आरामी पुरु
ष कों आत्मा की प्राप्त नहीं होती॥ अर जो तुम सारषे जि
न कुं रिदा सुध है॥ तिन कों ज्ञान की प्राप्त होती है॥ अर वचनों
इन कों पाइ कर सोभता है॥ जैसे वर्षा काल विषे धान
पृथवी मों सोभा पावते हैं॥ वर्षा कर के॥ तैसे सिधांत व
चनों कों पाइ कर ज्ञान रूप दीपक सों प्रकासते हैं॥ अ
र जो ज्ञानवान पुरुष हैं॥ सो ऊंची बाहु कर कहते हैं॥
अर सर्व शास्त्र भी कहते हैं॥ अर सर्व शास्त्रों के सिधां
तों कों॥ अर तिन के द्रष्टांतों कों मैं जानता हों॥ तातें सर्व
सिधांतों का सार मैं कहता हों॥ तूं श्रवण कर॥ जो तेरा
स्वरूप है॥ तिस कों जाणेगा॥ हे रामजी जिस कों अभ्यास
करके एक क्षण भी साक्षात्कार हूया है॥ सो बहुड़ गर्भ
विषे नहीं आवता॥ अर सत असत विषे भेद कछु नहीं
इस की संवेदन विषे भेद है॥ जाग्रत का सूर्य॥ अर जैसे
स्वपन का सूर्य है॥ प्रकाश दोनों का समान है॥ जाग्रत वि
षे जाग्रत सूर्य का प्रकाश अर्थीकार होता है॥ अर स्वप्न
विषे स्वप्न का सूर्य अर्थीकार होता है॥ प्रकाश दोनों का स
म है॥ अर संवित भिन्न है॥ स्वप्न कों मिथ्या जानता है॥ अर
जाग्रत कों सत जानता है॥ संवित तें भेद हूया॥ स्वरूप भेद
न हूया॥ जैसे एक पर्वत बडा मनुक के रचीये॥ तो संक
ल्प कर के देषीता है॥ अर एक पर्वत बाहिर प्रत्यक्ष कर दे
षीयत है॥ तो संवित कर भेद है॥ स्वरूप दोनों का तुल्य है
जैसे समुद्र विषे तरंग हैं॥ सो स्वरूप विषे जल अर तरंगों
का भेद कछु नहीं॥ संवित विषे भेद है॥ जिस कों जल का ज्ञा
न नहीं॥ सो तरंग ही जानता है॥ सो संवित विषे भेद है॥ तैसे

स्वरूप विषे सत असत तुल्य है ॥ वास्तव कछु नहीं ॥ केवु
ल शांति रूप आतमा है ॥ अर शब्द अर्थ जो संवित विषे
है ॥ शब्द कहीये नाम ॥ अरु अर्थ कहीये नामी ॥ सो संवित
फुर्णे करके हैं ॥ जब फुर्णा नष्ट होजावे ॥ तब शब्द अर्थ भी
आत्मा ही है ॥ जैसे जो सेगा ॥ जगत की सता तब लग है ॥ ज
ब लग आतमा का प्रमाद है ॥ अर प्रमाद तब लग है ॥ ज
ब लग अहंभाव है ॥ जब अहंभाव नष्ट होजावे ॥ तब केव
ल आतमा शेष रहे है ॥ सो आतमा स्वरूप है ॥ विद्या अविद्या के
कार्य तें रहित है ॥ कदाचित स्पर्स्य नहीं कीया ॥ हे रामजी
अविद्या की दो शक्ती हैं ॥ एक आवर्ण ॥ एक विक्षेप ॥ आव
र्ण कहीये आत्मा का न जानणा ॥ अर विक्षेप कहीये अव
र कछु जानणा ॥ सो आत्मा सदा ज्ञान रूप है ॥ तिस कों आ
वर्ण कदाचित नहीं ॥ आत्मा अद्वैत है ॥ तिसतें इतर कछु न
हीं बणा ॥ इसी तें आत्मा स्वरूप है ॥ केवल ज्ञान मात्र है ॥ हे रा
मजी तिस विषे कलना रूप धूड कहां होवे ॥ जो आत्मत्वु
मात्र है ॥ चिन्मात्र है ॥ जिस विषे अहं का उथान भी नहीं ॥ के
वल निर्वाण पद है ॥ जहां एक अर द्वैत कहणां भी नहीं ॥ के
वल अपणे आप विषे स्थित है ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भ
गवन जो सर्व ब्रह्म है ॥ तो मन बुधादिक इह कवन है ॥
जिसकर तुम इह शास्त्र पडे उपदेश करते हो ॥ इह कव
न हैं ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी शास्त्र के विवहार अ
र्थ इह शब्द है ॥ नहीं परमार्थ तें कल्पना ॥ इह मन बुधादि
क कछु वस्त नहीं ॥ ब्रह्मसता ही अपणे अपणे आप विषे
स्थित है ॥ जैसे तरंग जल तें इतर कछु वस्त नहीं ॥ तैसे मना
दिक हैं ॥ आत्म तत कैसा है ॥ नित है ॥ स्वरूप है ॥ आत्मत्व मा
त्र है ॥ है नाहीं की न्याई स्थित है ॥ हे रामजी जैसे आत्मा वि
षे संसार अर अविद्या मनादिक कैसे होवें ॥ आत्मा ब्रह्म
है ॥ जिसतें इतर कछु नहीं ॥ सर्व का अधिष्ठान है ॥ अर अवि
नाशी है ॥ देश काल वस्त के परछेद तें रहित है ॥ इसी तें ब्र
ह्म है ॥ हे रामजी जैसा जो अपणा आप आत्मा है ॥ तिस विषे
स्थित होवो ॥ अर इह जगत जो दृष्ट आवता है ॥ सो सर्व चि

द्राकाशाहै॥ इतरकछुनहीं॥ जैसेस्वप्नविषेविश्वदेषीता
है॥ सोअनुभवमात्रहै॥ तैंसेजागतविश्वआतमस्वरूप
है॥ ऐसाजोतेराशुधअरुनित्यउदितअरुअविनासीरू
पहै॥ तिसविषेजबस्थितिहोवैगा॥ तबकलनांजोतेरे
तांईभासतीहै॥ सोनष्टहोजावेगी॥ इतिश्रीनिरवाणप्र
करणेकलनांनिषेधोनामसर्गः॥ ९२॥ श्रीवशिष्ठो
वाच॥ हेरामजीसंसारकाजोबीजहैसोअहंकारहै॥ ज
बअहंभावहोताहै॥ तबसंसारहोताहै॥ सोअहंकारभी
कछुवस्तनहीं॥ भ्रमकरकेसिधहूयाहै॥ जैसेमूरषबा
लिकपछावेंविषेभूतनांकल्पताहै॥ सोभूतनाकछुव
स्तनहीं॥ तोभीउसकेभ्रमविषेहोताहै॥ तैंसेस्वरूपकेप्र
मादविषेअहंकारहोताहै॥ वस्ततेंकछुनहीं॥ हेरामजीजो
वस्तवास्तवनहीं॥ तिसकेत्यागणेकायतनभीकछुनहीं॥
तेरेविषेअहंकारवास्तवनहीं॥ तूंकेवलशांतिरूपहैं॥ चै
तन्यमात्रहैं॥ तिसविषेअहंभावहोवणाउपाधहै॥ इस
तेसुमेरपर्वतादिकविश्वबणजाताहै॥ सोसचितरूपहै
चितरूपजोपुरुषहै॥ सोचैतन्यकेआश्रेफुरताहै॥ अरु
विश्वकोकल्पताहै॥ जैसेजेवडीकेआश्रेसर्पफुरताहै
तैंसेचैतन्यकेआश्रेचितअरुविश्वफुरतेहैं॥ सोआत्मा
तेंइतरनहीं॥ अरुअहंकाररूपेकीभांईहूयाहै॥ जोमैं
हों॥ ऐसाजोअहंभावहै॥ सोदुषोंकीषाणहै॥ सर्वआपदा
अहंकारतेंहोतीहैं॥ जबअहंकारनष्टहोवैगा॥ तबसर्वदु
षनष्टहोवहिंगे॥ हेरामजीजैसेसूर्यकेआगेबदलहोतेहैं
तबप्रकाशप्रगटनहींहोता॥ जबबदलदूरहोतेहैं॥ तबप्र
काशमानभासताहै॥ अरुकमलसूर्यकेप्रकाशकोंपाइ
करआनंदमानहोतेहैं॥ तैंसेआतमरूपसूर्यकोंअहंका
ररूपबदलकाआवर्णहोताहै॥ अहंकारकहीयेकिसी
मायाकेगुणसाथमिलकरकछुआपकोंमानणां॥ जबअ
हंकाररूपबदलनष्टहोवैगा॥ तबआतमस्वरूपसूर्यकी
प्रकाशभानहोवैगा॥ अरुज्ञानवानरूपकमलजोहैं तिस
प्रकाशकोंपाइकरबडेआनंदकोंप्राप्तहोतेहैं॥ हेरामजी

तांते अहंकार के नास का उपाव करो ॥ जो तुमारे दुष नष्ट
हो जावैं ॥ उह कवन पदार्थ है जो उपाइ कर सिध नहीं होता
जो अहंकार के नास का उपाइ करीये ॥ तब नष्ट होता है ॥ जि
स प्रकार अहंकार नष्ट होवै ॥ सो श्रवण कर ॥ सत शास्त्र जो
हैं ॥ ब्रह्म विद्या तिस का बारंबार अभ्यास करीये ॥ तिस अभ्या
स कर संतों के संग जो कथा अरु परस्पर चर्चा करणी ॥ तिस
कर अहंकार नष्ट हो जाता है ॥ जैसे जल भरणे की जेवडी
कर पथर की सिला को घासी पडती है ॥ तैसे ब्रह्म विद्या के
अभ्यास कर अहंकार नष्ट होता है ॥ अरु सिला के घसणे
विषे भी कछु यतन है ॥ अहंकार के त्यागणे विषे कछु यत
न नहीं ॥ हे रामजी सदा अनुभव रूप जो आत्मा है ॥ तिस का
विचार करो ॥ जो मैं कवन हों ॥ अरु इंद्रीया का है ॥ गुण का
है ॥ अरु संसार का है ॥ ऐसे विचारो जो मैं इन का साक्षी आ
त्मा हों ॥ मेरे विषे अहं त्वं कोऊ नहीं ॥ इस कर अहंकार का
नास करो ॥ अरु तूं शुध है ॥ मेरा भी आसीर्वाद है ॥ जो तूं सु
षी होवैं ॥ जब अहंकार नष्ट होवैगा ॥ तब कल्याण कोऊ न
करेगी ॥ केवल सुषुप्त की न्याई स्थिति होवैगा ॥ श्रीरामो
वाच ॥ हे भगवन जो अहंकार तुमारा नष्ट भया है ॥ तो मत
ते उपदेश कैसे देते हो ॥ अरु जो अहंकार नहीं
तो सर्व शास्त्र ब्रह्म विद्या कहां ते उपजी है ॥ अरु उपदेश
कैसे होता है ॥ उपदेश विषे चारों सिध होते हैं ॥ अंतःकर
ण चतुष्ट होता है ॥ प्रथम उपदेश करणे की इछा होती है
तब अहंकार की सिधता होती है ॥ जो अहं भाव होता है ॥
अरु जब स्मर्ण होता है ॥ जो उपदेश करो सो चित भी चेत
सिध होता है ॥ बहुड़ इह उपदेश करीये ॥ इह न करीये
ऐसा जो संकल्प है ॥ सो मन की सिधता होती है ॥ बहुड़ नि
श्चे कीया ॥ जो इह उपदेस करीये ॥ तब बुध की सिधता हो
ती है ॥ तांते चारों अंतस्करण सिध होते हैं ॥ तुम कैसे कह
ते हो ॥ जो अहंकार नष्ट हो जाता है ॥ अरु सर्व चेष्टा होती है
॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥ हे रामजी आतम रूप विषे अहं
कारादि अंतस्करण ॥ अरु इंद्रीयां कल्पित हैं ॥ वास्तव

तें कछु नहीं ॥ अरु शास्त्र आ शास्त्र उपदेश भी कल्पित हैं ॥ आ
त्मा केवल आत्मत्वमात्र है ॥ तिस विषे सवितर्क वे अहं
कारादिक फुरे हैं ॥ तिसके निवर्तक एते को प्रवर्तते हैं ॥ जै
से जेवडी विषे किसी को सर्प भासता है ॥ तब भय कर के दु
ष पावता है ॥ जब किसी कहा जो इह जेवडी है ॥ तूं शोक म
ति कर ॥ इसकों नली प्रकार देष इह सर्प नहीं ॥ तिसके उ
पदेश कर उह नली प्रकार देषता है ॥ तब भै रूप दुष ति
सका निवर्त होता है ॥ जो भ्रम कर के उसको सर्प भान हूया
था ॥ सो भी मिथ्या है ॥ अरु उसका उपदेशक एं जेवडी का
सो भी मिथ्या है ॥ काहे तें जो जेवडी तो आगे सिध है ॥ उप
देस कर सिध नहीं होती ॥ तैसे जेवडी की न्याई आत्मा है ।
तिसका विवर्त जो चेतन लक्षण ॥ तिसको जो अहं भाव
है ॥ अहंकार ॥ तिसके निवर्तकरणे को शास्त्र हूये हैं ॥ ति
सके प्रमाद कर के अहंकार रूपी सर्प फुरता है ॥ तिसके
निवर्तकरणे कों शास्त्र हूये हैं ॥ आत्मा कों जनाइ देते हैं
जब नली प्रकार जेवडी की न्याई आत्मा कों जान्या ॥ तब
सर्प की न्याई जो है परछिन अहंकार सो नष्ट होजाता है
जैसे नेत्रों विषे मैल होता है ॥ अरु अंजन पावणे कर नष्ट
होजाता है ॥ जिनु के तिउ निर्मल नेत्र होते हैं ॥ तैसे अज्ञान
रूप जो मैल है ॥ सो शास्त्र गुरु के उपदेश सुनके कर नष्ट
होजाता है ॥ वास्तव तें न को अहंकार है ॥ न शास्त्र है
काहे तें जो आत्मा सर्वदा काल उदै रूप है ॥ तो भी गुरु अ
र शास्त्रों कर जाणीता है ॥ हे रामजी ज्ञानवान के साथ अं
तस्करण चतुष्टय ॥ अरु इंद्रीयां भी दृष्ट आवती हैं ॥ सो ।
तिन विषे सतता नहीं होती ॥ जैसे भुना बीज दृष्ट आवता
है ॥ अरु उपजणे की सतता नहीं राषता ॥ जैसे जल्या वस्त्र
होता है सो देषणे मात्र है ॥ सतता उस विषे कछु नहीं ॥ तैं
से ज्ञानवान कों अभिलाष रूप अहंकार नहीं होता ॥ ति
सकर के कष्ट नहीं पावता ॥ जैसे सूर्य की किरनों विषे मा
रूथल जल का भास होता है ॥ तिसको देषकर मृग जल

पानकरणेकोदौडताहै॥ अरदुषीहोताहै॥ तैसेहीस्वरूप
जोमारूथलहै॥ तिसविषेपदार्थरूपजलभासताहै॥ ति
सकोंदेषकरअज्ञानीमृगदोडतेहैं॥ अरदुषपावतेहैं
जबज्ञानरूपवर्षाकरकेआतमरूपजलचढा॥ तबचि
तरूपीमृगकहांजावै॥ जबज्ञानरूपवर्षाहोतीहै॥ अरआ
नन्दरूपीजलचढताहै॥ तबचितरूपीमृगजोहै॥ तिस
विषेजलनरूपीजोफुरनांथा॥ सोनष्टहोजाताहै॥ हेराम
जीअहंकारअविचारितसिधहै॥ विचारतेंक्षीणहोजा
ताहै॥ जैसेबर्फकीपुतलीसूर्यकीकिरनोंकरक्षीणहो
जातीहै॥ जबअधिकतेजहोताहै॥ तबजलरूपहोतीहै॥
बर्फकीसंज्ञानहींरहती॥ तैसेअहंकाररूपीबर्फ॥ विचा
ररूपीकिरनोंकरक्षीणहोजातीहै॥ जबदृढविचारहो
ताहै॥ तबअहंकारकीसंज्ञाजातीहै॥ केवलआत्माहीहो
इरहताहै॥ श्रीरामोवाच॥ हेसर्वतत्वज्ञभगवन॥ जिस
काअहंकारनष्टहूयाहै॥ तिसकालक्षणकहो॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच॥ हेरामजीअज्ञानरूपटोयासंसार॥ तिसविषे
पदारथरूपभावनांकरकै नहींगिरता॥ अरक्षेमाशां
तादिकजोशुभगुणहैं॥ सोतिसकोंस्वभाविकआइप्राप्त
होतेहैं॥ जैसेसमुद्रविषेनदीयांसुभाविकआइप्राप्तहो
तीहैं॥ अरक्रोधभीतिसकानष्टहोजाताहै॥ देषणेमात्र
भासताभीहै॥ तोभीअर्थाकारनहींहोता॥ जोविषमताक
रकेभिंनभावनांनहींअंतरतेंफुरती॥ केवलसतासमा
नविषेस्थितिहै॥ जैसेसरतकालकामेघगर्जताहै॥ अरअ
र्थाकारजोवर्षाहै॥ सोनहींकरता॥ अरइंद्रीयांकीचेष्टा
अभिमानतेंरहितहोकरकरताहै॥ जैसेवर्षारुतकेजा
वणेकरकुहिडचलतारहिताहै॥ तैसेअभिमानचेष्टा
तिसकीनष्टहोजातीहै॥ अरलोभभीतिसकेमनतेंजाता
है॥ जैसेबनकोंअग्निलागतीहै॥ अरमृगपंछीतिसबनों
कोंत्यागजातेहैं॥ तैसेलोभरूपीमृगतिसकोंत्यागजातेहैं
तिसकेमनविषेकामनांकोवूनहींरहती॥ जैसेदिनवि
षेउलूकेविलासनहींवर्तते॥ जहांज्ञानरूपीसूर्यउदेहोता

हे॥ अरसंपूर्नकामनांतिसकीनष्टहोजातीहैं॥ शांतिरूप
आत्माविषेस्थितिरहताहै॥ जैसेपैंडोईपांउकोजेष्ट॥
आषाढकीधूपविषेउगावताहै॥ अरगर्मीहोतीहै॥ थ
कताजातीहै॥ तिसकोंटारकरवृक्षकेनीचेसुषसोंस्थिति
होताहै॥ तैंसेवासनांरूपीपोटहै॥ अरअज्ञानरूपीधू
पहै॥ तिसकरकेदुषीहोताहै॥ ज्ञानरूपीबलकरकेवा
सनांरूपीपोटकोंटारकेसुषसोंस्थितहोताहै॥ हे रामजी
भोगभावनांतिसपुरुषकीनष्टहोजातीहै॥ बहुडउपन
हीहोती॥ जैसेगरुडकोंदेषकरसर्पभागजाताहै॥ बहुडनि
कटनहींआवता॥ तैंसेज्ञानगारुडकोंदेषकरभोगरूपीस
र्पभागजातेहैं॥ बहुडनिकटनहींआवते॥ आत्मपदकोंपा
इकरअनंतरूपदीपवतप्रकाशमानहोताहै॥ भावाभाव
पदारथतिसकोंस्पर्शनहींकरते॥ संसारभ्रमनिवर्तहो
जाताहै॥ सोज्ञानसमरणमात्रहै॥ कछुयतननहीं॥ संतोंपा
सजाइकरप्रश्नकरणां॥ मैंकवुनहों॥ जगतक्याहै॥ परमा
त्माक्याहै॥ अरभोगक्याहैं॥ इनतेंतरकरकेंसेपर्मपदकों
प्राप्तहोवीये॥ बहुडजोकछुज्ञानवानउपदेसकरें॥ तिस
कोंअभ्यासकरआतमपदकोंप्राप्तहोवैंगा॥ अन्यथानहो
वैंगा॥ इतिश्रीनिरवाणप्रकरणेसतसूललछनम
होतमवर्ननेनामसर्गः॥२३॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रा
मजीतुमारोंबडाजिसप्रकारइक्ष्वाकनामराजाजीवनमु
क्तिहोकरविचरताहै॥ तैंसेतुमभीविचरो॥ तुमभीतिसकुल
तेंउपजेहो॥ अथकथाइक्ष्वाकराजाकी॥ हे रामजीइ
क्ष्वाकनामराजासूर्यवंशीहोतभयाहै॥ सोमनुकापुत्र॥ अ
रसूर्यकापोत्रा॥ सभराजोंतेंश्रेष्टथा॥ जैसेपितरोंकाराजा
धर्महै॥ अरबरफकीन्याईसीतलस्वभावहैतिसका॥ जैसे
सूर्यकोंदेषकरमणीतेंतेजप्रगटहोताहै॥ तैंसेइसकोंदे
षकेरशत्रुतपायमाननहोवैं॥ जैसापरंतप॥ साधोंकोंअर
मित्रोंकोंअवरलोकोंकोंरमणीकभासे॥ तिसकोंदेषक
रसभप्रसन्नभ्रांतिवानहोवैं॥ जैसेचंद्रमुषीकमलचंद्र
मांकोंदेषकरप्रसन्नहोतेहैं॥ तैंसेउसकोंदेषकरप्रसन्न
होवैं॥ अरपापरूपीवृक्षोंकेकाटणेंहाराकुहाडाथा॥ अ

र मित्रोंकों सुखदाई ॥ जैसे मेघ मोरोंकों सुखदाई है ॥ अरु सुंद
र ऐसा जिसकों देखकर लक्ष्मी स्थिर होर ही है ॥ दरिद्रीकूं दा
चित न होवे ॥ तिसके जसकर संपूरण पृथिवी पूर रही है ॥ जैं
से चंद्रमाकी चांदणी पूर्नमांकर पूर्ण होती है ॥ ऐसा राजा भ
लीप्रकार प्रजाकी पालना कर्ता भया ॥ एक कालमों एकांत
बैठकर चितवत भया ॥ जो जरा मरणादिक संसार विषे बं
डा त्रास है ॥ इस संसार दुखतें तरणेका उपाय कवन है ॥ ऐसे
विचारता था ॥ जो एक समें स्वयंभू मन ब्रह्मलोकतें आया
तिसका भलीप्रकार पूजन कीया ॥ अरु कहत भया ॥ इक्ष्वा
कोवाच ॥ हे भगवन तुमारी कृपाका जो पराक्रम है ॥ सो मेरे रि
दे विषे बैठकर प्रश्न करनें कों प्रेरता है ॥ तातें मैं प्रश्न कर्ता
हों ॥ हे भगवन मेरे रिदे विषे संसार फुरता है ॥ जैसे समुद्रकों
वडवाअग्नि जलावती है ॥ अरु सुकावती है ॥ तैसे मुजकों
संशय जलावता है ॥ तातें सोई उपाय कहो ॥ जिसकर मुजकों
शांति प्राप्त होवे ॥ हे भगवन संसार कहांतें उपजा है ॥ अरु इ
सका स्वरूप क्या है ॥ अरु कैसे निवर्त होवेगा ॥ जैसे घोंसलेसों
पंछी निकस जाता है ॥ तैसे जन्म मरण संसार समुद्रतें निक
सणेका उपाय मुजकों कहो ॥ जैसे वर्ण स्वस्थानों समुद्रके
कों जानता है ॥ तैसे तुम सर्व जगतके विवहारकों जानते हो
अरु संशयरूपी वृक्षके काटणेकों तुम कुहाडा हो ॥ अरु त
म अज्ञानके नाशकर्ता तुम सूर्य हो ॥ तुमारे वचनोंरूपी अं
मृतकर मैं शांतिकों प्राप्त होवोंगा ॥ मनोवाच ॥ हे साधु
मैं चिरकालपर्यंत जगत विषे विचरता रहा हों ॥ पर ऐसा
प्रश्न किसीनें नहीं कीया ॥ तुम परम सार प्रश्न कीया है ॥ सर्व
अनर्थोंके काटणेहारा प्रश्न है ॥ तेरी बुधि विवेककर विका
शवान होती दृष्ट आवती है ॥ हे राजन जो कछु जगत तुज
कों दृष्ट आवता है ॥ सो सब असत है ॥ जैसे जेवडी विषे स
र्प भासता है ॥ जैसे गांधर्व नगर ॥ जैसे मारुथल विषे जल ॥
सिपी विषे रूपा भासता है ॥ जैसे आकाश विषे नीलता ॥ दू
सरा चंद्रमां भ्रमकरके भासता है ॥ तैसे इह जगत असत
रूप है ॥ जैसे जल विषे चक्र तरंग असतरूप हैं ॥ तैसे जग
त असतरूप है ॥ अरु जो मनसहित षट इंद्रीयोंतें अती

तहै ॥ अरु अन्यभी नहीं सो सत अविनासी आत्मा कहीता है ॥
सो निर्मल परब्रह्म सर्व और ते पूरण अनंत है ॥ तिस विषे
जगत कल्पित है ॥ हे राजन जैसे संपूर्ण वृक्षों विषे एक ही
रस व्यापी है ॥ तैसे सर्व पदार्थों विषे एक चिन्मात्र सता व्या
पी है ॥ जैसे समुद्र अचल विषे द्रवणे करके तरंग फुरते हैं
तैसे परमात्मा विषे जगत फुरते हैं ॥ तिस महा दर्पण विषे
सर्व वस्तुजात प्रतिबिंबित होते हैं ॥ जैसे समुद्र कहूं तरं
ग रूप कहूं बुदबुदे चक्रादिक होते हैं ॥ तैसे आत्मा वि
षे जीवादिक आभास होते हैं ॥ प्रथम फुरणे रूप होते हैं ॥
पाछे ते कार्य कारण रूप होते हैं ॥ सो चित शक्ति अपणे ॥
संकल्प ते भौतक देह रचकर तिस विषे स्वरूप के प्रमा
द कर अति अभिमान करती है ॥ जैसे घुराण को अप
नी रचना अपने बंधन के निमित होती है ॥ तैसे इसको अ
पना संकल्प बंधन का कारण होता है ॥ हे राजन जीव क
ला को जो स्वरूप का अज्ञान हूया है ॥ जैसे बालिक को अ
पनी परछाईं यक्षरूप होकर भय देता है ॥ तैसे इह नाना
प्रकार के आरंभ को प्राप्त हूया है ॥ अहंकार ही ब्रह्म फु
रणे शक्ति कर कारण भाव को प्राप्त हूया है ॥ तिस कर
बंध अरु मोक्ष भासती है ॥ वास्तव ते न बंध है ॥ न मोक्ष है ॥
निरामय ब्रह्म ही अपणे आप विषे स्थित है ॥ तिस विषे
एक अरु अनेक कहणा कछु नहीं ॥ ताते बंध अरु मोक्ष
की कल्पना को त्याग कर अपणे स्वभाव विषे स्थित हो ॥
॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे इक्ष्वाकु उपदेशो नाम
सर्गः ॥ २४ ॥ मनोवाच ॥ हे राजन जैसे द्रवणे करके ज
ल ही तरंग भाव को प्राप्त होता है ॥ तैसे चिन्मात्र संकल्प
के फुरणे कर जीव होता है ॥ सो जीव संसार विषे कर्मों के
वस ते भ्रमता हूया आपको दूषता है ॥ अरु सर्वात्मा ब्रह्म
कर्ता हूया भी कछु नहीं करता ॥ जैसे सूर्य कर सर्व चेष्टा हो
ती है ॥ अरु सूर्य अकर्ता है ॥ तैसे आत्मा की सत्ता कर जगत
चेष्टा करता है ॥ जैसे चुंबक पत्थर के निकट लोहा चेष्टा क
रता है ॥ तैसे आत्मा की चेतनता कर सर्व देहादिक चेष्टा

करते हैं अरु आत्मा अकर्ता है ॥ जैसे जल विषे तरंग फुर्ते
हैं ॥ तैसे आत्मा विषे देहादिक फुर्ते हैं ॥ जैसे स्वर्न विषे सं
कल्प कर भूषन कल्पना होता है ॥ तैसे आत्मा विषे सुष
दुष मोह कर कल्पीते हैं ॥ आत्मा विषे कल्पना कछु नहीं
शुध आत्मा विषे मूढों सुष दुष की कल्पना करी है ॥ अरु
सम्न जो ज्ञानवान हैं ॥ तिन कों मन चित सुष दुःष अगो काश स्वरू
नाव पहै ॥ उह देह तें रहित चिदाकाश कों प्राप्त होता है ॥ जरा
मरण कों उह नहीं प्राप्त होता ॥ सन्त कार्यों कों कर्ता हुआ अ
वता है ॥ अरु अंतर तें सदा अकर्ता है ॥ जैसे जल के निकिट
अरु दर्पण के समीप पर्वत का प्रतिबिंब पडता है ॥ पर
स्पर्श नहीं कर्ता ॥ तैसे ज्ञानवान कों क्रिया स्पर्श नहीं कर्ती
शरीर के बिवहार विषे उह सदा निर्लेप भाव है ॥ हे राज
न आतम सदा स्थिररूप है ॥ पर मन कर के चंचल भासता
है ॥ जैसे जल की चंचलता कर के जल विषे पर्वत का प्रतिबिं
ब भी चंचल होता है ॥ तैसे देहादिक कर आत्मा चलता भा
सता है ॥ सो आत्मा शुध नित अपणे आप विषे स्थित है ॥
जैसे घट के नास हूये घटाकाश का नाश नहीं होता ॥ तैसे
देह के नास हूये आत्मा का नाश नहीं होता ॥ जैसे शुध म
णि विषे नाना प्रकार के प्रतिबिंब होते हैं ॥ तिन कर रंजन
नहीं होता ॥ तैसे आत्मा विषे मन इंद्रीया देह हुये भी फु
रते हैं ॥ सो स्पर्श नहीं कर्ते ॥ जैसे मिष्ट पदार्थों मों मिठाई
एकही व्यापी है ॥ तैसे सर्व पदार्थों विषे एक आत्म सता व्या
पी है ॥ हे राजन आत्म सदा अचलरूप है ॥ पर अज्ञानवं
कैं चलरूप भासता है ॥ जैसे बालक दौडते कों सूर्य दौड
ता भासता है ॥ तैसे आत्मा देह के संग तें अज्ञान कर विका
रवान भासता है ॥ जैसे प्रतिबिंब का विकार आदर्श कों स्प
र्श नहीं कर्ता ॥ तैसे देह का विकार आत्मा कों नहीं स्पर्श क
र्ता ॥ जैसे अग्नि विषे स्वर्न डारीये तब मैल दग्ध हो जाती
है ॥ स्वर्न का नास नहीं होता ॥ तैसे देह के नाश हूयें आतमा का
नाश नहीं होता ॥ सो आत्मा नित्य शुध अवाक अचिंतरू

पहै॥ हे राजन चितवणे विषे नहीं आवता॥ पर चैतन्य करके
के देखीता है॥ जैसे राहु ग्रह दृष्ट है॥ पर चंद्रमां के संयोग क
र दृष्ट आवता है॥ तैसे आत्मा अदृष्ट है॥ पर चैतन्य वृत्ति क
र जाणीता है॥ जैसे शुध दर्पण विषे प्रतिबिंब होता है॥ तैं
से बुधि निर्मल विषे आत्मा साक्षात भासता है॥ सो संकल्प
तें रहित अपणे आप विषे स्थित है॥ जब बुधि निर्मल हो
ती है॥ तब अपणे आप विषे तिसको पाईता है॥ हे राजन
शास्त्र कर परमेश्वर नहीं पाईता॥ अरु गुरों कर भी नहीं
पाईता॥ जब लग अपणी बुधि निर्मल न होवै॥ अपणी
बुधि जब सत्पद विषे निर्मल होवे॥ तब अपणे आप क
र देखीता है॥ सो बुधि कैसे निर्मल होती है॥ जब संसार की
सततता हृदे तें दूर होवै॥ अरु आत्मा का अभ्यास होवै॥ तब
बुधि निर्मल होती है॥ हे राजन सर्व भाव अभाव रूप जो
देहादिक पदारथ हैं॥ सो सत हैं न असत हैं॥ केवल भ्रम
मात्र हैं॥ तिनकी आस्था का त्याग कर॥ जैसे कोऊ मारिंग
चलता है॥ अरु मारिंग विषे अनेक मिलते हैं॥ पर तिन
कू विषे राग द्वेष कछू नहीं होता॥ तैसे देह इंद्रीयां साथ
स्नेह तें रहित रहीये॥ आतम तत सदा अपणे आप वि
षे स्थित है॥ तिस विषे देहादिक इंद्रजालवत मिथ्या
हैं॥ तिनकी भावना दूर तें त्यागकर॥ नित्य आत्मा शीतल
चैतस्थित हो॥ हे राजन अपणा मित्र आप ही है॥ अरु शत्रु
भी अपणा आप है॥ काहे तें जो आत्मा विषे अवर की
बौर नहीं॥ आतमा विषे आतमा का भाव है॥ अवर द्वैत
कछु नहीं॥ इस कारण तें अपणा आप ही शत्रु है॥ आप ही
अपणा मित्र है॥ जो दृश्य पदार्थों की और तें अनात्म धर्म
विषय इंद्रियां सों खैंच कर चितकौं अपणे आप विषे स्थित
करता है॥ सो अपणा आप ही मित्र है॥ अरु जो अनात्म ध
र्म विषे पदार्थों की और चितकौं लगावता है॥ सो अपणा
आप ही शत्रु है॥ अरु वास्तव तें जेता कछु दृश्यजाल है सो
भी आत्मरूप है॥ आतमां तें भिन्न कछु वस्तु नहीं॥ जैसे

१६७

169

कैं कुवस्तनहीं तैसे

आतमांतें इतर

समुद्र जलतें इतर जगत कछु वस्तु नहीं ॥ सत्न विषे अनस्यूत
केजल२ एक आत्मसत्ता ही स्थित है ॥ जैसे अनेक घटौं विषे एक ही
सूर्य का प्रकाश प्रतिबिंब होता है ॥ तैसे अनेक देहों विषे
एक ही आत्मा व्याप कर स्थित होता है ॥ सो अस्त होता है न
उदै होता है ॥ सदा एक रस अविनासी पुरुष जिंउ का तिंउ
स्थित है ॥ तिस विषे जो अनात्म बुधि फुरती है ॥ सो मिथ्या है
जैसे सिपी विषे रूपे की बुधि होती है ॥ तैसे आतमा विषे जो
अहं बुधि है ॥ सो संसार का कारण है ॥ इस बुधि कर सर्व दु
खों का त्यागी होता है ॥ जैसे वर्षा काल कर सभ नदीयां समु
द्र विषे आन प्रवेश करती हैं ॥ तैसे अनात्म अभिमान क
के सभ आपदा आन प्राप्त होती हैं ॥ वास्तव तें चिन्मात्र अ
र जीव विषे रंच क भेद भी नहीं ॥ एक ही रूप है ॥ ऐसी जो बु
धि है ॥ बंधन तें मुक्त का कारण है ॥ आतमा सर्व विषे अन
स्यूत व्याप्या है ॥ जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व ओर विषे होता है
पर जहां शुध जल है ॥ तहां भासता है ॥ तैसे आतमा सर्व
नुंथे ओर पूरन है ॥ पर शुध विषे भासता है ॥ जैसे तरंग बुदबु
दे विषे जल ही व्याप रहा है ॥ तैसे आतमा अविनासी इस्प
कलनों तें रहित सर्व व्याप्या है ॥ जैसे स्वर्न विषे भूषन न
हीं ॥ तैसे आतमा विषे जगत का अभाव है ॥ हे राजन इह
संसार आतमा विषे नहीं ॥ जैसे स्वर्न विषे भूषन नहीं ॥ तैं
से आत्मा विषे संसार नहीं ॥ केवल आतमा ही है ॥ इतर क
छु नहीं ॥ तातें आतमा विषे संसार नहीं ॥ जो एक वस्तु पात्र
थाई की होती है ॥ तिस विषे दूसरी वस्तु होती है ॥ आतमा तो अ
द्वैत है ॥ दूसरी वस्तु संसार कहां होवे ॥ स्वर्न विषे भूषन जैं
से चितवन कर कल्पित हैं ॥ वास्तव कछु नहीं ॥ तैसे आत्मा वि
षे संसार कछु नहीं ॥ अज्ञान कर के संसार का निश्चै भया है ॥
केवल चिदाकाश है ॥ जैसे नदीयां अरु समुद्र नाम हैं ॥ सो
जल ही है ॥ नदीयां समुद्र कल्पित हैं ॥ तैसे केवल चिदाका
श विषे विश्व संसार नाम कल्पित हैं ॥ अरु जेते कछु आका
र नाश होते हैं ॥ तिन कौं काल नाश करता है ॥ जैसे नदीयां

कोंसमुद्रमछनकके अघावतानहीं ॥ हेराजन ऐसेंपु
दार्थों विषेअभिलाषाकरणींक्याहै ॥ केईकोंदसों
उत्पतिहोताहै ॥ तिनकौंकालनष्टणेंअबलगपडाक
ताहै ॥ कोंरूपदार्थकालतेंमुक्तिनहींहोता ॥ जैसेंसमुद्र
विषतरंगबुदबुदेकेईउपजतेहैं ॥ अरनष्टहोजातेहैं ॥
तातेंतूंकालतेंअतीतकीभावनाकर ॥ जोकालकोंभी पं६
नष्टणकरें ॥ कैसेंभावनांकरीये ॥ अरकैसेंनष्टनकरी
ये ॥ सोश्रवणकर ॥ जैसेंमंद्राचलअगस्तमुनकेंआवणेंकी
भावनांकरेहै ॥ तैसेंतूंअपणेंस्वरूपकीभावनाकर ॥ तब
कालकोंनेछेनकरेंगा ॥ जैसेंअगस्तिमुनसमुद्रकोंनेछे
नकीयाथा ॥ तैसेंअगस्तिरूपआत्माकालरूपसमुद्रकों
नेछेनकरेगा ॥ हेराजनजन्ममरनआदिकजोविकारहैं
सोभ्रमकरकेहैं ॥ भ्रमकहीयेआतमाकेप्रमादकरकेभा
सतेहैं ॥ जबआतमाकोंनिश्चेकरजानेगा ॥ तबविकारकों
दूरिष्टनआवैगा ॥ काहेतें जोअज्ञानकेरचेहैं ॥ आतमावि
षेकोंऊनहीं ॥ जैसेंजेवडीविषेविषसंयुक्तिसर्पभासता
है ॥ सोतबलगहै ॥ जबलगजेवडीकोंनहींजान्या ॥ जबजे
वडीकोंजान्या ॥ तबसर्पभ्रमनिवर्तहोजाताहै ॥ तैसेंजन्मम
रणविकारआतमाविषेतबलगभासतेहैं ॥ जबलगआत
माकोंनहींजान्या ॥ जबआतमाकोंजानेगा ॥ तबसर्वविकार
नष्टहोजावैंगे ॥ हेराजनकैसाआत्मातेरास्वरूपहै ॥ विकारों
तेंरहित ॥ तिसीकीभावनांकरजोतेरेदुखनष्टहोजावें ॥ अरआ
तमपदकौंकछूबोजणेंनहींजाणें ॥ अरकिसीवस्तकोंजाइक
रग्रहणेंनहींकरणें ॥ जोइहआत्माहै ॥ अरकिसीकालकीअपे
क्षाभीनहीं ॥ जोकिसीकालकरपाईयेगा ॥ आत्मातेराअपणांस्व
रूपहै ॥ अरसर्वदाआनंदरूपहै ॥ तेरेतेंइतरकछुनहीं ॥ तूंआ
पकौंजिउकातिउजाणें ॥ आत्माकेंनजाणनेंकरकेआपकोंदुखी
जानताहै ॥ जोमैंमरोंगा ॥ अरमैंदरिद्रीहों ॥ मैंदासहों ॥ इत्यादिक
दुखतबलगहोतेहैं ॥ जबलगआतमाकोंनहींजान्या ॥ जबआ
तमाकोंजानेंगा ॥ तबआनंदरूपहोवहिंगा ॥ जैसेंकोंउइस्त्री
है ॥ अरतिसकेपुत्रनहींहोता ॥ जबतिसकापुत्रहूया ॥ तब
अपणेंपासहींराषतीहै ॥ उसकाविश्वासकछूनहींकरती

अरु किसी काल विषे निद्रा आई ॥ अरु बालिक गोद विषे सो
या पडा है ॥ अरु स्वप्न विषे देषत भई जो बालिक मेरे पास
नहीं ॥ तब बडे दुष कौं प्राप्त भई ॥ अरु रुदन करणे लागी ॥
जब स्वप्न निवर्त भया ॥ तब देषा जो बालिक गोद ही विषे
सोया पडा है ॥ एता दुष भ्रम करके पाया है ॥ बहुरि आनंद
कौं प्राप्त भई ॥ अरु दुष शोक नष्ट हो गये ॥ हे राजन तिसी प्रका
र आतमा तेरा अपणा आप है ॥ अरु सदा आनन्द स्वरूप है ॥ तिस
के प्रमाद कर तूं आपकौं दुषी जानता है ॥ जब अज्ञान का प्रति
ज्ञा तें तूं जागेंगा ॥ तब आपकों जानेंगा ॥ अरु दुष नष्ट होजावें
गे ॥ सो अज्ञान रूप निद्रा क्या है ॥ सो श्रवण कर ॥ देह इंद्रीयां दि
क जो दृश्य है ॥ तिस साथ मिलकर आपकौं जानणा ॥ जो मैं हौं ॥
एही अज्ञान रूप निद्रा है ॥ इन तें रहित होकर देष जो आनंद कौ
प्राप्त होवें ॥ अरु जेते इह पदार्थ भासते हैं ॥ सो मिथ्या हैं ॥ जै
से बालिक मृतका विषे राजा ॥ अरु राज सैंना कल्पना करती
है ॥ जो इह राजा है ॥ इह सैंना है ॥ हस्ती घोडा है ॥ तो न कोऊ रा
जा है ॥ न सैंना है ॥ न हस्ती घोडा है ॥ एक मृतका ही है ॥ तैसे चि
त रूप जो बालिक है ॥ तिसनें आत्म रूप मृतका विषे राजा
अरु सैंना आदिक कल्पे हैं ॥ अरु संपूर्ण विश्व कल्पा है ॥
सो मिथ्या है ॥ हे राजन एक उपाय तेरे तांई कहता हौं सो क
र ॥ जो तेरे दुष नष्ट होजावें ॥ एक वस्तु का त्याग कर ॥ सो केव
न है ॥ अहं अस्मि जो बसहित जो फुरता है ॥ तिसको त्याग क
र जहां इछा है तहां विचर ॥ तेरे तांई दुष का स्पर्श न होवेगा
संकल्प ही उपाध है ॥ जैसे मणि होती है ॥ अरु त्रिण कर आछा
दी है ॥ जब बासना रूपी त्रिण दूर करीये ॥ तब आतम रूप
मणि प्रगट हो आवे ॥ हे राजन जो जाग्रत स्वप्न सुषोपत हैं ॥ तिन
तें रहित जो आतम पद है ॥ तिसकों जाणेंगा ॥ तब जाणेगा
जो मैं मुक्ति हौं ॥ सो तेरा स्वरूप है ॥ तिस पद विषे स्थित हो ॥ जो
केवल आत्म रूप है ॥ अरु अजन्मा है ॥ नित्य है ॥ अरु चैतन्य
मात्र है ॥ सर्व का अपणा आप है ॥ तिसके प्रमाद कर दुषी हो
वीता है ॥ जैसे बालिक मृतका के षिलौने बनावता है ॥ अरु
हस्ती घोडा नाम कल्पता है ॥ अभिमान करता है जो मेरे हैं ॥

अर तिनके नष्ट होवणे कर दुखी होता है॥ तैसे अज्ञानी जो है
बालिक स्वरूप के प्रमाद कर के अभिमान करता है॥ इह
मेरे हैं॥ मैं इनका हों॥ तिनके नास होवणे कर दुखी होता है॥
ऐसे नहीं जानता जो सत का नास नहीं होता॥ असत के ना
स होवणे करके सत का नास जानता है॥ जैसे घट के नास हो
वणे करके घटाकास का नास मानीये॥ तैसे मूर्षता करके दुष
पावता है॥ हे राजन तूं आपकों आतमा जान॥ अरु आतमा ते अ
दिले कर संज्ञा भी शास्त्रों कल्पीयो है॥ जनावणे के निमित॥ न
ही तो आत्मा निर्वीच पद है॥ जिस विषे वाणी की गम्य नहीं॥ अ
रु इन्हीं कर जाणीता है॥ काहे तें जो इन मन वाणी विषे भी आ
त्मसता है॥ तिसी कर आत्मा आदिक संज्ञा सिध होती है॥ जैसे
जेते कछु स्वप्न के पदार्थ हैं॥ तिन विषे अनुभव सता है॥ तिसी
कर पदार्थ सिध होते हैं॥ तैसे जेती कछु अर्थ संज्ञा है॥ सो सर्व
आत्मा कर सिध होती है॥ ऐसा जो तेरा स्वरूप है॥ तिस विषे
स्थिति हो॥ जो तेरे जरा मृत्यु आदिक दुष नष्ट हो जावैं॥ हे राजन
जब निस्पंद रूप होकर देखेंगा॥ तब स्पंद विषे भी उही भासे
गा॥ स्पंद अर निस्पंद तुल्य होकर भासेगा॥ जो समाधि विषे
होवैंगा॥ तो भी तुल्य है॥ अर जब ऐसे ही चेष्टा करेंगा॥ तो भी
तुल्य है॥ न समाध विषे शांत भासेगी॥ न चेष्टा विषे दुख भासे
गा॥ दोनों विषे एक रस रहेंगा॥ विषमता कछु नाहीं होवेगा॥
हे राजन जो कछु शक्ति आचार है सो आइ प्राप्त होवै॥ देणा
अथवा लेणा जाप दानादिक रूया जो है॥ तिसको मर्यादा स
हित शास्त्र विधि संयुक्त करो॥ अर निष्ठ आत्म स्वरूप
विषे रहो॥ जैसे नट स्वांग को धारता है॥ चेष्टा संपूर्ण करता है
अर निष्ठा तिस विषे नटत्व का ही रहिता है॥ तैसे तुम सर्व चे
ष्टा करो॥ तिसके अभिमान अर संकल्प ते रहित होवो॥ ग्राह
ण अथवा त्याग जो कछु स्वभाविक आइ प्राप्त होवे॥ तिस वि
षे ज्यों के त्यों ही रहो॥ जब निर्विकल्प होइ कर तूं अपणे स्वरू
प कों देखेंगा॥ तब उथ्थान काल विषे भी तेरे ताई आत्मा ही भा
सेगा॥ जैसे जल के जानणे ते तरंग फेन बुदबुदा सर्व जल ही
भासते हैं॥ तैसे जब तूं आतमा कों जानेगा॥ तब तेरे ताई संसा
र भी आत्मरूप भासेगा॥ अर जो आत्मा कों नहीं जानता॥

१८१

171

तिसकों जगतही दृष्ट आवता है ॥ तिसकर कै दुष पावता है
तां तैं तूं अंतरमुष होइ ॥ संकल्प विकल्प को त्याग कर कै प
म निर्वाण अच्युत पद विषे स्थित हो ॥ इति श्री निरवा
ण प्रकरणे राजा इक्ष्वाक उपदेसो नाम सर्गः ॥ ८५ ॥ मु
नी वाच ॥ हे राजन इह जो संकल्प पुरुष है ॥ सो संकल्प कर
कै आप बंधावता है ॥ अर आपही मुक्ति होता है ॥ जब संक
ल्प कर हस्य की भावना करता है ॥ तो जन्म मरण पावता है ॥
अरु दुषी होता है ॥ आपही संकल्प कर्ता है ॥ अर आपही बं
धन को प्राप्त होता है ॥ जैसे घुराइण कीट आपही गुफा ब
नावती है ॥ अर आपही तिसकों मूंद कर फसती है ॥ तैसे ही
आपणे संकल्प कर आपही दुष पावता है ॥ अर जो संकल्प
कों अंतरमुष करता है ॥ तब मुक्त होता है ॥ अर मुक्त हीं मा
नता है ॥ तां तैं हे राजा संकल्प कों त्याग कर ॥ आत्मा जो स
न का आपणा आप है तिसकी भावना कर ॥ जो तूं सुषी होवें
हे राजा आत्मा के प्रमाद कर देह अध्यास की भावना हूई है ॥
तिस कर कै दुष पावता है ॥ तां तैं आत्मस्वरूप की भावना क
र जो तूं आत्मा है ॥ चिद्रूप है ॥ महा आश्चर्य माया है ॥ जिसनें
संसार कों मोह लीया है ॥ आतमा सर्वदा आनन्द स्वरूप है ॥ अं
ग अंग व्यापा है ॥ तिसकों नहीं जानते ॥ तां तें इही आश्चर्य है
हे राजन आत्मा सदा अनन्त स्वरूप है ॥ तिस विषे स्थित हो ॥
अर संसार आत्मा के प्रमाद कर हूया है फुरनें तें ॥ सो सत्य भी
नहीं ॥ अर असत्य भी नहीं ॥ जो आतमा तें भिन्न कर देषीये
तो मिथ्या है ॥ तां तें सत्य नहीं ॥ अर आत्मा बिनां दूसरा है नहीं
सर्वात्मा है ॥ तां तें असत्य भी नहीं ॥ तूं आत्मा की भावना क
र ॥ जो कछु पदार्थ भासते हैं ॥ सो आत्मा तें भिन्न न जाण ॥ स
र्वात्मा ही है ॥ अर जो आत्मा बिनां अवर भावना है ॥ तिसकी
त्याग कर ॥ हे राजन जैसे जल विषे तरंग फेन बुदबुदे होते
है ॥ सो जल तें इतर नहीं ॥ जल ही ऐसे भासता है ॥ तैसे जग
त जो दृष्ट आवता है ॥ सो आत्मा ही ऐसे भासता है ॥ जैसे सू
र्य अर किरनां विषे भेद कछु नहीं ॥ चंद्रमा अर किरनां विषे
भेद कछु नहीं ॥ तैसे आत्मा अर जगत विषे भेद नहीं ॥ आ

को

रूप

त्माही जगत है ॥ अरु भिंन अभिंन जो प्रकार भासते हैं सो चि
त्तशक्ति है इतर नहीं ॥ आतमसत्ता है ॥ जैसे लोहा तपहू
या वस्त्रादिककौं जलावता है ॥ सो लोहे कौं अपणी सत
ता नहीं अग्नि की है ॥ तैसे चेतन्य की सत्ता जगतरूप होक
र स्थिति भई है ॥ अरु आतमा सदा केवलरूप है ॥ जिस
विषे प्रकाश अरु तम दोनों नहीं ॥ न सत है ॥ न असत है ॥ न
कोऊ देश है ॥ न कोऊ काल है ॥ न कोऊ पदारथ है ॥ केवल चे
तन्यमात्र गुणातीत है ॥ न कोऊ गुण है ॥ न कोऊ माया है ॥ केव
ल शांतरूप आत्मा है ॥ हे राजन न शास्त्रों कर पाईता है ॥ न
संतों के वचनों कर पाईता है ॥ न तप कर पाईता है ॥ केवल अ
पणे आपकर जाण्या जाता है ॥ अरु शास्त्रादिककर इसते
नहीं जाणीता ॥ जो इदंकर कै नहीं जनावते ॥ लषाइ देते हैं ॥ प
र इदंकर कै नहीं जनावते ॥ काहेतें जो दृष्टापुरुष है ॥ अपणे
आपकर जाणीता है ॥ जैसे सूर्य की जोति नेत्रों विषे है ॥ सो ई
सूर्य कौं देषता है ॥ तैसे आतमा ही आतमा कौं देषता है ॥ अं
तरमुषी होकर ॥ संकल्पतें रहित होकर अपणे आपकौं दे
षता है ॥ जब संकल्प बहिर्मुष होता है ॥ तब वही घट होक
र स्थिति होता है ॥ बहुड़ तिसकी भावना होती है ॥ जब संक
ल्प रूप घट ताकर जगत हो इस्थिति हूया ॥ तब दुषदाई
होता है ॥ हे राजन अवर दुषदाई इसका कोऊ नहीं ॥ अपणे
ही संकल्प कर के दुषी होता है ॥ असम्यक दरशी ॥ अरु सम्य
क दरसी कौं जगत दृष्ट भी आवै ॥ तो भी दुषदाई नहीं होता ॥
जैसे जेवडी विषे सर्प की भावना होती है ॥ तब भय कौं प्राप्त हो
ता है ॥ जब जेवडी के ज्ञानतें सर्प की भावना दूर भई ॥ तब भय
रूपी दुष भी जाता रहता है ॥ तैसे जिस पुरुष कौं संसार की भा
वना होती है ॥ सो दुषदाई है ॥ तातें आतमा की भावना कर जो
तेरे सर्व दुष नष्ट होजावैं ॥ हे राजन तूं सर्वदा आनंदरूप है ॥
अरु अद्वैत हैं ॥ तेरे विषे कल्पनां कोऊ नहीं ॥ तूं आतमरूप
हैं ॥ अरु आत्मा षट विकारों तें रहित है ॥ विकार मिथ्या देह
के हैं ॥ आतमां विषे कोऊ नहीं ॥ आत्मा के प्रमाद करके भान

179 होते हैं ॥ जब तूं आतमा कों जाणेंगा ॥ तब विकार को तू दृष्ट न
आवैगा ॥ कहे तें जो आत्मा अद्वैत है ॥ राजोवाच ॥ हे भगव
न तुम कहते हो आत्मा अद्वैत है जो इस प्रकार है ॥ तो पर्व
तादिक विश्व कैसे भान होते हैं ॥ पथ्थर रूप महा बडे आकार
वाले कि कहे तें उपजे हैं ॥ अरु इसका क्या रूप है ॥ कृपा करके क
हो ॥ मनोवाच ॥ हे राजन आत्मा विषे संसार को उ नहीं सर्व
दा शांति रूप है ॥ अरु निराकार है ॥ तिस विषे स्पंद अरु निस्पंद
दोनों शक्ती हैं ॥ जब निस्पंद शक्ति होती है ॥ तब केवल अद्वैत
भासता है ॥ जब स्पंद शक्ति फुरती है ॥ तब जगत नाना प्रकार
के आकार भासते हैं ॥ वास्तव तें आत्मा ही है ॥ इतर कछु नहीं ॥
जैसे समुद्र विषे तरंग कछु अवर वस्तु नहीं ॥ पवन के संयो
ग तें फुरते हैं ॥ तो भी भिन्न भिन्न दृष्ट आवते हैं ॥ तैसे संवेदन
शक्ति कर अकार भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ वास्तव तें आतम
रूप है ॥ इतर कछु नहीं ॥ जैसे बट का बीज एक होता है ॥ अर
तिस विषे पत्र टास फूल फल अनेक दृष्ट आवते हैं ॥ तैसे आ
नो तम सत्ता नाना प्रकार के आकारों कों धारता है ॥ यद्यपि दृष्ट
आवते हैं ॥ तो भी बण्या कछु नहीं ॥ जिउं का तिउं आतम स्थि
ति केवल अद्वैत है ॥ अरु सूक्ष्म तें भी अति सूक्ष्म है ॥ अरु पर्व
तादिक जो विश्व भान न होता है ॥ सो आतमा का चमत्कार है ॥
जैसे स्वप्न विषे पर्वत अरु वृक्षादिक नाना प्रकार के आकार भा
न होते हैं ॥ तो भी अनुभव रूप हैं ॥ उस तें इतर कछु नहीं ॥ तैसे ज
गत विश्व भी जो कछु भासता है ॥ सो अनुभव आतम रूप है ॥
आतमा तें इतर कछु नहीं ॥ इक्ष्वाकोवाच ॥ हे भगवन जो
आत्मा सूक्ष्म है ॥ तो पर्वतादिक स्थूल सदृष्ट असत रूप सत
हो होकर कैसे भान होते हैं ॥ सो कहो ॥ मनोवाच ॥ हे राजन
आतमा अनंत शक्ति है ॥ सो शक्ति आतमा तें भिन्न नहीं ॥ आत
म रूप है ॥ जैसे सूर्य की किरनी सूर्य तें भिन्न नहीं ॥ तैसे आत्मा की
शक्ती आतमा तें भिन्न नहीं ॥ जैसे पवन विषे दो शक्ती हैं ॥ स्पंद
अरु निस्पंद ॥ सो स्पंद भी पवन है ॥ निस्पंद भी पवन है ॥ स्पंद शक्ति
कर प्रगट भासता है ॥ अर निस्पंद कर के प्रगट नहीं भासता ॥ तैं

से आत्मा विषे निस्पंद स्पंद दोनों शक्ती हैं ॥ जब अहं भावना हू
या ॥ तब चित उदै होता है ॥ अहं ही चित है ॥ जब चित्त हूया ॥
तब आकाश भी भावना कर बण जाता है ॥ जब स्पर्श की
भावना हूई ॥ तब पवन उत्पति होता है ॥ जब रूप की भावना
हूई ॥ तब अग्नि बण गई ॥ जब रस की भावना हूई ॥ तब ज
ल उत्पति हूया ॥ इसी प्रकार चित की कल्पना करते तत्व उपजे
हैं ॥ जब चारो तत्व का समष्ट हूया ॥ तब एक अप्रेट हूया ॥ जब
दृढ संकल्प हूया ॥ तब स्वयंभू हूया ॥ जब अंड फूटा ॥ तब
तीनों लोक प्रगट भये ॥ स्वर्ग मध्य अर पाताल ॥ सो तीन लो
क तीनों गुण राजस सातिक तामस हूये ॥ ब्रह्मंड पर्वतादि
क दृश्य प्रपंच सर्व हूये ॥ हे राजन केवल संकल्प मात्र ही
सन हूये हैं ॥ जब स्पंद शक्ति फुरती है ॥ तब इस प्रकार आ
त्मा विषे भान होते हैं ॥ परंतु बण्या कछु नहीं ॥ जैसे समुद्र
विषै फेन बुदबुदे फुरते हैं ॥ सो जलरूप हैं ॥ जल ते इतर क
छु नहीं ॥ तैसे आत्मा ते इतर कछु वस्तु नहीं ॥ अर आदि म
न जो स्वयं न है ॥ तिस संकल्प कर आगे मन कल्पे हैं ॥ (
त्रिगुणमय सृष्ट इस प्रकार उत्पति होती है ॥ जा केवल संक
ल्पमात्र है ॥ जब लग चित है ॥ तब लग विश्व है ॥ जब चित्त फु
रणे ते रहित होता है ॥ तब निस्पंद शक्ति होती है ॥ जब निस्पं
द हूई ॥ तब ब्रह्मंड जगत नहीं दिषाई देता ॥ हे राजन इह
विश्व मन के फुरणे विषे है ॥ सो सत की न्याई स्थिति हूई है ॥ सो
श्रवण कर ॥ सत्त जो है ॥ सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पाईता
है ॥ सो नहीं भासता ॥ अर जो सत है असत की न्याई भासता
है ॥ सत कैसे असत की न्याई हूया है ॥ अरु असत कैसे स
त की न्याई हूया है ॥ सो श्रवण कर ॥ सत जो है सर्व देश सर्व
काल सर्व वस्तु पाईता है ॥ सो नहीं भासता ॥ अरु असत जो अ
च्छिन्न है ॥ देश काल वस्तु के परच्छेद संयुक्त है ॥ सो सत की न्या
ई हूया है ॥ जहां देषीये तहां इस ही भासती है ॥ त्रिगुणमय
संसार भान होता है ॥ महा आश्चर्य माया है ॥ जिसने सत को
असत की न्याई कीया है ॥ अरु असत को सत की न्याई स्थिति
कीया है ॥ सो चित के संबंध कर के संसार भान होता है ॥ आतमा

विषैसंसारकोऊनहीं॥ जबचितकौंस्थिरकरदेवैगा॥ तब
तेरेताईसंसारनभासैगा॥ जैसेगंभीरजलहोताहै॥ तौच
लतानहींभासताजोकहांजाताहै॥ तैसेगंभीरजोहैआ
त्मातिसविषैसंसारनहींजानीता॥ जोकहांफुर्तीहै॥ अ
रसंसारभीआतमातैंकछुभिन्नवस्तनहीं॥ आतमस्वरू
पहीहै॥ जैसेअग्निकेचिनगारेअग्नितैंभिन्ननहीं॥ अर
जलकेतरंगजलतैंभिन्ननहीं॥ अरमणकाप्रकाशम
णतैंभिननहीं॥ तैसेआत्मातैंसंसारभिननहीं॥ केवलआ
तमरूपहै॥ जैसेंसेंआतमाकोंजाणकरशांतवानहो॥ जो
तेरेदुषनहोवैं॥ केवलशांतिपदआतमाहै॥ सोतेराअ
पणाआपहै॥ अपणेस्वरूपकोंनुंजायकरदेषोकूया
हैं॥ जबआतमाकोंजाणेंगा॥ तबसंसारभीआतमरूप
हवआवैगा॥ काहेतेंजोआतमस्वरूपहीहै॥ आतमांते
इतरवस्तकछुनहीं॥ ऐसाआतमातेरास्वरूपहै॥ तिस
विषेस्थितहो॥ हेराजनइहसर्वजगतचिदाकाशरूपहै
एहीभावनांधडकर॥ ऐसाजिसकीभावनांधडहै॥ अर
सर्वइछाशांतहोगईहै॥ तिसपुरुषकोंदुषकोऊनहींजा
गता॥ उसनिरछारूपीकवचपहिरताहै॥ हेराजनअहं
अर्थतैंरहितजोपुरुषहै॥ सर्वजिसकोंसंतहोगयाहै॥
अरनिरालंबकाआश्रालीयाहै॥ सोपुरुषमुक्तिरूपहै
॥इतिश्रीनिरवाणप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनाम
सर्गः॥२६॥ मनोवाच॥ हेराजाइहसंसारआत्मातेंभिन
कछुवस्तनहीं॥ जैसेजलअरतरंगभिननहीं॥ जैसेसूर्य
तेंकिरनांभिन्ननहीं॥ जैसेअग्नितैंचिणगारेभिन्ननहीं
तैसेआत्मातैंसंसारभिननहीं॥ आत्मस्वरूपहीहै॥ जैसे
इंद्रीयोंकेविषेइंद्रीयांविचरहितेहैं॥ तैसेआत्माविषेसं
सारहै॥ जैसेपवनविषेस्पंदअरनिस्पंदशक्तीहै॥ सोपव
नतेंभिननहीं॥ तैसेविश्वआत्मातैंभिन्ननहीं॥ आत्मस्वरूप
है॥ हेराजनविषयोंकीसततांकोंत्यागकर॥ केवलआत्मा
कीभावनांकर॥ जोतेरेसंसेमिटजावैं॥ तोआत्मस्वरूपहै

अरु निर्गुण हैं॥ तिर तांई गुणोंका स्पर्श नहीं होता॥ तूं सर्व
तें परे है॥ जैसे आकाश विषे धूड़ अरु धूआं है॥ अरु मेघ बा
दल विकार भासते हैं॥ अरु आकाश को लेप कछु नहीं क
र्ता॥ केवल आकाश अद्वैत रूप है॥ अरु जो ज्ञानवान पु
रुष हैं॥ जिनकों आत्मज्ञान हूया है॥ तिनको सुषडुष॥
राजस तामस सात्विक गुण लेप नहीं करते॥ तिस विषे ह
र्ष भी आवते हैं॥ लोक दृष्ट कर॥ तो भी अपणे विषे नहीं
देषते॥ जैसे समुद्र विषे अनेक तरंग जलरूप होते हैं॥ जै
से शुध मणि होता है॥ तिस विषे नील पीतादिक प्रतिबिं
ब पड़ते हैं॥ सो देषणे मात्र हैं॥ मण को स्पर्श नहीं होता॥ तै
से जिस पुरुष के हृदे तें वासना मल दूर भई है॥ तिसकों
शरीर के संबंध कर के राजस तामस सात्विक गुणों के का
र्य सुषदुष देषणे मात्र होते भी हैं॥ स्पर्श नहीं करते॥ केवल
सत्ता समान पद का निश्चा तिस विषे होता है॥ अव नरं
ग उसकों स्पर्श नहीं करता॥ जैसे धूड़ आकाश कों लेप वा
न नहीं होता॥ तैसे आत्मा कों गुणों का संबंध नहीं होता न
जो पुरुष जानता है॥ तिसकों ज्ञानी कहीता है॥ जोता भी
तब है॥ जब निस्पंद होता है॥ जब निस्पंद हूया॥ तब आ
त्मा हूया॥ जब स्पंद हूया॥ तब संसारी होता है॥ जब चेत
उन्मुषत्व होता है॥ तब अनेक सृष्टी भासती हैं॥ जब चित
फुरने तें रहित हूया॥ तब संसार का अत्यंत अभाव होता
है॥ अहं संसार भावना भी नहीं भासता॥ जो पूर्व सृष्टी थी॥ सब
लीन होगई है॥ संसार भी केवल आतम रूप हो जाता है॥
हे राजा तूं ते चेत को स्थित कर॥ अरु वासना कों त्याग॥
दृढ वासना ही मैल है॥ जब वासना का त्याग हूया॥ तब के
वल आकाश की न्याई आपको स्वछ जानेंगा॥ सो आत्मा
वाणी का विषय नहीं॥ केवल आत्मत्व मात्र है॥ अपणे आ
प विषे स्थिति है॥ सर्वदा उदै रूप है॥ अरु विश्व भी आत्मा
का चमत्कार है॥ भिन्न वस्तु कछु नहीं॥ जैसे तरंग जल तें भि
न नहीं॥ तैसे विश्व आत्मा तें भिन्न नहीं॥ आत्मरूप ही है॥ द्र
ष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भान होती है॥ सो अज्ञान के कै

भानहोताहै॥ आत्मासर्वदाएकरूपहै॥ अरत्रिपुटीतेंरहि
तहै॥ फुरनेकरकेंआतमाहीत्रिपुटीरूपहोकरस्थितिहु
याहै॥ जैसेस्वप्नेविषेएकोंअनेकरूपहोताहै॥ अरचेत
नाकर्केकालविषमतारूपहोकरभासताहै॥ वस्तदूसरी
कोऊनहीं॥ तैसेंआत्माहीत्रिपुटीरूपभासताहै॥ तातेंचित्त
कोंस्थिरहोकरदेष॥ आत्मातेंभिंनकछुवस्तनहीं॥ अरफुर
नेविषेसंसारहै॥ जबफुरनामिटगया॥ तबसंसारभीमिटजा
ताहै॥ सोफुरनाकैसेमिटताहै॥ अरस्वरूपकीप्राप्तकैसेहोती
है॥ सोश्रवणकर॥ सप्तभूमिकाकहताहैं॥ जबप्रथमजिज्ञासी
होताहै॥ तबचहताहै॥ जोशास्त्रब्रह्मविद्याकोंदेषणां॥ अरश्र
वणकर्णी॥ अरसंतजनोंकासंगकरणा॥ सोप्रथमभूमिकाहै
भूमिकाकहीयेचित्तकेठहिरावणेकीठौर॥ बहुडजबशास्त्र
अर अरसंतोंकासंगहूया॥ अरबुधिवधी॥ शास्त्रसंतोंकेकहणे
कोंविचारताहै॥ जोमैंकवनहों॥ अरसंसारक्याहै॥ सोइहदूस
रीभूमिकाहै॥ तिसतेंउपरांतविचारता॥ जोमैंआत्माहों॥ अरसं
सारमिथ्याहै॥ मेरेविषेसंसारकोऊनहीं॥ ऐसीभावनावारंवा
रकरणी॥ सोतीसरीभूमिकाहै॥ जबअभ्यासभावनाकीदृढता
तेंआत्मासाक्षात्कारहूया॥ तबवासनासंपूर्णमिटजातीहै
जबस्वरूपतेंउतरकरदेषताहै॥ तबसंसारहेपआवताहै
अरस्वप्नकीन्याईजानताहै॥ तातेंवासनानहीफुरती॥ ऐसे
जोअवलोकनहै॥ सोचतुर्थभूमिकाहै॥ जबअवलोकन
का हूया॥ तबआनंदप्रगटहोताहै॥ ऐसेमहांआनंदप्रगटहो
वणां॥ सोपंचमभूमिकाहै॥ अरजबआनंदप्रगटहूया॥ अ
रतिसविषेस्थितहोवणां॥ अपणेबलतेंसुषपतवतै॥ इस
कानामपंचमभूमिकाहै॥ अरतुर्यापदजोहै॥ सोछटवींभूम
म काहै॥ चित्तकेघडकानामतुर्याहै॥ जबतुर्यातीतपदकोप्रा
प्तहोताहै॥ तबपरमनिर्वाणपदकोंप्राप्तहोताहै॥ तिसकोंसप्त
भूमिकाकहीताहै॥ तिसपरमनिर्वाणपदकोंजीवन्मुक्तिकी
गम्यनहीं॥ काहेतें जोतुर्यातीतपदहै॥ तिसकोंवाणीकरक
हिनसकीता॥ प्रथमतीनभूमिकाजोतेरेताईकहीहै॥ सोजा
ग्रतअवस्थाहै॥ तिसविषेश्रवणमननंनिदध्यासनकरी
ताहै॥ अरसंसारकीसतानीदूरनहीहोती॥ इसीतेंजाग्रत

अवस्था कही है ॥ अरु चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत संसार की
सत्ता नहीं होती ॥ अरु पंचम भूमिका सुषुप्त अवस्था है ॥
काहे ते जो आनंदघन विषे स्थित होता है ॥ अरु छटवीं भू
मिका तुर्यापद है ॥ जो जाग्रत स्वप्न सुषोपत तीनों का सा
क्षी है ॥ केवल ब्रह्म ही प्रकाशता है ॥ अरु निर्वाणपद स्थि
त की ले हो जाती है ॥ तुर्यापद विषे जीवन्मुक्त विचरते हैं ॥
अरु सप्तम भूमिका तुर्यातीत पद है ॥ सो परम निर्वाण पद
है ॥ तुर्या विषे ब्रह्माकार वृत्त रहिती है ॥ अरु तुर्यातीत वि
षे ब्रह्माकार वृत्त भी लीन हो जाती है ॥ जहां वाणी की ग
म्य नहीं ॥ तहां चितन्य होजाता है ॥ केवल आत्मत्व मात्र है
केवल चैतन्य मात्र तहां अपणा अहंभाव होवणा भी नहीं
रोत अरु परम निर्वाण ऐसा जो निर्वाण है ॥ सो तेरा स्वरूप
है ॥ सर्व विश्व उही रूप है ॥ इतर कछु नहीं ॥ जैसे स्वर्ने ही
भूषण है ॥ अरु भूषणों स्वर्ने विषे कल्पित हैं ॥ स्वर्ने ही स्वर्ने
है ॥ अरु भूषण भी प्रणाम कर होता है ॥ आत्मा सदा अच्यु
त स्वरूप है ॥ कदाचित प्रणाम को नहीं प्राप्त भया ॥ केव
ल एक रस है ॥ तिस विषे चेतनां फुरने विश्व कल्या है ॥ वि
कार संयुक्त भासता है ॥ तो भी आत्मा ते इतर कछु नहीं
केवल अपणे आप विषे स्थित है ॥ हे राजन ऐसा आत्मा
तेरा स्वरूप है ॥ तिस विषे स्थित होकर अपने प्रकृत आ
चार विषे निरहंकार हुआ विचिर ॥ अरु अहंकार के त्या
ग का अभिमान भी त्याग कर ॥ केवल आत्म स्वरूप हो
रहु ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे परम निर्वाण वर्ननं ना
म सर्गः ॥ २८ ॥ मनोवाच ॥ हे राजन सर्व चिदाकाश सत्ता
आदि मध्य अंत ते रहित अनाभास ज्यों का त्यों स्थित है ॥
अरु आगे भी उही स्थित होवेगा ॥ तिस विषे न ऊर्ध्व है ॥ न अ
धः है ॥ न तम है ॥ न प्रकाश है ॥ न तिस ते इतर है ॥ सर्व की स
त्ता है ॥ सो चिन्मात्र है ॥ परम सार है ॥ सो आपही संकल्प कर चे
तता भया ॥ तब जगत हुआ ॥ सो किउं कर हुआ ॥ क्या रूप है ॥
सो सुण ॥ हे राजन इह विश्व भी आत्मा ते भिन्न कछु वस्तु न
हीं ॥ आत्म स्वरूप ही है ॥ जैसे जल ते तरंग भिन्न नहीं ॥ अरु म

विषे

चैतंनीत्वणतासे भिन्न नहीं ॥ जैसे षंड विषे मधुरता है ॥
जैसे अग्नि विषे उष्णता है ॥ अरु बर्फ विषे शीतलता
है ॥ सूर्य विषे प्रकाश है ॥ तैसे आत्मा विषे विश्व है ॥ सो आ
त्मस्वरूप है ॥ जैसे आकाश विषे शून्यता है ॥ जैसे वायु वि
षे स्पंदशक्ति है ॥ तैसे आत्मा विषे विश्व है ॥ सो आत्मस्वरू
प है ॥ इतर नहीं ॥ हे राजन जो आत्मस्वरूप है ॥ तो शोक कि
सका करता हैं ॥ मोह किसका करता हैं ॥ अभिमान तें रहित
होकर विचिर ॥ जैसे नेत का प्रवाह आन प्राप्त होवै ॥ तिस
विषे विचिर ॥ जैसे काष्ट की पुतलीयां जंत्री के तागे कर
अनिछित चेष्टा करती हैं ॥ तैसे नेतरूप ताग से अभिमा
न तें रहित होकर विचिर ॥ जो न मैं कछु करता हौं ॥ न करा
वता हौं ॥ न किसी विषे राग न द्वेष करणा ॥ जैसे शिला ऊप
र मूर्ति लिषी होती है ॥ तिसकों न किसीका राग है न द्वेष है
की तैसे शिला की मूर्तीं नाई विचुर ॥ आत्मा तें इतर कछु फुर
नहीं ॥ ऐसा निरहंकार होवैं ॥ भावें विवहारी गृहस्ती हो ॥
भावें संन्यासी हो ॥ भावें देहधारी ॥ भावें देह त्यागी हो ॥ भावें
विक्षेपी हो ॥ भावें ध्यानी हो ॥ तेरे तांई दुष कोऊ न होवैगा ॥ ज्यों
का त्यों ही रहेंगा ॥ फुरना ही संसार है ॥ फुरने तें रहित असं
सार है ॥ जब फुरता है ॥ तब संसारी होता है ॥ जब फुरना मि
ट जावै ॥ तब केवल आत्मा का स्वरूप भासता है ॥ हे राजा इह
जगत सर्व आत्मरूप है ॥ आत्मा ही अपने आप विषे स्थि
ति है ॥ जो सर्वात्मा ही है ॥ तो शोक किसका करीये ॥ अरु मोह
किसका करीये ॥ हे राजन आत्मा सर्वदा एकरस है ॥ अरु
विश्व आत्मा का चमत्कार है ॥ अरु नाना विकार जो दृष्ट आ
वते हैं ॥ अरु जन्म मरण तें आदि जो भासते हैं ॥ सो आत्मा के
अज्ञान करके भासते हैं ॥ जब आत्मा का ज्ञान हूया ॥ तब
आत्मरूप ही है एकरस ॥ विषमता कछु न भासेगी ॥ जैसे
जल के न जानणे कर तरंग बुदबुदे का ज्ञान होता है ॥ जब
जल को जान्या ॥ तब तरंग बुदबुदे की विषमता कछु नहीं
सर्व जल ही रूप है ॥ तैसे जो कछु विकार भासते हैं ॥ सो आत
मां के अज्ञान कर भासते हैं ॥ जब आत्मा का ज्ञान हूया ॥ त

व सर्व एक रस आत्मा ही भासता है ॥ अरु आकार जो भासते
हैं सो संवित के हैं ॥ संवित कहीये अहंकार अरु वासना के
संबंध करके भासते हैं ॥ अहंकार कहीये चित कहीये दो
नौं पर्याय हैं ॥ हे राजन अहंकार सो यह इसका होवणा दृष्टा
ई है ॥ केवल चिन्मात्र विषे जो अहं भाव है ॥ सो मिथ्या है ॥ ज
ब लग संवित दृश्य की और फुरती है ॥ तब लग दृश्य का अं
त कछू नही आवता ॥ अरु नाना प्रकार के विकार भासते हैं
जब संवित आत्मा अधिष्टान की और आवती है ॥ तब आ
त्मा शुद्ध अपनां आप होकर भासता है ॥ अरु संवित भी आ
त्मा का आभास है कल्पित है ॥ आभास के आश्रे विश्व क
ल्पी है ॥ अरु आत्मा जिउ का तिउ है ॥ फुरनै विषे भी अफुरनै
विषे भी ॥ परंतु फुरनै विषे विषमता भासती है ॥ अफुर विषे
जिउ का तिउ भासता है ॥ जैसे जेवडी विषे अज्ञान करके स
र्प भासता है ॥ जब जेवडी का अज्ञान गया ॥ तब सर्प विषम
ता भी चलती रहती है ॥ जिउ की तिउ जेवडी भासती है ॥
सो जेवडी सर्प भासणे काल विषे भी जिउ की तिउ थी ॥ जेव
डी विषे कछु हूया नहीं ॥ जानणे अरु न जानणे विषे एक स
मान है ॥ तैसे आत्मा भी फुरनै काल विषे जगत भासता है ॥ फु
रनै के निवर्त हूये आतमा ही भासता है ॥ आतमा दोनों का
ल विषे एक समान है ॥ जैसे सूर्य की किरनों सूर्य तें भिन्न न
हीं ॥ अरु आत्मा तें दृश्यता भिन्न नहीं ॥ तैसे आत्मा तें विश्व भि
न्न नहीं ॥ आत्मस्वरूप ही है ॥ हे राजन अहंकार कों त्याग
कर समता समान अपणे स्वरूप विषे स्थित हो ॥ तब तेरे संस
य दुष निवर्त हो जावैं ॥ एक कवच तेरे ताई कहता हों ॥ तिस
कौं धार कर विचिर ॥ यद्यपि अनेक शस्त्रों की वर्षा होवे
तो भी छेद कौं न प्राप्त होवैं ॥ सो श्रवण कर ॥ जो कछु देषी
ता है ॥ सुणीता है ॥ सर्व ब्रह्म जाण ॥ वारंवार एही भावना कर
जो ब्रह्म तें इतर कछु भासे नहीं ॥ जब ऐसी भावना धृड क
रैं ॥ तब शस्त्र कोऊ न छेद सकेगा ॥ इह ब्रह्म की भावना ही
कवच है ॥ जब इस कवच कं तें धारेंगा ॥ तब सुषी होवहि
गा ॥ वाल्मीकोवाच ॥ इस प्रकार वशिष्टजी रामजी कौं ॥

मन अर इक्ष्वाक का संवाद सुणाया ॥ तब सायं काल हूया ॥
सूर्य भगवान अस्त हूया ॥ अर संपूर्न सभा स्नान कौं उठी ॥
अर रात्रि व्यतीत होई ॥ बहुड सूर्य की किरणों साथ आ
इ प्राप्त हूये ॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे मोक्षरूप वर्न
नं नाम सर्गः ९८ ॥ मनोवाच ॥ हे राजन जिसका कारण
ही मिथ्या है ॥ तौ कार्य कैसे सत होवै ॥ इह आभास जो है सं
वित ॥ सो विश्व का कारण है ॥ जो आभास मिथ्या है ॥ तो विश्व
कैसे सत होवै ॥ अर जो विश्व ही असत है ॥ तौ न ये किसका
कर्ता है ॥ अर भोक्ता किसका कर्ता है ॥ हे राजन न को उपज
ता है ॥ न को मरता है ॥ न सुष है ॥ न दुष है ॥ जिउ का तिउ आ
त्मा स्थित है ॥ तिस विषे संवित ने विश्व कल्या है ॥ संवित का
त्याग कर ॥ जो न मैं हौं ॥ न इह है ॥ तब तेरे तांई ऐसा निश्चा ध
ड होवैगा ॥ तब पाछै आतमा ही शेष रहेगा ॥ अर अहंकार
निवर्त हो जावैगा ॥ काहे तें जो आत्मा के अज्ञान ते हूया है ॥ अ
र आतम ज्ञान कर नष्ट हो जाता है ॥ हे राजन जो वस्तु भ्रम क
की सिध होवै ॥ अर सत हष्ट आवै ॥ तिस कौं विचारीये ॥ जो वि
चार कीये ते रहे ॥ तौ सत जाणीये ॥ अर आतमा जाणीये ॥ अ
र जो विचार कीये नष्ट हो जावै ॥ तिस कौं मिथ्या जाणीये ॥ जै
से हीरा भी स्वेत है ॥ अर बरफ का हीरा भी स्वेत है ॥ एक समान
दोनों भासते हैं ॥ तिन दोनों की परीक्षा करीये ॥ सूर्य के सन्मु
ष दोनों राषीयें ॥ जो पघर कर जल हो जावै ॥ सो झूठ जाणीये ॥
अर जो जिउ का तिउ रहे तिस कौं सत जाणीये ॥ तैंसे विचार
रूप सूर्य के सन्मुष करीये ॥ तौ अहंकार बरफ की न्याईं नष्ट
हो जाता है ॥ काहे तें जो अहंकार अनात्म अभिमान विषे हो
ता है ॥ सो तुछ है ॥ सर्व व्यापी नहीं ॥ अर इंद्रीयां की क्रिया अ
पणे विषे मानता है ॥ सो तुछ है ॥ अर आप कौं भिन्न जानता है
अर आप तें भिन्न अवर पदार्थ मानता है ॥ तांते विचार तें
बरफ के हीरे की न्याईं मिथ्या होता है ॥ अविचारित सिध
है ॥ जब विचार कीया ॥ तब नष्ट हो जाता है ॥ अर आत्मा सर्व
का साक्षी जिउ का तिउ रहता है ॥ अर अहंकार का भी अर द

द्रीयां का भी साक्षी है ॥ सर्वव्यापी है ॥ हे राजा जो सत वस्तु है
तिस को भाव नो कर ॥ अर सम्यक दर्शी होइ ॥ सम्यक द
र्शी कों दुष कोऊ नहीं ॥ जैसे जेवडी मार्ग विषै पडी है ॥ तिस
कों जेवडी जाणी थे तो दुष कोऊ न हो ॥ अर जो जेवडी न जा
णी ये तो भय मान होवीता है ॥ तातें सम्यक दर्शी होइ ॥ अ
सम्यक दर्शी मति होवहि ॥ हे राजन जो कछु दृश्य पदा
र्थ हैं ॥ सो सुष दाई नहीं ॥ दुष दाई हैं ॥ जब लग इन का
संयोग है ॥ तब लग सुष भासता है ॥ जब वियोग हूया ॥
तब दुष देते हैं ॥ तातें तूं उदासीन हो ॥ किसी पदार्थ कों सु
ष दाई न जाण ॥ अर दुष दाई भी न जाण ॥ सुष अर दुष दो
नो मिथ्या हैं ॥ इन विषै आस्था मत कर ॥ अहंकार तें रहित
जो तेरा स्वरूप है ॥ तिस विषै स्थित हो ॥ जब अहंकार नष्ट
हो जावेगा ॥ तब आप कों जन्म मरण तें रहित आत्मा जा
णेंगा ॥ जो मैं निरहंकार हों ॥ अर ब्रह्म हों ॥ चिन्मात्र हों ॥ मैं
सो अहंभाव तें रहित होणं ॥ आपणां होणं भी न रहेगा ॥
केवल चिन्मात्र रहेगा ॥ आनंदरूप होवेगा ॥ अर शोक तें र
परागद्वेष तें रहित होवैगा ॥ जब ऐसा आप कों जान्या ॥ त
ब शोक किस का करेगा ॥ हे राजा इस दृश्य कों त्याग कर ॥
अपणे स्वरूप विषै स्थित हो ॥ अर इस मेरे उपदेश कों वि
चार ॥ जो मैं सत कहता हों ॥ अथवा असत कहता हों ॥ अ
र विचार तें जो संसार सत होवै ॥ तो संसार की भावना कु
र ॥ अर जो आत्मा सत होवै ॥ तो आतमा की भावना कर ॥ हे
राजन तूं सम्यक दर्शी होइ ॥ सत कों सत जाण ॥ अर अस
त कों असत जाण ॥ अर जो असम्यक दर्शी होता है ॥ तो अ सत कों
सत जाणता है ॥ अर असत कों सत जाणता है ॥ असत व
स्तु तो स्थिर नहीं रहणें ॥ ऐसे न जानके अज्ञानी दुष पावते
हैं ॥ जैसे कोउ पुरुष कुटी रचकर चितवने लागा ॥ जो आवी
ज्ञा की रच्छा मैं करता है ॥ जब कुटी नष्ट भई ॥ तब शोक करती
है ॥ जो मेरी का ज्ञान नष्ट होगया ॥ काहेतें जो आकाश कुटी कै ता
आपे जान था ॥ तैसे अज्ञानी पुरुष आतमा कों देह कै आ
फे जाणकर ॥ देह के नष्ट हूये तें आतमा का नाश मानके
र दुषी होते हैं ॥ जैसे स्वर्न विषै भूषन कल्पित हैं ॥ जिसकों भू
षनों का ज्ञान है ॥ सो भूषनों के नष्ट हूये दुष पावता है ॥ स्वर्न

कातो नाश नहीं होता ॥ जिसकों इह ज्ञान है ॥ सो अप्रषनों के
नाश तें भी स्वर्न को देषता है ॥ अरु अप्रषन सत्ता करि स्थित जा
नता है ॥ तैसे जो मुरिष है ॥ सो देह के नष्ट हूयें आपकों नष्ट
जानता है ॥ अरु जो ज्ञानवान है ॥ सो आत्मा कों अविनासी जा
नता है ॥ हे राजा तू देह इंद्रीयां अहंकार के अभिमान तें रहि
त हो ॥ देह इंद्रीयां की चेष्टा अभिमान तें रहित हो कर क
रैंगा ॥ तब शुभ अशुभ ते क्रिया बंधन सकेंगा ॥ अरु जो अभि
मान सहित करैंगा ॥ तब शुभ अशुभ फल कों भोगैंगा ॥ हे
राजन जो मुरिष अज्ञानी हैं ॥ सो ऐसी क्रिया करते
हैं ॥ जिसका कल्पपर्यंत नाश न होवे ॥ अरु देह इंद्रीयां के
अभिमान का गति बिंब आप विषै मान कर कहते हैं ॥ मैं
कर्ता हों मैं भोक्ता हों ॥ ऐसे मानणे कर अनेक जन्म पाव
ते हैं ॥ तिनके कर्मों का नाश कबहूं नहीं होता ॥ अरु जो तत्व
वेत्ता पुरुष ज्ञानवान हैं ॥ सो आपकों देह इंद्रीयां गुणों तें
रहित जानते हैं ॥ तिनके कर्म संचित अरु क्रियमाण ना
श हो जाते हैं ॥ संचित कर्म रूई की न्याई है ॥ अरु क्रियमा
ण फल फज की न्याई हैं ॥ जैसे रूई कों लपेट कर अग्नि
लगाये तें बहु फल फल सकें तृण दग्ध होते हैं ॥ तैसे
ज्ञानरूप अग्नि कर संचित अरु क्रियमाण कर्म दग्ध हो
ते हैं ॥ तातें हे राजा जो कछु चेष्टा फुरनें वासनां तें रहित हो
कर करेंगा ॥ तिस विषे बंधन को तू नहीं ॥ जैसे बालिक के
अंग सुभाविक भली बुरी प्रकार हलते हैं ॥ पर उसके रि
दे विषे फुरना अभिमान नहीं ॥ तातें उसकों बंधन नहीं क
ती ॥ तू भी इच्छा तें रहित होकर चेष्टा कर ॥ तैसे तेरे ताईं बं
धन कों तू न होवेगा ॥ जद्दि पसन चेष्टा तेरे विषै भासेगा ॥
तो भी वासनां तें रहित होवेगा ॥ तो अब रजन्म न पावैंगा ॥
जैसे भुन्या बीज देषणे मात्र होता है ॥ अरु उगमता नहीं ॥
तैसे तेरे विषै सर्व क्रिया दृष्ट आवैगी ॥ तो भी जन्म न पावैंगा
अरु पुन्य क्रिया का फल पुन्य न भोगैंगा ॥ अरु पाप क्रिया का
फल दुषन भोगैंगा ॥ तेरे ताईं पाप पुन्य का स्पर्श न होवैगा ॥
जैसे जल विषै कमल लिप्त न होता है ॥ अरु जल तिसकों स्प

ग्नि नहीं कती ॥ तैसे पापपुंन्य का स्पर्श तिसते ताई न होवैगा ॥ तों
तें अलिप्त बसो रहित चेष्टा कर ॥ जो कछु अपणां प्रकि
ति आचार है सो कर ॥ हे राजन जैसें आकाश विषे जल सा
थ पूर्ण मेघ नीरस आवते हैं ॥ पर आकाश कौं लेपन नहीं क
रते ॥ तैसे तुज कौं कोउ क्रिया बंधन करेगी ॥ जैसे विष के जो मा
रणेवाला है ॥ तिस कौं जैसे विष मार नहीं सकता ॥ तैसे ज्ञानी कौं
क्रिया बाधन नहीं सकती ॥ ज्ञानवान क्रिया करने विषे भी आप कौं
अकर्ता जानता है ॥ अर अज्ञानी न करने विषे भी अभिमान क
र कती होता है ॥ जो देह इंद्रीयां के न करने विषे आपकौं अक
ती मानता है ॥ सो सदैव कती ही है ॥ अर जो देह इंद्रीयां कर क
ता है ॥ अर आप कौं अकती देखता है ॥ सो करने विषे अकता है
अर जो पुरुष कर्म इंद्रीयां कौं संयम कर बैठता है ॥ अर मन
विषे विषयां भोगणे की चितवना राखता है ॥ अर अंतस्करण जि
स का रागद्वेष कर मूढ है ॥ अर बाह्य क्रिया कौं त्यागता है ॥ अ
र डंबी होता है ॥ सो मिथ्याचारी है ॥ अर जो पुरुष मन कर इं
द्रीयां कौं रागद्वेषतें रहित करता है ॥ अर कर्म इंद्रीयां कर चेष्टा
करता है ॥ सो विशेष है ॥ अपणें जानणें विषे कछु नहीं करता ॥ सो
मोक्ष कौं पावता है ॥ हे राजा अज्ञान रूप वासना तें रहित हो
कर विचर ॥ ऐसे होकर विचरेंगा ॥ तब आप कौं ज्यौं का त्यौं
आत्मा जाणेंगा ॥ अर सर्व दीउदे रूप सर्व का प्रकाशक आप
कौं जाणेंगा ॥ जन्म मरण तें रहित निर्विकार बंधमुक्त तें रहि
त ज्यौं का त्यौं आत्मा कौं जाणेंगा ॥ हे राजन तिस पद कौं पाइ
कर ज्ञीतवान होवैगा ॥ अर सर्व कला अभ्यास विषे ब बिनां
नास होता है ॥ जैसे रस बिनां वृक्ष होता है ॥ जदि पफलवाला
नी होता है ॥ तौ भी उगवता नहीं ॥ अर ज्ञानकला अभ्यास कर
उपजती है ॥ अर उपजी हूई नाश नहीं होती ॥ जैसे धान्य बोई
ते हैं ॥ अर दिन दिन प्रति वधणें लागते हैं ॥ तैसे ज्ञानकला
भ्यास हूई दिन दिन प्रति वधती है ॥ हे राजन ज्ञान उपजे हूये
ऐसे जानता है ॥ कि न मैं मरता हों ॥ न जनमता हों ॥ निरअहंका
र निहकिंचन रूप होकर सर्व का प्रकाशक हों ॥ अजर हों ॥ अ
मर हों ॥ हे राजा ऐसी ज्ञानकला कौं पाइकर मोह कौं नहीं प्रा
प्त होता ॥ जैसे दूध तें दही हूई बहुड दूध नहीं होता ॥ तैसे ज्ञा

न प्राप्त हुये मोह को नहीं प्राप्त होता ॥ जैसे दूध को मथ क
र घृत को ढलीया ॥ बहुड़ उनहीं मिलता ॥ तैसे जिस को
ज्ञान कला उदे हुई है ॥ बहुड़ मोह का स्पर्श नहीं होता
हे राजन पुरुष प्रयत्न इही है ॥ जो अपणे स्वरूप विषे
स्थित होवणा ॥ अवर उपाव का त्याग करणा ॥ जिस पुरु
ष को आत्मा की भावना हुई है ॥ सो संसार समुद्र के पा
र को प्राप्त भया है ॥ अर जिस को संसार की भावना नई
सो संसारी जरा मृत्यु दुष को पावता है ॥ इति श्री निरू
वाण प्रकर्णे परमार्थ उपदेशो नाम सर्गः ॥ ९९ ॥ मनो
वाच ॥ हे राजन बड़ा आश्चर्य है ॥ जो शुध आत्मा चिन
मात्र विषे माया कर के नाना प्रकार के देह इंद्रीयां हूई
आई हैं ॥ हे राजा इस का कारण अज्ञान है ॥ जिस आत
मा के अज्ञान कर के दृश्य भासती है ॥ तिसी के ज्ञान कर
लीन होती है ॥ ताते इस संवित को त्याग कर आत्मा की
भावना कर ॥ इह मैं हों ॥ इह मेरे हैं ॥ मिथ्या ही फुरते हैं ॥ हे
राजन प्रथम जो उपजा है परमे कारण रूप ते ॥ सो एक जी
व उपजा है ॥ तिसी आदि एक जीव ते अनेक जीव गण हो
त भए हैं ॥ जैसे अग्नि ते विसफुलिंग निकसते हैं ॥ तैसे ति
स जीव ते आगे अनेक रूप धारते हैं ॥ कहूं गंधर्व ॥ कहूं
विद्याधर इस ते लेकर ॥ फेर जैसे जैसे वासना संकल्प
फुरते गये हैं ॥ तैसे ही रूप होते गये ॥ वस्त ते क्या है ॥ जैसे ज
ल बीच तरंग स्वरूप के प्रमाद कर अनेक भाव को प्राप्त
होते हैं ॥ अपणे संकल्प आपही को बंधन रूप होते गये
हैं ॥ जीव को सकारवत ॥ ताते संकल्प नाना नत्व कलना त्या
ग ॥ इह मिथ्या है ॥ हे राजन इस भावना को त्याग कर आ
तमपद की सत्तं को प्राप्त होवो ॥ जो आतमा अनंत है ॥ क
हूं विश्व भान अवर प्रकार की होती है ॥ कहूं अवर प्रका
र की होती है ॥ जैसे समुद्र सम है ॥ तिस विषे कहूं आवर्त
उठते हैं ॥ कहूं बुदबुदे उठते हैं ॥ सो जल ते भिन्न नहीं ॥
तैसे आत्मा विषे अनेक प्रकार विश्व फुरता है ॥ सो आ
तमा ते भिन्न कछु वस्त नहीं ॥ आतम सरूप ही है ॥ ताते

आतमा की भावना करि ॥ कहूं ब्रह्मसत्ता शक्ति होकर फु-
रती है ॥ तहां जानता है जो मैं ब्रह्म हों ॥ अरु शुध रूप हों ॥
सदा मुक्ति रूप हों ॥ मैं इस संसार समुद्र के पार कों प्राप्त
भया हों ॥ जहां चैतन्यता शक्ति है ॥ तहां आप कों जीव ता
मानता है ॥ अरु दुषी भी जानता है ॥ सो जीव का लक्षण श्र-
वण करि ॥ अंतहकर्ण साथ मिलकर भोगों की भावनं
करणी ॥ अरु सर्वदा विषयों की चिंतना करणी ॥ सो जी-
व आत्मा कहाये है ॥ अरु जहां वासना क्षय हुई है ॥ अ-
रु शुध आत्मा विषे आतम प्रत्यय है ॥ तहां जीवसत्ता न-
ष्ट होजाती है ॥ केवल शुध आत्मा प्रकाशता है ॥ हे राज-
न जब चैतन्य अंतहकर्ण साथ मिलकर बहिर्मुष फु-
रती है ॥ तब संसारी जरा मरनं कर दुषी होता है ॥ अरु जहां चै-
तन्य शक्ति अंतरमुष होती है ॥ तब जन्म मरन की भाव-
नां को त्याग कर स्वरूप की भावनां करता है ॥ अरु सर्व दु-
षों की निवर्त होती है ॥ जब इसकी भावनां स्वरूप की औ-
र लागती है ॥ तब दुष कोऊ न हीं रहिता ॥ जब स्वरूप का
प्रमाद भया ॥ तब दुष पावता है ॥ जब स्वरूप का ज्ञान हु-
या ॥ तब आनंदरूप पराक्तिमान होता है ॥ हे राजन संसा-
र रूपी कूप है ॥ तिसकी टिंडा नहीं होवणं ॥ जब टिंद-
रसी साथ बांधीती है ॥ तब कबहूं ऊर्ध जाती है ॥ कबहूं
अधः कों जाती है ॥ जब रसरी टूट पडती है ॥ तब न ऊर्ध
जाती है ॥ न अधः कों जाती है ॥ न दुष पावती है ॥ सो कूप क्या
है ॥ अधः क्या है ॥ ऊर्ध क्या है ॥ सो श्रवण कर ॥ हे राजा जो सं-
सार रूप कूप है ॥ और स्वर्ग लोक ऊर्ध है ॥ अरु पाताल न-
र्क अधः है ॥ पुंन्य कर्म करके स्वर्ग कों जाता है ॥ पाप कर्म
करके नर्क कों जाता है ॥ अरु जन्म मरन रूपी चक्र ॥ आसा
रूपी रसड़ी साथ फिरता है ॥ सो स्वर्ग नर्क फिरने का कार-
ण आसा है ॥ जब आसा रूप रसडी टूटती है ॥ तब न कोऊ
स्वर्ग है ॥ न नर्क है ॥ जब लग देह विषे अभिमान है ॥ तब ल-
ग नीचे तें नीचे स्थानों कों प्राप्त होता है ॥ जैसे छीला पथर की
समुद्र विषे डारीये ॥ तब नीचे कों चली जाती है ॥ तैसे नीच
स्थानों कों देषकर देह अभिमानी नीचे चल्या जाता है ॥

जबइंद्री आदिक का अभिमान त्याग कीया॥ तबजैं
से षीरसमुद्र तें चंद्रमा निकसकर ऊर्धतें ऊर्धकों चल्या
जाता है॥ तैंसे ऊर्धकों चल्या जाता है॥ हे राजा जे ब आत्मा
की भावना करेंगा॥ तब आत्मा ही होवेंगा॥ तो ते आसार रू
पी फासी कौं तोडकर शांतपद कों प्राप्त होवेंगा॥ आत्मा
चिंतामणि की न्याई है॥ जैसी भावना करीती है॥ तैसी आ
त्मा तें सिध होती है॥ जब तं आत्मा की भावना करेंगा॥ त
ब से पूर्ण विश्व अपले ही विषे देषेंगा॥ जैसे पर्वत हि
लापथर सर्व अपले ही विषे देषता है॥ तैंसे तू सर्वात्मा
विषे जालेंगा॥ हे राजा जेती कछु विश्व है॥ सो सर्वात्मा के
आश्रय है॥ शास्त्र अर शास्त्र द्रष्टस न आत्मा के आ
श्रय है॥ हे राजा आत्मा के आश्रय हैं॥ सो सर्व सत है॥
आत्मा चिंतामणि कल्पवृक्ष है॥ जैसा कोउ भावना कती
है॥ तैसा सिध होती है॥ हे राजन पुनैं विषे इह द्रष्ट सर्व
सत है॥ जब पुनीं न द्रष्टया॥ तब न कोउ शास्त्र है॥ न
कोउ द्रष्ट है॥ केवल अद्वैत आत्मा है॥ निषेध किसका
करीये॥ अर अंगीकार किसका करीये॥ जो पुरुष अ
हंकार तें रहित हूया है॥ सो सर्व शास्त्र द्रष्टतें ऊपर वि
राजता है॥ सर्वात्मा होता है॥ जैनी उसी कों जेन कहते हैं
कालवादी उसी कों काल कहते हैं॥ सर्व का आपै आत्मा
है॥ जो पुरुष देह अभिमानी है॥ सो मरिषे है॥ सरूप के
अज्ञान कर अधः लोक कों गमनागमन करता है॥ अर
पशु पंछी स्थावर जंगम जूनीयों कों पावता है॥ अर सं
सारूपी फासी साथ दुष पावता है॥ जो पुरुष सम्यक द्र
ष्टी है॥ अर शुध चेष्टा है॥ तिसकों विकार कोउ द्रष्ट न
ही आवता॥ आकाश की न्याई सदा निर्मल भासता है॥ अ
र संपूर्न विश्व तिसकौं आत्मरूप भासता है॥ अर जेती क
छु चेष्टा ब्रह्मा विष्णु इंद्रादिक करते हैं॥ तिसका कर्त्ता
आपकों जानता है॥ तिसकों सर्व दुषों का अंत होता है॥ दु
षतें रहित आत्मपद कों प्राप्त होता है॥ अर सर्व सुषों की
सीमा तिसकों प्राप्त होती है॥ हे राजन जब ऐसे सुष कों तं

प्राप्त होवैंगा ॥ तब त्रिष्णा तेरे ताईं कोऊ न रहेगी ॥ जैसे न
दीयां तब लग चलती हैं ॥ जब लग समुद्र कों नहीं प्रा
प्त भई ॥ जब समुद्र कों प्राप्त भई ॥ तब चलणे की इछा न
हीं रहती ॥ तैसे जब तूं आत्म पद कों प्राप्त होवहिंगा ॥ त
ब इछा तेरे ताईं भी कोऊ न रहेगी ॥ हे राजन तूं अहंकार
का त्याग कर ॥ अथवा ऐसे जाण जो सर्व मैं ही हों ॥ अर
जरा मरणादिक दुष तब लग हैं ॥ जब लग आतम तत्त्व न
हीं प्राप्त भया ॥ जब आत्म ज्ञान पाया तब दुष कोऊ नहीं
रहता ॥ अर दोऊ दुष भारी हैं ॥ जन्म अर मृत्यु ॥ इह केव
ल समान भी दुष होवै ॥ तो भी ज्ञानवान कों स्पर्श नहीं क
ती ॥ हे राजन जैसे बूटा होता है ॥ जब उस कों फल पडता
है ॥ तब सरकू कर गिडता है ॥ तिसी प्रकार जब ज्ञान रूप
फल प्राप्त होता है ॥ तब मन बुध अहंकार रूप जो बूटे हैं
सो गिड पडते हैं ॥ जब लग मन की चपलता है ॥ तब लग
दुष पावता है ॥ जब मन की चपलता निवर्त भई ॥ तब न
होमन कोऊ नहीं रहता ॥ शांत पद कों प्राप्त होता है ॥ अर शां
त तब होती है ॥ जब प्रकृति का वियोग होता है ॥ अर प्रकि
र्ति के संयोग तें संसार होता है ॥ अर दुष पावता है ॥ तां तें प्र
कृति कहीये अहंकार तिस का त्याग कर ॥ अर अहंका
र तें रहित होइकर चेष्टा करो ॥ जब अहंकार तें रहित
हूया ॥ तब तिस पद कों प्राप्त होवहिंगा ॥ जो न जड है ॥ न चै
तन्य है ॥ न सत है ॥ न असत्य है ॥ न केवल है ॥ न अकेवल
है ॥ न आत्मा कहीये ॥ न अनात्मा कहीये ॥ न एक कहीये
न दोइ कहीये ॥ जेते कछु नाम हैं ॥ सो प्रतियोगी सापेषि
त्वरूप ये हैं ॥ प्रतियोग हूया सो द्वैत हूया ॥ अर आत्मा अ
द्वैत मात्र है ॥ जिस कों वाणी की गम्य नहीं ॥ जो अवाच्य पद
है ॥ तिस कों कैसे कहीये ॥ जेते कछु नाम संज्ञा हैं ॥ सो उप
देश मात्र हैं ॥ आतमा अनिर्वाच्य पद है ॥ तां तें संकल्प का
त्याग कर ॥ अर आतमा की भावना कर ॥ जब आतमा की
भावना करेंगा ॥ तब केवल आतमा ही प्रकासेगा ॥ जैसे
फूल का अंग सुगंध तें रहित कोऊ नहीं ॥ तैसे आतमा तें इ
तर कछु नहीं ॥ हे राजा जब अहंकार का त्याग करैंगा ॥ त
ब अपने आप कर जो भायमान होवहिंगा ॥ अकोत्री

कीन्याई निर्मल आत्मा विषै स्थिति होवहिगा ॥ अहं
कार को त्याग कर तिस पद कों प्राप्त होवहिगा ॥ जहां
शास्त्र अरु गुरों के अर्थ नहीं प्राप्त होते ॥ अरु सपू
र्ण इंद्रीयां के रस लीन हो जाते हैं ॥ अरु सर्व दुःख जहां
नष्ट हो जाते हैं ॥ केवल निर्मल मोक्षपद कौं प्राप्त होव
हिगा ॥ हे राजन मोक्ष किसी देश विषै नहीं ॥ जो हो जा
य कर मोक्ष होवीये ॥ अरु मोक्ष किसी काल विषै नहीं
जो अमुका काल आवैगा ॥ तब मुक्ति होवीयेगा ॥ अ
रु मोक्ष को रूप पदार्थ भी नहीं ॥ जो किसी पदार्थ को ग्र
हण करीये तब मुक्ति होवीये ॥ हे राजन मोक्ष प्रकिते
जो है अहंकार तिसी तें होवणा है ॥ जब अहंकार का
तूं त्याग करेंगा ॥ तब ही मोक्ष है ॥ जब इस अनात्म अ
भिमान अहंकार कों त्यागेंगा ॥ तब अपणे आप कर
शोभायमान होवहिगा ॥ जैसे धूम तें रहित अग्नि प्र
काशमान होती है ॥ तैसे अहंकार तें रहित तूं प्रकाशै
गा ॥ जैसे बडे पर्वत ऊपर तलाव गंभीर अरु निर्मल
शोभा पावता है ॥ तैसे तूं सोभा पावैंगा ॥ हे राजा तूं अप
णे स्वरूप विषै स्थिति हो ॥ इति श्री निर्वाणप्रकरणे
समाधानवर्ननं नाम सर्गः ॥ ९० ॥ मनोवाच ॥ हे राजा
तूं आत्माराम हो ॥ शुद्ध हो ॥ अरु राग द्वेष तें रहित हो ॥ नि
त्य अंतर्मुखी सुखी हो ॥ हे राजन जब तूं आत्माराम हूय
तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जावैगी ॥ अरु अंतर की शीत
लता सों तूं चंद्रमा पूर्णवत हो जावैगा ॥ ऐसे होकर अपणे
प्रकित आचार विषै विचिर ॥ अरु किसी फल की वांछा
न कर ॥ जो पुरुष वांछा तें रहित होकर कर्म करता है ॥ सो
सदा अकर्ता है ॥ अरु महा शोभा पावता है ॥ हे राजन तूं ऐ
सी अवस्था विषै स्थिति होकर जो जो जन आवै ॥ तिसकौं
ग्रहन कर ॥ जो अनिछित वस्तु आवैं तिसकौं परिहर ॥
जहां नींद आवै तहां सैन कर ॥ अरु राग द्वेष तें रहित हो
जब तूं ऐसा होवहिगा ॥ तब शास्त्र अरु शास्त्रों के अर्थ
तें उलंघवैंगा ॥ जो पुरुष ऐसा है ॥ सो परम रस कों पाय
कर मतवारा होता है ॥ तिसकौं संसार की इछा कछु न

हीहोती ॥ हेराजन ज्ञानवानको काशी विषे देहत्यागे ॥ अथ
वा चंडाल के गृह विषे त्यागे ॥ जहां तहां मुक्ति है ॥ वह स
दा आतमसरूप विषे स्थित है ॥ अर वर्तमानकाल वि
षे देहको नहीं त्यागता ॥ काहेतें जिस काल विषे उसको ज्ञा
न हूया है ॥ तिसी काल विषे देह का अभाव है ॥ जिस का
ल विषे ज्ञान हूया ॥ तिसी काल ज्ञान कर देह दग्ध होता
है ॥ हे राजन ज्ञानवान सदा मुक्तिरूप है ॥ न किसी की उस्त
त करता है ॥ न निंदा करता है ॥ काहेतें जो चित्त कलना ति
सकी मिट गई है ॥ यद्यपि रागद्वेष ज्ञानवान विषे भी द
ष्ट आवते हैं ॥ अर हसता रोवता भी दृष्ट आवता है ॥ पर
अंतहकर्ण अपणे ज्ञान लेकर ॥ न राग है ॥ न द्वेष है ॥ न ह
सता है ॥ न रोवता है ॥ ज्यूं का त्यूं है ॥ जैसे आकाश विषे
संनता है ॥ अर मेघ बद्दल भी दृष्ट आवते हैं ॥ पर आका
श को लेप नहीं करते ॥ तैसे ज्ञानवान को क्रिया बंधन नहीं
करती ॥ अज्ञानी जाणते हैं ॥ जो ज्ञानवान क्रिया करते हैं ॥ हे
राजन ज्ञानवान सदा नमस्कार को योग्य हैं ॥ अर पूजणे
योग है ॥ जिस स्थान ज्ञानवान बैठता है ॥ तिस स्थान को
भी नमस्कार है ॥ जिस साथ बोलता है ॥ तिसको भी नमस
कार है ॥ जिस ऊपर ज्ञानवान दृष्ट करता है ॥ तिसको भी न
मस्कार है ॥ सो सर्व का आश्रयभूत है ॥ हे राजन ऐसे ज्ञा
नवान की दृष्ट पावे तें आनंद है ॥ सो तप करके नहीं पाई
ती ॥ दान करके भी नहीं पाईती ॥ अर यत्न कर्मों कर भी नहीं
पाईती ॥ ऐसी दृष्ट किसी कर नहीं पाईती ॥ जैसी संतों की
दृष्ट है ॥ अर ऐसे आनंद को पाईता है ॥ जिस पद को वा
णी की गम्य नहीं ॥ अर सो पुरुष संतों की दृष्ट को पायक
र कैसा होता है ॥ जिसतें लोक दुख नहीं पावता ॥ अर लोकों
तें सो दुख नहीं पावता ॥ न किसी का भय करता है ॥ न किसी
को हर्ष करता है ॥ हे राजन सिधी पावणे का सुख अल्प है ॥
जो उन्हों की सिध पाई तो क्या भया ॥ पंछी अनेक उडते
फिरते हैं ॥ इस कर आतमज्ञान तो नहीं पाईता ॥ अर आ
तमज्ञान बिना शांति नहीं होती ॥ जब आतमज्ञान प्राप्त हू
या ॥ तब जरा मृत्यादिक दुखों तें रहित मुक्ति होता है ॥ उ
बहुर उस विषे कोऊ नहीं रहिता ॥ जैसे सिंह पिंजरे तें छूटा

बड़े पिंजरे के बंधन मों नहीं परता ॥ तैसे वह पुरुष अ
ज्ञान रूप पिंजरे विषे नहीं फसता ॥ हे राजन तें तूं आ
त्मा की नीवृत्ता करि ॥ जो तेरे दुषन ष्ट हो जावैं ॥ अज्ञान क
रके तेरे ताईं दुष नासते हैं ॥ अज्ञान तें रहित तूं सदा आनं
द रूप है ॥ आत्मा आनंद रूप है ॥ आनंद रूप प्रत्यक
आत्मा विषे स्थित हो ॥ जब तूं आत्मा विषे स्थित होवेगा ॥
तब चेष्टा नी तेरे विषे दृष्ट आवैगी ॥ तो तो स्पर्श न करेगी
जैसे शुध मणि के निकट जैसा रंग राषीये ॥ स्वेत रक्त पी
त स्याम तिसके प्रतिबिंब को ग्रहण करता है ॥ तो भी
रंग को तूं स्पर्श नहीं करती ॥ उस विषे कल्पित जैसे भा
सते हैं ॥ तैसे तूं प्रकृति आचार को अंगीकार करता हूया
तेरे ताईं पाप पुन्य का स्पर्श न होवैगा ॥ इति श्री निरवा
ण प्रकर्णे मन इक्ष्वाक संवादे समाप्त नाम सर्गः ॥ ८
११ ॥ श्री वशिष्ठो वाच ॥ हे रामजी इस प्रकार मनु रा
जा को उपदेश कर के तूं ष्णीं हो गया ॥ तब राजे ने ब्रह्म को
रम न जी का पूजन कीया ॥ जब पूजन हो चुका ॥ तब म
न जी आकाश को उड़ा ॥ ब्रह्म लोक विषे जाइ प्राप्त हूया
अर राजा इक्ष्वाक राज करणे लागा ॥ हे रामजी जैसे रा
जा इक्ष्वाक जीवन्मुक्ति होकर राज कीया है ॥ तैसे तूं
भी इसी दृष्ट को आश्रय करके विचर ॥ श्री रामो वाच
हे भगवन तुम्हों कहा ॥ जैसे राजा इक्ष्वाक राज चेष्टा क
र्तें भया है ज्ञान को पाइ तैसे तूं कर ॥ तिस विषे मेरा प्र
श्न है ॥ जो अपूरब आतमे होवै ॥ तिसका पावना विशेष है
अर जो पूर्व जे पदु पाया है ॥ तिसका पावना अपूरब
आतमे तो नहीं ॥ पूरब आतमा है ॥ सो पूरब लब्धु भी पाया है
तां तें मेरे ताईं सो कहो ॥ जो अपूरब आतमे सर्व तें विशेष
है ॥ श्री वशिष्ठो वाच ॥ हे रामजी ज्ञानवान सदा शांत रू
प है ॥ अर राग द्वेष तें रहित है ॥ अर अपूरब आतमे को पाव
ता है ॥ जेती कछु अवर आतमे है ॥ सो पूर्व आतमा है ॥ अर ज्ञान
वान अपूरब आतमे को पावता है ॥ सो ज्ञानी तें अन्य कोउ
नहीं पावता ॥ सो ज्ञान एकहि है ॥ ज्ञानी तें इतर नहीं कोउ
पावता ॥ हे रामजी जो इसरा नहीं पावता ॥ तो अपूरब आ

तौ क्रिया किंउ ॥ हे रामजी अपूरब अतसैकौं पाइक
र ज्ञानवान प्रवृति आचार चेष्टा भी करता है सर्व तौ भी
ते आ सर्वदा आत्मा विषै राषता है ॥ श्रीराम उवाच
॥ हे भगवन् ज्ञानवान ऐसे जो सर्व चेष्टा करता है अ
ज्ञानी की न्याईं ॥ तौ उसकौं तत्ववेता किन करि लछणउं कार
जाणीये ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी एक स्वसंवे
द्य लछण हैं ॥ अर एक परसंवेद्य लछण हैं ॥ स्वसं
वेद्य कहीये जो आपही आपकौं जाणता है ॥ अवर
नहीं जाणता ॥ अर परसंवेद्य अवर भी जाणते हैं ॥
हे रामजी जो परसंवेद्य लछण हैं ॥ सो मैं कहता हूं ॥ जो
तप दान जग्य ब्रत करणे सो परसंवेद्य हैं ॥ अर दुष
सुष की प्राप्त विषै धीर्य करि रहिणां ॥ सो समान साधों
के लछण हैं ॥ अर महाकर्ता महां भोक्ता महात्यागी ॥
क्षमा दया लछण साधों के हैं ॥ ज्ञानवान के नहीं ॥ अ
र जैती अणमां तें आदिक सिधी हैं ॥ उह एं छपजा
वणां इसतें लेकर ॥ इह भी लछण समान हैं ॥ पर इह
भी स्वजातिक तिस विषै आनंद करते हैं ॥ इह अवरों
कर भी जाणे जाते हैं ॥ अवर जो ज्ञानी का लछण है
सो स्वसंवेद्य हैं ॥ अवर कोउ इसतें इतर उसके सिर
विषै सिंग नहीं ॥ जो तिस कर जाणीये ॥ सो ज्ञानी का ॥
लछण नहीं ॥ जैसे अवर विवहार तें सिधां ज्ञानी
कौं समान हैं ॥ इह भी ज्ञान का लछण नहीं ॥ अर पुंन
पापादिक क्रिया परसंवेद्य है ॥ सो माया के कल्पे हैं ॥
ज्ञानी के नहीं ॥ जैसे कछु लछण देषते विषै आवैगी ॥
सो मिथ्या हैं ॥ माया के कल्पे हैं ॥ अर स्वसंवेद्य लछ
ण ज्ञानी का ॥ जो सर्वदा आत्मा विषै स्थित होता है ॥ अ
र अपणे आप कर संतुष्ट है ॥ न किसी का हर्ष है ॥ न सो
क है ॥ अर देह जीवत मृत्य विषै समान है ॥ अर कोम
क्रोध जो न सर्वकों जानता है ॥ इसका लछण इंद्री
याका विषै नहीं ॥ काहेतें जो निर्वीच्याप पदकों प्राप्त हूया
है ॥ हे रामजी जिसकौं ज्ञानवान की प्राप्त भई है ॥ तिसका चि

तस्वभाविकविषयोंतेंविरक्तहोताहै॥अरजितिंद्रय
होताहै॥भोगोंकीइछातिसकीनिवर्तहोतीहै॥स्वभावि
कहीतिसकेविषयनिवर्तहोतेहैं॥इतिश्रीनिरवा
णप्रकर्णेज्ञानलक्षणविचारोनामसर्गः॥ ॥
श्रीवशिष्टोवाच॥हेरामजीमायाजालकातरणांम
होकठनहै॥इहअनादिकालतेंजीवकोंभईहै॥जोकों
ऊइसविषेसतबुधकर्ताहै॥सोपषेरूकीन्याईनिक
सनेहीसकता॥जैसेजालविषेफसयापंछीनिकसन
हीसकता॥तैसेअनात्मअभिमानतेंनिकसनहीस
कता॥हेरामजीबडेमेरेवचनसुण॥जोमेरेवचन
तेरेताईपियारेलागतेहैं॥जैसेमेघकाशब्दमोरकों
पियारालागताहै॥अरमैंभीतेरेहितकेनमितकह
ताहों॥उपदेशकर्ताहों॥अरऐसागुरूरघकुलका
कोऊनहीहूया॥जोशिष्यकासंशयनिवर्तनकरे॥हे
रामजीमेराशिष्यभीऐसाकोऊनहीहूया॥जोमेरेउ
पदेशकरनजागताहोवै॥समजागतेहूयेहैं॥इसनमि
तमैंतपध्यानादिककोंभीत्यागकरतेरेताईजगावो
गा॥तातेमैंउपदेशकर्ताहों॥हेरामजीशुधआत्मा
विषेजोअहंभावहूयाहै॥जोकछुअहंकारकरनाभासै
है॥सोसर्वमिथ्याहै॥इनऊविषेसतकोऊनही॥अरजो
इनकासाक्षीअनंतज्ञानरूपहै॥सोसतहै॥इसकाना
शकदाचितनहीहोता॥अरजोवस्तफुरनेंकरउपजी
है॥सोसर्वनाशवंतहै॥इहबातबालिकभीजानतेहैं
जोसतहै॥सोअसतनहीहोता॥जोवस्तअसतहै॥सोस
तनहीहोता॥जैसेरेततेंघृतनिकसनांअसतहै॥कदा
चितनहीनिकसता॥जैसेदृढकोंबडेतनीकाचूर्ण
भीकरायें॥तकदृढकेनाचेंनाषकणकाकरीये॥अ
थवाशिलाऊपरघसाईये॥जबतिसऊपरवर्षाहूई
तबसर्वकणकेदृढहोजातेहैं॥हेरामजीतेदृढतेब
उत्पतिहूये॥जोउनविषेसतताथी॥तातेंसतकानाश
कदाचितनहीहोता॥अरअसतकासतकदाचितन

हां होता ॥ हे रामजी सत जो है ब्रह्म तिसही की भावना कर
जो ब्रह्म की भावना करता है ॥ सो ब्रह्म ही होता है ॥ जैसे घृत वि
बे घृत एक हो जाता है ॥ अरु दूध विबे दूध एक हो जाता है ॥
अरु जल विबे जल मिल जाता है ॥ तैसे जीव भावना करके
चिदघन ब्रह्म साथ एक हो जाता है ॥ जीवसंता इसकी निवृ
त्ति हो जाती है ॥ जैसे अमृत के पान करने तें अमर होवता है ॥
तैसे ब्रह्म की भावना करने तें ब्रह्म होता है ॥ अरु जो अनात्मा
की भावना करता है तो पराधीन होकर दुख पावता है ॥ जै
से विष के पान करने तें अवश्य मरता है ॥ तैसे अनात्मा की
भावना तें अवश्य दुख पावता है ॥ तिसका नाश होता है ॥ तां
तें आतमा की भावना कर ॥ हे रामजी जो वस्तु संकल्प करके
उदै होती है ॥ तिसका रहितणा थोड़ा काल होता है ॥ जो च
ल वस्तु है सो अवश्य नाश होती है ॥ इह दृश्य आत्मा विबे भ्र
म करके सिध होती है ॥ जैसे मृगतृष्णा का जल अरु सिपी
विबे रूपा भ्रम सिध है ॥ अरु आकाश विबे दूसरा चंद्रमा
भ्रम कर सिध है ॥ वास्तव नहीं ॥ तैसे अहंकार देह इंद्रीयां
आदिक दृश्य करके सुख भासता है ॥ सो सर्व मिथ्या है ॥ तां तें
दृश्य की भावना त्याग कर अपने आनंद स्वरूप विबे स्थि
त हो ॥ जब आत्मा विबे स्थित होवैगा ॥ तब मोह कों न प्राप्त
होवहिंगा ॥ जैसे पारस के स्पर्श हो वल्लोकर तांबा स्वर्ण हूया
बहुड़ तांबा नहीं होता ॥ तैसे जब तूं आत्मपद कूं जानेंगा ॥
तब बहुड़ मोह कों न प्राप्त होवैगा ॥ जो मैं हां इह मेरा है ॥ अ
हंत्वं भावते रा निवर्त हो जावैगा ॥ इह भावना न रहेगी ॥ श्री
रामोवाच ॥ हे भगवन मच्छर अरु जूंयां आदिक जो स्वे
दतें उत्पत्ति होते हैं ॥ सो सन कर्म करके उत्पत्ति होते हैं ॥ अर
देवता मानुषादिक जो उत्पत्ति होते हैं ॥ सो कर्म करके इहस
न उत्पत्ति होते हैं ॥ अथवा कर्मों बिना भी कछु उत्पत्ति होता
है ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी आदि परमात्मा तें जब
उत्पत्ति भई ॥ सो चौदस प्रकार के जीव हैं ॥ एक कर्मों कर उत्प
त्ति हूये हैं ॥ एक कर्मों बिना उत्पत्ति हूये हैं ॥ एक आगे होवेंगे
हैं ॥ एक अब भी उत्पत्ति होते हैं ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे संशयरू

पीछे दैके अंधकार निवर्तकरणेहारे सूर्य ॥ हे संन्यायरू
पी बदलके निवर्त करणेहारे पवन ॥ रूपाकर केक
हो ॥ जो कर्मों कर केसे उत्पत्ति होते हैं ॥ अरु कर्मों बिना
केसे उत्पत्ति होते हैं ॥ कैसे हूये हैं ॥ कैसे होते हैं ॥ अरु केसे
आगे होवणे हैं ॥ सो कहो ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे राम
जी आत्मा चिदाकाश है ॥ अपणे आप विषे स्थित है ॥ जै
से अग्नि अपणी उष्णता विषे स्थित है ॥ तैसे आत्मा अ
पणे स्वभाव विषे स्थित है ॥ अनंत है ॥ अरु अविनासी है ॥
तिस विषे संवेदन शक्ति स्वभाविक स्थित है ॥ जैसे फलों
विषे सुगंध स्वभाविक रहती है ॥ तैसे आत्मा विषे संवे
दन शक्ति है ॥ हे रामजी संवेदन शक्ति जैसे आदि फुरी
है ॥ तिस शब्द की अपेक्षा करी ॥ तब आकाश प्रगट भया
जब स्पर्श की अपेक्षा करी ॥ तब पवन प्रगट भया ॥ इसी प्र
कार पंचतन्मात्रा हो आये ॥ जिस जिस की इच्छा करी सो प्र
गट हूया ॥ सो संवेदन विषे जो फुरना हूया ॥ सो अतिवाह
क शरीर हूये ॥ तिनका निश्चय आत्मा विषे रहा ॥ जो हम आत
मा हैं ॥ अरु संपूर्ण विश्व हमारा संकल्प है ॥ हे रामजी कोई
इस प्रकार उत्पत्ति होकर अतिवाहकतें बहुड विदेह
मुक्ति को प्राप्त भये ॥ जैसे बरफ जलसों होकर सूर्य के ते
ज तें शीघ्र ही जल हो जाता है ॥ तैसे शीघ्र ही विदेह मुक्त हू
ये ॥ अरु कोई स्थिर भये ॥ अतिवाहक शरीर कर उनका
निश्चय आत्मा विषे रहा ॥ अरु कोई अतिवाहकतें अधि
भूतक होगये ॥ जब लग अतिवाहक में अपणा स्मरण
रहा ॥ तब लग अतिवाहक रहे ॥ जब स्वरूप का प्रमाद भ
या ॥ अरु संकल्प कर जो भूत रचे ॥ तिन विषे दृढ निश्च
भया ॥ अरु जानत भया इह मैं हौं ॥ तब अधिभूतक होगये
जैसे ब्राह्मण शूद्रों के कर्म करणे लागे ॥ अरु उसके निश्चे
हो जावे मैं शूद्र ही कर्मी हौं ॥ अरु जैसे सीतलके जलतें बरफ
हो जाती है ॥ सो संवेदन विषे दृढ संकल्प हूया ॥ तब आ
पको अधिभूतक जानत भया ॥ हे रामजी आदि परमात्मा
तें जो फुरते हैं ॥ सो कर्मों बिना उत्पत्ति हूये हैं ॥ तिनका कारण

कोऊ नहीं ॥ जो अतिवाहक विषैं रहे तिनकी ईश्वर संज्ञा है ॥ ब
हुड़ उनके संकल्प कर जीव उपजे ॥ तिनका कारण ईश्वर
हूया ॥ अरु आगे जीवों कलना करी ॥ उनका फुनी कर्म हू
ये ॥ आगे जैसे कर्म करते हैं संकल्प कर तैसे शरीर धारते
हैं ॥ हे रामजी आतमा तें जो जीव उपजे हैं सो आदि अकारण
होते हैं ॥ जो आज के उपजे हैं ते भी ॥ अरु जो चिरकाल के उ
पजे हैं ॥ ते भी उह पाछे कारण भाव कौं प्राप्त हूये हैं ॥ कर्म के
वस तें ॥ हे रामजी जो आदि फुनें हूया है ॥ अरु स्वरूप विषे
जिनका धड़ निश्चा रहा ॥ तिनकी संज्ञा पुन्य है ॥ अरु जो स्व
रूप कौं विस्मरण कर कै आधिभूतक विषे निश्चा करत
भये ॥ तिनकी धंन्य संज्ञा है ॥ हे रामजी पुन्य तें धंन्य होवणां
सुगम है ॥ अरु धंन्य तें पुन्य होवणां कठन है ॥ कोऊ भागवा
न पुरुष होता है ॥ जो यत्न कर कै धंन्य तें पुन्य होता है ॥ जैसे
पर्वत तें एक पथर गिड़णां तो सुगम है ॥ तैसे पुन्य तें धंन्य हो
वणां सुगम है ॥ जैसे पर्वत पर उह पथर चढ़णां कठन है ॥
तैसे धंन्य तें पुन्य होवणां कठन है ॥ पुन्य तें धंन्य शीघ्र होता
है ॥ केई चिरकाल धंन्य विषे वहते हैं ॥ केई यत्न कर शीघ्र
ही पुन्य होते हैं ॥ हे रामजी जो सदा अतिवाहक रहते हैं ॥ ति
नका संज्ञा ईश्वर है ॥ अरु अतिवाहक कौं त्याग कर आधि
भूतक होते हैं ॥ सो जीव कहीते हैं ॥ अरु परतंत्र हैं ॥ जैसे क
र्म करते हैं ॥ तैसे आगे सरीर धारते हैं ॥ अरु जो धंन्य तें पुन्य
होते हैं ॥ सो ज्ञानवान हैं ॥ तिनकौं बहुड़ जन्म नहीं होता ॥ अ
रु अब भी जो उत्पत्ति होते हैं ॥ सो प्रथम कर्मों बिना उत्पति
होते हैं ॥ जब अपणे स्वरूप तें गिरते हैं ॥ तब जैसा संकल्प
करते हैं ॥ संकल्प ही कर्म है ॥ तैसे आगे शरीर धारते हैं ॥ हे रा
मजी इह विश्व संकल्प मात्र है ॥ संकल्प के लीन हूये विश्व
भी लीन हो जाता है ॥ तातें संकल्प का त्याग करो ॥ इस दृश्य
की आस्था भावना न करो ॥ हे रामजी षावणां पीवणां चेष्टा
करो ॥ तिस विषे अहं भावना न होवै ॥ अहंकार अभिमान कर
सिध हूया है ॥ सो दृश्य मिथ्या है ॥ अहं भाव के होवणे कर
दुषी होवीता है ॥ तातें अहं भाव तें रहित चेष्टा करो ॥ हे रा

मजी बंध अरु मोक्ष का लक्षण श्रवण करु ॥ ग्राह्य ग्राहक
जो है ॥ विषय अरु इंद्रियों का संयोग अरु तिनके इष्ट विषे
राग करणां ॥ अनिष्ट विषे द्वेष करणां एही बंधन है ॥ जैसे
घाली विषे पक्षी बंधायमान होता है ॥ अरु ग्राह्य ग्राह
क इंद्रियों के विषय संबंध इष्ट अनिष्ट विषे रागद्वेष
न करणां सो मोक्ष है ॥ अरु सम तृप्ति तें मुक्ति है ॥ इनहीं के संबं
ध तें मुक्ति होवणां है ॥ जिन विषे इंद्रियों का संयोग होता है
तिन विषे सम बुद्धि रहे ॥ इनके धर्म अपणे विषे न देखीये
इनके जाननेवाला जो अनन्त स्वरूप आत्मा है ॥ तिसी
विषे साक्षीभूत होकर स्थित रहे ॥ इस प्रकार जो इनको
ग्राहण करता है ॥ सो सदा मुक्तिरूप है ॥ इसतें इतर है सो मू
र्ख जीव बंध है ॥ तुम इस ग्राह्य ग्राहक संबंध विषे सावधा
न रहो ॥ अरु ग्राह्य ग्राहक संबंध बंध है ॥ इनतें रहित हो
वणां मुक्ति है ॥ अरु रागद्वेष करणेवाला मन है ॥ इस मन
ही का त्याग करो ॥ मन ही दुखदाई है ॥ जैसे कुंभार का चक्र हो
ता है अरु फिरता है ॥ तिसतें बासन उत्पत्ति होते हैं ॥ तैसे म
न रूप चक्र है ॥ तिसतें पदार्थ रूपी बासन उत्पत्ति होते हैं ॥
अरु मन के फुरनें कर संसार सत होता है ॥ जब फुरने निवर्ती
हूया ॥ तब दुख को न रहेगा ॥ हे रामजी फुरनें अरु अफुरनें
विषे समान होवैगा ॥ जब रागद्वेष तें रहित होकर विचरैगा
इदं स्यात इदं न स्यात इसी का त्याग कर के चेष्टा कर ॥ अ
भिलाष पूर्वक संसार विषे न फुरे ॥ हे रामजी पूर्व जो तीत
वान हूये हैं ॥ तिनकों नीती को चितवनां नहीं ॥ अरु आगे हो
वणे की आसा नहीं ॥ अरु वर्त्तमान काल विषे प्राप्त अनुसा
र रागद्वेष तें रहित चेष्टा करणी ॥ तो तेनें नीसंकल्प कों त्या
ग कर स्वरूप विषे स्थिति हो ॥ हे रामजी ब्रह्मादि तृण पर्यं
त किसी विषय पदार्थ विषे राग हूया ॥ तब बंधन होता है
अरु मेरी एही आज्ञा दृढ है ॥ जो ब्रह्मा तें आदि तृण पर्यंत
लेकर तेरा रुच मत होवै ॥ अपणे आप ही विषे रुच होवै ॥ हे
रामजी इह संसार मिथ्या है ॥ इस विषे पदार्थ सत कों तूं न
हीं ॥ सर्व मन के रचे हूये हैं ॥ तो तें मन कों स्थित करो ॥ जैसे धो
बी साबुण मल कर वस्त्र की मैल दूर करता है ॥ तैसे मन कों

मनकरस्थितिकर ॥ जबमनकोंस्वरूपविषेस्थितिकरेंगा ॥ तबम ८८
नअपणेसंकल्पकोंआपहीनाशकरेगा ॥ जैसेकोउदुष्टपुर्षहो
ताहै ॥ अरधनकरवृधिहै ॥ तबचोईआदिकोंकानाशकर्णेको
उपायकर्ताहै ॥ तैसेजबमनआत्मपदविषेस्थितिहोताहै ॥ तब
अपणेसंकल्पकोंनाशकर्ताहै ॥ जबतेरामनस्वरूपविषेस्थि
तिहोवैगा ॥ तबतूंअमनहोवैंगा ॥ अरदुषतेरेनष्टहोजावेंगे ॥ अ
रमनकेनाशविनांसुषकछूंनही ॥ हेरामजीएमनऐसादुष्टहै ॥
जोजिसतेंउपजताहै ॥ तिसीकेनाशनमित्तहोताहै ॥ जैसेबांसोंते
अग्निउपजतीहै ॥ अरफेरतिनहीकोंजलावतीहै ॥ तैसेआत्मातें
उपजकरएमनआत्माहीकोतुछकर्ताहै ॥ जैसेराजाकाटहि
लूयाराजाकीसत्तापायकर ॥ राजाकोंमारकरआपराजाहोता
है ॥ तैसेमनआत्माकीसत्तापायकर ॥ तिसकोंअछादकेआप
हीकर्ताभोक्ताहोबैठताहै ॥ तातेमनकोंमनहीकरनाशकर ॥
जैसेलोहेकोंतपायकरलोहेकरकाटीताहै ॥ तैसेमनकोंमन
हीकरशुधकर ॥ हेरामजीवृक्षवेलीफलफलदेवतेयक्षना
गपशुपंषीजेतेकस्थावरजंगमपदार्थहै ॥ सोप्रथमकर्मों प
बिनांउत्पतिहूयेहैं ॥ अरपाछेंजबस्वरूपतेंगिरे ॥ अरधेस्प
पदकोंप्राप्तहूये ॥ तबशरीरकर्मोंकरहोतेहैं ॥ अरकर्मोंका
बीजअहंकारहै ॥ अहंकारविषेशरीरहै ॥ जैसेबीजविषे
वृक्षहोताहै ॥ समेपायकरसर्वप्रगटहोतेहैं ॥ तैसेअहंका
रतेंशरीरप्रगटहोतेहैं ॥ जबअहंकारनष्टहूया ॥ तबश
रीरकोउनहीं ॥ केवलआत्मपदहै ॥ अहंकारहैनहीं ॥ अ
रघत्सहीदिषाईदेताहै ॥ अरआत्माअचुतहै ॥ गिडेकीन्याई
दृष्टआवताहै ॥ अरनिरालंबहै ॥ सोआजेबकीन्याईदृष्टआ
वताहै ॥ आतमानिराकारहै ॥ अरआकारसहितभासताहै ॥
निराभासहै ॥ भाससहितदिषाईदेताहै ॥ तातेकेवलचिनमा
त्रआत्माविषेस्थितिहोवो ॥ एहसर्वचिन्मात्रहीरूपहै ॥ हेराम
जीजबऐसीभावनांहोतीहै ॥ तबचितअचितहोजाताहै ॥ ज
बचितअचितहूया ॥ तबजालतकलनांमिटजातीहै ॥ केवल
आतमतत्तहीभासताहै ॥ इतिश्रीनिरवाणप्रकर्णेकर्म

१८५

185

॰ग कर्मविचारोनामसर्गः॥१०३॥श्रीवशिष्टोवाच॥ हेरामजी
इसजीवके तीनस्वरूपहैं॥ एकस्वरूपशुधात्मा है॥ चिदानंदब्रु
ह्म जिसकर सर्वप्रकाशते हैं॥ अरदूसरा अतिवाहकपुर्य नामहै
आतमाके प्रमादकर केहूया है॥ जो मोक्षपदतें उथानहूया है॥ तो
भी प्रमाद नहीं॥ जो आत्माका स्मर्न रहा है॥ जब आत्माकोस्मर्न
भूला॥ तब तीसरा आधिभूतक हूया॥ जो पंचभूतं आपको जा
नने लागा॥ हे रामजी एह तीनस्वरूप जीवके हैं॥ आत्माके प्रमाद
कर जीवसंज्ञापाई है॥ अरदुखी होता है॥ अरपरतंत्र हूया है॥ तां
तें पंचभूतक अर अतिवाहकको त्यागकर॥ वास्तवस्वरूप वि
षे स्थित हो॥ हे रामजी इह जो दूशरीर हैं॥ सो विचारकरनष्ट होजा
ते हैं॥ स्थूल अर सूक्ष्म अरतीसरा जो स्वरूप है॥ सोसत है॥ तिस
विषे स्थित हो॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन इह जो तीनरूप जी
तुमऊँ वके कहे हैं॥ तिनके मध्य विषे नासरूप कवन है॥ अरसतरूप
कवन है॥ श्रीवशिष्टोवाच॥ हे रामजी हाथ पैर संयुक्त जो देह
है॥ भोगों सा भव लगत करी हूई॥ सो देह स्थूलरूप है॥ अर आप
ले ही संकल्पके सदा पसार रचता है॥ इस फुरने रूपसों चि
तरूप देह अतिवाहक है॥ सो सदा प्राणवायके रथ उपर स्थि
त रहता है॥ देह होवै भावें न होवै॥ हे रामजी इह दो शरीर उप
जते भी॥ अरनष्ट भी होते हैं॥ अर आदि अंततें रहित चिन्मात्र नि
र्विकल्प जो है॥ सो जीवका परमरूप जान॥ तुर्यारूप है॥ उसातें जा
गतादिक उपजता है॥ अर लीन होता है॥ श्रीरामोवाच॥ हे भग
वन हम तीनकों जानते हैं॥ एक जाग्रत है निद्रातें रहित॥ जिस
विषे दस इंद्रीयां अर अंतस्करण चतुष्टे होते हैं॥ अर आपणे आ
पणे विषयकों ग्रहण करते हैं॥ अर दूसरा स्वपना है॥ तहां भी वि
षयऊं कों जाग्रतकी न्याई संकल्पकर ग्रहण करते हैं॥ विषय
ऊं विनां॥ अर तीसरा जहां इंद्रीयां आपणे विषऊंतें रहित होती
हैं॥ अर जडता आवती है॥ भासता कछु नहीं॥ शिलाकी न्याई जड
तातमगुण आवता है॥ सो सुषपत है॥ इन तीनों कों हम जानते हैं
तुरीया॥ अर तुर्यातीतकों कृपाकरतुम कहो॥ जो किसकों कहते
हैं॥ श्रीवशिष्टोवाच॥ हे रामजी अपणा होणा अनहोणा दो

नोंकों त्याग कर पाछें तुर्यापद रहिता है ॥ सो शांतपद है ॥ अ
रु निर्मल है ॥ हे रामजी तुर्या जाग्रत नहीं ॥ काहेतें जो जाग्रत सं
कल्पजाल है ॥ इंद्रीयां कर रागद्वेष होता है ॥ अरु स्वपन अव
स्था भी नहीं ॥ काहेतें जो स्वपन भ्रम होता है ॥ जैसें जेवडी विषे
सर्प भासता है ॥ अवर का अवर संकल्प होता है ॥ अरु तुर्या सु
षपत भी नहीं ॥ काहेतें जो अत्यंत जड है ॥ तुर्या चैतन्यरूप है ॥
अरु उदासीन है ॥ अरु स्वरूप है ॥ जाग्रत स्वपन सुषोपत तें रहि
त है ॥ जीवन्मुक्त तुर्यापद विषे स्थित रहता है ॥ हे रामजी जो तु
र्यापद विषे स्थित है ॥ तिनकों दृढ स्थित भी है ॥ जगत सो भी शां
तरूप हो जाता है ॥ अरु ग्यानी वज्रसारवत दृढ है ॥ अरु ग्या
नी सदा शांतरूप है ॥ जो तीनों अवस्था का साक्षी है ॥ न उनकों रा
ग है न द्वेष है ॥ उदासीन की न्यांई है ॥ अरु तुर्यातीत पद कों बाणी
की गम्य नहीं ॥ जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होता है ॥ त
ब उस पद कों प्राप्त होता है ॥ जहां बाणी की गम्य नहीं ॥ जब लग
जीवन्मुक्त है ॥ तब लग तुर्यापद विषे स्थित होता है ॥ अरु राग
द्वेष तें रहित होता है ॥ अरु इंद्रीयां भी अपणे विषय विषे स्वभा
विक चेष्टा करती हैं ॥ रागद्वेष तें रहित होकर ॥ अरु जिस पुरुष
कों रागद्वेष उत्पत्ति होता है ॥ सो तुर्यापद कों नहीं प्राप्त भया ॥ अरु
चित सहित है ॥ अरु जिसकों रागद्वेष उत्पत्ति नहीं ॥ तिसका चित
सतपद कों प्राप्त हूया है ॥ जिसका चित सतपद कों प्राप्त हूया है
तिसकों संसार की सतता नहीं भासती ॥ स्वप्नवत जगत कों देषता
है ॥ तातें तूं सतपद विषे स्थित हो ॥ अरु साक्षीभूत होय रहु ॥ इति
श्रीनिरवाणप्रकरणे तुर्यापदविचारो नाम सर्गः ॥ १०४ ॥
श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी कर्ता कर्ण कर्म इह तीनों पडे हो
वैं ॥ तूं इनका साक्षी हो ॥ किसी कर्तृत्व का अभिमान तेरे तांई मति
होवै ॥ जो मैं इह कर्ता हों ॥ अथवा इसका मैं त्याग कीया है ॥ इह अ
भिमान भी नहीं करणां ॥ तूं उदासीन की न्यांई होय रहु ॥ अरु इसी
पर एक उपाख्यान कहता हों ॥ तूं श्रवण कर ॥ तूं आगें प्रबुधि
भी है ॥ तो भी दृढ बोध के निमित्त सुण ॥ अथ कथा काष्टमौन
की लिष्यते ॥ हे रामजी एक बन विषे काष्टमौन था ॥ अरु बधि
क मृग कों बाण चलाये हूये ॥ मृग के पाछें दौरता जाता था ॥ अ
रु आगें गये मृग बधिक की दृष्टि तें अगोचर हो गया ॥ बधक दे
ष्या जो एक तपस्वी बैठा है ॥ तिस तपस्वी कों पूछता भया ॥ हे मुनी

ष्वरई हां एक मृग आया था ॥ सो किसी और कों गया ॥ तुम ऊ
देष्या है तो मेरे ताईं कहो ॥ काष्टमौनी वाच ॥ हे बधिक मेरे
ताईं सुध कछु नहीं ॥ काहे ते जो हम निरहंकार हैं ॥ हमारे साथ
चित हंकार नहीं ॥ ताते निरहंकार हों ॥ अरु जो तूं कहे ॥ इंद्रीयां की
चेष्टा कैसे होती है ॥ तो सुण ॥ जैसे सूर्य के आश्रै लोकों की चेष्टा
होती है ॥ अरु दीपक मणि के आश्रै चेष्टा होती है ॥ अरु सूर्य
दीपक मणि प्रकाश के साक्षी भूत हैं ॥ तैसे हम इंद्रीयां के साक्षी
भूत हैं ॥ इनकी चेष्टा स्वभाविक होती है ॥ हमारे ताईं इन साथ
प्रयोजन कछु नहीं ॥ हे बधिक अहंभाव करणे वाला अहंका
र होता है ॥ जैसे मणि के तागे के आश्रै पोईते हैं ॥ मणि के भिन्न भि
न होते हैं ॥ अरु तागा सर्वों विषे एक होता है ॥ तब माला होती है
अरु जो तागा टूट पडे ॥ तब मणि के भिन्न भिन्न होते हैं ॥ तैसे इं
द्रीरूप मणि के हैं ॥ अरु अहंकार रूपी तागा है ॥ तिस अहंका
र रूपी तागे के टूटणे सों इंद्रीयां भिन्न भिन्न हो गईयां हैं ॥ जैसे
राजा के नष्ट हूयें सैना भिन्न भिन्न हो जाती है ॥ जैसे गोपाल नष्ट
हूयें गौयां भिन्न भिन्न हो जाती है ॥ अरु जैसे पिता के नष्ट हूयें
बालिक नष्ट हो जाता है ॥ तैसे अहंकार बिना इंद्रीयां भी वि
ल गई हैं ॥ इनका अभिमान मेरे ताईं कछु नहीं ॥ इनका अभि
मानी अहंकार था ॥ सो हमारा नष्ट हो गया है ॥ इंद्रीयां अ
पणे विषयों विषे विचरती हैं ॥ हमकों इनका न रागा है न द्वेष
है ॥ अरु हे साधु न हमकों जाग्रत भासता है ॥ न स्वप्न न सुषुप्त
इह तीनों तें रहित हम तुर्यापद विषे स्थित हैं ॥ जिस विषे अहं
त्वं का अभाव है ॥ जो अहंता थी तो हमारा मिट गया ॥ तो साधु
हम किसकों देवें ॥ जो मृग बावें गया कि दाहने गया ॥ जो नेत्र इं
द्री देषणे वाली है ॥ तिसकों बोलने की शक्ति नहीं ॥ इह अपणे
अपणे विषयों कों ग्रहण करती हैं ॥ एक इंद्री कों दूसरे की श
क्ति नहीं ॥ बऊड तेरे ताईं कवन कहे ॥ इन सभनां के धारणे वा
ला अहंकार था ॥ जो सभनां कों अपणों आप जाणता था ॥ मैं
देषता हों ॥ मैं बोलता हों ॥ सो अहंकार हमारा नष्ट हो गया है ॥
जैसे सरत काल विषे मेघ नष्ट होते हैं ॥ तैसे अहंकार के नष्ट हू
यें हम स्वच्छ निर्मल शांति तुर्यापद विषे स्थित हैं ॥ अरु इंद्रीयां

काजीवकुं अहंकार मत्त्व होगया है ॥ अर इंद्रीयां भी मत्तु होगई
हैं ॥ देषणे मात्र दृष्टि आवती हैं ॥ जैसे भीत ऊपर पुतलीयां लिषी
होती हैं ॥ अर कार्य तिनों सें कछु नहीं होता ॥ तैसे हमारी इंद्रीयों
तें कार्य कछु नहीं होता ॥ तिरे तांई कवन कहे ॥ श्रीवशिष्ठो
वाच ॥ हे रामजी जब इस प्रकार मुनीश्वर कहा ॥ तब बधि
क समरु कर अपणी इछाचारी उठगया ॥ हे रामजी तुर्यापद
शांतिरूप है ॥ जहां जाग्रत स्वपन सुषोपति तीनों का अभाव
है ॥ केवल अद्वैत पद है ॥ इह जो सत्ता है ॥ जल आतमा चिदा
नंद तें आदि लेकर सो तुर्यापद विषे है ॥ अर तुर्या अतीत
पद विषे शब्द की गम्य नहीं ॥ तिह शब्द पद है ॥ विदेहमुक्ति
पुरुष तिसी पद कौं प्राप्त होते हैं ॥ अर जीवन्मुक्ति तुर्यापद
कौं साक्षात करकें तुरी अवस्था विषे विचरते हैं ॥ जहां जाग
तजो दीर्घ सुषुपत काला नहे सो नहीं ॥ अर स्वप्न जो राग
द्वेष कौं लीयें अल्पकाल है सो भी नहीं ॥ अर जडता तामस
अवस्था भी नहीं ॥ इन तीनों तें रहित है सो तुर्यापद है ॥ अर
ग्नीत है ॥ जिस विषे होने को नु नहीं ॥ अर इह जगत तिस
की कलना है ॥ जैसे समुद्र विषे तरंग वास्तव कछु नहीं ज
ल ही है ॥ तैसे केवल तुर्या स्वरूप सत्ता समान तेरा स्वरूप
है ॥ तिस विषे स्थित हो ॥ अर तिस विषे जो स्थित हूये हैं ॥
सो श्रवण कर ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र सिद्ध ज्ञानी इत्यादिक जो
ज्ञानवान पुरुष हैं ॥ सो तिसी पद विषे स्थित हैं ॥ अर काष्ठ
मौन बधिक कौं उपदेश कर्तावाला ज्ञानी तुर्यापद विषे स्थि
ति है ॥ विरोध कलनों तिसकी निवृत्त हूई थी ॥ जो तिल
भिन्न नाम रूप कौं देषणे वाला ज्ञानी केवल सत्ता समान विषे
स्थित था ॥ ता तें कलनों कौं त्याग कर तुम भी तुर्यापद विषे
स्थित होवो ॥ इति श्री निर्वाणप्रकरणे काष्टमौनवृत्ता
न्तवर्णनं नाम सर्गः ॥ १०५ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी
इह विश्व केवल आत्मस्वरूप है ॥ आतमा तें इतर कछु न
हीं ॥ इह विश्व आत्मा का चमत्कार है ॥ जैसे मेघ विषे विद्यु
ली का चमत्कार होता है ॥ तैसे इह विश्वरूप चित्तकला आ
तमा का चमतकार है ॥ हे रामजी वास्तव भ्रम ही है ॥ इतर

कछु नहीं ॥श्रीरामोवाच॥ हे भगवन इह विद्युत जो तुम्हों क
ही मेघ विषे विद्युली की न्याई ज्ञान विषे उपजती है ॥ अरु ज्ञा
न विषे लीन होती है ॥ सो मेघ विषे विद्युली दृष्ट आवती है
जो जहां मेघ होता है तहां विद्युली होती है ॥ तां ते मेघ ते विद्यु
ली उत्पति भई ॥ तिसका कारण मेघ है ॥ हे मुनीश्वर इस चित्त
स्पंद कलना के कारण की उत्पति ब्रह्म ते कैसे भई है ॥ सो कृपा
करके मेरे तांई समझाय कहो ॥ ब्रह्म ही इसका कारणरूप हू
या ॥श्रीवशिष्टोवाच॥ हे रामजी इह जो वेतंदक होय कर
तर्क करती हैं ॥ सो कछु नहीं इस नास बुधि कों त्याग ॥ इह तो
बालिक भी जानते हैं ॥ जो विद्युली ज्ञान ते गुररूप है ॥ सो स
त्तरूप नहीं ॥ होर तेरा क्या प्रयोजन है सो कहो ॥ इह तर्क कौ कै
सीयां करती हैं ॥ कारणकार्यरूप क्या ॥श्रीरामोवाच॥ हे भ
गवन इह स्पंदकला सत है कि असत है ॥ इसका कारण
कवन है ॥ जिसकर इह फुरती है ॥श्रीवशिष्टोवाच॥ हे राम
जी सर्वंगकार करकै सर्वात्मा ही स्थित है ॥ होर चित्त अरु चित्त
का स्पंद इह भेद कल्पना वास्तव कोऊ नहीं ॥ ब्रह्म ही अपणे
रूप विषे आप स्थित है ॥ जल तरंगवत है होर जो उस ते इतर
कर भेद भासता है ॥ सो भ्रम करकै भासता है ॥ जैसे भ्रम दृष्ट
कर आकाश विषे मोती भासते हैं ॥ जैसे नेत्र मंद कर खोल
ते हैं ॥ तब तिरवरे आकार भासते हैं ॥ तैसे जगत भासता है
हे रामजी इस संसार समुद्र के पार को प्राप्त हूये हैं ॥ हम ते आ
दि लेकर जो ज्ञानवान हैं ॥ तिन के यथार्थ वचन सुणकर रि
दे विषे धारो ॥ तब शीघ्र ही आतमपद की प्राप्त होवे ॥ अरु जो मे
रे वचनों को न धारेंगा मूर्खता करकै जो इह कि उह कहते हैं ॥ त
ब तेरे दुख नष्ट न होवेंगे ॥ वृक्ष तृण वली आदिक योनी को पावें
गा ॥ हे रामजी आकाश अरु कालादिक पदारथ हैं ॥ सो मन क
लना कर सिध हूये हैं ॥ आतमा विषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी वा
य ते रहित जो है समुद्र तिसका जो चमतकार है ॥ तिस चमतका
र का कारण कवन है ॥ अरु दीपक का जो प्रकाश है ॥ अरु अग्नि
विषे जो उष्मता है ॥ तिस उष्मता का कारण कवन है ॥ अरु वाय
जो है निस्पंद ॥ अरु उह जब स्पंद हूई ॥ तिस स्पंद का कारण

वाही
आपदे परकों
नरमालके वै
परवेकों दूरातक
रिन

कवन है॥ जैसे इनका कारण कोऊ नहीं॥ जो वाय का रूप स्पंदनि
स्पंद है॥ अरु अग्नि का रूप उष्णता है॥ अरु दीपक का रूप प्रका
श है॥ तैसे कलना भी आतमसरूप है॥ इतर कछु नहीं॥ हे राम
जी इह कलना जो तेरे ताईं भासती है॥ तिसको त्याग कर। अपणे
आपको देषे तो संशय सर्व मिट जावै॥ जैसे प्रलैकाल का जल चं
ढता है तो सर्व जलमई होती है॥ इतर कछु नहीं होता॥ तैसे अपणे
स्वरूप को जब तूं देषेगा॥ तब तेरे ताईं सर्व आत्मा ही भासेगा॥ आत
मा ते इतर कछु दृष्ट न आवैगा॥ हे रामजी आतमा एकरस है॥ स
म्यक दर्शन कर जिउं का तिउं भासेगा॥ अरु असम्यक दर्शन क
र अवर का अवर भासैगा॥ जैसे जेवडी एकरस होती है॥ अरु जेव
डी को यथार्थ न देषा चाहे॥ तो सर्प भ्रम होता है॥ तिसको निर्षेकर ने
यमान होवीता है॥ अरु जेवडी को यथार्थ जाण्यें ते सर्प भ्रम निव
र्त हो जाता है॥ तैसे आत्मा के न जाण्ये ते संसारी होता है॥ अरु नय
वान होता है॥ आपको जन्मता मरता मानता है॥ सर्व विकार दे
ह के आतमा विषे जानता है॥ जब आतमा को जानता है॥ तब
सर्व भ्रम निवर्त हो जाते हैं॥ जैसे नेत्रों कर तारे देषीते हैं॥ जब ने
त्र मूंद लेवै॥ तो भी इनका आकार अंतहकर्ण विषे भासता है॥ का
हते जो तिनकी सतता रिदे विषे होती है॥ अरु जो रिदे ते उनकी
सतता उठ जावे॥ तब कछु उह नहीं भासते॥ तां ते संसार को मिथ्या
जाण॥ संसार चित्त के भ्रम कर कृया है॥ हे रामजी फुरनें विषे जो दृ
ढ भावना कृई है॥ सो सत होकर स्थिति कृया है॥ जब चित्त का त्या
ग करेगा॥ तब संसार की सतता जाती रहेगी॥ श्रीरामोवाच॥
हे भगवन तुम्हों कहा जो इह विश्व कलनामात्र है॥ सो मैं जाण्या
है॥ इसी प्रकार है॥ कछु सत्त नहीं॥ इह जगत जैसे लवणराजु
अरु इंद्र ब्राह्मण के पुत्र अरु भृगु का इनकी कलना फुरनें विषे
दृढ भावना भई॥ तो फुरनें सत होइ कर स्थिति भया॥ अरु फुरनें
कर सत हो भासी॥ हे भगवन इह मैं जानता हौं॥ जो विश्व फुरने
मात्र है॥ जब फुरना मिट जाता है॥ तब तिसके पाछे जो शांत
पद शेष रहता है॥ सो कहो॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी अब
तूं सम्यक बोध हूया है॥ जो जानणे योग्य है॥ सो तैंने जाण्या है॥ हे रा
मजी इह अध्यातम शास्त्र का सिधांत है॥ जो हो रस न इस का अ

संभवहै ॥ एक चिदघन ब्रह्म अपणे आप विषे स्थित है ॥ हे रा
मजी आत्मा शुद्ध है ॥ अर निर्मल है ॥ विद्या अविद्या तें रहित है
संसार जिस विषे अत्यंत अभाव है ॥ जेता कछु पृथ्वी आदिक स
त्ता कहीता है ॥ सो भी फुरनें विषे है ॥ आत्मा निर्वाच्य पद है ॥ जो
ईश्वर कहता है ॥ तिस की संज्ञा शास्त्रकारों कही है ॥ सो श्रवण
कर ॥ एक संभववादी तिस कों संभव कहते हैं ॥ विज्ञानवादी विज्ञा
नरूप कहते हैं ॥ केउ लोक उपासनावान ईश्वर कहते हैं ॥
केई कहते हैं आत्मा सर्व का कारण है ॥ सो ईश्वर होता है ॥
अर एक आत्मा कों सर्वशक्ति कहते हैं ॥ अर एक कहते हैं
आत्मा निरशक्त है ॥ सो भी आत्मा कों भिन्न ॥ अर शक्ति कों भि
न मानते हैं ॥ हे रामजी जेते वाद हैं ॥ सो सर्व कलनां कर हूये हैं ॥
कलनां कों मान कर वाद उठावते हैं ॥ वास्तव वाद कोउ नहीं
आत्मा निर्वाच्य पद है ॥ अर जो मेरा सिधांत है ॥ सो भी श्रवण
कर ॥ जेता कछु कलनां है ॥ आत्मा तिन तें अतीत है ॥ जैसे पव
न स्पंद शक्ति कर फुरता है ॥ सो स्पंद भी पवन है ॥ अस्पंद भी प
वन है ॥ इतर कछु नहीं ॥ तैसे आत्मा जो शुद्ध अद्वैत रूप है ॥ अ
र कलनां भी आत्मा के आश्रय फुरती है ॥ आत्मा तें भिन्न कछु
नहीं ॥ अर जो इतर प्रतीत होता है ॥ सो मिथ्या जान कर तिस की
भावनां त्याग ॥ अपणे निर्विकल्प स्वरूप विषे स्थित हो ॥ जब
तें आत्म स्वरूप विषे स्थित होवैंगा ॥ तब जेते कछु शास्त्रों के
भिन्न भिन्न मत अर वाद हैं ॥ सो कोउ न रहेगा ॥ केवल अपणे
आप स्वच्छ आत्मा ही भासेगा ॥ हे रामजी तिस निर्विकल्प प
द कों पाय कर ज्ञानवान हूये हैं ॥ अरु आस्तिका न्याई स्थित
हूये हैं ॥ जो द्वैत कलनां तिस कों कछु नहीं फुरती ॥ हे रामजी आ
त्मा ब्रह्मादिक जो शब्द हैं ॥ सो उपदेश निमित्त कहते हैं ॥ आत
मा शब्द तें अतीत है ॥ अर सर्व जगत भी आत्म स्वरूप है ॥ अर
संसाररूप विकार आतमा विषे असम्यक दर्शन कर भास
ता है ॥ जैसे शून्य आकाश विषे तिरवरे भासते हैं मोती की न्या
ई ॥ सो अविद्यक हैं ॥ तैसे आत्मा विषे जगत द्वैत अविद्यक
भासता है ॥ तातें जगत द्वैत की भावनां त्याग कर ॥ निर्विकल्प
आतम स्वरूप विषे स्थित हो ॥ इति श्री निर्वाणप्रकर्णे

अविद्यानाशरूपवर्ननंनामसर्गः॥१६॥ श्रीरामोवाच॥
हे भगवन देह बुधि इंद्रीयां अरु कलनां विषे सार वस्तु का है॥
सो कहो॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी जो कछु इह जगत दृष्टि
आवता है॥ अहंत्वते लेकर सो सत्र चिन्मात्र है॥ जैसे समुद्र ज
लहीमात्र है सो इह पंच इंद्री अरु छिहवां मन जो कछु इनकर
दिसता है सो सत्र भ्रममात्र है॥ हे रामजी देह इंद्रीयां सत्र मिथ्या
हैं॥ आत्मा विषे कोऊ नहीं चित्त के कल्पे हूये हैं॥ अरु चित्त ही इन
को देषता है॥ जैसे मारूथल विषे जल बुधि होती है मृग को भ्र
र देषकर जल के निमित दौडता है॥ अरु दुष पावता है॥ तैसे चित
रूप जो मृग है तिस आतमरूप मारूथल विषे देह इंद्रीयां वि
षयरूप जल कल्प्या है॥ तिसको देषकर दौडता है॥ दुष पावता
है॥ सो देह इंद्रीयां विषय भ्रम कर के भासते हैं॥ जैसे मूरिष बा
लिक पछांवे विषे वैताल कल्पता है॥ तैसे मूरिष चित्त देह इंद्री
यां कल्प्या हैं॥ हे रामजी आत्मा शुध निरविकार है॥ अरु चित
तिस विषे विकार आरोपन कीये हैं॥ जैसे भ्रांति दृष्टकर आका
श विषे दो चंद्रमे कल्पीते हैं॥ तैसे चित्त देह इंद्रीयां कल्प्या है॥
अरु चित्त भी आपते कछु नहीं॥ आतमा की सत्ता लेकर चेष्टा
करती है॥ जैसे चुंबक की सत्ता लेकर लोहा चेष्टा करता है॥ तैसे
निरविकार आत्मा की सत्ता लेकर चित्त नाना प्रकार के विकार क
ल्पता है॥ तांते चित्त ही का त्याग कर॥ जो विकार जाल तेरा मिट जा
वे॥ हे रामजी देह इंद्रीयां विषे सार का है॥ सो तिसका उत्तर सुण
जेता कछु संसार है॥ तिस विषे सार देह है॥ जो देह के सर्व संबंधी
हैं॥ जब देह मिट जावे तब संबंधी नी नहीं रहते॥ अरु देह विषे सा
र इंद्रीयां हैं॥ अरु इंद्रीयों विषे सार प्राण हैं॥ अरु प्राणों विषे सार
मन है॥ अरु मन का सार बुधि है॥ अरु बुधि का सार अहंकार है॥
अरु अहंकार का सार जीव है॥ अरु जीव का सार चिदावल है॥
चिदावल कहीये वासना संयुक्त चेतना जिसको दृश्य का संबं
ध है॥ अरु चिदावल का सार चित्त तें रहित शुध चैतन्य है॥ जो सर्व
वे सर्व विकल्पों की लय है॥ शुध है॥ अरु निर्मल है॥ ब्रह्म है॥ आत
मा चिन्मात्र है॥ जिस विषे उत्थान कोऊ नहीं॥ हे रामजी चिदावल प
र्यंत सत्र को त्याग कर॥ इनका जो सार चैतन्यमात्र आतमा है॥ १

॥चिदावल नाम चैतन्य आरे का है सो ईश्वर हो या मायोपहितं चैतन्य मीश्वरः इति भावं॥

तिस विषे स्थित हो॥ विश्व कलनां मात्र है॥ आतमा विषे कोऊ न
हीं॥ संकल्प की धड़ना कर सत की न्याई भासती है॥ अरु गाधी भि
क्षु के अरु लवण राजा अरु इंद्र के पुत्रों का वृत्तांत कहा है॥ जो सं
कल्प धड़ भावनां कर धड़ स्थित हूये हैं॥ वास्तव कछु नहीं॥ तैं
से इह विश्व भी चित के फुर्णे विषे स्थित है॥ असम्यक दृष्टि करके
अद्वैत आत्मा विषे विश्व भासी है॥ जैसे सूर्य की किरणों विषे ज
ल भासता है॥ तैसे आतमा विषे अहंकार तें आदि अज्ञान करके
दृश्य भासी है॥ तांतें इसको त्याग कर अपणे वास्तव स्वरूप वि
षे स्थित हो॥ हे रामजी एक गाड तेरे तांई कहता हों॥ जिस विषे कि
सी शत्रु की गम्य नहीं॥ तिस विषे स्थित हो॥ हम भी तिसी गाड विषे
स्थित हैं॥ जेते ज्ञानवान हैं सो तिसी विषे स्थित हैं॥ हे रामजी का
म क्रोध लोभ अभिमानादिक जो विकार हैं॥ सो आतमा विषे
नहीं पाईते॥ जैसे रात्र विषे दिन नहीं पाईता॥ तैसे विकार रूपी
दिन रात्र गाड विषे नहीं पाईता॥ तांतें अचिंत रूप गाड है॥ जहां
फुर्णे का ऊठना नहीं॥ केवल शांति रूप है॥ तिस विषे अहंभाव त्याग
कर स्थित होवै॥ तो अहंत्वभाव निवर्त हो जावै॥ जब स्वरूप का
साक्षातकार होता है॥ तब ज्ञानी फुर्णे अफुर्णे विषे अपने स्वरू
प को तुल्य देखता है॥ संपूर्ण जगत भी तिसको आत्मस्वरूप भा
सता है॥ तांतें चिदावल तें आदि देहपर्यंत सर्व अनातमा है॥ ति
सको क्रमकर के त्याग॥ प्रथम देह को त्याग॥ बहुड़ इंद्रीयां के अ
भिमान को त्याग॥ इसी क्रम कर सर्व को त्याग के अपने वास्तव
स्वरूप विषे स्थित हो॥ इति श्री निर्वाणप्रकर्णे जीवाभा
व प्रतिपादन नाम सर्ग॥ १०८॥ श्री वशिष्ठ उवाच॥ हे रामजी
इह संसार भी चैतन्यमात्र है॥ आत्मा तें इतर कछु नहीं॥ आत्मा ही
चैतन रूप होकर स्थित हूया है॥ जैसे सूर्य की किरनों ही जलाभा
स होता है॥ तैसे आत्मा का चमत्कार दृश्य रूप होकर स्थित हू
या है॥ जैसे संकल्प अरु संकल्पकर्ता भिन्न नहीं॥ जैसे आकाश
विषे भ्रम कर मोतीयों की माला भासती है॥ तैसे आत्मा ही दृ
श्य रूप होकर भासता है॥ जैसे बीज ही वृक्ष फूल फल होता है॥ तै
से आत्मा ही दृश्य रूप होकर स्थित हूया है॥ जैसे जल के तरंग ज
ल ही हैं॥ तैसे विश्व आत्मा ही है॥ हे रामजी चिदावल भी आत्मा है

जीव भी आत्मा है ॥ अहंकार बुधि प्राण इंद्रीयां देह विश्व अका
श काल दिशा पदार्थ सर्वात्मा ही है ॥ आत्मा ते इतर कछु नहीं ॥
ता तैं विश्व को भी अपणा स्वरूप जाण ॥ जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य
ही है ॥ तैसे तूं जान सर्व मैं ही हो ॥ जो ऐसे न जान सकें तो ऐसे जान
जो देह भी जड़ है ॥ इंद्रीयां कर पालीती है ॥ सो मैं नहीं ऐसी भाव
ना कर ॥ अर इंद्रीयां भी मैं नहीं ॥ जो प्राण इंद्रीयां का सार है ॥ जो प्रा
ण न होवैं तो इंद्रीयां किसी काम नहीं ॥ अर प्राण भी मैं नहीं ॥ प्राणां
का सार मन है ॥ जो मन नष्ट होता है ॥ प्राण आवते जाते भी हैं ॥ तो
भी किसी काम नहीं ॥ अर मन भी मैं नहीं ॥ जो मन के प्रेरने वाली बुधि
है ॥ सो बुधि भी मैं नहीं ॥ जो बुधि का प्रेरक अहंकार है ॥ अहंकार भी
मैं नहीं ॥ जो अहंकार का सार जीव है ॥ जीव बिना अहंकार किसी
काम नहीं ॥ अर जीव भी मैं नहीं ॥ जीव का सार चिदाभास है ॥ चिदा
भास कहीये शुध चित्त विषे चेतन्य उन्मुषत्व होवणां ॥ जीव संज्ञा
तैं प्रथम ईश्वर भाव ॥ चिदाभास भी मैं नहीं ॥ जो चिदाभास का सार
चिन्मात्र है ॥ अद्वतीय निर्विकल्प स्वरूप है ॥ इह सर्व अनात्म
मक कीसि थप्पे हैं ॥ मैं केवल शांति रूप हों ॥ हे रामजी जो तुम
वास्तव स्वरूप हो ॥ सोई हो ॥ इस तें इतर अनात्मा विषे अहंप्रती
त का त्याग कर ॥ तुम देह तें रहित निर्विकार हो ॥ तेरे विषे जन्मम
रणादिक विकार कोऊ नहीं ॥ अर शांत रूप ज्यों का त्यों स्थित हो ॥
तूं कदाचित स्वरूप तें इतर कछु नहीं हूया ॥ तिसी स्वरूप विषे
स्थित हो ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे सार प्रबोधनं नाम स
र्गः ॥ १०८ ॥ श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी आत्मा चिन्मात्र तैं
सार अवर कछु नहीं ॥ तिसी विषे स्थित हो ॥ जो ताप मिट जावें
हे रामजी सर्वात्मा ही स्थित है ॥ जैसे बीज ही वृक्ष फल फूल हो
कर स्थित होता है ॥ तैसे सर्वात्मा ही स्थित है ॥ तो निषेध अर त्या
ग किसका करीये ॥ श्री वाल्मीकोवाच ॥ हे शिष्य ऐसे वशिष्ठ
जी के वचन श्रवण करके रामजी प्रसन्न हूया ॥ जैसे कमल सू
र्य को देख कर खिड़ आवते हैं ॥ तैसे रामजी की बुधि वशिष्ठ जी
के वचनों रूपी सूर्य कर खिड़ आई ॥ अर बोलते भया ॥ श्री
रामोवाच ॥ हे भगवन सर्व धर्म अपतुमारी कृपा तें मैं जाण्या है
अर बडा आश्चर्य है ॥ जो आत्मा सर्वदा अनभव रूप है ॥ अर
अपणा आप है ॥ तिसके प्रमाद कर मैं एता दुख पाया ॥ जो अहं
ता अर ममता रूपी वडा बोझ सिर पर था ॥ तिस कर मैं दुखी था ॥

जैसे किसीके सिर पर पथर की शिला होवे ॥ अर जेष्ट आषा
ढ का सूर्य तपे ॥ अर पैंडे चले ॥ जैसे उह दुष पावता है ॥ अर
जो कोऊ उसके सिर तें उतार लेवे बल सों ॥ अर छाया के नी
चे बैठ जाये ॥ तो बडे सुष को प्राप्त होता है ॥ तैसे आतान रूप पे
ड़े अर धुप तिसके अहंता ममता रूपी शिला सो [illegible]
तुमरे वचनरूपी बल कर उतार लीनी ॥ आतम रूपी वृक्ष के
नीचे विश्राम कराया है ॥ भगवन अब मेरे ताई शांत पद प्रा
प्त भया है ॥ मेरे तीनों ताप मिट गये हैं ॥ अब जो सुमेर पर्वत का
भार आन प्राप्त होवे ॥ तो भी मेरे ताई कष्ट कोऊ नहीं ॥ अब
मेरे सर्व संशय निवर्त हूये हैं ॥ जैसे सरत्काल का आकाश नि
र्मल अर स्वछ होता है ॥ तैसे राग द्वेष रूपी धूप मेरा नष्ट भई
है ॥ अब मैं आपणे स्वभाव विषे स्थित भया हों ॥ पर एक प्र
श्न का उत्तर कृपा कर कै कहो ॥ जो महापुरुष वारंवार ब्रह्म
कर्म विषे भेद नहीं मानते ॥ हे भगवन तुम कहते हो सर्व ब्रह्म
ही है ॥ तो विधि शास्त्र का उपदेश किसको ॥ अर निषेध शास्त्र
का उपदेश किसको है ॥ जो इह कर्म तेरे ताई कर्तव्य है ॥ अर
इह कर्म कर्तव्य नहीं ॥ उपदेश किसको है ॥ श्रीवशिष्ठोवाच
॥ हे रामजी आतमा तें इतर कछु नहीं ॥ अर विश्व भी तिसका चे
मतकार है ॥ जैसे समुद्र विषे पवन कर नाना प्रकार के तरंग
फुरते हैं ॥ अर जल तें इतर कछु नहीं ॥ तैसे आतमा चेतन्य मा
त्र है ॥ तिसतें चेतन्य उन्मुखत्व अहंभाव लेकर फुरया है ॥ तिस
कर देश काल वस्त बन गये हैं ॥ अर शास्त्र फुरते हैं ॥ बहुड फु
रने अविद्या दो रूप धारते हैं ॥ एक विद्या अर एक अविद्या ॥ ति
स विषे विद्या रूपी जीव हूये हैं ॥ सो ईश्वर कहावते हैं ॥ अर अ
विद्या रूपी हूये हैं ॥ सो जीव हैं ॥ जिसको अपुणे स्वरूप विषे अहं
प्रत्यय वास्तव की रही है ॥ सो ईश्वर है ॥ अर जिसको स्वरूप का प्र
माद हूया ॥ अर संकल्प विकल्प विषे वहता है ॥ सो जीव है ॥ दुषी
हैं ॥ हे रामजी ए तीसंता फुरने विषे हूई है ॥ तो भी आतमा तें इतर क
छु नहीं ॥ जैसे एक ही रस फूल फल वृक्ष हूई है ॥ रस तें इतर कछु
नहीं ॥ अर आतमा रस का कोई प्रणाम कौं नहीं प्राप्त भया ॥ फुरने

कर जीव ईश्वर विद्या अविद्या रूप हे ॥ आतमा विषे कछु नहीं
हे रामजी जिसका संकल्प अधिन्न तिसके विषे नहीं गया षड ॥
सो जीव शीघ्र ही आतमपद को प्राप्त होता हे ॥ तिसकों आत
मा का शीघ्र ही साक्षातकार होता हे ॥ अर जिसका संस्कार अ
धन्न तिसके विषे धड हूया हे ॥ सो चिरकाल कर प्राप्त होते हें ॥
आत्मपद की प्राप्ति बिना दुख पावते हें ॥ अर जिनको आत्मप
द की प्राप्ति होती हे ते सुखी होते हैं ॥ हे रामजी ज्ञानी अर अज्ञानी
के स्वरूप विषे भेद कछु नहीं ॥ सम्यक दर्शन अर असम्यक
दर्शन का भेद हे ॥ हे रामजी विद्या भी दो प्रकार की हे ॥ एक ईश्व
र विद्या हे ॥ एक अनीश्वर विद्या हे ॥ जो ईश्वरवादी हें ॥ ते शीघ्र
प्राप्त होते हें ॥ जे अनीश्वरवादी हें ॥ तिनकों जब ईश्वर की भा
वना होती हे ॥ तब शास्त्र गुरु कर के ईश्वर की प्राप्ति होती हे ॥
अर ईश्वर विद्या भी दो प्रकार की हे ॥ एक इह हे ॥ जो अपूर
वासना कों त्यागकर ईश्वर परायण होते हें ॥ ते शीघ्र ही ईश्व
र कों प्राप्त होते हें ॥ अर आत्मा ही ईश्वर हे ॥ जो सर्व का अपणा
आप हे ॥ अर एक ईश्वर कों मानते हें ॥ वासना संसार की ओ
र होती हे ॥ ते चिरकाल कर प्राप्त होते हें ॥ अर अनीश्वरवादी
भी दो प्रकार के हें ॥ एक कहते हें जो कछु होवेगा ॥ तिनको हो
ते होतें भावना कर शास्त्र गुरु कर आत्मपद की प्राप्ति होवे
गी ॥ अर एक कहते हें कछु नहीं ॥ तिनकों चिरकाल कर जब
आस्ति की भावना होवेगी ॥ तब आत्मा की प्राप्ति होवेगी ॥ हे राम
जी तिनके निमित्त विधि निषेध कहा हे ॥ जो इस शुभ कर्म कों
अंगीकार करो ॥ अर अशुभ कर्म त्यागो ॥ तिसकर जब अंत
स्करण शुध होवेगा ॥ तब आत्मपद की प्राप्ति होवेगी ॥ इस निमि
त विधि निषेध कहा हे ॥ हे रामजी स्वरूप तें किसी कों उपदेश न
हीं ॥ भ्रम विषे उपदेश हे ॥ जिस पुरुष का भ्रम निवृत हूया सो
मोह विषे बहुड नहीं डूबता ॥ जैसे जल विषे फेन होता हे ॥ जैं
से तूंबा होता हे ॥ सो जल विषे फेर डूबता नहीं ॥ तैसे ज्ञानवान संसा
र अज्ञान विषे नहीं डूबते ॥ अर जिसका चित वासना कर आव
रता हूया हे ॥ संसरता हे ॥ तिसकों इस संसार तें निकसना कठन

हे ॥ जैसे उजार का कूंया होता है ॥ तिस विषे कोऊ गिरै तो तिनेक स
नो कष्ट न होता है ॥ हे रामजी जब स्थिर चित करैं ॥ तो दुःख तेरे मि
ट जावै ॥ अर सत्ता समान पद विषे प्राप्त होवै ॥ हे रामजी जिसकौं आ
त्मा का साक्षात्कार हूया है ॥ अर अनात्म विषे अहं प्रत्यय नि
वर्त हुई है ॥ सो पुरुष जो कछु कर्ता है ॥ तिस कर बंधायमान
नहीं होता ॥ सदा अकर्ता आपकों देषता है ॥ अर जिसकौ अहं
प्रत्यय अनात्मा विषे है ॥ सो पुरुष करै तो भी कर्ता है ॥ न करै तो
भी कर्ता है ॥ हे रामजी जो अज्ञानी शुभ कर्म कर्ता है ॥ तो शुभ क
र्म कर्ता हूया स्वर्ग कों प्राप्त होता है ॥ अर अशुभ कर्म कर्ता सो न
र्क कौं प्राप्त होता है ॥ अर जो शुभ कर्म कों त्यागता है ॥ तो भी नर्क
कों प्राप्त होता है ॥ काहे तें जो अनात्मा विषे आतम अभिमान है
तिस कारण तें बुधि इंद्रीयां कों मन करनि ग्रहकर ॥ अर कर्म
इंद्रीयां कर चेष्टा कर ॥ देषणे सुणने संघणे तें मैं तुझकों वर्जी
न नहीं कर्ता ॥ एही कहता हैं ॥ जो अनात्मा विषे अभिमान कौं
त्याग ॥ जब अनात्म अभिमान कौं त्यागैगा ॥ तब शांत पद कौं
प्राप्त होवैगा ॥ जहां कौं तेरा चित फुरैगा ॥ तहां आतमा ही भासैगा
आतमा तें इतर कछु न भासैगा ॥ तां तें चित कौं त्याग ॥ चित का ही
ये अहंभाव कौं त्याग कर ॥ आतम पद विषे स्थित हो ॥ जैसे वि
ष्व कौ उत्पत्ति भई है ॥ सो सुण ॥ शुध चैतन्य मात्र विषे चिदावल
रूप अहं तरंग फुरी है ॥ अर तिस चिदावल रूप समुद्र विषे जी
व रूप तरंग उपजा है ॥ अर जीव रूपी समुद्र विषे अहंकार रूपी
तरंग भासी है ॥ अर अहंकार रूपी समुद्र विषे बुधि रूपी तरंग
उपजा है ॥ तिस बुधि रूपी समुद्र विषे चित रूपी तरंग भासी है
अर चित रूपी समुद्र विषे संकल्प रूपी तरंग उपजा है ॥ तिस सं
कल्प रूपी समुद्र विषे जगत रूपी तरंग उपजा है ॥ अर जगत
रूपी समुद्र विषे देह रूपी तरंग भासी है ॥ तिस विषे दृश्य तीन
हूया है ॥ जो इह पदार्थ है ॥ इह नहीं ॥ इह ऐसा है ॥ इह ऐसा है ॥
तिस विषे देश काल द्रव्य सर्व हूये हैं ॥ हे रामजी संकल्प कर
होते भये हैं ॥ आत्मा तें इतर कछु नहीं ॥ केवल शांति रूप एक र
स आत्मा है ॥ तिस विषे नाना प्रकार के आचार रचे हैं ॥ आत्मा ते

इतरकछु नहीं ॥ जैसे स्वप्न की सृष्टि नाना प्रकार हो भासती है
अपनी हां अन्य नव सृष्टि हो भासती है ॥ तैसे इह जगत जाण
आत्मा सर्वदा एकरस अद्वैत है ॥ शुद्ध है ॥ परम निर्मल निर्वा
ण है ॥ सर्वदा अपणे आप विषे स्थित है ॥ संवेदना के ना
ना प्रकार की कलना उदै नई है ॥ हे रामजी शुद्ध आत्मा विषे
जो चिदे वहुई है ॥ चिदेवु न तान ॥ चिदेव भुवन त्रय मिसादि
सो चिदेव संज्ञा भी संकल्प विषे हुई है ॥ आत्मा विषे चिदेव
संज्ञा भी नहीं ॥ आत्मा निर्वाच्य पद है ॥ तिसको वाणी की गम्य
नहीं ॥ शुद्ध शांतरूप है ॥ तिस विषे चिदेव जो फुरा है ॥ तिस फु
रने विषे संसार हूये की न्याई स्थित है ॥ जैसे एक बीज की वृ
द्धि फूल फल एती संज्ञा पाईती है ॥ बीज ते इतर कछु नहीं
अर आत्मा बीज की न्यांई भी प्रणमया नहीं ॥ संकल्प ही ना
ना संज्ञा कल्पी है ॥ अर जगत स्थित हूया है ॥ तो भी आत्मा
ते इतर कछु नहीं ॥ जैसे वाय चलती है तो भी वाय है ॥ ठहि
रती है तो भी वाय है ॥ तैसे आत्मा विषे नानत्व कछु नहीं ॥ के
वल शुद्ध अद्वैत आत्मा है ॥ आतमरूप समुद्र विषे नाना
प्रकार विश्व तरंगो की न्यांई स्थित हूई है ॥ हे रामजी आका
र भी आत्मा है ॥ निराकार भी आत्मा है ॥ आत्मा ते इतर क
छु नहीं ॥ जो आत्मा ते इतर भासे सो मिथ्या जाण ॥ मृगतृष्णा
के जल की न्यांई जानकर इसकी भावना त्याग ॥ अर स्वरूप
की भावना कर ॥ इति श्री निर्वाण प्रकर्णे ब्रह्म एकता
प्रतिपादनं नाम सर्गः ॥ १०२ ॥ श्री वशिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी
मेरे वचनों को हृदै विषे धार ॥ अर आस्तिक्य भावना कर
जो इह सत कहते हैं ॥ अर सर्व त्याग कर ॥ जब सर्व त्याग करें
गा ॥ तब तेरा चित्त क्षीण हो जावेगा ॥ जब चित्त क्षीण होवेगा
तब शांति होवैगी ॥ हे रामजी काष्ट मौन होकर अंतर ते सर्व
त्याग कर ॥ अर बाह्य कर्मों को कर अभिमान ते रहित होके
र ॥ अर अंतर मुख हो ॥ अंतर मुख कहीये आत्मा स्थित हो
जे ॥ जब आत्मा स्थित होवैगा ॥ तब विद्यमान दृश्य भी तेरे ताई
न भासेगी ॥ काहे ते जो सर्वात्मा ही भासेगा ॥ अर जो तेरे पास है

पंच

री के शब्द होवैं ॥ तो भी न भासेगें ॥ अर जो सुगंध लेवेंगा ॥ तो
भी नहीं लीनी ॥ जो कछु रूप्या करेंगा ॥ सो तेरे तांई स्पर्शी न क
रेगी ॥ आकाश की न्याई ॥ अर सर्व तें असंग रहेंगा ॥ हे रामजी
जो कछु देखैं सो स्वरूप तें इतर न देख ॥ अर जो बोलै सो आ
त्मा तें इतर न फुरै ॥ अंध अर गुंग की न्याई ॥ अर पथ
र की शिला वत मौन होर ॥ संकल्प तें अर चेष्टा तेरी यंत्र
की पुतलीयां वत पड़ी होवैंगी ॥ स्वाभाविक जो कछु रूप्या है
सो सभ अभिमान तें रहित होय कर स्थित होवणी ॥ अ
र जो अभिमान पूर्वक चेष्टा करते हैं ॥ सो मूरिष हैं ॥ अर सम्य
क दर्शी हैं ॥ अर जो सम्यक दर्शी हैं ॥ तिन कौं आत्मा विषे
अभिमान नहीं होता ॥ हे रामजी जिस कौं आत्मा विषे अ
भिमान नहीं ॥ अर चित्त जिस का लेपवान नहीं होता ॥ सो सा
री विश्व कौं संघार करै ॥ अथवा विश्व कौं उत्पत्ति करै ॥ तौ
उस कौं बंधन कछु नहीं होता ॥ जो सर्व कर्म अभिलाषा तें
रहित होकर करता है ॥ हे रामजी समाध विषे स्थित हो ॥ अर जा
ग्रत की न्याई अनेक कर्म कर ॥ तेरे विषे दृष्ट भी आवेंगे ॥ तो
भी तिन तें सुषुप्त की न्याई फुरनी कोऊ न फुरै ॥ अपणे स्वरू
प की समाध रहे ॥ अर समाध भी तब कहूं जो कोऊ दूसरा
होइ ॥ जो इस विषे स्थित हो ॥ अर इस का त्याग कर ॥ हे राम
जी जहां एक अर दोइ शब्द कहणा भी नहीं ॥ अद्वितीय आ
त्म सत्ता परिपूर्ण है ॥ तिस विषे चेतनी नाना प्रकार विकार
कल्पे हैं ॥ ज्ञानी कौं एक रस भासता है ॥ अर ज्ञानी कौं ज्ञानी
ही जानता है ॥ अर मूर्ष कौं संकल्प करनी नाना प्रकार जगत
भासता है ॥ ताते संकल्प कौं त्याग कर अपणी प्रकृति आचा
र विषे विचर ॥ जैसे उन्मत्त की चेष्टा स्वाभाविक पड़ी होती
है ॥ जैसे बालिक की चेष्टा स्वाभाविक होती है ॥ अंग पड़े हलते
हैं ॥ तैसे अभिमान तें रहित होकर चेष्टा करो ॥ जैसे पथर की
शिला का मध्य जड़ होता है ॥ तैसे दृश्य की भावना तें रहित हो
कर जो फुरे कछु नहीं ॥ जड़ की न्याई जब ऐसा होवैंगा ॥ तब शां
त पद कौं प्राप्त होवैंगा ॥ हे रामजी चित्त के संबंध करके जो मनु

जैसे जंत्री की पुतली जाजेम ताकर चेष्टा करती है तैसे ... कर प्राणी का चेष्टा पड़ी होवेगी

त्पति होता है ॥ जैसे वसंत रुत विषै फूल उत्पति होते हैं ॥
तैसे चित रूपी वसंत रुत है ॥ तिस तें इछ रूपी फल उप
जते हैं ॥ जब तूं चित को शांत करैगा ॥ तब परम पद प्राप्त हो
वैगा ॥ सो पद कैसा है सूक्ष्म तें सूक्ष्म है ॥ स्थूल तें स्थूल है ॥
तातें तूं असंग हो ॥ जो तूं स्थूल तें स्थूल होवैगा ॥ तब भी अ
संग रहैगा ॥ ऐसे पद को पाय कर काष्ट पथर की न्याई मौ
न हो ॥ हे रामजी दृस्य पदार्थ को त्याग कर दृष्टा जो जानणे
वाला है तिस विषै स्थित हो ॥ हे रामजी इंद्रीयां अपणे अप
णे विषय को ग्रहण करती हैं ॥ तिन की ओर तूं भावनां मत
कर ॥ जो इह सुंदर रूप है ॥ इस को प्राप्त होवै ॥ भले विषय
प्राप्त होवणे की भावनां तूं मत कर ॥ इनके जानणे वाला
जो आत्मा है ॥ तिस विषै स्थिति हो ॥ जो पुरुष दृष्टा विषै स्थि
ति होता है ॥ सो गोपद की न्याई संसार समुद्र को लंघ जा
ता है ॥ हे रामजी जो पदार्थ दृष्ट आवते हैं ॥ तिन विषै अ
पणी अपणी सृष्टी हैं ॥ कैसी सृष्टी है जो संकल्प मात्र ही है
अपणे अपणे संकल्प विषै स्थित हैं ॥ अर सर्व संकल्प
आत्मा के आश्रे हैं ॥ जैसे सर्व पदार्थ आकाश विषै स्थित
हैं ॥ तैसे सर्व संकल्प की सृष्टि आत्मा के आश्रे है ॥ अर सं
कल्प दूसरे के को अवर नहीं जानता ॥ सृष्टि अपणी अप
णी है ॥ जैसे जेते बुदबुदे समुद्र विषै हैं ॥ तिन कों जल कर ए
कता है ॥ अर आकार कर एकता नहीं ॥ तैसे स्वरूप कर स
भन की एकता है ॥ अर संकल्प सृष्टि अपणी अपणी है ॥ अ
र जो पुरुष ऐसे चितवनां करता है ॥ जो मैं उस की सृष्टि कौं
भी जाणों ॥ तब जानता है ॥ हे रामजी आत्मा कल्प वृक्ष है
जैसी कोउ भावनां करता है ॥ तैसा सिध होता है ॥ जब ऐसी
भावना कर के स्वरूप विषै जुड़ता है ॥ जो सर्व सृष्टी मेरे तांई
भासे ॥ तब भावनां कर के भास आवता है ॥ अर ज्ञानी ऐसी
भावना नहीं करता ॥ काहेतें जो आत्मा ते इतर को जु पदार जो
थ नहीं जानता ॥ अर जानता है स्वरूप तें सभन की एकता है
अर संकल्प कर एकता नहीं होती ॥ जैसे तरंगों की एकता
नहीं ॥ अर जल की एकता है ॥ अर जो एक तरंग दूसरे साथ
मिल जाता है ॥ तब उस साथ एकता होती है ॥ तैसे एक का

संकल्प भावनो करइ दूसरे साथ मिल जाता है ॥ तैसे ज्ञानी जान
ता है ॥ जो संकल्प रूप आकार नहीं मिलते ॥ अरु स्वरूप करि
सर्व की एकता होती है ॥ अरु जो एक की भावना होती है ॥ जो
मैं इसकी इष्ट कों देखों ॥ तब उसके संकल्प साथ अपना
संकल्प मिलाय कर देखता है ॥ उसकी इष्ट कों जानता है ॥
जैसे दो मणी होवैं ॥ तिनका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है ॥ अरु
जो दोनों एकत्र राखीये एक ही ठौर विषे ॥ तब दोनों का प्र
काश भी एक रूप होजाता है ॥ तैसे संकल्प की एकता भावना
कर होती है ॥ अरु ज्ञानी को इह संकल्प उपजता नहीं ॥ काहे
ते जो संसार उसकों मिथ्या भासता है ॥ अरु जो ज्ञानी को प्रथ
म संकल्प हूया होइ ॥ जो मैं उसकी इष्ट कों देखों ॥ तब संक
ल्प कर देखता है ॥ अरु ज्ञान के उपजे ते वांछा नहीं रहती ॥
हे रामजी इछा चित का धर्म है ॥ जब चित ही नष्ट होगया त
ब इछा किसकी रहे ॥ जब स्वरूप का प्रमाद होता है ॥ तब चि
त रूपी दैत प्रसन होता है ॥ जो मैं राइ हूं अहार हूया ॥ मैं इस
कों भोजन करौंगा ॥ हे रामजी जो पुरुष चित को औरु हूया ॥ अ
रु स्वरूप की भावनां न भई ॥ तब चित रूपी दैत ब्रिन रूपी जन
मों विषे लेई फिरता है ॥ अरु जिसकों भोजन करता रहता है ॥
जो उसका पुरुषप्रयतन नाश करता है ॥ अरु आतमा की भावनां
वाली बुधि उत्पति होवनें नहीं देता ॥ जैसे बृक्ष को आग लगा
इये ॥ तौ बैड उसकों फल नहीं पडते ॥ तैसे पुरुषार्थ रूपी वृ
क्ष को भोग रूपी अग्नि लागी ॥ तब फल रूपी शुध बुधि उत्प
ति नहीं होती ॥ हे रामजी चित आत्मा विषे जोडो ॥ विषयां कों छो
र जीतन दैउ ॥ इह चित दुष्ट है ॥ जब चित कों स्थित करोगे ॥
तब परम अमृत कर रसो भायमान होवैंगा ॥ जैसे पूर्णमासी का
चंद्रमा अमृत कर रसो भता है ॥ तैसे आतमा लक्ष्मी कर सोभने
गा ॥ तेरे जरा मृत्यु मिट जावेंगे ॥ अरु परम निर्वाण पद कों प्रा
प्त होवैंगा ॥ सो इह पद जैसे प्राप्त होता है ॥ तैसे कहता हो ॥ इ
ति श्री निर्वाण प्रकर्णे परम निर्वाण वर्ननं नाम सर्गः ॥ ११०
श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी सम्यक ज्ञान की है ॥ इन क
र ज्ञान उत्पति होता है ॥ श्री रामोवाच ॥ हे भगवन जिस जु
सम्यक का विषे ज्ञाता प्राप्त होता है ॥ तिसका लक्षण कहो

शालसंतोष श्याम रमतप
ति तद्धा ब्रह्म समाधान
वहस्रोनंद

इहसप्तनूमकाक्याहैं ॥ अरप्राप्तकैसेहोतीहैं ॥ सोकहो ॥ २ ॥
श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हेरामजीइहनूमिकातेरेताईकहता
हों ॥ जोइसप्रकारप्राप्तहोतीहे ॥ अरनूमकातेंइसप्रकार
ज्ञानप्राप्तहोताहे ॥ हेरामजीजबबालिकमाताकेगर्भवि
षेहोताहे ॥ अरबालिकनिकसताहे ॥ तबइसकोधउसुषुप्त
जडअवस्थाहोतीहे ॥ जैसीज्ञानीकीहोतीहे ॥ परबालिक
विषेसंस्काररहिताहे ॥ तिसकरसंस्कारकीसत्तताआगें
होणाहे ॥ जैसेबीजविषेअंकुरहोताहे ॥ तिसकेआगेंवृक्ष
होणाहे ॥ तैंसेबालिककोंभावीहोवणाहे ॥ अरज्ञानीकी
भावीनहींहोवणी ॥ जैसेदग्धबीजहोताहे ॥ तिसकाअंकु
रनहींहोता ॥ तैंसेज्ञानीकीभावीनहींहोवणी ॥ संसारतेंसुष
पतहे ॥ अरस्वरूपविषेसदाचैतन्यहे ॥ सच्चिदानंदब्रह्मआ
त्माविषेसदास्थितिहे ॥ द्वैतभावनाज्ञानीविषेनहीं ॥ इसी
तेंभावीहोवणीतिसविषेनहीं ॥ जबबालिककोंबाल्यते
कस्पेंकोअकालअतीतहोताहे ॥ तबधडजडतानिवृत
होताहे ॥ अरसुषुप्तरहतीहे ॥ केतेकालतेंउपरांतसुषुप्तनी
लेहोतीहे ॥ तबचेतनताहोतीहे ॥ तबजानताहे ॥ जोइहमेंहों
एमेरीमाताहे ॥ एमेरापिताहे ॥ तबकुलवालेउसकोंसिषा
वतेहें ॥ जोइहमागहे ॥ इहकरुवाहे ॥ इहतेरीमाताहे ॥ इह
पिताहे ॥ इहतेराकुलहे ॥ इहपापहोताहे ॥ इसकरपुंन्यहोता
हे ॥ इसकरस्वर्गपाईताहे ॥ इसकरकेनर्कपाईताहे ॥ इसप्रका
रजापहे ॥ इसप्रकारतपहोताहे ॥ इसप्रकारदानकरीताहे
हेरामजीइसप्रकारकुलकेउपदेसकर ॥ अरशास्त्रकेभय
करधर्मविषेविचरावतेहें ॥ अरपापकात्यागकरतीहे ॥ अैसा धरमातमा
जोहेशास्त्रअनुसारविचरतोवालासोपुरुषकहीताहे ॥ सो
धर्मात्मापुरुषभीदोप्रकारकाहे ॥ एकप्रवृत्तिकीओररहे ॥ अ एक
रनिवृत्तकीओररहे ॥ जोप्रवृत्तिकीओररहे ॥ सोपुंन्यकर्मीकर
स्वर्गफलभोगताहे ॥ तबमोक्षकोंनहींजानताउत्तमरूप ॥ इस
ककेसंसारविषेइहपडाभ्रमताहे ॥ जलत्रिणावतकबीचि
रकालतेंइसकर्मविषेआयकरमुक्तिहोताहे ॥ अरजोनि
वृत्तहोताहे ॥ तिसकोंविषयभोगोंतेंवैराग्यउत्पत्तिहोताहे ॥ अ
रकहताहे ॥ जोइहसंसारमिथ्याहे ॥ मेंइसतेंतरों ॥ अरति

सपदकों प्राप्त होवों ॥ जहां त्रयअवस्था नहोवै ॥ इह संसार सर्वदा
चलरूप अरु दुखदाई है ॥ हे रामजी तिस पुरुष कों ज्ञान विज्ञा
न उत्पत्ति होता है ॥ इस क्रमकरके ॥ अरु जो पशुधर्मी मनुष्य हैं ॥
तिनकों ज्ञान प्राप्त होवणां कठिन है ॥ पशुधर्मी कहीये जो शा
स्त्र के अर्थकों नहीं जानते ॥ जो शुभ क्या है ॥ अरु अशुभ क्या है ॥
अपणी इच्छा विषे वर्तणां ॥ अशुभ कों ग्रहण करणां ॥ विचार ते
रहित होवणां ॥ अरु मनुष्य नी दो प्रकार के हैं ॥ एक प्रवृत्तल
छण हैं ॥ एक निवृत्तलछण हैं ॥ प्रवृत्त कहीये जिसकों शास्त्र शु
भ कहे ॥ तिसकों ग्रहण करणां ॥ अशुभ का त्याग करणां ॥ कामनों
धारकर यज्ञादिक शुभ कर्म करणें ॥ फलनमित जो स्वर्ग धन
पुत्रादिक मेरे ताईं प्राप्त होवेंगे ॥ तिनकी प्रार्थना धारकर शुभ
कर्म करणें ॥ इस प्रकार संसार समुद्र विषे वहते हैं ॥ अरु चिरं
काल करके निवृत्त की ओर भी आवते हैं ॥ तब स्वरूप कों पावते
हैं ॥ सो निवृत्त क्या है ॥ जो निहकाम होयकर शुभ कर्म करणें ॥ ति
नके करणें कर अंतहकरण शुध होता है ॥ तब तिसकों वैराग्य
उत्पत्ति होता है ॥ अरु कहता है मेरे ताईं कर्मीं साथ क्या है ॥ अर
फलों कर क्या है ॥ मैं किसी प्रकार आतमपद कों प्राप्त होवों ॥ इ
स संसार तें किसी प्रकार कब मुक्ति होवेगा ॥ इह संसार मिथ्या
है ॥ अरु भोगों कर मेरे ताईं क्या है ॥ इह भोग सर्प हैं ॥ हे रामजी इ
स प्रकार भोगों की निंदा करता है ॥ अरु उपरत होता है ॥ अरु सम
थं दमादिक जो ज्ञान के साधन हैं ॥ तिन विषे विचरता है ॥ अरु दे
श काल पदार्थ कों शुभ अशुभ विचारता है ॥ अरु मर्यादा सा
थ बोलता है ॥ अरु संतजनों का संग करता है ॥ सतशास्त्र अरु ब्र
ह्म विद्या कों वारंवार विचारता है ॥ इस प्रकार उसकी बुधि व
र्धती जाती है ॥ जैसे शुक्लपक्ष के चंद्रमा की कला वर्धती है दि
नदिन प्रति ॥ तैसे उसकी बुधि वर्धती है ॥ अरु विषयों ते उप
रत होता है ॥ तीरथ अरु ठाकुरद्वारे ॥ अरु प्रतिमा कों पूज
ता है ॥ अरु मन इंद्रीयां देह कर संतों की टहल करता है ॥ अर
सर्व साथ मित्रता व दया संत कों प्रसन्नता कर विचरता है ॥ अर
ऐसा वचन बोलता है ॥ जिसकर सर्व कों प्रसन्न होवै ॥ यथा

शास्त्रहोवै ॥ इतर नहीं कहणां किसीकौं ॥ अर अज्ञानीयों के
संगकौं त्यागणां ॥ अर स्वर्गादिककी भावनां न करणीं ॥ केवल आ
तमपराइण होवणां ॥ संतों अर शास्त्रों की ध्रड भावनां कर
णी अर्थौं विषै ॥ अर अवर किसी और चितन लागी ॥ जैसे का ैरतलगावणी
किरपन
दर्यद्री सर्वदा धनकी चितवनां कर्ता है ॥ तैसे उह सदा
आत्मा की चितवनां कर्ता है ॥ जो पुरुष इतने गुण संयुक्त है
तिसकौं प्रथम भूमका प्राप्त भई है ॥ अर पापरूपी सर्पकों मो
रसमान सिरजीवाक कै नास कर्ता है ॥ धर्म अर संत शास्त्र
संत जनरूपी मेघकों गर्द नउचा कर कै देषता है ॥ अर प्रसन हो
ता है ॥ इसका नाम शुभइछा है ॥ तिसकौं बहुड दूसरी भूमका
प्राप्त होती है ॥ जैसे शुक्लपक्ष के चंद्रमा की कला वर्धती जाती
है ॥ तैसे उसकी बुधि वर्धती जाती है ॥ तिसके इह लछन हैं ॥ जो
संत शास्त्र अर ब्रह्मविद्याकौं विचारणां ॥ अर दृड भावनां ल
गावणी ॥ तिस विचार का कवच गले विषै पावता है ॥ तिसक
र शास्त्रों का घाउ कौ उन्हीं लागता ॥ अर इंद्रीयांरूपी चोर
हैं ॥ इछारूपी तिनके हाथ विषै बरछी है ॥ सो विचाररूपी क
वच के पहिरणेवाले कौं नहीं लागती या ॥ हे रामजी इंद्रीयारू
पी सर्प हैं ॥ विशयां तिस विषै विष है ॥ तिस विषकर मूर्षों को मा
रती हैं ॥ अर जो विचारवान पुरुष है ॥ तिन इंद्रीयां की विषकौं
नाश कर छोडता है ॥ अर सर्वे और तें उदासीन रहता है ॥ दु
र्जनों की संगत कौं बल कर कै त्याग कर्ता है ॥ जैसे गंदे तृण त्याग
कौं त्यागीता है ॥ तैसे मूर्षों की संगत देहतें लेकर देषता है ॥ अ
र सर्व इछा का त्याग कीया है ॥ पर एक इछा तिस विषै न रहती
है ॥ जो दया सर्व पर कर्ता है ॥ अर संतोषवान रहता है ॥ अर
तिस विषै गुण सुभाविक जाते रहते हैं ॥ दंभ गर्व मद लोभ मोहा
दिक तिसके नष्ट हो जाते हैं ॥ जैसे सर्प कंजकौं त्यागकर स्यो
यमान होता है ॥ तैसे विचारवान बाल इंद्रीयांकौं ॥ बालक कै
सोभता है ॥ अर जो क्रोध जो तिस विषै दृष्ट आवता है ॥ तौ छिण
मात्र होता है ॥ हृदे विषै स्थित नहीं हो सकता ॥ अर षाणां पी
णां लेणां देणां जो कछु क्रिया होती है ॥ सो विचार पूर्वक कर्ता
है ॥ अर सर्वदा शुभ धर्मा विषै विचरता है ॥ संत शास्त्रोंके अ

र्थ को विचारणां ॥ अरु संतजनों का संग करणां ॥ बोध कों वृथा
वणां ॥ तप करणां तीर्थों का स्नान करणां ॥ इस प्रकार काल कों
व्यतीत करणां ॥ हे रामजी इह दूसरी भूमका है ॥ जब तीसरी भू
मका आवती है ॥ तब श्रुत जो हैं वेद ॥ अरु स्मृत जो हैं धर्मशास्त्र
रिदे तिनके अर्थ विषे स्थित होते हैं ॥ जैसे कमल पर भ्रमरा आइ
स्थित होता है ॥ तिस पुरुष कों तैसे फूलों की शय्या भी सुखदा
इक नहीं भासती ॥ जैसे बन अगर कंदरा सुखदाइक भासती
है ॥ जो वैराग तिसका दिन दिन बढता जाता है ॥ अरु कवलों
सहित तडाग बावलीयां नदीयां विषे स्नान करणा ॥ अरु श्रु
भ स्थानों विषे रहेणा ॥ अरु पथर की शिला पर सैन करणां ॥ अ
रु देह तप कर छीण करणी ॥ अरु धारणा कर चित किसी ठौर
विषे लगावणा ॥ अरु आत्मभावनां ध्यान करणी ॥ अरु सर्व भोगों
ते उपरत होवणां ॥ भोगों कों अंतवंत विचारणा ॥ जो इह स्थि
र नहीं रहिते ॥ अरु देह के अहंकार कों उपाध जानकर त्यागता
है ॥ अरु रक्त मांस पुरीषादिक पूरन जानकर ॥ इस विषे अ
हंकार कों त्यागता है ॥ अरु निंद्रा कर नहिं ॥ अरु स्तुत करणी कों भी
ई तुछ जानकर त्यागता है ॥ जैसे चिणे विष्टा कर संयुक्त हो
वे ॥ अरु तिस कों त्यागता है ॥ तैसे देह के अहंकार कों त्यागता
है ॥ सुंदर कंदरा जो हैं फूल फल संयुक्त जहां चंद्रमा की किर
नां कर रस पावता है ॥ तिस विषे विचरनां अरु फूल फल का
अहार करणां ॥ अरु संतजनां की टहल करणी ॥ इस प्रकार
आरबला को बीतावता है ॥ सदा असंग रहिता है ॥ इह तीसरी
भूमका है ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे तृतीय भूमका लछ
ण विचारो नाम सर्गः ॥ १११ ॥ श्री वशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इ
ह ज्ञान का साधन है ॥ ब्रह्म विद्या को विचारणा बारंबार ॥ अ
रु तिसके अर्थों की भावनां करणी ॥ अरु पुन्य क्रिया विषे विच
रणा ॥ इसते इतर ज्ञान का साधन नहीं ॥ इस कर ज्ञान की प्राप्त
होती है ॥ जिस पुरुष कों ऐसी भावनां हुई ॥ उस पुरुष कों ना
ना प्रकार की गंध चंदन अगार चोयें तें आदि लेकर ॥ अर
अपछरा अप्रतिष्ठित आइ प्राप्त होवें ॥ तब तिनका निरादर
करता है ॥ अरु जो इस्त्री कों देषता है ॥ तो भी माता समान देष

उीः प्रताहार
=
यम नेम आसण
प्राणायाम धारण
ध्यान समाधि

ताहै॥ अर पराये धन कों पथर के बटे समान देषकर बांछा नहीं
कर्ता॥ अर सर्व भूतों कों देषकर दया ही कर्ता है॥ जैसे आप कों
सुष कर प्रसंन दुष कर अनिष्ट जानता है॥ तैसे अवर कों भी जा
न कर सुष देता है॥ इस प्रकार पुंन्यरूपा विषे विचरता है॥ अर
सत शास्त्रों के अर्थ का अभ्यास कर्ता है॥ अर सर्वदा असंग रहता संग
है॥ अर असंग संगता भी दोय प्रकार की है॥ श्रीरामोवाच॥ हे भ
गवन असंग संग का लछण क्या है॥ तिन का भेद तो तुम कहो
॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी असंग संग दोय प्रकार की है॥ ए
क समान है॥ एक विशेष है॥ तिन का लछण श्रवण कर॥ प्रथम
समान लछण उह कहता है मैं कछु नहीं कर्ता॥ न मैं किसी कों देता
हों॥ न मेरे ताई कोइ देता है॥ सर्व ईश्वर की आज्ञा विषे होता है॥ जि
स कों धन देवणे की इछा होता है॥ तिस कों धन देता है॥ जिस सों ले
णा होता है॥ तिस सों लेता है॥ इस के अधीन कछु नहीं॥ अर जो कछु
दान तप जग्यादिक कर्ता है॥ सो ईश्वर अर्पण कर्ता है॥ अपणां अ
भिमान कछु नहीं कर्ता॥ अर कहिता है सभ ईश्वर की आज्ञा कर ताहै सुंभविक
होता है॥ इस प्रकार निर अभिमान होकर धर्म चेष्टा विषे विचर
अर जेते कछु इंद्रीयां के भोगण की संपदा है॥ तिस कों अपदा जा
नता है॥ भोगों कों महां अपदा रूप मानता है॥ संपदा रोग रूप है॥
संयोग वियोग रूप है॥ जेते पदार्थ हैं॥ सो सभ नसन पात रूप हैं॥
विचार कर नष्ट हो जाते हैं॥ सभ कों आसरूप जानता है॥ जो संयो
ग वियोग विषे दुषदाई है॥ परस्त्री कों रस तें रहित विष की वली
समान जानता है॥ अर सर्व पदार्थों कों प्रणामी जान कर भावना कि
सी की नहीं कर्ता॥ अर संपूरन विश्व का जो ईश्वर है॥ जिस कों सु
ष देणा है॥ तिस कों सुष देता है॥ जिस कों दुष देणा होता है॥ तिस
कों दुष देता है॥ इस के हाथ कछु नहीं॥ करणे करावणे वाला ईश्व
र है॥ न मैं कर्ता हों॥ न भोक्ता हों॥ न मैं वकता हों॥ जो कछु होता है सो
सभ ईश्वर की सता कर होता है॥ ऐसे निरहंकार होकर पुरुष क्रि
या कों कर्ता है॥ सो समान संग असंग है॥ तिस के वचन श्रवण क
ले कर श्रवनों कों अमृत की वर्षा प्राप्त होती है॥ इस प्रकार ममका
कर कै॥ अर संतों के मिलने कर जिस की बुधि वधी है॥ अर निर
अभिमान है॥ तिस के उपदेस विषे मन लव कर तब लग अभ्या
स करै॥ जब लग हाथ पर आवले की न्याई आत्मा का अनुभव सा
छातकार होवै॥ अर हे रामजी कहा था ईश्वर सभ न कर्ता है॥ सो स

मानअसंगसंगहै॥ अरविशेषअसंगसंगकहताहै॥ जो नमैंक
छुकरताहों नकरावताहों केवलआकाशरूपआत्माहों॥ जिस
विषेनकरणाहै नकरावणाहै॥ नकोऊअवरहै॥ नमेराकोऊहै
केवलआकाशरूपआत्माहै॥ ऐसेदेषतहै॥ हेरामजीउहपुरुषनै
अंतरदेषताहै नबाहरदेषताहै॥ नपदार्थ नअपदार्थ॥ नज
ड नचेतन्य॥ नप्रकाशकोदेषताहै॥ नपुतलकोंदेषताहै॥ नदे
शकोदेषताहै॥ नपर्वतकों॥ नमेंमेरकोंदेषताहै॥ निर्बीसअ
जो जूअविनासी सर्वज्ञदृश्यअर्थौंतैंरहित॥ केवलसंनआकाशवि
षेस्थितिहै॥ चित्ततैंरहितचेतन्यहै॥ तिसविषेजोस्थितिहै॥ तिस
कोंअद्वेष्टअसंगसंगकहीताहै॥ बोलचेष्टाउसकीदृष्टआवती
है॥ तोभीअंतरपदार्थोंकीभावनांकाअभावहै॥ जैसेकमलज
लविषेदृष्टभीआवताहै॥ परंतूचाहीरहिताहै॥ तैसेंरूयाविषे
विचरताभीदृष्टआवताहै॥ तोभीअसंगरहिताहै॥ अरकाम
नांउसकोंकोऊनहीरहिती॥ जोइहहोवैइहनहोवै॥ काहेतैंजोउ
सकोंसंसारकाअभावनिश्चैभयाहै॥ सर्वकलनांतैंरहितहै॥
आत्मातैंइतरकिसीपदार्थकीसत्तानहीफुरती॥ सोअद्वेष्टअसं
गसंगकहीताहै॥ अरकर्नैंकरउसकाअर्थकछुसिधनहीहो
ता॥ अरअकर्तेंकर(पाप)प्रतिवायनहीहोती॥ उहसर्वदाअसंगसंग
है॥ इससंसारविषेडूबताकदाचितनहीं॥ संसारकेपारकोप्रा
प्तहूयाहै॥ अरअनात्माविषेआत्मभावनां॥ तिसपुरुषत्यागी
है॥ ऐहेभावकात्यागकीयाहै॥ जेतेपदार्थहैं इष्टअनिष्टरूप
तिनकेसुषदुषकीवेदनांनहीफुरती॥ सदामौनरूपहै॥ वेसो
पपरजिंहै॥ सोअद्वेष्टअसंगसंगकहीताहै॥ हेरामजीएककम
लहै॥ जोअज्ञानरूपीकीचसोंनिकसकर॥ आत्मरूपीजलवि
षेविराजताहै॥ संसारकीअभावनांउसकाबीजहै॥ अरविरंमौ
रूपीउसजलविषेमछीयांहै॥ कमलकेचौफेरफिरताहै॥ अ
रकुकर्मसुषदुषरूपीतिसमांथकोंडेहै॥ अज्ञानरूपीरात्रिक
रमुषमंदारहाथा॥ अरविचाररूपीसूर्यकेउदेहूयेतैंबिडता
है॥ अरसोभापावताहै॥ सुगंधतिसकीसंतोषहै॥ कदेविबेजा
गाताहै॥ फलतिसका॥ असंसाहै॥ तीसरीभूमकाविषेइहउगाव
ताहै॥ हेरामजीसंतोंकीसंगतलेकरकै॥ अरसतशास्त्रोंकाविचा

रूकरणेसारकोप्राप्तकरताहै ॥ बमाकछहै ॥ इसकरकेअमृत
मोक्षकोप्राप्तहोवालाहै ॥ परऐसेस्वरूपकोविस्मर्णीकरकेजीव
दुषीहोतेहैं ॥ इसकास्वरूपदुषोंकानाशकर्ताहै ॥ जिसविषेदु
षकोउनहीं आनंदरूपहै ॥ इतभूमकाद्वाराप्राप्तहोवीताहै ॥ ब
ऊडबंधमाननहींहुवीता ॥ हेरामजीइहतीसरीभूमकाज्ञान
कोनिकटवर्तीहै ॥ अरविचारवानपुरुषइनभूमकाविषेस्थि
तिहोकरबुधिकोवधावतेहैं ॥ इसप्रकारजबबोधकोइहव
धावताहै ॥ अरशास्त्रयुक्तसाथरक्षाकर्तीहै ॥ तबइसक्रम
करकेतीसरीभूमकाकोजाइप्राप्तहोताहै ॥ तहांइसकोअसं
संगताप्राप्तहोतीहै ॥ जैसेकिरसानषेतीकीरक्षाकरताहै ॥ व
धावताहै ॥ तैसेविचाररूपीजलकरबुधिकोवधावताहै ॥
जबबुधिरूपवल्लीवधतीहै ॥ तबचतुर्थभूमकाप्राप्तहोती
है ॥ अरअहंकारमोहादिकजोशत्रुहैं ॥ तिनतेंरक्षाकरतेहैं ॥
हेरामजीइनभूमकाकोप्राप्तहोकर ॥ इहज्ञानवानहोताहै ॥
सोइहभूमकाक्रमकरप्राप्तहोतीहै ॥ किबडेपुन्यकर्मकीये
होवैं अरपणोतिनकरअभ्यानफुरतीहैं ॥ किअकस्मात्तेंआ
नफुरतीहैं ॥ जैसेनदीकेतटपरकोयाबैठाहोवे ॥ अरनदीके
वेगकरवीचजाइपडे ॥ तैसेजबफेरपहिलीभूमकाप्राप्तहोवे
तबतिसबुधिकोवधाये ॥ जबबोधरूपीवल्लीवधतीहै ॥ तब
ज्ञानरूपीफललागताहै ॥ जबज्ञानउपजातबअज्ञानछेदया
तिसविषेइष्टभीआवैं ॥ तौभीइनकाअभिमाननहींकर्ता ॥ जे पंर
सेस्फटिकमणिप्रतिबिंबग्रहणभीकर्तीहै ॥ रंगकोऊनहींचढता
॥ इतिश्रीनिरबाणप्रकर्णेतीसरीभूमकाविचारोनामस
र्गः ॥ ११२ ॥ श्रीरामौवाच ॥ हेभगवनतुमोंभूमकावर्णनकरी
तिसविषेमेरेताईइहसंशयहै ॥ जोभूमकातेंरहितहैं ॥ अरश्रु
तिकेसन्मुखहैं ॥ तिनकोंकदाचितज्ञानउपजेगा ॥ अथवान
उपजेगा ॥ अरजिसएकभूमकापाईहोवे ॥ अथवादोभूमका
पाई ॥ अथवातीसरीभूमकापाईहोवे ॥ अरबाहरतिसकाछू
टजावे ॥ अरआतमपदकोसाक्षात्कारनभया ॥ अरस्वर्गादि
ककोउसकोकामनानहीं ॥ तबउहकिसगतकोप्राप्तहोताहै ॥
श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हेरामजीउहपुरुषजोविषईहैं ॥ तिनको

ज्ञानप्राप्तहोवणांकठिनहै॥उहवासनांकवैंघटायंत्रकीन्या
ईकरतेहैं॥कबेहूंस्वर्गकबहूंपातालजातेहैं॥अरदुषपावते
हैं॥कदाचितअकसमात्रकाकेतालीयोगकीन्याईउसकौ
संतोंकासंग॥अरसतशास्त्रोंकाश्रवणकर्णांइहवासनांआ
इफुर्तीहैं॥जैसेमारूथलविषैकलीजगणांकठिनहै॥तैसे
जिसपुरुषकौंआत्माकाप्रमादहै॥अरभोगोंकीभावनाहै॥ति
सकौंज्ञानप्राप्तहोवणांकठिनहै॥अरजबकअकसमात्रसंतो
केसंगातेंतिसकौंवैराग्यउपजताहै॥अरबुधिउसकीनिवृत
कीओरआवतीहै॥तबजन्मकाद्वारातिसकोंज्ञानप्राप्तहोता
है॥तबमुक्तिहोताहै॥हेरामजीइहभावनांअकसमात्रउपजे
बिनांयोनीविषैपडाभ्रमताहै॥जिसकौंएकअथवादोजन्
मकाप्राप्तभईहैं॥अरशरीरतिसकाछूटगया॥तबअवरज
न्मपायकरज्ञानकौंप्राप्तहोताहै॥पिछलासंसकारजागआ
वताहै॥बहुडदिनदिनवधताजाताहै॥जैसेबीजतेंवृक्षअंकु
रहोताहै॥बहुडटासफूलफलकरवधताजाताहै॥तैसेउस
कोअभ्याससंस्कारवधताजाताहै॥अरज्ञानकौंप्राप्तहोताहै
जैसेपहिलवानबेलताहै॥अररात्रकौंसोइरहताहै॥बहुड
दिनऊयेउवताहै॥तबपाहिलवानगीकाअभ्यासआइफुर्ता
है॥जैसेकोऊमारगचलताचलतासोइजाइ॥अरजागकरचल
नेलागे॥तैसेउहफेरपूर्बलेअभ्यासकौंलागताहै॥हेरामजी
जिसकौंभावनाहोताहै॥जोमेरेताईविशेषताप्राप्तहोइ॥तिस
करजन्मकौंपावताहै॥ब्रह्मादिककीटपर्यंततिसकौंविसेषहो
वणेकीकामनाहोवै॥सोजन्मपावताहै॥अरज्ञानीकौंभोगोंकीइ
छाअरविशेषप्राप्तपावणेकीइछानहीहोती॥जिनकौंभोगोंकी
इछाहोताहै॥सोभोगकरआपकौंविसेषजानतेहैं॥अरअनिष्ट
कूंनिवर्तकीइछाहोतीहै॥अरज्ञानीकौंवासनांकोऊनहीहोती
जोएहविशेषताहैमेरेताईप्राप्तहोवै॥इसीतेंबहुडजन्मनहीं
पावता॥जैसेभुनाबीजउगावतानही॥तैसेवासनातेंरहितज्ञा
नीजन्मनहीपावता॥हेरामजीजन्मकाकारणवासनाहै॥जैसी
जैसीवासनाहोतीहै॥तैसीअवस्थाकौंप्राप्तहोताहै॥नानाप्रका

रकी वासनां है ॥ जब शरीर छूटणे का समा होता है ॥ तब जो
वासना धृड होती है ॥ जिसका सर्वदा अभ्यास होता है ॥ अंत
काल विषे सर्व वासना दिषाई देती हैं ॥ पाप की अरु तप की
कर्म की अरु देवत्यों की इत्यादिक वासना आगें आइ स्थिति
होता है ॥ तिस समें मन को मर्दन करके ॥ तुही भासती है ॥ हे राम
जी उस समें अगम्य गति पदार्थ होते हैं ॥ सो भी नहीं भासते ॥ पां
चो इंद्रीयों के विषय विद्यमान होवैं ॥ तो भी नहीं भासते ॥ उही
पदार्थ भासता है ॥ जिसका धृड अभ्यास कीया होता है ॥ वास
नां तो अनेक होती हैं ॥ अरु जो नसी वासना धृड होती है ॥ ति
सी के अनसार शरीर कौं धारता है ॥ जब देह छूटता है ॥ तब
महूर्त पर्यंत जड हुता रहता है ॥ सुषुपत की न्यांई ॥ तिस तें उपरां
त चेतनता होती है ॥ तब वासना के अनसार शरीर को देषता
है ॥ अरु जानता है ॥ जो इह मेरा शरीर है ॥ मैं उत्पति हूया हों ॥ ए
क ऐसे होते हैं ॥ अरु एक ऐसे होते हैं ॥ जो तहां तिसी क्षणों वि
षे जुगों कों अनुभवते हैं ॥ एक ऐसे होते हैं जो चिरकाल
पर्यंत जडी रहते हैं ॥ चिरकाल तें उनकों चेतनता फुरती है ॥ ति
सके अनसार संसार भ्रम कौं देषते हैं ॥ अरु एक संस्कार र
वान होते हैं ॥ तिनकों शीघ्र ही चेतन्यता होती है ॥ एक क्षणों तें
अरु जाणते हैं ॥ जो मैं उस ठौर तें मूया हों ॥ अरु इस ठौर आइ
जन्म्या हों ॥ इह मेरी माता है ॥ इह मेरा पिता है ॥ इह मेरा कुल है
इस प्रकार एक महूर्त विषे जानकर देषता है ॥ अरु बडी ब
डी कुल कौं देषता है ॥ इस प्रकार परलोक कौं देषता है ॥ अरु
यमराजा के दूतों कौं देषता है ॥ अरु जानता है ॥ मेरे तांई लीयें
जाते हैं ॥ अरु देषता है जो मेरे पुत्रों ने पिंड कीये हैं ॥ तिन कर
मेरा शरीर हूया है ॥ अरु दूत मेरे तांई ले चले हैं ॥ तब आगें ध
र्मराजा कौं देषता है ॥ तिसके निकट जाइ षडा होता है ॥ अरु पु
न्य पाप दोनों मूर्त धारकर इसके आगें स्थिति आन होते हैं ॥
तब धर्मराजा अंतर्यामी सो पूछता है ॥ जो इसने क्या कर्म की
ये हैं ॥ तब जो पुन्यवान होता है ॥ तब स्वर्ग भोग जो गायकर ब
ऊच योनी विषे डार देते हैं ॥ जो पापी होता है ॥ तब नरकों विषे
डार देते हैं ॥ इस प्रकार जन्मों कों धारता है ॥ सर्प की योनमों

कहताहै मैं सर्पहों ॥ बलद बांतर तितर मछ बगला गर्दभ
वलीवछ इत्यादिक योनीकों पावता है ॥ अरजानता है ॥ मैं
एही हों ॥ अकसमात्र काकतालीय योगकी न्याई कदाचित
मानुषशरीर पावता है ॥ अर माताके गर्भविषे जानता है ॥
जोई हां मैं जन्म लीया है ॥ इह मेरा माता है ॥ पिता तें उत्पति हू
या हों ॥ इह मेरा कुल है ॥ बहुड बाल्यतिकसता बालिकहो
ता है ॥ अरजानता है जो मैं बालिक हों ॥ बहुड योवन अव
स्था होती है ॥ तब जानता है जो मैं जुवान हों ॥ बहुड वृध होती
है ॥ तब जानता है ॥ मैं वृधि हों ॥ इस प्रकार काल बीतावता है ॥
बहुड मृत्यकों पावता है ॥ अर सर्प तोता तितर बांतर मछ
कछ वृक्ष पशु पंछी दैत देवता इत्यादिक जन्म धारता है
हे रामजी इत्यादिक जो जन्मक हे हैं ॥ तिन विषे घटीयंत्र की
न्याई फिरता है ॥ कबहूं उर्धकों कबहूं अधःकों जाता है ॥ अ
र स्वरूपके प्रमाद करि दुख पडा पावता है ॥ हे रामजी एता
विस्तार जो तेरे तांई कहा ॥ सो नीबाणया कछु नहीं ॥ केवल
अद्वैत आत्मा है ॥ चितके संयोग करि एते नाम देषता है ॥ वा
सनों द्वारा विवानों कों देषता है ॥ अर तहां जाता है ॥ महां आ
काश मों ॥ जैसे पवन गंधकों लेजाता है ॥ तैसे पुर्यष्टका इस
कों ले जाती है ॥ अर शरीरकों देषता है ॥ हे रामजी आत्मा तें
इतर कछु नहीं ॥ पर चितके संयोग करि एते नाम देषता है ॥
तातें चितकों स्थिर करो ॥ तब नाम मिट जावें ॥ अर आत्मत्व
मात्र शेष रहेगा ॥ सो शुध है ॥ अर आनंदरूप है ॥ तिस विषे
स्थिति होवो ॥ इति श्रीनिर्वाणप्रकर्णे विश्ववासनावर्न
ननाम सर्गः ॥११३॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी तुज कों
पूर्व प्रवितवाले का क्रम कहा है ॥ अब निवृतका क्रम सुण
जिसकों उत्तमका प्राप्त भई है ॥ अर आत्मपद प्राप्त नहीं भया
तिसके पाप तो सब दग्ध हो जाते हैं ॥ जब उसका शरीर छू
टता है ॥ तब वासनों के अनुसार संतन आकाश कूं या ॥ ब
हुड अपणे साथ शरीर देषता है ॥ बहुड बडे पलीक कों
देषता है ॥ तहां स्वर्गलोक के भोग सुष भोगता है ॥ विवान प
र चढता है ॥ लोकपालों के पुरों विषे विचरता है ॥ जहां मंद मं

द पवन चलता है ॥ सुंदर वृक्षों की सुगंध है ॥ पांचो इंद्री
यों के रमणीक विषय हैं ॥ तिन स्थानों विषे विचरता
है ॥ देवतों विषे क्रीडा करता है ॥ भोगों को भोग कर संसा ३५७
र विषे विचरता है ॥ बहुड़ जन्म का के कर्म को प्राप्त होता
है ॥ जैसे मार्ग चलता को नू सोइ जाता है ॥ जाग कर बहु
ड़ चलता है ॥ तैसे शरीर पाइकर बहुड़ जन्म का वे कर्म
को प्राप्त होता है ॥ जैसी जैसी भावना धरइ होती है ॥ तैसे हो
भासता है ॥ इह सब जगत संकल्प मात्र है ॥ संकल्प के
अनुसार ही भासता है ॥ वासना के अनुसार परलोक को
म सुष दुष देषता है ॥ तहां ते भोग कर बहुड़ संसार विषे
आन पड़ता है ॥ इसी प्रकार संकल्प कर पड़ा भटकता है
जब आत्मा की ओर आवता है ॥ तब संसार भ्रम मिट जा
ता है ॥ जब लग आत्मा की ओर नहीं आवता ॥ तब लग आ
प तो हो संकल्प कर संसार को देषता है ॥ अर जीव जीवृ
ति अपणी अपणी सृष्टि भासती है ॥ देवता दैत्य मनु लो
क स्वर्ग सिन संकल्प के रचे हूये हैं ॥ जेता कछु संसार भा
सता है ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र तें आदि लेकर सब जगत मनो
मात्र है ॥ मन के संकल्प ते उदे हूये हैं ॥ असत रूप हैं ॥ जै
से मनोराज गंधर्व नगर स्वप्न सृष्टि भ्रम रूप है ॥ तैसे इ
ह जगत भ्रम रूप है ॥ सभ जीवों की अपणी अपणी सृष्टि
है ॥ परस्पर अदृष्ट हैं ॥ उसकी सृष्टि कों उह नहीं जाणता ॥ क
हूं उदे होती भासती है ॥ कहूं लै हो जाती है ॥ जैसे पुरुष अव
र देश कों जाता है ॥ तैसे देह कों त्याग कर परलोक कों जा
ता है ॥ स्वरूप विषे आवणा जावणा ॥ अहं त्वं कल्पना को
नू नहीं ॥ केवल सत्ता समान अपणे आप विषे स्थिति है
जोतन तीउ ही है ॥ हे रामजी इह विश्व आतम स्वरूप है
जैसे मणी का चमत्कार होता है ॥ तैसे विश्व आत्मा का च
मत्कार है ॥ अर जो कछु तेरे तांई भासता है ॥ सो आत्मा है ॥
आभास आत्मा विना नहीं होता ॥ जैसे इक्षु विषे मधुरता
होती है ॥ अरमरच विषे तीक्षणता होती है ॥ तैसे आत्मा वि
ब विम्ब है ॥ जो कछु देषीता है ॥ श्रवण कीता है ॥ जो स्पर्श

199

करैं॥ सुगंध लेवैं॥ सो सर्वात्मा ही जाणे॥ अथवा जो इन
के जानणेवाला है॥ अनंत स्वरूप तिस विषे स्थित हो
इंद्रीयां अर विषय को छाद करे अनंत स्वरूप विषे॥
स्थित हो॥ हे रामजी इह विश्व संवित रूप है॥ अर संवि
त ही विश्वरूप है॥ जब संवित बहिरमुष होकर रस
लेती है॥ तब जाग्रत को देषता है॥ अर जब अंतरमुष
होकर रस लेती है॥ तब स्वप्न होता है॥ जब शांति हो
जाती है॥ तब सुषुप्त होती है॥ संसार को सत जाण कर
जो रस लेती है॥ बहिरमुष होइके॥ तब जाग्रत होता है
जब अंतरमुष रस को लेती है॥ तब स्वप्न होता है॥ अर
रस को लेकर जो स्थिति होती है॥ तब जडता अवस्था
होती है॥ अर जो संवित तें रस की सतता जाती रहे॥ तब
तुरीया पद होता है॥ इह जो इस को जानना करता है
इह पदारथ हैं॥ इह नहीं॥ इह जब नष्ट होवै॥ तब तुरीया
पद है॥ हे रामजी इह विश्व संवित मात्र है॥ जब संवित फु
रनी नष्ट होवै॥ तब विश्व देषीन ही जाती॥ जैसे स्वपन के
देषे काल पदारथ जागे तें मिथ्या होते हैं॥ तैसे इह जा
ग्रत जागते मिथ्या है॥ अर जीव अजीव प्रति अपणी
अपणी सृष्टि है॥ तिस विषे आपनी कछु बणाया है
तो ते दुषी होता है॥ जब इस अहंकार को त्याग अपणे
स्वरूप विषे स्थिति होवैं॥ तब विश्व कछू नहीं॥ इति
श्रीनिर्वाणप्रकर्णे सृष्टिनिर्वाणएकताप्रतिपाद
नं नाम सर्गः॥ ११४ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी इह
सृष्टि आकाशरूप संकल्प मात्र है॥ अर संकल्प जो आ
काशरूप है॥ आकाश अर सत विषे कछु भेद नहीं॥ जैं
से पवन अर स्पंद विषे भेद नहीं॥ कैसी सृष्टि है जो अ
नेक पदारथ हैं॥ परस्पर रोकती नहीं॥ अर वस्तु ते
विश्व आत्मा का चमत्कार है॥ अर आत्मरूप है॥ जो आ
त्मरूप है॥ तो राग किस विषे करीये॥ अर द्वेष किस विषे
करीये॥ ते तन्मयध्यान विषे कोट ब्रह्मांड स्थिति हैं॥ अर

इहां आश्चर्य है॥ जो आत्मा तें इतर कछु हूया है नहीं॥ अ
र भिन्न भिन्न संवित दृष्टि आवती है॥ अर तो नाप्रकार के प अर
दार्थ भासते हैं॥ हे रामजी पदारथ पदारथ प्रति जीव जी
व प्रति अपणी अपणी सृष्टि है॥ एक सृष्टि ऐसी है जो तिन
का संकल्प एक दृष्टि आवता है॥ पर सृष्टि अपणी अपणी जो
है॥ अर एक ऐसी हैं॥ भिन्न भिन्न पर समानता कर के एक
ही दृष्टि आवते हैं॥ जैसे जल की बूंद एक ही होती है॥ जैसे
धड़े के किणके भिन्न भिन्न होते हैं॥ अर एक ही धड़ दृष्टि आ है
वता है॥ जैसे नदी विषे नदी पड़ती है॥ तो एक जल हो जाता
है॥ समानाधिकरण करके एक ही भासते हैं॥ अर एक एक
के साथ मिलते नाहीं॥ पर नहीं मिलते जैसे क्षार समुद्र वि
षे घृत डारीये तो मिलते नहीं॥ तैसे एक संकल्प ऐसे हैं॥ जो
अवर साथ नहीं मिलते॥ जैसे एक सूर्य का प्रकाश होइ॥ अ
र एक दीपक का प्रकाश होइ॥ अर एक मणि का प्रकाश हो
इ॥ तब उह भिन्न भिन्न दृष्टि आवते हैं॥ अर एक जैसे होते हैं जैसी
तैसे एक सृष्टी एक ही भासती हैं॥ अर भिन्न भिन्न होती हैं॥
अर एक एक ही होती हैं॥ अर भिन्न भिन्न दृष्टि आवती है॥
हे रामजी एती सृष्टि जो मैं तेरे तांई कही है॥ सो सब अधिष्ठान
विषे संवित के कई कोट उत्पत्ति होती हैं॥ अर कई कोट
लीन हो जाती हैं॥ जैसे जल के बुदबुदे तरंग समुद्र तें उपज
कर लीन हो जाते हैं॥ अधिष्ठान जिउं का तिउं है॥ काहे तें जो अ
धिष्ठान तें इतर कछु नहीं॥ अर ब्रह्म आत्मा जो शुद्ध है॥ सो
ना फुनै विवेक रूप है॥ जब लग शुद्ध अर्थ की भावना है॥ त
ब लग भासते हैं॥ जब शुद्ध अर्थ की भावना निवृत्त हुई॥ तब
कोऊ न भासेगा॥ केवल शुद्ध चैतन्य मात्र ही शेष रहेगा॥ ब
हुड संसार का भाव किसी और न होवेगा॥ जैसे जब लग वा
इ चलती है॥ तब लग जानीती है॥ जो वाइ है॥ अर गंध भी जा
नीती है॥ जो वाइ कर सुगंध आई॥ अथवा दुर्गंधि आई सि ब
अर जब वाइ चलने तें रहित होती है॥ तब भासती नहीं॥ अ
र गंध भी भासती नहीं॥ तैसे ही जब फुरणे निवृत्त हुआ॥ तब
संसार अर संसार का अर्थ दोनों नहीं भासते॥ अर फुरनै विषे

जीव जीव प्रति अपणीं अपणीं सृष्टि है ॥ तिस सृष्टि सृष्टि विषे स
ता समान ब्रह्म स्थित है ॥ अरु सर्व का अपणां आप होकर स्थि
ति है ॥ द्वैत भाव को कदाचित प्राप्त नहीं भया ॥ हे रामजी तातें
ऐसे जान ॥ जो आकाश भी आत्मा है ॥ पृथ्वी भी आत्मा है ॥ ज
ल भी आत्मा है ॥ अग्नादिक सर्व पदार्थ आतमा ही है ॥ ऐसे जा
ण ॥ अथवा ऐसे जाण ॥ जो सर्व मिथ्या है ॥ इन का साक्षी भूत
सत ब्रह्म है अपणे आप विषे स्थित है ॥ इतर नहीं ॥ उसी ब्रह्म
विषे ऐसे तें अनेक सुमेर अरु मंद्राचल स्थित हैं ॥ अरु ऐ
सी भाव भी आत्मा विषे स्थूलता के निमित्त कहे हैं ॥ वास्तव
नहीं ॥ जनावणे के निमित्त कहे हैं ॥ आतमा एक रस है ॥ हे रा
मजी ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं ॥ जो आतमसत्ता बिना होवे ॥
जिस को सत जाणीता है ॥ सो भी आत्मा है ॥ अरु जिस को असत
त कहीता है सो भी आत्मा है ॥ आत्मा विषे जैसे सत का फुरनी
है ॥ तैसे असत का फुरनी है ॥ फुरनी दोनों का तुल्य है ॥ जैसे स्वप्न
विषे एक सत जाणीता है ॥ एक असत जाणीता है ॥ जो इंद्री
यों के विषय होते हैं ॥ सो सत जाणीते हैं ॥ आकाश फूल ससे
के सिंह को असत कहीता है ॥ सो सर्व अनन्भव कर फुरे हैं ॥
तातें अनन्भव रूप हैं ॥ अरु ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं ॥ जो आ
त्मा विषे असत नहीं ॥ जो कछु भासते हैं ॥ सो सत फुरने विषे फु
अरु ये हैं ॥ सत का अरु असत का ॥ सनमुख है ॥ फुरने के सत असत
की न्यांई हैं ॥ जो अनन्भव की सिध है ॥ सो सर्व सत है ॥ अरु अस
त अनन्भव तें इतर है ॥ सो सत असत हैं ॥ हे रामजी ऐसे गुणा
तीत परमात्मा स्वरूप विषे स्थित हो ॥ हे रामजी भूत भविष्यत
वर्तमान तीनौं कालौं विषे तीन भवन पुरुष सम हैं ॥ अरु द
शौं दिशा आकाश जल पृथ्वी इत्यादिक पदार्थ तिस
कौं सर्वात्मा ही दृष्ट आवते हैं ॥ आतमां ते इतर कछु नहीं
भासता ॥ चंद्र तारे सूर्य सर्वात्मा है ॥ इह विश्व आकाश रू
प है ॥ अरु शुध निर्मल है ॥ आकाश विषे आकाश स्थिति
है ॥ इतर कछु नहीं ॥ अरु जो तेरे तांई इतर भासे ॥ सो मिथ्या
है ॥ अरु जो परमार्थ कर देखें तो सर्वात्मा है ॥ इति श्री नि
र्वाण प्रकर्णे विश्व आकाश एकता प्रतिपादन नाम सर्गः

॥५५॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी इह जो विश्व है॥ सो स्वपन
समान है॥ जैसे स्वप्ने विषे नाना प्रकार देखीते है॥ हस्ती चलं
ते हैं इत्यादिक प्रगट भासते हैं॥ अरु आत्मा विषे इन का रूप दे
खणें अरु भानणा शब्द अर्थ कोउ नहीं॥ जागत ते रहित है॥ अ
रु जागत रूप भान होता है॥ अहंता अरु त्वंता आदिक ते रहित॥ अ
रु मेरा जेता कछु भासता है सो सन स्वप्नवत है॥ जो मकर कुं सि
ध्द कूया है॥ सर्व का अधिष्ठान है॥ सो सत है॥ सर्वात्मा सी विषे क
ल्पित हैं॥ अरु जो अनन्य व कर देखीये तो सर्वात्म स्वरूप है॥ इ
तर देखीये सो कछु नहीं॥ जैसे स्वप्ने के देश काल पदार्थ सर्व
अर्थाकार भी भासते हैं॥ तोभी मिथ्या असत हैं॥ सो इह विश्व
जो मकर के फुरता है॥ उसकी अपेक्षा कर उह तत्व है॥ उसकी अ
पेक्षा कर तुहं अहं है॥ अरु दोनों नहीं जो है सो आत्मा ही है॥
श्रीरामोवाच॥ हे भगवन तुमो कहा जो त्वं आदिक अहं प्रजंत
सर्व स्वपन सेना की न्याई है॥ मिथ्या हैं॥ अरु अनन्य व कर देखी
ये तो आत्म रूप है॥ हम स्वपन सेना विषे हैं॥ अथवा हमारा
अहं आत्मा है॥ सो कहो॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी जो अ
नाना देहादिक विषे अहं भावना करणी मैं हों॥ तो स्वप्न सेना
के तुल्य है॥ अरु जो अधिष्ठान विषे दृश्य तें अरु अहंकार ते
रहित अहं भावना करणी चिन्मात्र विषे॥ तब आत्म स्वरूप है
हे रामजी तूं आत्म स्वरूप हैं॥ अरु इह विश्व सत भी नहीं॥ अरु
असत भी नहीं॥ जो अधिष्ठान रूप कर देखीये तो आत्म स्वरूप
है॥ जो अधिष्ठान तें रहित देखीये तो मिथ्या है॥ इह अधिष्ठान
शुध है॥ चित तें रहित चिन्मात्र है॥ अरु परब्रह्म है॥ आनंद रूप
है॥ तिस विषे अज्ञान कर के दृश्य देखीती है॥ जैसे असम्यक दृष्ट
क के सिपी विषे रूपा देखीये॥ तैसे अज्ञानी आत्मा विषे दृश्य को
देखता है॥ हे रामजी दृश्य अविचारित सिध है॥ विचार कीये तें
कछु वस्तु नहीं होती॥ जिसके आश्रे कल्पित है सो अधिष्ठान नहीं
सत होता है॥ जैसे सिपी के जाणे तें रूपे की बुधि जाती है॥ तैसें आ
तम विचारे तें विश्व बुधि जाती है॥ जैसे पवन कर के समुद्र विषे च
क तरंग उपजते हैं॥ अरु मृगतृष्णा भासते हैं॥ अरु विचार कीये तें च
कौं के भी समले विषे जल बुधि होती है॥ तैसे आतमा माहि पीजला

तैंमें
वांमतव

विषै मनके फुर्णे कर विश्वरूपी चक्र उपजते हैं ॥ विचार कायेतें तेरे
ताई मनके फुर्णे विषे भी आतमरूप भासेगा ॥ विश्वरूपी चक्र न
भासेगा ॥ भ्रम निवृत होजावेगा ॥ जो वस्त फुर्ने विषे उपजी है सो अ
फुरकर्के निवृत होजाती है ॥ इह विश्व अज्ञानकर्के उपजी है
अरु ज्ञानकर्के लीन होजाती है ॥ तातें विश्व भ्रममात्र जाणा ॥ श्री
रामोवाच ॥ हे भगवनजी तुम्हों कहा ब्रह्मा आदिक रुद्र पर्यंत
उत्पति करणें संहार करणेहारे जेते सर्व विश्व भ्रममात्र है ॥ ऐ
से ज्ञानणें कर क्या सिध होता है ॥ इह तो प्रतक्ष दुष दाइक भास
ता है ॥ जो देषीती है ॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥ हे रामजी जो कछु तु
म देषता हैं ॥ सो सर्व आत्मस्वरूप है ॥ इतर कछु नहीं सम्यक दृष्ट
कर्के ॥ अरु असम्यक दृष्ट कर्के विश्व है ॥ तो दृष्ट का भेद है
सम्यक असम्यक देषणें का अधिष्टान जिउ का तिउ है ॥ जै
से एक जेवडी पडी होइ ॥ अंधकार की उपाध असम्यक देष
णे कर सर्प हो भासती है ॥ अरु भय दाइक होता है ॥ जो प्रका
श कर सम्यक प्रकार देषीये तो जेवडी ही भासती है ॥ तैसे जो
आतमा को जानता है ॥ तिस कों दृस्य भी आतमरूप है ॥ अ
ज्ञानी कों विश्व भासता है दुष पावता है ॥ जैसे बालिक मूरष
अपणे परछावें विषे बैताल कल्पकर भय पावता है ॥ अपणे
न जानणें कर दुष पावता है ॥ जो जानें मेरा ही परछावां है ॥ तो
भय किस निमित पावे ॥ हे रामजी अपणें ही संकल्प कर आ
प बंधायमान होता है ॥ जैसे घराइण कीट अपणे बैठणे
का स्थान बणाय कर मुष भी मूंद लेती है ॥ अरु बीच ही फसा
यमान होती है ॥ तैसे अनात्मा विषे जो अहं प्रतीत करता है ॥ अ
र आपही दुष पावता है ॥ हे रामजी आपही संसारी होता है ॥
अर आपही ब्रह्म होता है ॥ जब दृस्य की ओर फुरती है ॥ तब सं
सारी होता है ॥ अर जब स्वरूप की ओर आवता है ॥ तब ब्रह्म
त्मा होता है ॥ तातें जो तेरी इछा होइ सोई कर ॥ जो संसारी होव
णे की इछा होइ ॥ तो संसारी होइ ॥ अर ब्रह्म होवणे की इछा हो
इ ॥ तो ब्रह्म हो ॥ अर जो मेरा पासों पूछों ॥ तो दृस्य अहंकार कों त्या
ग कर ॥ आत्मा विषे स्थित हो ॥ विश्व भ्रममात्र है ॥ इहा पुरुषा

थिहै॥ संकल्पसाथसंकल्पकोंकाटऊ॥ जबबासतैंअंतरसुष
रूपातमतत्तहीभासेगा॥ इस्पुकीकल्पनामिटजावैगी॥ का
हेतैंजोआगेंभीनहीं॥ हेरामजीजोसतवस्तआत्माहै॥ अनेकज
तनकरीयेतौनाशनहींहोता॥ अरजोअसतअनात्माहै॥ ति
सकेनमितयतनकरीये॥ तौभीसतनहींहोता॥ जोसतवस्तहै
तिसकानासकदाचितनहीं॥ अरजोअसतहै॥ तिसकीस्थिर
तानहींहोती॥ असतवस्ततबलगभासतीहै॥ जबतिसकोनीके
प्रकारजान्यानहीं॥ जबविचारकरदेषीये॥ तबनासहोजातीहै
अविद्यकवस्तपदारथविद्याकरनष्टहोजातेहैं॥ जैसेस्वप्नेकी
सुमेरपर्वतसततहोवै॥ तबजागतविषैभीभासे॥ तातेहैहीनहीं॥
जोआगैतेंनष्टहोजाताहै॥ तैसेइहसंसारजोतेरेताईभासताहैसो
स्वरूपविषैज्ञानतैंनष्टहोजावैगा॥ अरजोहमकोंपूछोतोहमारे
ताईआत्मातेंइतरकछुनहींभासता॥ सर्वात्माहीहै॥ इहभीनहीं॥
जोइहजीवअज्ञानीहै॥ किसीप्रकारमोक्षहोवै॥ नहमारेताईज्ञा
नसाध्यप्रयोजनहै॥ नमोक्षहोवणेसाध्यप्रयोजनहै॥ काहेतैंजोह
मकोंसर्वात्माहीभासताहै॥ हेरामजीजबलगचेततहै॥ तबल
गमरताहै॥ अरजन्मभीपावताहै॥ अरजबजडहोताहै॥ तबअंत
कोप्राप्तहोताहै॥ अरमुक्तिहोताहै॥ चेतनकहीयेइस्पुकीओर
फुरनां॥ इसीकरजन्ममरनकेबंधनमेंआवताहै॥ अरजबइस्प
केफुरनेतैंजडहोताहै॥ तबमुक्तिहोताहै॥ इसकाहोवणाहीदुष
है॥ नहोवणांमुक्तहै॥ अहंकारकाहोवणांबंधनहै॥ अहंकारका
नष्टहोवणांमुक्तिहै॥ तातेंपुरुषप्रयतनएहीहै॥ जोअहंकारका
त्यागकरणां॥ अरचैतन्यघनब्रह्मअपणेआपविषैस्थितहोव
णां॥ जिसकोंसंसारहीकीसतभावनाहै॥ तिसकोंसंसारहीहै॥ ब्र
ह्मनहीं॥ अरजिसकोंब्रह्मभावनाहूई॥ तिसकोंब्रह्महीभासता
है॥ हेरामजीजद्यपिपातालजावै॥ अथवासवर्गपृथ्वीफिरे॥ आ
काशविषैदेवताऊकेस्थानफिरे॥ तोभीसुषकदूनपावैगा॥ अ
र॥ आत्माकादर्शनकदूनहोवैगा॥ काहेतैंजोअनात्माविषैअहं
कारकीयेतैंसुषकदूनहीं॥ अरजोआतमदर्शीहोइकरदेषेतो
सर्वात्माहीभासेगा॥ तातेंसर्वसंकल्पकोंत्यागकरआत्माविषै।
स्थितहो॥ इतिश्रीनिरवाणप्रकर्णेविश्वविलयनामसर्गः
॥११६॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हेरामजीइहसंसारसंकल्पमात्रहै

अरु तुछ है॥ पर्वत नदीयां देशकाल सर्व भ्रमकर सिध हैं॥ जैसे स्वप्ने
विषे पर्वत नदीयां देशकाल भासते हैं निद्रा दोष करके॥ अरु कछु या
कछु नहीं॥ तैसे अज्ञान निद्राकर इह संसार भासता है॥ हे रामजी जा
गकर देखे तो संसार है नहीं॥ इसका तरणा महासुगम है॥ अरु सुमेर
पर्वतादिक जो भासते हैं॥ सो कमल की न्याई कोमल हैं॥ जैसे कमल
के मलने विषे जतन कछु नहीं॥ तैसे इह कोमल निवर्त होते हैं॥ अरु
आकार जो भासते हैं अज्ञानी सो इनको स्थूल दृष्टि है॥ आकार ही
को देख रहे हैं॥ जैसे पवन का चलना जाना जाता है॥ अरु चलने ते ज
ब रहित होता है॥ तब मूर्ख की गम्य नहीं जो निराकार को जाने॥ तैसे
अज्ञानी आकार को जानते हैं॥ अरु इस विषे जो निराकार स्थित है
तिसको नहीं जानते॥ जैसे पवन फुरता है तो उही है जब ठहिर रहा है
तो भी पवन है॥ तैसे विश्व फुरता है तब भी आत्मा है॥ अफुर विषे भी
उही है॥ तांते विश्व भी आत्मरूप है॥ इतर कछु नहीं॥ जो सम्यक दर्शी है
तिसको फुरने विषे भी आत्मा भासता है॥ जैसे स्पंद अस्पंद रूप पव
न ही है॥ तैसे ज्ञानी को सर्वदा एकरस है॥ जैसे रत्न विषे पिशाच बु
धि बालिक करता है॥ तैसे आत्मा विषे जगत बुधि अज्ञानी करती है॥
जैसे नेत्र दोष करके आकाश विषे तिरवरे भासते हैं॥ तैसे मन के
फुरणे कर जगत भासता है॥ हे रामजी जैसे वाइका रूप कदाचित
नहीं॥ तैसे जगत के रूप का अत्यंताभाव है॥ जैसे मारूथल विषे ज
ल का अभाव है॥ तैसे आत्मा विषे जगत का अभाव है॥ हे रामजी दे
वता यक्ष सुमेर पर्वत अरु राहे स आकाश पाताल इत्यादिक ये
सब लोक अनेक एकठे कर विचाररूपी कंटे विषे पाये॥ अरु पा
छे अर्धरती पाई॥ तो भी पूरे नहीं होते॥ काहेते जो है नहीं॥ अविचा
रितसिध हैं॥ स्वप्न के पर्वत जो पंकूयें चावल प्रमाण नहीं रहते
षकते हैं॥ काहेते जो हैं नहीं॥ भ्रममात्र हैं॥ हे रामजी इस संसार की भावना मूर्ति
जैसे जो अनात्मदर्शी पुरुष हैं॥ तिनको ऐसे जाणो जै
से लुहार की खलो ते पवन निकसता है॥ तैसे तिस पुरुषों के स्वास
वृथा आवते जाते हैं॥ जैसे आकाश विषे अंधेरीयां व्यर्थ उठती हैं
तैसे तिस पुरुषों का जीवणा॥ अरु चेष्टा सब व्यर्थ है॥ अरु वह आत
मघाती हैं॥ अपणा आप ही नाश करते हैं॥ उनकी चेष्टा दुख के निमि
त है॥ हे रामजी इह अपणे अधीन हैं॥ जो इसका और होता है॥ तो

संसारी होता है ॥ अर जो अंतरमुष होता है ॥ तब सर्वात्मा ही है ॥ अ
र इह संसार मिथ्या है ॥ न सत कहीये ॥ न असत कहीये ॥ जमक
के कृया है ॥ पूर्वला अरु भविष्यत काल अर वर्तमान काल वि
षे बंध होता है ॥ अर अग्नि सीतल है ॥ अर आकाश पाताल वि
षे होइ ॥ अर पाताल आकाश विषे होता है ॥ अर तारे पृथिवी ऊ
पर हैं ॥ अर पृथिवी आकाश ऊपर स्थी होती है ॥ अर बादरों बि
नो मेघ भी वर्षता है ॥ ऐसे कौतक मैं देषता हों ॥ आकाश विषे
मैं हल फिरते देषता हों ॥ हे रामजी इस विषे आश्चर्य कछु नहीं
मन कर कै सभ कछु होता है ॥ जैसा मनोराज कीया तैसा आगे
स्थिति होती है ॥ सिध होता है ॥ पर्वत भिछ्या मांगते फिरते हैं ॥ पुरु
विषे सिंह की न्यांई ॥ अर बलोंडे उडते फिरते हैं ॥ अर बालूं
ते तेल निकसता है ॥ अर मृतक युध पडे करते हैं ॥ अर मृग गा
वते हैं ॥ अर बेन नृत्य करते हैं ॥ हे रामजी मनोराज करके सभ क
छु बणता है ॥ चंद्रमा की किरणों साथ पर्वत भसम होते नीजा
नीते हैं ॥ इस मों क्या आश्चर्य है ॥ इह संसार भी तैसे मनोराज है
तीव्र संवेग है ॥ तातें इस को सत मानीता है ॥ अर आगें जो कहे वा
ले तेलादिक ॥ तिस को सत नहीं जानीता ॥ काहे तें जो उस विषे
मंद संवेग है ॥ अर दोनों तुल्य ही हैं ॥ हे रामजी जिन कों सत कही
ता है ॥ अर जिन कों असत कहीता है ॥ सो आत्मा विषे दोनों न
हीं ॥ इह जो तेरे ताईं पदारथ सत भासते हैं ॥ तब अग्नादिक
सीतल भी सत हैं ॥ अर जो इह मिथ्या भासते हैं ॥ तो उह भी मिथ्या
हैं ॥ तीव्र संवेग जब दूर भया ॥ तब सभ मिथ्या मानीते हैं ॥ जैसे स्व
प्ने तें जाग्या ॥ तब स्वप्न को मिथ्या कहीता है ॥ अर जाग्रत कों सत
कहीता है ॥ दोनों मनोराज हैं ॥ हे रामजी जेते कछु आकार द्रिष्टि आ
वते हैं ॥ सो मिथ्या जान ॥ न तूं हैं ॥ न मैं हों ॥ न इह जगत है ॥ परमार्थ
सत्ता ज्यों की त्यों है ॥ तिस विषे अहंत्व का उथान कोऊ नहीं ॥ केव
ल शांत रूप है ॥ आकाश रूप है ॥ अर निराकार रूप है ॥ जिस
विषे दूसरा कोऊ नहीं ॥ केवल अपणे आप विषे स्थिति है ॥ जैसे
बालिक मृतका के हस्ती घोरे मनुष बनावता है ॥ अर नाम क
ल्पता है ॥ इह राजा है ॥ इह हस्ती है ॥ इह घोरा है ॥ सो मृतका तें इत
र कछु नहीं ॥ अर बालिक के मन विषे उनके नाम भिंन भिंन

तीव्र संवेग
अर मंद संवेग
का भेद है

घट होते हैं ॥ तैसे बालिक रूप मन नाना प्रकार संज्ञा कल्पता है
अरु आत्मा तें इतर कछु नहीं ॥ तातें नय किसका कर्ता हैं ॥ तूं नि
रनय होइ ॥ तेरा स्वरूप शुध है अरु निरनय है ॥ अविद्या अ
रु तिसके कार्य तें रहित है ॥ तिस विषे स्थिति हो ॥ इह संसार तेरे
फुरने विषे हूआ है ॥ आत्मा न सत कहीये ॥ न असत कहीये ॥ न
जड कहीये ॥ न चैतन्य कहीये ॥ न प्रकाश है ॥ न अंधकार है ॥ न
सून है ॥ न असून है ॥ अरु शास्त्रों जो विभाग कहे हैं ॥ इह जड है
इह चैतन्य है ॥ सो इस जीव के जगावने निमित कहे हैं ॥ आत्मा
विषे वास्तव संज्ञा को कुछ नहीं ॥ केवल आत्मत्व मात्र है ॥ इस कौ
कलना त्याग कर आत्मा विषे स्थिति होवो ॥ जैसा आदि स्था
वर जंगम सर्व कलना मात्र है ॥ इस विषे का आस्याकरणी ॥ सं
सार के भाव अभाव दोनों तुल्य हैं ॥ फुरना जैसा भाव का है ॥ तैसा
अभाव का है ॥ स्वरूप विषे दोनों का तुल्यता है ॥ अरु विहार
काल विषे जैसा है ॥ तैसा ही है ॥ तातें स्वरूप विषे स्थिति होकर
दृष्ट ॥ न कोऊ भाव है ॥ न कोऊ अभाव है ॥ सर्व मन के फुरने वि
षे हैं ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे विश्वगणन मवर्नं नाम स
र्गः ॥ ११८ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन नेम का का प्रसंग आई हो
चल्या था ॥ तिस विषे सारभूत कहा सो मैं जान्या ॥ अब नेम का को
विस्तार कहो ॥ अरु जोगी का शरीर जब छूटता है ॥ अरु स्वर्ग कूं
भोगों को भोग करि तिरता है ॥ तब बहुड उसकी क्या अवस्था हो
ती है ॥ सो कहो ॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥ हे रामजी जिस जोगी कूं भो
गों की वांछा होती है ॥ तब स्वर्ग कों प्राप्त होता है ॥ अरु भोगों कों भो
गता है ॥ जो उसकों अवर भी भोगने की इछा होती है ॥ तब पवि
त्र अरु धनवानों के ग्रह विषे आन प्राप्त होता है ॥ मध्यमंडल म
नुष्य लोक विषे ॥ जो भोगों की वांछा तिसकों अवर नहीं होती
तब ग्यानवानों के ग्रह विषे आइ प्राप्त होता है ॥ जन्म लेता है के
ते काल उपरांत तिसकों पिछला संस्कार आइ फुरता है ॥ (
तिस स्मरन कर के आत्मा की ओर आगे हो जाता है ॥ जैसे कोऊ
पुरुष लिखता हूआ सोइ जाता है ॥ जब जागता है ॥ तब उस लि
खे कूं देखकर बहुड आगे लिखता है ॥ तैसे उह जोगी पूर्व ले अ
भ्यास कूं पाइ कर दिन दिन बधावता जाता है ॥ अरु अभ्यासी

यरु का संग नहीं करती ॥ अरु जो चुगली तें आदि सर्व औगुण
हैं ॥ तिस कों त्याग जाते हैं ॥ दंभ अरु गर्भ राग अरु द्वेष जो गां
की द्रिढ मोह इह स्वभाविक तिस तें छूट जाते हैं ॥ अरु संतन कों
प्राप्त होता है ॥ अरु कोमलता दया तें आदि शुभ गुण स्वभावि
क आइ प्राप्त होते हैं तिस कौं ॥ हे रामजी इस निश्चे कों पाइ कै
र वर्नाश्रम के कर्म यथा शास्त्र तें करता हूया ॥ संसार समुद्र प्राप्त
के पार जाइ होता है ॥ निकट ॥ पार नहीं प्राप्त भया ॥ निकट प्रा
प्त भया ॥ इह भेद है ॥ सो तीसरी भूमका का है ॥ बहुड मोह कौं
नहीं प्राप्त होता ॥ जैसे चंद्रमा की किरणों कर दोचितत तप कों न
हीं प्राप्त होती थी ॥ तैसे ही तीसरी भूमका वाला जो संसार रूपी ग
र्त विषे नहीं गिडता ॥ हे रामजी इह सप्त ही भूमिका ब्रह्म रूप
हैं ॥ एता ही भेद है ॥ जो तीन भूमिका जाग्रत अवस्था है ॥ चतुर्थ
स्वप्न अरु पंचम सुषुप्त है ॥ छटवीं तुर्या सप्तम तुर्या अतीत
है ॥ हे रामजी प्रथम तीन भूमिका विषे संसार की सत्तता भा
सती है ॥ तां तें जाग्रत कही है ॥ अरु उत्तर चारों विषे संसार का
अभाव है ॥ तां तें जाग्रत तें विलक्षण है ॥ जाग्रत विषे घट प
टादिक सत्त भासते हैं ॥ घट घट ही है ॥ पट पट ही है ॥ अन्य
था नहीं ॥ अपणे अपणे कार्य सिध करते हैं ॥ तां तें अपणे
काल विषे जिउ के तिउ हैं ॥ इसी प्रकार सर्व पदार्थ हैं ॥ स्था
वर जंगम कों जानता है ॥ नाम रूप कर ग्रहण करता है ॥ अरु
तिन्हें विषे राग द्वेष नहीं धारता ॥ जो विचार कर तुछ जाने है ॥
जो संसार का असत्त भाव नहीं जान्या ॥ अरु ब्रह्म स्वरूप नी
नहीं जानता ॥ काहे तें जो उसकों स्वरूप का साक्षात्कार नहीं
प्राप्त भया ॥ जब स्वरूप कौं जाणे ॥ तब संसार का असत्ता भाव
होता है ॥ इन तीनों भूमिका कर तुछता होती है ॥ नष्टता नहीं हो
ती ॥ इनकों पाइकर जो शरीर छूटता है ॥ तब अवर जन्म विषे
उसकों ज्ञान उपजता है ॥ अरु दिने दिन विषे ज्ञान पराइण हो
ता है ॥ जब दृढ बुधि हूई ॥ तब ज्ञान उपजता है ॥ जैसे प्रथम बी
ज तें अंकुर होता है ॥ बहुड टास निकसते हैं ॥ बहुड फल फूल हो
ता है ॥ तैसे प्रथम भूमिका ज्ञान का बीज है ॥ दूसरी अंकुर है ॥ ती
सरी टास है ॥ चतुर्थ ज्ञान की प्राप्त होती है ॥ सो फल है ॥ प्रथम ती

नभूमिकावालाधर्मात्माहोताहे ॥ पुरुषोंविषेंश्रेष्टकालेंलक्षण
ताहे ॥ जोनिहंकारऽअरऽअसंगीधीरजीहोताहे ॥ जिसकीबुधि
तेंविषयोंकीविषमतांनिवर्तनईहै ॥ अरऽआतमपदकीइछाहै
सोपुरुषश्रेष्टकहीताहे ॥ अरप्रकितऽआचारविषेयथाशा
स्त्रविचरताहे ॥ शास्त्रमारिगतेंउलंघकदाचितनहींवर्तता ॥
शास्त्रमारिगकीमर्यादाकरऽअपणेप्रकितऽआचारविषेव
र्ततांसोपुरुषश्रेष्टहे ॥ श्रीरामोवाच ॥ हेभगवनपाछेंतुमों
कहा ॥ जोजबउहपुरुषशरीरछोडताहे ॥ तबएकमहूर्तविषे
षेउसकोंजुगव्यतीतहोताहे ॥ जैसेजन्मतेंऽआदिमृत्युपर्यंत ॥
जैसीकिसीकोंभावनाहोतीहे ॥ तैसाऽआगेंभासताहै ॥ सोएकम
हूर्तविषेयुगकैसेभासताहे ॥ सोकहो ॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥
हेरामजीइहजोजागतत्तीनोंकालभासताहे ॥ सोब्रह्मस्वरूप
हे ॥ इतरकछुनहीं ॥ सतासमानहीहे ॥ जैसेइक्षुविषेमधुरता
हे ॥ तैसेब्रह्मविषेजगतहे ॥ जैसेतिलोंविषेतेलहे ॥ तैसेब्रह्म
विषेजगतहे ॥ जैसेमर्चविषेतीक्षणताहे ॥ तैसेऽआत्माविषेज
गतहे ॥ जैसेतिलोंविषेतेलकहूंउनहोताहे ॥ कहूंविशेषहो
ताहे ॥ तैसेब्रह्मविषेजगतकहूंसतकहूंऽअसत ॥ कहूंजडक
हूंचेतन्य ॥ कहूंशुभकहूंऽअशुभ ॥ कहूंस्वर्गकहूंनर्क ॥ कहूंमृ
त्युकहूंजीवत ॥ ब्रह्माऽआदिकीटपर्यंतभावाभावरूपहोताहे
सोसतऽअसततेंविलक्षणहे ॥ आतमसतातेंसर्वसतहे ॥ अरभि
न्नकरदेखीयेतोऽअसतहे ॥ हेरामजीजिनकोंसतजानीताहे ॥ जिन
कोंऽअसतजानीताहे ॥ सोप्रगटपदार्थसतभासतेहे ॥ अरऽआ
कासफलादिकऽअसतभासतेहैं ॥ सोदोनोंतुल्यहैं ॥ जोविचारमा
नपदार्थसतमानीयें ॥ तोऽआकासफलभीसतमानीये ॥ जैंसे
स्वप्नविषेकेईपदार्थसतभासतेहैं ॥ केईऽअसतभासतेहैं ॥ तैं
सेजागतविषेभासतेहैं ॥ फुनंदोनोंकीसमानहे ॥ जैंसेसतपदा
र्थोंकीफुनीक्रियाहे ॥ तैसेऽअसतकीफुनींक्रियाहे ॥ जाग्रतेंसतऽअ
सतदोनोंकाऽअभावहोजाताहे ॥ तोतेइहविश्वभ्रमकोंसिध
हूईहे ॥ जैसेपवनकेजलविषेचक्रावर्तउठतेहे ॥ तैसेफुनें
करकेसंसारभासताहे ॥ इसकीभावनीत्यागकरस्वरूपविषे ।
ष्थितिहोवो ॥ अरपाछेंजोतुमप्रश्नकीया ॥ जोएकमहूर्तविषे

जगकैं से भासता है ॥ तिसका उत्तर एह है ॥ जैसे किसी पुरुषकौ स्व
प्न आवता है ॥ तो एक क्षण विषे वृद्धा काल भीता भासता है ॥ अ
वरका अवर भासता है ॥ आश्चर्य तो कछु नहीं ॥ मोह ते सभ कु
छु उत्पत्ति होता है ॥ भ्रम कर कै कछु का कछु द्रिष्ट आवता है ॥ हे
रामजी जो पुरुष सोया है ॥ तो एक आपु ही होता है ॥ तिस विषे
नानाप्रकार जगत भासता है भ्रम कर कै ॥ तैसे स्वरूप के प्रमा
द कर कै केई भ्रम देषीते हैं ॥ स्वरूप के ज्ञान बिनां भ्रम का अं
त कछू नहीं आवता ॥ तातैं तूं अब रप्रत्म किसन मित कर्ता हैं ॥
एक चित्त कौं स्थिर कर देष ॥ न कोऊ संसार ही भासेगा ॥ न कोउ
म रूप ही भासेगी ॥ न कोऊ बंध ही भासेगा ॥ न कोऊ मुक्ति ही भासैगी
केवल आत्मा ही भासेगा ॥ जब संकल्प फुरता है ॥ तब आपकौं बं
ध जानता है ॥ संकल्प तें रहित मुक्ति जानता है ॥ अविद्या कर आ
प कौं बंध जानता है ॥ विद्या कर आपकौं मुक्ति जानता है ॥ अरु
आतम सरूप जिउं का तिउं है ॥ न बंध है ॥ न मुक्ति है ॥ न विद्या है ॥ न
अविद्या है ॥ केवल शांति रूप है ॥ तातें सर्वदा अरु सर्व ओर तें शु
द्ध ही है ॥ दूसरा कछु नहीं ॥ हे रामजी जब सरूप की भावनां दृढ़
तब संसार की भावनां जाती रहेगी ॥ एह सर्व दृश्य कलनां विषे
हैं ॥ एह पदारथ है ॥ एह नहीं ॥ आत्मा विषे कोऊ नहीं ॥ जैसे पव
न फुरनें अफुरनें विषे एक ही है ॥ तैसे विश्व चित्त का चमत्कार है ॥
ब्रह्मा आदि चींटी पर्यंत ब्रह्म सत्ता ही अपणे आप विषे स्थि
त है ॥ अरु आतमा के आभास सर्व दृष्ट फुरते हैं ॥ आत्मा फुरनें अ
फुरनें विषे सम है ॥ काहे तें जो दूसरा कोऊ नहीं ॥ हे रामजी जो ब्रह्म स
त्ता ही है ॥ तो इह प्रश्न क्या है ॥ आकाश क्या है ॥ पृथ्वी क्या है ॥ मैं क्या
हौं ॥ इह जगत क्या है ॥ इह प्रश्न बणते ही नहीं ॥ एक मन कौं स्थिति
कर देष ॥ जो ब्रह्मा आदि चींटी पर्यंत कछु भी पदारथ भासें ॥ तब
प्रथम करनीये ॥ तातें इह पदारथ भ्रम कर कै भासते हैं ॥ जैसे दूसरा
चंद्रमा भासता है ॥ तैसे जगत भ्रम कर कै भासता है ॥ रूप अवलोक
मनसकार इन के जो दृष्ट हैं ॥ सो कलनां विषे फुरते हैं ॥ रूप कही
ये दृश्य ॥ अवलोक कहीये इंद्रीयां ॥ अरु मनसकार कहीये मन
का फुरनां ॥ सो सर्व मिथ्या हैं ॥ आत्मा विषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी आका

सादिक जो पदारथ हैं ॥ सो भावनां विषे स्थित हूये ॥ जैसी भावनां
करीती है ॥ तैसा पदारथ सिध होता है ॥ अरु दृष्ट आवता है ॥ ज
ब संसार की भावनां उठ जावे ॥ तब पदारथ को भासे नहीं ॥ हे
रामजी सुषुप्त विषे भी इसका अभाव हो जाता है ॥ जो तुर्यापद विषे
कैसे भान होवे ॥ जब स्वरूप तें गिडता है ॥ तब इसको संसार भान
होता है ॥ अरु संसार विषे वासनां करके घटीयंत्र की न्यांई फिरता
है ॥ प्रमाद करके अब लग वहता जाता है ॥ प्रमाद कहीये स्वरूप
तें उतिरक कर अनात्मा विषे आत्म अभिमान करणां ॥ जो मैं हों सो
अज्ञान है ॥ तिसकर के दुष पावता है ॥ जब अज्ञान नष्ट होजावे ॥ त
ब संसार शब्द अरु तिस के अर्थ का अभाव हो जाता है ॥ अहंक
र तें संसार होता है ॥ संसार का बीज अहंकार ही है ॥ अहंकार क
हीये अनात्मा विषे अभिमान करणां ॥ हे रामजी आत्मा शुध है
अहंकार के उथान तें रहित है ॥ केवल शांतरूप है ॥ अरु विश्व
भी तुही स्वरूप है ॥ इसकी भावनां विषे दुष है ॥ इह संवित शक्ति
आत्मा के आश्रै फुरती है ॥ जैसे तेल की बूंद जल विषे डारीये
तौ चक्र की न्यांई फिरती है ॥ तैसे संवित शक्ति आत्मा के आश्रै
फुरती है ॥ अरु ब्रह्म एक स्वरूप है ॥ तिसका स्वभाव असा है ॥ जै
से मोर का अंडा है ॥ अरु तिसका वीर्य एकरूप है ॥ अरु अपने
स्वभाव करके वीर्य ही नाना प्रकार के रंगों को धारता है ॥ तो भी मो
र तें इतर कछु नहीं ॥ तैसे विश्व संवित स्वभाव करके नाना प्रका
रों को धारता है ॥ असे दृष्ट आवता है ॥ अरु आतमा तें इतर क
छु नहीं ॥ आतमसरूप है ॥ सम्यकदर्शी कौं नाना प्रकारों विषे
एक आतमा ही भासता है ॥ अरु अज्ञानी कौं नाना प्रकार का ज
गत भासता है ॥ हे रामजी ब्रह्मरूपी एक सिला है ॥ तिस विषे त्रि
लोकी रूपी अनेक पुतलीयां भासती हैं ॥ जैसे एक सिला विषे सि
लपी अनेक पुतलीयां कल्पता है ॥ जो एती पुतलीयां इस विषे है
सो उसके चित विषे हैं ॥ सिला विषे कूया कछु नहीं ॥ तैसे चितरू
पी सिलपी आतमारूपी सिला विषे पदारथरूप पुतलीयां क
ल्पे हैं ॥ सर्व आतमरूप हैं ॥ तां ते पदार्थों की भावनां त्याग कर आ
त्मा विषे स्थित होवो ॥ अरु इह संसार भी निर्वाण है ॥ कांहें ते जो

अस्म ही है ॥ ब्रह्म तें इतर कछु नहीं ॥ न कोऊ उपजता है ॥ न बिनसता है
कदाचित ॥ जिंउ का तिंउ आत्मा ही स्थित है ॥ इति श्री निरवाण
प्रकरणे जगत अभाव प्रतिपादनं नाम सर्गः ॥ ११८ ॥ श्री रा
मोवाच ॥ हे भगवन संसार का बीज अहंकार कह्या ॥ इसका
पिता अहंकार है ॥ तौ संसार मिथ्या अविद्यमान विद्यमान जो भा
सता है सो भ्रम कह्या ॥ जो भ्रम है तौ लोक अरु शास्त्र श्रुति स्मृ
ति कहते हैं ॥ जो इसका शरीर पिंडा कर्के होता है ॥ जो पिंड कर
होता है ॥ तौ तुम किंउ भ्रम कर्के कहते हो ॥ अरु जो भ्रम है तौ लो
क शास्त्र श्रुति स्मृति किंउ पिंडा कर्के कहते हैं ॥ इस मेरे संशय
को नाश करो ॥ श्री वशिष्ठो वाच ॥ हे राम जी जो मेरा कह
णा है सो सत है ॥ तैसे ही है ॥ अरु ब्रह्म विषे ब्रह्मत्व स्वभाव है ॥
अरु जगत विषे जगत का लक्षण तीउ ही है ॥ हे राम जी आदि
जो कचन कह्या है ॥ चित्त शक्ति फुरी है ॥ सो ब्रह्मा कह्या है ॥ तिस वि
षे मनोराज पदार्थों का कह्या है ॥ इह अमुक आकाश है ॥ पव
न है ॥ इत्यादिक इह कर्तव्य है ॥ इह नहीं कर्तव्य ॥ इत्यादिक इह
सत्त है ॥ इह जव है ॥ जब लग मनोराज है ॥ तब लग सर्व मर्या
दा ऐसे ही है ॥ वेदुउ ब्रह्मा विषे ऐसे कह्या ॥ जो जगत की मर्यादा
के निमित्त वेद कहता है ॥ जो इह पदार्थ पुन्न है ॥ इह अपुन्न
है ॥ हे राम जी आत्मा विषे द्वैत कछु नहीं ॥ तौ भी माया जगत को ल
विषे मर्यादा है ॥ जो मर्यादा न होवे तौ ऊर्ध्व अधः अरु नीच ऊ
च के वचन कहे ॥ इह मर्यादा भी वेद विषे है ॥ नेतु निषेध कह्या है ॥ अर
जो इह पुन्न कर्म है ॥ इसके कीये तें स्वर्ग सुख भोगता है ॥
इह अपुन्न कर्म है ॥ इनके कीये तें नर्क दुःख भोगीता है ॥ हे राम
जी जैसे वेद विषे निषेध कीया है ॥ तैसे इह पुरुष अपनी वासनां
के अनुसार भोगता है ॥ हे राम जी इह चित्त शक्ति नेत होइ कर
ब्रह्मादिकों विवेक फुरा है ॥ परंतु उनको सदा स्वरूप विषे निश्चै है ॥
तातें इह बंधायमान नहीं होते ॥ अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्र ने इह वे
द मार्ग धारा है ॥ जो जैसा कोऊ कर्म करे तैसा फल देते हैं ॥ इह
वेद सर्व कीनेत है ॥ हे राम जी जिस पुरुष को संसार की सतता ध
उनी है ॥ जैसे पुन्न अथवा अपुन्न कर्म करते हैं ॥ तैसे ही शरी
र को धारते हैं ॥ इस विषे संशय नहीं ॥ अरु जो शास्त्र मर्यादा को

उलंघ वर्तते हैं ॥ अपणी इछा कर सो शरीर त्याग कर कोउ का
ल मूर्छा हो जाते हैं ॥ मरने विषे जाग कर बडे नर्क कों चले जा
ते हैं ॥ आतमज्ञान बिना ॥ अर जिसको सून भावना भई है ॥ अ
गे नर्क स्वर्ग को उ नहीं ॥ लोक परलोक के भय को त्याग कर जो
शास्त्र बाह्य वर्तते हैं ॥ ते मनुष्य कर पथर वृक्षादिक जडयोन
को पावते हैं ॥ फेर चिर तें उनकी वासना प्रणमती या हैं ॥ फेर दु
ष भागी होते हैं ॥ अर जिसको आतम भावना हूई ॥ अर संसार
की भावना निवृत्त भई ॥ सो शास्त्र विहित करें ॥ अथवा अविहि
त करें ॥ तिसको बंधन को उ नहीं ॥ हे रामजी चित रूप भूम है
तिस विषे जैसे निश्चे रूपी बीज बोवीता है ॥ तैसा ही को लगे कर
उगमता है ॥ इसमों संशय नहीं ॥ तातें तूं आतम रूपी बीज ॥ कोंबीज
जो सर्वात्मा है ऐसी भावना करें ॥ तब शीघ्र ही आतमा भासे
गा ॥ अर जिनको संसार का निश्चे हूया है तिनको संसार है
हे रामजी जो पुरुष धर्मात्मा है ॥ तिनको भी उसी वासना के अ
नुसार भासता है ॥ सो धर्मात्मा भी दो प्रकार के हैं ॥ एक सकामी है
एक निहकामी है ॥ जो धर्म कर्ते हैं ॥ पाप रूपी कर्म नाश हित हैं ॥
ते स्वर्ग भोग भोग कर बहुड गिर्डते हैं ॥ अर जो निहकाम है ॥
ईश्वर अर्पण कर्म कर्ते हैं ॥ तिनका अंतहकर्ण शुध होता है
बहुड ज्ञान की प्राप्त होती है ॥ इह भी संसार विषे मर्यादा है ॥ जै
सा जैसा किसी को निश्चा होता है ॥ तैसे संसार को देषता है ॥ पि
छें कर भी शरीर होता है ॥ काहे तें जो इह भी आदि नेत विषे
निश्चा हूया है ॥ जैसे आदि नेत विषे निश्चे हूया है ॥ तैसे होता
है ॥ जो पवन है सो पवन ही है ॥ जो अग्नि है सो अग्नि ही है ॥ इ
स प्रकार कल्प पर्यंत जैसे मनो राज हूया है ॥ तैसे ही स्थित
है ॥ जैसे जल नीचे ही को जाता है ऊचे नहीं जाता ॥ तैसे जो आदि
कथन हूया है ॥ सो उस विषे निश्चे हूया है ॥ कल्प प्रजंत तैसे ही
है ॥ हे रामजी जगत विवहार विषे तो ऐसे ही है ॥ अर परमार्थ तें
दूसरा कछु हूया नहीं ॥ इस जीव ने आकाश विषे मिथ्या देह
रची है ॥ परमार्थ तें केवल निराकार अद्वैत आत्मा है ॥ शरीर
इसके साथ है नहीं ॥ तातें जगत कैसे होवै ॥ इति श्री निर्वाण
प्रकर्णे पिंड निर्णय नाम सर्गः ॥ ११९ ॥ श्री वसिष्ठ उवाच

हे रामजी तेरे प्रश्न करणे क इतिहास है॥ बृहस्पति अर बल
राजे का सो श्रवण कर॥ अथ कथा बृहस्पति अर बल रा (अर)
को लिख्यते॥ जब षट कल्प व्यतीत भये थे॥ दूसरे आर्ध के
तिस छीवें दिन के युग विषे राजा बल होता भया था॥ सो कैसा
था आक्रम की मूर्ति था॥ तिस राजा बल ने संपूर्ण देवते अर राह
सुरू कों जीतकर अपणे वस कीया॥ इंद्रपती आज्ञा तिस पर
चलाई॥ अर राजा हूया॥ अर इंद्र कों भी जीत अपणे वस की
या॥ अर संपूरण ईश्वर्य तिस का एक नगर की न्याई ले लीया
तब देवताऊं किंनरों पर तिन की आज्ञा चली॥ अर स्नू चक्रली
या॥ जब सत्त्व को ले लीया॥ तब धर्माचार को ग्रहण कीया॥ जैं
सधर्मात्मा का आचार है॥ सो ग्रहण कीया॥ एक समें सर्व सत्ताबे
गी है॥ अर इह कथा चली जो जन्म कैसे है॥ अर मृत्यु कैसे होत
है॥ तब राजा बल ने बृहस्पति देवगुरु सों प्रश्न करते भया॥ हे भ्रा
लणे एह पुरुष जब मृत्यु होता है॥ तब शरीर रतो नस्मीलत
शांत हो जाता है॥ बऊड़ कर्मों के फल कैसे भोगता है॥ अर शरी
॥ बृहस्पतोवाच॥ हे रा सो कहो॥ सो कहो॥ बृहस्पतोवाच॥ हे रा
र बिनां आवता जाता कैसे है॥ सो कहो॥
जन इस जीव कों देह है नहीं॥ जैसे मारूथल विषे जल भासता है
अर है नहीं॥ तैसे इस साथ शरीर भासता है॥ अर है नहीं॥ इह जी
व न जन्मता है॥ न मरता है॥ न नस्म होता है॥ न जल के दुषी होता है
तन तें तु तइ ह सदा अचुत रूप स्वरूप के प्रमाद तें दुषी आप कों
जानता है॥ जो मैं इन कों भोगता हों॥ अर मैं जन्मा हों॥ एता काज रहे
गा॥ इह मेरी माता है॥ इह पिता है॥ मैं इन तें उत्पति हूया हों॥ बऊड़
आप कों मृत्यु हूया जानता है॥ हे राजन नखमृक कैं अैसे देषता है
जैसे निद्रा नृमक रस्वपने विषे देषीता है॥ तैसे अज्ञान कर के इह
जीव मानता है॥ जब मृत्यु होता है॥ तब जानता है॥ जो मेरा शरीर पि
टो कर हूया है॥ अब मैं दुष सुष को भोगोंगा॥ जैसे स्वप्ने विषे अका
श रूप होता है॥ तहां वासना कर अपणे साथ शरीर देषता है
अर सुष दुष कों भोगता है॥ तैसे मृतक अपणे साथ शरीर देष
ता है॥ अर दुष सुष का भागी होता है॥ अर परमार्थ तें इस के साथ श
रीर नहीं॥ तो जन्म मृत्यु कैसे होवे॥ स्वरूप के प्रमाद कर के देह धारी की
न्याई प्रतीति हूया है॥ तिस देह साथ मिल कर जैसी जैसी भावना कर
ता है॥ तैसा फल भोगता है॥ वासना के अनुसार जैसी इस कों भावना

होती है ॥ तैसा आगे शरीर देषता है ॥ अर पंचभूत तक संसार को देष
ता है ॥ इस प्रकार भ्रमता है ॥ अर जन्मता मरता आप कों देषता है ॥
जैसे समुद्र तें तरंग उठते हैं ॥ अर मिट जाते हैं ॥ तैसे शरीर उपजता है
अर मिट जाता है ॥ शरीर के संबंध करके उपजता अर बिनसता भा
सता है ॥ इह आश्चर्य है ॥ जो आत्मा ज्यों का त्यों सुत्रा विकल्पित है ॥ ति
स विषे वासनां के अनुसार विश्व कों देषता है ॥ हे राजन विश्व इसके
अंतर स्थिति है ॥ भावनां अनुसार आगे देषता है ॥ इस जीव विषे विश्व
है ॥ अर विश्व विषे जीव नहीं ॥ जैसे तिलों विषे तेल है ॥ अर तेल विषे
तिल नहीं ॥ जैसे सुवर्न विषे भूषण कल्पित हैं ॥ अर भूषणों विषे सुवर्न
कल्पित नहीं ॥ तैसे जीव विषे विश्व कल्पित है ॥ इसके आश्रय फुरती
है ॥ सो विश्व सत भी नहीं ॥ अर असत भी नहीं ॥ सत इसतें नहीं ॥ जो च
लरूप है इस्थिर नहीं ॥ अर असत इसतें नहीं ॥ जो विद्यमान भासती
है ॥ तातें इसकी भावनां त्याग ॥ इह मिथ्या है ॥ इह दृश्य भी मिथ्या है ॥ अ
र इसका अनुभव भी मिथ्या है ॥ अर इसके जानणे वाला जो अहंका
र जीव भी मिथ्या है ॥ जिसकों इह देषता है सो दृश्य भी मिथ्या है ॥ अहं
कार आत्मा विषे मारूथल के जल की न्याई मिथ्या है ॥ हे राजन ज
ब लग शास्त्र के अर्थ विषे चपलता है ॥ अर स्थिति तें रहित हैं ॥ तब
लग संसार की निवृत्त नहीं होती ॥ जब दृश्य के फुरणे अर अहंकार तें
जड होजावै ॥ तब इसकों आतमपद की प्राप्त होवे ॥ जब लग दृश्य की
ओर फुरता है ॥ चैतन्य है सावधान है ॥ तब लग संसार विषे भ्रमता
है ॥ हे राजन आत्मा न कछू जाता है ॥ न आवता है ॥ न जन्मता है ॥ न म
रता है ॥ जब चेतन अर चित का संबंध मिट जावै ॥ तब आनंदरूप ही
है ॥ चेतन कहीये दृश्य अर चित कहीये अहंकार संवित ॥ जब दो
नों का संबंध आप मों मिट जावैगा ॥ तब शेष आत्मा ही रहेगा ॥ सो
अलप है ॥ आत्मा है सोई शिवपद है ॥ जिस विषे वाणी की गम्य नहीं
सोई शेष रहेगा ॥ अर अनंतरूप निर्वाणपद है ॥ तिस विषे स्थि
त हो ॥ हे राजन जिस जुगत कर इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त होवै
सो जुगत श्रेष्ट है ॥ जब लग इसकों फुरनां फुरता है ॥ जो इह भाव है
इह अभाव है ॥ तब लग इसकों जीव संज्ञा है ॥ जब भावाभाव का फु
रनां मिट जावै ॥ तब जीव संज्ञा भी चलती रहे ॥ आतमपद जो है ॥
शिवपद ॥ तिसकों प्राप्त होवे ॥ तहां वाणी की गम्य नहीं ॥ इति श्री नि
र्वाणप्रकर्णे बनवृहस्पतिसंवादवर्णनं नाम सर्गः ॥ १२० ॥

॥श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी इस प्रकार जब जनराजा को बृहस्पति
ने कहा ॥ सो तेरे प्रश्न के उत्तर निमित्त मैं कहा है ॥ हे रामजी जब लि
ग इसके हृदे विषे संसार की सत्तता है ॥ तब जग जैसे कर्म करै
गा तैसा शरीर धारैगा ॥ हे रामजी जिस वस्तु को चित देषता है ॥
तिसकी ओर अवस्य जाता है ॥ उसके देषणे का संस्कार इसके
अंतर होता है ॥ इस प्रकार जिस पदार्थ को इस सत जान्या है ॥ ति
स तिस पदार्थ का संस्कार स्थित हो जाता है ॥ अर समें कर उह
संस्कार प्रगट होता है ॥ जैसे मोर के अंडे विषे शक्ति होती है ॥ ज
ब समा आया ॥ तब नाना प्रकार के वर्ण तिस विषे भासते हैं प्रग
ट ॥ तैसे जो चित का संस्कार है ॥ सो समे पाइकर जागता है ॥ हे राम
जी सो चित अज्ञान ते उपजा है ॥ तब बृहस्पति कहा ॥ हे राज
न बीज पृथिवी पर उपजता है ॥ आकाश विषे नहीं उगावता
जैसा बीज पृथिवी विषे बोवीता है ॥ तैसा ही फल होता है ॥ सोई
अहंरूप जो है ॥ अपणा होवणा सोई पृथिवी है ॥ जैसा जैसा भाव
ना कर कर्म करता है ॥ तैसा तैसा चितरूपी पृथिवी पर उत्पति
होता है ॥ बहुड़ उनके कर्मों के अनुसार शरीर को धारता है ॥ अर
शुभ अशुभ फलों को भोक्ता है ॥ अर ज्ञानवान जो है ॥ सो आकाशरू
प है ॥ आकाश विषे बीज कैसे उपजै ॥ बीज भावना कर के अज्ञा
नीरूपी पृथिवी विषे उपजता है ॥बलोवाच॥ हे देवगुरुजी
व भावै जीवता होवै ॥ भावै मृतक होवै ॥ इसको जो अनुभव होता
है ॥ सो आपनी भावना कीये ही होता है ॥ फिर जब इह मृतक हू
या ॥ अर इसकी पिंडादिक विषे भावना न हूई ॥ तो फेर इसका
शरीर कैसे होता है ॥ सुषदुष भोगणे वाला ॥बृहस्पतोवाच॥

अर जो होया तो
अकरतम [illegible] इह होया

हे राजन पिंडदानादिक इसका नहीं भी कीया ॥ अर इसके अं
तर भावना है ॥ तब भी उह जो विरोध भावता है ॥ सोई कर्मरूप है ॥
उसी कर भास आवता है ॥ अर जो इसके अंतर भावना न हो ॥ अ
र किसी बांधव इसके निमित पिंडादिक कीये ॥ तब भी इसको ना
स आवता है ॥ काहे तें जो उह भी इसकी वासना के स्पंद हैं ॥ हे राज
न अज्ञानी जो जीव हैं ॥ जिनको अनात्मा विषे आत्मबुधि है ॥ उस
के कर्म कहां गये हैं ॥ जो उह कर्म कर्ता है ॥ सोई कर्म उसके चितरू
पी जन्म विषे पड़े उगावते हैं ॥ उसकों शरीरों की क्या संख्या है ॥ अने
क वासनारूपी शरीर धारता है ॥ ज्ञान विनां स्वप्नवत ॥बलोवाच

हे देवगुरु इह निश्चय करके मैं जान्या है ॥ जो जिसकों निर्किंचित
की भावना होती है ॥ सो निर्किंचिंन पद को प्राप्त होता है ॥ अर
संसार की ओर ते सिलाकी न्याई हो जाता है ॥ जैसी जैसी इस
की भावना होती है ॥ तैसा स्वरूप हो जाता है ॥ जब संसार तें प
थर वत होवै ॥ तब मुक्ति होवै ॥ वृहस्पतीवाच ॥ हे राजन नि
किंचिन कैं जब जाणे ॥ तब संसार की ओर तें जड होता है ॥ रा
गद्वेष संसार का नहीं फुरता ॥ इसी का नाम जड है ॥ अर केवल
सार पद को प्राप्त होता है ॥ अर गुण इसकों न चलावैं ॥ तब जा
णीये जो निहिकिंचत पद विषे प्राप्त हूया है ॥ सोई मुक्ति है ॥ सं
देह नहीं ॥ हे राजन जब लग संसार की सतता चित विषे स्थित
है ॥ तब लग इसको वासना है ॥ जब लग वासना है ॥ तब लग
संसार है ॥ अर संसार के अभाव बिना इसकों शांत नहीं प्राप्त
होती ॥ सो स्वरूप के प्रमाद कर चित हूया है ॥ चित तें वासना हू
ई है ॥ अर वासना तें विघ्न हूई है ॥ तातें इस वासना को त्याग को
उपकरनां न फुरै ॥ निहिकिंचित भाव हो जाइ ॥ तब शांत भागी
होवै ॥ हे राजन जिस युक्त साथ जिस क्रम साथ इह निहिकिंचि
त रूप होवै ॥ सोई करै ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इस प्रका
र सुरपुर विषे सुरनाइक को सुरगुर कहा था ॥ सो मैं तेरे आगे
कहा है पिंडदानादिक का क्रम ॥ इति श्री निर्वाण प्रकर्णे ब
लवृहस्पतिसंवादे नाम सर्गः ॥ १२१ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे
रामजी भावे जीवता होवै भावें मृत्यु होवै ॥ जो कछु इसके चित्त सो
क्रिया पुण्य कर्म कीया होवैगा ॥ तिसका अनुभव अवश्य करैगा ॥ जैसे मो
र के अंडे विषे रस होता है ॥ उह समें कर विस्तार कों प्राप्त होता है ॥
सोई इसके जो अंतर वासना का बीज है ॥ जब उह प्रगट नहीं भी
भासता ॥ तो समें कर विस्तार मान होता है ॥ जब लग चित है ॥ तब
लग संसार है ॥ जब चित नष्ट हो जावै ॥ तब संसार भ्रम मिट जावै ॥
हे रामजी सो चित भी असत है ॥ अर विश्व भी असत है ॥ जैसे आ
काश विषे नीलता भ्रम करकै भासता है ॥ तैसे आत्मा विषे विश्व
भ्रम है ॥ हे रामजी हमारे ताई न चित भासता है ॥ न विश्व भासती
है ॥ मैं भी आकाशरूप हूं ॥ तुम भी आकाशरूप हो ॥ इह चितस्वरूप

कै प्रमाद कर के कह्या है ॥ जैसे जहां काजर होता है ॥ तहां स्यामता
होती है ॥ तैसे जहां चित होता है ॥ तहां वासना होती है ॥ जब ज्ञा
न रूप अग्नि कर वासना दग्ध होवे ॥ तब चित पद को प्राप्त हो
ता है ॥ अर जीव संज्ञा निवर्त होती है ॥ हे रामजी चित उपशम
का उपाइ मेरे ते श्रवण कर ॥ तिस कर चित क्षीण हो जावे
गा ॥ जो सप्त भूमका कहा है ॥ तिन कर चित नष्ट हो जावेगा ॥ ति
नउ विषे तीन भूमका तेरे ताई कही है क्रम कर के ॥ अस्वारक
हणी रहिती हैं ॥ हे रामजी जो तीन भूमका प्रथमो विषे ॥ एक ती
किसी को प्राप्त नई है ॥ सो तिसको महापुरुष जाण ॥ सो संसार ते
वैसा हो जाता है ॥ श्रवण कर ॥ मान अर मोह तिसके निवर्त हो जा
ते हैं ॥ अर सगा द्वेष उसको नहीं लागता ॥ अर तिस विषे विचार
स्थिति होता है ॥ अर तिसकी कामना सर्व नष्ट हो जाती है ॥ अर
राग द्वेष तिसको नहीं रहते सुषुप्त विषे ॥ ऐसा अमद पु
रुष अवे पद को प्राप्त होता है ॥ एते गुण तीसरी भूमका विषे
स्थिति हूये पाईते हैं ॥ अर चित नष्ट हो जाता है ॥ तब संसार
कहूं नहीं पाईता ॥ जैसे दीपक साथ देखीये तो अंधकार कहूं नहीं
पाईता ॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे चित्तनाशनावस्थितिपादने
नाम सर्गः ॥ १२२ ॥ श्री वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी जब तीसरी
भूमका धृढ पूर्न होता है ॥ अर धृढ अभ्यास कर के चौथी उदे होती
है ॥ तब अज्ञान नाश होता है ॥ अर संम्यक ज्ञान उदे होता है ॥ चि
त विषे ॥ तब पूर्नमासी के चंद्रमा की न्याई सोभा पावता है ॥ अर
आदि अंत ते रहित निर्विज्ञान चेतन्य तत विषे जोगी का चित्त
स्थिति होता है ॥ अर सर्व को सम देखता है ॥ जिस जोगी को चतुर्थ
भूमका प्राप्त होती है ॥ तिसका नाना प्रकार का भेद भाव निवर्त
हो जाता है ॥ अर अभेद सर्वात्मभाव उदे होता है ॥ अर जागत ति
सकों स्वप्न की न्याई भासता है ॥ अर इंद्रीयां का विवहार तिसका
सषुप्तवत हो जाता है ॥ जैसे अर्ध सुषुप्त जिसको होता है ॥ तिसकू
ल विषे षाण पीणा रस तें रहित होता है ॥ तैसे चतुर्थ भूमका वाले
का विवहार रस तैं रहित होता है ॥ जैसे सूर्य अपणे प्रकाश कर
प्रकाशता है ॥ तैसे तिसकों आत्मा का प्रकाश उदे होता है ॥ अर सर्व
कल्पनां तिसकी नाश हो जाती है ॥ न किसी पदार्थ विषे राग करता है
न किसी विषे द्वेष करता है ॥ संसार समुद्र विषे निबणे वाजे राग दो

षहैं॥ सुषदेणेवालेपदार्थविषेरागहोताहै॥ अरदुषदेणेवाले
विषेद्वेषहोताहै॥ सोरागद्वेषदोनोंकातिसकोंअभावहोजाताहै॥
तिसकरसंसाररसमुद्रविषेगोतेनहींषाता॥ तिसकेचितकोंको
उमोहितनहींकरसकता॥ हेरामजीजबजाग्रततीयभूमकाहो
तीहै॥ तबजगतउसकोंजाग्रतअवस्थाहोतीहै॥ जबचतुर्थभूमका
प्राप्तभई॥ तबजाग्रतस्वप्नकीन्याईहोजाताहै॥ सर्वजगतकोंषि
णभंगुरतासंवेतदेषताहै॥ द्रष्टादर्शनदृश्यभावनोंकाअभाव
होजाताहै॥ श्रीरामोवाच॥ हेभगवनजाग्रतस्वप्नसुषुप्तका
लक्षणमुजकोंज्योंकात्योंकहो॥ तुर्याअरतुर्यातीतभीकहो॥ बे
जोहैसोशिष्यकोंकहतेषेदवाननहीहोते॥ श्रीवशिष्टोवाच॥
हेरामजीजोतत्तकास्मरणहै॥ अरपदार्थोंकीभावनाहै॥ नाशवंत
पदार्थोंकोंसतकीन्याईजानणां॥ सोजाग्रतहै॥ जोपदार्थोंविषे
भावाभावकीसततताहोतीहै॥ जागतकोंमिथ्याभावनामात्रजान
णां॥ सोसुप्नाकहतेहैं॥ जाग्रतअरस्वप्नजिसविषेतुल्यहोजावे
सोसुषुप्तहै॥ जोज्ञानभावककैभेदोंकीशांतिहोजावे॥ जाग्रतस्व
प्नसुषोपतितीनोंकाअभावहोवें॥ ऐसीजोनिर्मलस्थितिहै॥ सो
तुर्याहै॥ हेरामजीअज्ञानीजीवजगतकोंवर्षाकालकेमेघकीन्यां
ईदेषतेहैं॥ जोतिसकोंमतछधूरहोयकरभासताहै॥ अरजिस
कोंचतुर्थभूमिकाप्राप्तभईहै॥ सोसरतकालकेमेघकीन्याईदेष
ताहै॥ अरजिसकोंपंचमभूमिकाप्राप्तभईहै॥ सोसर्तकालकेमेघ
कीन्याईनष्टहूयेदेषताहै॥ जोनिर्मलआकाशहोताहै॥ तैसेउस
कोंनिर्मलभासताहै॥ सोतीनोंकावृतांतसुण॥ अज्ञानीजगतको
जाग्रतकीन्याईदेषताहै॥ अरदृढसततोजगतकीउसकोंभास
तीहै॥ तिसकररागद्वेषउसकोंउपजताहै॥ अरचतुर्थभूमिका
वालासरतकालकेमेघकीन्याईदेषताहै॥ जोदृष्टआवताहै॥ अ
काहेतें
रवर्षानहींकरती॥ जैसेस्वप्नकाद्रिश्यहोताहै॥ तिसकोंसततोजग
तकोंनहींभासती॥ जोस्मृतिस्वप्नकीतिसकोंहोतीहै॥ स्वप्नकीन्याई
देषताहै॥ तांतेंतिसकोंरागद्वेषनहींउपजता॥ अरपंचमभूमिका
जिसकोंप्राप्तभईहै॥ सोजगतकोंसुषुप्तकीन्याईदेषताहै॥ जैसेस
र्तकालकामेघनष्टहूयाषंडनहींदेषीता॥ तैसेउसकोंसंसा
रकाभावनहींहोता॥ अरचेष्टाउसकीसुभाविकपडीहोतीहै॥ जैं

सेकमलस्वभाविकखुलजाताहे॥ अरस्वभाविकमूंदाजाताहै
तिसकोंयत्नकछुनहीं॥ तैसेउसकोंचेष्टाविषेयत्नकछुनहीं॥ जैं
सात्रतियोगीतिसकोंआइप्राप्तहूयास्वभाविकसोकतेहे॥ जैसे
कमलकेखुलणेकाप्रतियोगीसूर्यउदेहूया॥ तबखुलगया॥ अर
जबमूंदनेकाप्रतियोगीरात्रिभई॥ तबमूंदागया॥ उसकोंखेदक
छुनहीं॥ तैसेतिसपुरुषकोंअहंताममतातेंरहितस्वभाविकचे
ष्टाहोतीहे॥ हेरामजी अहंता अरममतारूपीजोजागतहे॥ तिसतें
उहसुषुप्तहोजाताहे॥ अरसंपूर्णभावरूपजोदृश्यहे॥ अरतिसके
जोअर्थहें॥ तिनकेभावकातिसकोंअभावहोजाताहे॥ अरद्वैष
कलनानष्टहोजातीहे॥ अरअसेषविसेषकाजोमननहे॥ सोति
सकानष्टहोजाताहे॥ असेषविशेषकहीयेपशुपंछीमानुषदे
वतानरनारबुराइसोदिकजेतेबुधपदारथकाजोभावनाहे॥
सोतिसकेनष्टहोजातेहें॥ एकब्रह्मसताहीतिसकोंभासतीहे॥ सं
सारनहींभासता॥ हेरामजी अहंतारूपीतिलोंतेंसंसाररूपीतेलउ
पजताहे॥ अरअहंतारूपीफूलोंतेंसंसाररूपीगंधउपजताहे॥ सं
सारअहंताहीतेंहोताहे॥ सोअहंताखेतातिसपुरुषकेनष्टहोजा
तेहें॥ सोपुरुषइंद्रीयांकेअनुभवविषयोंकोपायकरहर्षमाननहीं
होता॥ अरअनुभवकेअभावहूयेद्वेषनहींकरता॥ अैसाआपकोंनहीं
जानताजोमेंपडाहों॥ अरईहांबेठाहों॥ अरचलताहों॥ आपकों
सर्वदाआकाशरूपजानताहे॥ नअंतरदेषताहे॥ नबाहिरदेष
ताहे॥ नआकाशकोंदेषताहे॥ नपृथिवीकोंदेषताहे॥ सर्वब्रह्मही
देषताहे॥ तिसकोंइतरकोउनहींभासता॥ अरदृष्टादर्शनदृश्य
तीनोंकासाक्षीरहताहे॥ अहंकारकासाक्षी॥ इंद्रीयांकासाक्षी
अरविश्वकासाक्षीहे॥ इनकेसाथस्पर्शकदाचितनहींकरता
जैसेब्राह्मणचंडालकेसाथस्पर्शनहींकरता॥ अरबीजतेंअंकुरहो
ताहे॥ अरअंकुरतेंटासहोतेहैं॥ इसीप्रकारपदार्थप्रणामीहें॥ अ
रआकाशतिनविषेजिउकातिउरहिताहे॥ काहेतेंजोउनकेसा
थस्पर्शनहींकरता॥ तैसेउहपुरुषदृष्टादर्शनदृश्यतेंअतीतरह
ताहे॥ जैसेमारूथलविषेजलभासताहे॥ तैसेतिसपुरुषकोंत्रिपुटी
भासतीहे॥ त्रिपुटीअहंताकरकेफुरतीहे॥ सोअहंतातिसपुरुषकी
नष्टभईहे॥ तोतैंभेदबुधिभीनहींरहती॥ इसीतेंशांतिहे॥ अरनिर्म
लहे॥ अरसंसारतेंसुषुप्तहे॥ अरचैतन्यघनताकरकेघनहे॥ सर्व

दाशांतिरूपहै॥ जिन्होंनेत्रोंकरसंसारजानीताहै॥ सोतिन्होंतें ग्रंथ
हूयाहै॥ जिसमनकरफुरनीहोताहै॥ तिसमनकोंभीनाशकीयाहै॥
अरुजयक्रोधअहंकारमोहतिसपुर्बविषेदेषीतेहैं॥ तोभीति
सकेरिदविबेककछुनहीस्पर्शकर्ते॥ जैसेपंछीआकाशविषेआले
नाभीकर्तीहै॥ अरुआकाशकोंस्पर्शनहीकरसकता॥ तैसेउसपु
रुषकोंस्पर्शकछुनहीकर्ता॥ हेरामजीजिसपुरुषकेसंपूर्णसंश
यनष्टहोगयेहैं॥ अरुसर्वदास्वरूपविषेस्थितिहै॥ अरुशांतिरू
पहै॥ अरुआत्मातेंइतरकिसीसुषकीबांछानहीं॥ अरुसर्वसंक
ल्पतिसकेनष्टहूयेहैं॥ अरुआत्मातेंइतरकछुनहीभासता॥ दृष्ट
जागतकीनाईआवताहै॥ अरुसर्वदाजागतेतेंसुषुप्तहै॥ इति
श्रीनिरवाणप्रकर्णेपंचमभूमकावर्ननंनामसर्गः॥ १२३॥
वशिष्ठउवाच॥ हेरामजीतीसरीभूमिकापर्यंतजागतेहै॥
अरुचतुर्थभूमिकाविषेजागतअवस्थास्वप्नवतदेषताहै॥ अ
रपंचमभूमिकावालासंसारतेंसुषुप्तहोताहै॥ अरुसर्वदाअक्रि
यहै॥ किसीक्रियाविषेबंधमाननहीहोता॥ अरुसर्वदाकालआनं
दरूपहै॥ अरजिनहोयकरआनंदकाभोक्तानहीं॥ आपहीआ
नंदहै॥ केवलआपणेआपस्वतहविषेस्थितिहै॥ अरुसर्वदानि
र्वीताहै॥ हेरामजीयथाशास्त्रसर्वक्रियाविषेविचरताहै॥ अरुअं
तरतेंसनहै॥ उसकोंकिसीसाथस्पर्शनहीं॥ जैसेआकाशविषेस
र्वपदार्थभासतेहैं॥ अरुआकाशकास्पर्शकिसीसाथनहीं॥ तैसेही
सर्वक्रियातिसविषेदृष्टविद्यमानआवतीयांहैं॥ तोभीअंतरतें
किसीसाथस्पर्शनहीकर्ता॥ काहेतेंजोक्रियाकरनेकाअभिमा
नीअहंकारथा॥ सोतिनकानष्टहोगयाहै॥ केवलशांतिरूपहै॥
अहंभावकाफुरनीचिन्मात्रविषेतेंनिवर्तभयाहै॥ चिन्मात्रतेंउ
त्थानअहंभावकासोईअज्ञानअरुदुषदाईहै॥ जबअहंभावनि
वर्तभया॥ तबकोउकर्मस्पर्शनहीकर्ता॥ यद्यपिप्रविष्टतिसकोंदृ
ष्टभीआवतीहै॥ तोभीवास्तवकरनहीदेषता॥ तिसकोंसर्वब्रह्म
हीदृष्टआवताहै॥ षाताहैअरनहीषाता॥ अरदेताभीहै॥ कदाचि
तनहींदीया॥ लेताभीहै॥ अरकदाचितकिसीतेंकछुनहीलीया॥
चलताभीहै॥ परकदाचितनहींचल्या॥ हेरामजीजेतेकछुदेशका
लवस्तुपदारथहैं॥ तिसकोंसर्वविषेआतमभावहोताहै॥ यद्यपि

अरछटवींभूमकावा
लातुरयापदविषेइ
स्थितहै

पअसत्चेष्टाउसविषेदेषीताहै ॥ तोभीतिसकेदेहविषेकछुन
हीं ॥ जैसेस्वप्नेविषेषातापीतालेतादेताभासताहै आपकौं
अरजागेतैंसर्वकाअभावहोजाताहै ॥ तैसेजोपुरुषपूर्णार्थ
सत्ताविषेजाग्याहै ॥ तिसकौंगुणोंकीक्रियाअपणेविषेकोउ
नहींभासती ॥ अरजोकछुकर्ताहै तिसविषेअभिलाषनहीं
तिसकीचेष्टास्वभाविकहोतीहै ॥ तिसकौंअपणेनिमितकर्त
व्यकछुनहीं ॥ ऐसेभगवाननेकहाहै ॥ अरसर्वात्माहीदेषता
है ॥ आकाशपृथिवीसूर्यब्राह्मणहस्तीस्वानचंडालादिक
सर्वविषेआतमभावहीदेषताहै ॥ अरआकारोंकोंमृगतृष्णा
केजलवतदेषताहै ॥ जोअसत्भावहै ॥ अरइष्टादर्शनदृस्य
भीउसकोंआकाशवतभासतेहैं ॥ अरनिर्मलआकाशवत्शांति
रूपहै ॥ अहंभावतेरहितकेवलचिन्मात्रविषेस्थितहै ॥ अ
रग्रहणत्यागतेअतीतहै ॥ सर्वकलनातेरहितनिर्वाणप
दहैं ॥ केवलस्वच्छनिर्मलआकाशरूपस्थितहैं ॥ अरअहंमम
आदिग्रंथीतिसकीभेदीहैं ॥ अरचिदजडग्रंथतिसकीभेदी
हैं ॥ चिजडग्रंथकहीयेअनात्मविषेअहंअभिमान ॥ सोतिस
कानष्टहोगयाहै ॥ केवलशांतिरूपहोरह्योहै ॥ जैसेक्षीरसमुद्र
तैमंदराचलपर्वतनिकस्या ॥ अरशांतरूपहूया ॥ तैसेरागद्वेष
रूपीक्षोभकेकर्णेवालापर्वतइसकेअंतरतेंकर्णीतेनिकिस
गये ॥ तबशांतिरूपअक्षोभहूयाहै ॥ अरपर्मसोभाकरसोभता
है ॥ जैसेजोविश्वकर्मीकरसूर्यकामंडलरच्याहै ॥ अरसोभाया
वताहैप्रकाशककें ॥ तैसेज्ञानरूपप्रकाशककैप्रकाशताहै ॥ जैं
सेचक्रफिरताफिरतारहिजाताहै ॥ अरशांतकौंप्राप्तहोताहै ॥ तैं
सेअज्ञानकरफिरताफिरताठहिरताहूयाइसकारिदाशांतकौं
प्राप्तहोताहै ॥ अरअपणेआपकरप्रकाशताहै ॥ पवनतेंरहि
तदीपकवत ॥ तैसेकलनारूपीपवनतेंरहितपुरुषअपनेंआ
पकरप्रकाशताहै ॥ अरसर्वदानिर्मलहै ॥ एकरसहै ॥ जैसेघटके
अंतरभीसूनहै ॥ अरबाह्यभीसूनहै ॥ तैसेदेहकेअंतरबाह्य कीया
आत्माहै ॥ जैसेजलकरपूर्णहूयाघटजलविषेराषीये ॥ तिस
केअंतरबाह्यजलहीहोताहै ॥ तैसेवहपुरुषअपणेआपकर

के अंतर बाहिर पूर्ण होता है ॥ अर एकरस है ॥ कछु दूसरा कछु
नाको नहीं प्राप्त भया ॥ अर तिस पद को पाय कर आनंदमान है ॥
जैसे कोई कुमार तिसके निमित्त तप करता होइ ॥ अर तिसकार रहता हो
वे ॥ तो वहि आनंद को प्राप्त होता है ॥ तैसे वहु पुरुष आनंद को प्रा
प्त हूया है ॥ जैसे कोई आधि व्याधि ते छुटा आनंद को प्राप्त होता है
तैसे वह ज्ञानी आनंद को प्राप्त हूया है ॥ जैसे कोई मार्ग ते थका हू
या आइ करि सघन छाउ पर विश्राम करे ॥ अर आनंद कौ प्राप्त होवे
तैसे ज्ञानवान को आनंद है ॥ जैसे पूर्णमासी का चंद्रमा अमृत क
र के आनंदमान होता है ॥ तैसे वहु पुरुष आपणे आनंद कर के घूमें
है ॥ जैसे काष्ट के जलने ते स्वच्छ अग्नि धूये ते रहित प्रकाशता है ॥ तै
से ज्ञानवान अज्ञानरूपी धूये ते रहित सोभता है ॥ हे रामजी जब
संसार की ओर ते देषता है ॥ तब अग्नि से जलता हूया आपते जु
दा देषता है ॥ ज्ञानरूपी पर्वत पर स्थित होकर जलता देषता है ॥
हे रामजी इह जो मैं कहा है संसार को जलता देषता है सो ऐसे न
ही फुरता जो मैं ज्ञानी हौं अर इह संसारी है ॥ इह स्वरूप की अपेक्षा
कर कहा है ॥ जो संसार उसको दुषदाई भावता है ॥ आनंद ते रहित
आनंद कौ प्राप्त भया है ॥ बडुडवैसा है ॥ जो सत असत ते रहित अ
पणा आप है ॥ तिस विषे स्थित है ॥ जैसे पर्वत अंतर बाहिर अप
णे आप विषे स्थित है ॥ अर एकरस है ॥ तैसे वहु पुरुष एकरस है ॥
अर संसार विषे जाग्रत होकर चेष्टा करता है ॥ अर अंतर संसार की
भावना ते रहित है ॥ अर तिस पद को वाणी की गम्य नहीं ॥ पर कछु
कहता हों श्रवण कर ॥ कोई ब्रह्म कहते हैं ॥ कोई चैतन्य कहते
हैं ॥ आतमा कहते हैं ॥ साक्षी कहते हैं ॥ अर काल वाले उसी को का
ल कहते हैं ॥ अर ईश्वरवादी उसी को ईश्वर कहते हैं ॥ शास्त्र कह
ते हैं ॥ इत्यादिक जो संज्ञा हैं ॥ सो सर्व उसी के नाम हैं ॥ इसते इतर नहीं
तिस पद को संतजन जानते हैं ॥ हे रामजी ऐसे पद को पाय के अपणे
आप कर सोभता है ॥ जैसे मणि के अंतर बाह्य प्रकाश होता है ॥ तैसे वह
पुरुष अंतर बाहर सोभता है ॥ अर अपणे स्वरूप कर सदा घूमे रह
ता है ॥ जो पुरुष छठवी भूमिका विषे स्थित है ॥ तिसके इह लक्षण
होते हैं ॥ संसार ते सुषुप्त होता है ॥ अर स्वरूप विषे चैतन्य होता है ॥ अ

र जीवत्व तिसका चलता रहता है ॥ जीवत्व कहीये परिछिन्नता ॥
जैसे घट की उपाधि कर घटाकाश परिछिन्न भासता है ॥ जब घट
नंग न हूया ॥ तब घटाकाश महाकाश एक होजाता है ॥ तैसे अ
हंकार रूपी घट के नंग न हूये आतमा ही भासता है ॥ इति श्री
निर्वाणप्रकर्णे छट्वा भूमिका उपदेशो नाम सर्गः ॥ १२४
श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इसते अनंतर जब पुरुष को
सप्तम भूमिका प्राप्त होती है ॥ तब आपको आतमा ही जानता है
अरु नृतों का ज्ञान जाता रहता है ॥ केवल आत्मत्वमात्र रहता है
हस्य का ज्ञान नहीं रहता ॥ अरु इह भी ज्ञान नहीं रहता ॥ जो विश्व
मेरे आत्मा फुरती है ॥ देह सहित होवे ॥ अथवा विदेह होवे ॥ उस
को आत्मा ते उत्थान कदाचित नहीं होता ॥ जैसे आकाश आप
णी सत्ता विषे स्थित है ॥ तैसे आत्मस्वरूप विषे स्थित है ॥ अर
चेष्टा भी स्वभाविक पडी होती है ॥ जैसे बालिक पंघूडे विषे होता
है ॥ तिसके अंग स्वभाविक हलते हैं ॥ तैसे उसकी चेष्टा प्राणपान
स्वभाविक होती है ॥ जैसे काष्ट की पुतलीयां तागे कर के चेष्टा क
रती हैं ॥ तैसे प्रारब्ध वेग के तागे कर उसकी चेष्टा पडी होती है ॥
अपणी इच्छा उसको कछु नहीं रहती ॥ हे रामजी तैसी अवस्था को
सप्तम भूमिका वाला प्राप्त हूया है ॥ सो आप ही जानता है ॥ इत
रको उह जान नहीं सकता ॥ जिसका चित्त साथ है सो नहीं जान सक
ता ॥ अर जिसका चित्त सत पद को प्राप्त हूया है ॥ सो भी जान नहीं स
कता ॥ जिसको उह पद प्राप्त भया है ॥ सोई जानता है ॥ हे रामजी जी
वन्मुक्ति का चित्त सत पद को प्राप्त हूया है ॥ अर तुर्यापद विषे
स्थिति है ॥ अर इसका चित्त निर्वाण होगया है ॥ अर तुर्यातीत
पद को प्राप्त भया है ॥ अर विदेह मुक्ति है ॥ तिसको अहंभा
व का उत्थान कदाचित नहीं होता ॥ सतरूप है ॥ असत की न्याई
स्थिति हूया है ॥ हे रामजी उह तिस पद को प्राप्त हूया है ॥ जिसकी
बाणी की गम्य नहीं ॥ पर कछु कहता हों ॥ सो पद शुद्ध है ॥ अर
निर्मल है ॥ अद्वैत है ॥ अर चैतन्य है ॥ ब्रह्म है ॥ अर काल का भी का
लन छलण कर्णहारा है ॥ केवल चैतन्यमात्र है ॥ अर जिउ का ति
उ अच्युत पद है ॥ इस पद को पाय कर ऐसा होता है ॥ जैसे वस्त्र ऊ
पर मूर्त लिखी है ॥ तिसी प्रकार उत्थान तें रहित होता है ॥ अहं ब्र
ह्म का उत्थान भी नहीं रहता ॥ इति श्री निर्वाणप्रकर्णे सप्तम भू

मिकालक्षणविचारोनामसर्गः ॥ १२५ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे
रामजी इह भूमिका तेरे तांई कही हैं ॥ जो ज्ञान की प्राप्ति इनहीं क
र होती है ॥ इनते अन्य साधन कर ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रा
मजी ज्ञानवान हूया पुरुष तब जाणीये ॥ जो जिसकी उत्तम भूमिका
प्रथम विषे स्थिति हूई है ॥ ताते तूं भूमिका की ओर चित्त रूपी च
न कों पावो ॥ तब तुम कों स्वरूप की प्राप्ति होवे ॥ हे रामजी तीसरी
भूमिका पर्यंत सर्व कामनों निवर्त होती है ॥ एक आतम पद की कांम
ना रहती है ॥ जो तिस अवस्था विषे शरीर छूट जावे ॥ तब अवर ज
न्म पाइकर ज्ञान को प्राप्त होता है ॥ अर जो चतुर्थ भूमिका कों प्राप्त हू
ये शरीर छूटे ॥ तब बहुड जन्म नहीं पावता ॥ काहे तें जो आत्मपद
की प्राप्त हूई ॥ बहुड कछु पावणे की इछा नहीं रहती ॥ जन्म का का
रण इछा है ॥ जब कछु इछा न रही ॥ तब जन्म भी न रहा ॥ जिसकों च
तुर्थ भूमिका की प्राप्त भई है ॥ तिसकों स्वरूप की प्राप्त भई ॥ बहुड इ
छा कैसे होवे ॥ जैसे भुन्ना बीज उगमता नहीं ॥ तैसे उनका चित्त ज्ञान
रूप अग्नि कर कें सत पद कों प्राप्त हूया है ॥ इसतें जन्म नहीं लेता ॥ अ
र मरता भी नहीं ॥ संसार कों स्वप्नवत देखता है ॥ अर पंचम भूमिका
जिसकों प्राप्त भई हैं ॥ सो सुषुप्त की न्यांई होता है ॥ अर छठवीं भूमि
का तुरीया पद है ॥ सप्तम तुरीयातीत पद है ॥ हे रामजी एते मेरे कहणे
का प्रयोजन एही है ॥ जो वासना का त्याग करो ॥ अर अचित पद कों प्रा
प्त होवो ॥ सो वासना क्या हैं ॥ इसका होवणा ही वासना है ॥ जब इसको
अभिमान अभाव हूया ॥ तब ही शांत हूई ॥ इह जो प्रछिन्न अहंका
र है ॥ सो इस मरहणे नहीं ॥ आत्मा के अज्ञान तें हूया है ॥ अर आत्म ज्ञा
न तें लीन हो जाता है ॥ हे रामजी संसार रूप एक नदी है ॥ तिस विषे जी
रूप व रूग बुदबुदे हैं ॥ अध्यात्मक आधिभूतक आधिदैवक रोग तरं
ग हैं ॥ तिस विषे जिसकर जीव दुख पावते हैं ॥ अर राग द्वेष रूपी छो
टे मछ हैं ॥ अर त्रिष्णा रूपी बडे मछ हैं ॥ जैसे जल चल्या जाता है
तैसे मनुष्य के मुख मों संसार चल्या जाता है ॥ अर अज्ञान रूप जाल
है ॥ तिस विषे ॥ हे रामजी त्रिष्णा ही कर पुरुष बंध है ॥ ताते तुम त्रि
ष्णा रूपी संगलों कों काटो हस्ती की न्यांई ॥ वैराग अभ्यास दंतों कों
वो ॥ त्रिष्णा रूपी जंजीरों कों काटो ॥ हे रामजी इह त्रिष्णा रूपी सर्पणी
है ॥ विष रूपी फुंकारे कर कें सर्व हरीयावल कों जलावती है ॥ तिसके
जलने कर किसान दुख पावता है ॥ सो वली का है ॥ विचार वली है

अर जीव किसी नहे ॥ जब चित्त रूपी सर्पणी फुंकारती है ॥ तब वि-
चार रूपी वल्ली को जलावती है ॥ ताते विचार रूपी अग्नि कर
सर्पणी को जलादीय ॥ हे रामजी त्रिष्णा दुखदाई है ॥ जब लग त्रि-
ष्णा है ॥ तब लग संतों के वचन इसके रिदे विषे स्थित नहीं हो-
ते ॥ जैसे दर्पण ऊपर मोती नहीं ठहिरता ॥ सो त्रिष्णा के एते नाम
हैं ॥ त्रिष्णा कहीये ॥ अभिलाषा कहीये ॥ इछा कहीये ॥ फुनी क-
हीये ॥ संसनी कहीये ॥ सर्व इसी के नाम हैं ॥ सो इछा रूपी मेघ है ॥ ति-
सनै ज्ञान रूपी सूर्य आछादया है ॥ तिसकर भासता नहीं ॥ अर इ-
छा रूपी बदल है ॥ आतम रूपी सूर्य है ॥ तिस बदल के आवले क-
र साक्षातकार नहीं होता ॥ जब विचार रूपी पवन चले ॥ तब इछा
रूपी मेघ नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी इह जीव के आकाश का पंछी है ।
तिसकी कमर विषे इछा रूपी तागा है ॥ तिसकर के उड नहीं सक-
ता ॥ अर परमात्म पद को प्राप्त नहीं होता ॥ अर इछा कर दीन है ॥ ज-
ब इछा ही नष्ट होवे ॥ तब आतम स्वरूप है ॥ ताते इछा ही को नाश
कर ॥ आतम पराइण होवो ॥ आतम पराइण कहीये ॥ विषय सं-
सार ते वैराग करो ॥ अर आतम का अभ्यास करो ॥ हे रामजी इह जो मैं
तेरे ताईं भूमिका क्रम कहा है ॥ जब इन विषे आवैं ॥ तब ज्ञान की
प्राप्त होवे ॥ सो इनको तब प्राप्त होता है ॥ जो एक हस्तणी को जीतता
है ॥ एक बन विषे रहती है ॥ दो उसके दंत हैं ॥ सात उसके पुत्र महाम-
त्ते हैं ॥ उह अनेक जीवों को मारकर अनर्थ को प्राप्त करती है ॥ ति-
सके जीत्यें सर्व जगत जीत्या जाता है ॥ श्रीरामोवाच ॥ ऐसी हस्त-
नी सो कवन है मस्तरूप ॥ अर कहां रहती है ॥ कवन उसके पुत्र अ-
र दंत हैं ॥ कैसे उह मारती है ॥ अर कैसे उसको रचा है ॥ अर कवन बे-
न है ॥ इह सत्त मेरे ताईं कहो ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इछा
नाम्नी तो हस्तनी है ॥ शरीर रूपी बन है ॥ मन रूपी गुफा विषे रहती
है ॥ इंद्रिय रूप बालिक हैं ॥ संकल्प विकल्प रूपी दंत हैं ॥ तिनकर
पडी छेदती है ॥ तिसके मद करा हे रामजी एक नदी है ॥ तिसका प्रवा-
ह सदा चल्या जाता है ॥ तिन विषे तीन तो मच्छ रहते हैं ॥ जो नाश नहीं
होते ॥ इह संसारी नदी है ॥ अर राग द्वेष तिस विषे मच्छ रहते हैं ॥ हे
रामजी मच्छ तब नष्ट होवैं ॥ जब संसारी रूपी जल नाश होवे ॥ सुकृत
दुःकृत रूपी कनारे हैं ॥ चिंता रूपी ग्राह हैं ॥ कर्म रूपी लहरा हैं ॥ तिस वि-
षे अमाया पडी जीव मरता है ॥ त्रिष्णा रूपी वल्ली है ॥ तिसको नाश करो

तेइला चहा

हे रामजी त्रिष्णा रूपी अंकुर का वधावणा ॥ घटावणा तेरे अप
ने अधीन है ॥ जो अंकुर कौ जल देवीये तो वर्धता जाता है ॥ अ
र जो न देवीये तो जल जाता है ॥ तैसे फुनै रूपी जल देवणे कर
त्रिष्णा रूपी अंकुर वर्धता जाता है ॥ अर न देवतो कर जल जा
ता है ॥ अर स्वरूप के अभ्यास कर ॥ हे रामजी त्रिष्णा रूपी बंधाम
त्स है ॥ धीर्यादिक मास कौं नचे न करनेवाला है ॥ तिसकौं वैराग
रूपी कंडी ॥ अर अभ्यास रूपी तंदी कर शत्रु कौं मार नास करो
हे रामजी इछ्या ही का नाम बंध है ॥ निरिछ्या का नाम मुक्त है ॥ हे रा
मजी एक सुगम उपाइ कहता हौं ॥ जिसकर त्रिष्णा नष्ट होवै ॥ सो
नत्य अर्थ की भावनां कर ॥ जब नत्य अर्थ की भावनां करी ॥ तब
शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्त होती है ॥ अर तेरी जय होवैगी ॥ अर स
र्वोतं उतम पद कौ प्राप्त होवैगा ॥ अर वासनां तेरी कोउ न रहेगी ॥
अर शरीर की चेष्टा स्वभाविक पडी होवैगी ॥ संकल्प सत्य नष्ट
होजावैगा ॥ इति श्री निर्वाण प्रकर्णे संसार भावाभाव प्रति
पादनं नाम सर्गः ॥ २६ ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन तुम कह
ते हो ॥ नत्य अर्थ की भावनां कर वासनां नष्ट होवैगी ॥ अर
ही आतमपद की प्राप्त होवैगी ॥ सो वासनां तो चिरकाल की स्थित ॥ अर स्वाभ
विक स्थिति है ॥ एक ही वार कैसे नष्ट होवैगी ॥ अर तुम कहते हो
वासनां के नष्ट हूये जीवन्मुक्त होता है ॥ जिसकी वासनां नष्ट हूई
है ॥ तिसका शरीर कैसे रहेगा ॥ अर वासनां बिना चेष्टा किउं कर
होवैगी ॥ तांतें जीवन्मुक्ति शब्द कैसे बनै ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥
हे रामजी मेरे वचन प्रीत साथ सुण ॥ कैसे वचन हैं स्रवणों के भूष
णा हैं ॥ जिनके सुणे तें दरिद्र न रहेगा ॥ नत्य अहार के अर्थ धारणे
तें संशय नष्ट होजावैगा ॥ अर आत्मपद की प्राप्त होवैगी ॥ नत्य अ
हार के तीन अर्थ हैं ॥ एक तो अन्न के अर्थी हैं ॥ जो पंचभूतक शरी
रतें ॥ तेरा स्वरूप अन्न विलेहोणा है ॥ अर दूसरा अर्थ इह है ॥ जो वि
र धर्म है ॥ शरीर जड है तम रूप है ॥ अर तेरा स्वरूप आदि [illegible] नहि
न मत तें परे हैं ॥ हे रामजी जब तें नें ऐसे धारना ॥ जो मैं आत्मा हौं ॥ अ
र इह देहादिक अनात्मा हैं ॥ तब देह साथ मिलकर अभिलाष
कैसे रहेगी ॥ न करेगा इह अर्थ है ॥ गुन लाबत बेला है ॥ जब ल
गा जासा नहीं ॥ अर तीसरा नत्य का अर्थ इह है ॥ जु अनावहे ॥ तमें
हों न की उजागत है ॥ ऐसे जाणे तब इछ्या किसकी करे ॥ न करेगा

इह अर्थ है॥ अथवा जो तूं आपकों आत्मा जाणेगा देहादिकतैं
विलक्षण॥ तो भी अविद्यक तमरूपी आहंकार की अभिलाषा
न रहेगी॥ देह तमरूप है॥ तूं आदित्यवर्ण॥ आदित्यवर्ण क
हीये प्रकाशरूप है॥ तेरा अरु इसका संयोग कैसे होवै॥ जै
से सूर्य के मंडल विषे रात्र नहीं देषीती॥ तैसे जब तूं आपकों
आदित्यवर्ण जानेगा॥ तब तमरूप संसार न देषेगा॥ अरु श
रीर की चेष्टा स्वभाविक ही पडी होवैगी॥ तेरे विषे चेष्टा कछु
न होवैगी॥ जैसे अर्धनिद्रा वाले दी चेष्टा होती है॥ अरु जानु
ता भी नहीं॥ तैसे चेष्टा पडी होवैगी॥ अरु बालिक की न्याई
तुज कों अभिमान न होवैगा॥ जैसे बालिक की उनमत चे
ष्टा होती है॥ तैसे तेरी चेष्टा भी स्वभाविक पडी होवैगी॥ हे रा
मजी जो तूं इच्छा करे॥ जो इह सुष होवे॥ अरु इह दुष न होवे
तो इह कदाचित न होवैगी॥ जो कछु शरीर का प्रारब्ध है सो
अवस्य होती है॥ ज्ञानवान के रिदे तें संसार की सता जाती र
हती है॥ अर चेष्टा स्वभाविक होती है॥ अर इच्छा नहीं रह
ती॥ हे रामजी जैसे किसी पुरुष मिं जिसे पैंडा कर्णा होता है
पैंडा बडा होइ॥ अर पहुंचणे का समा थोडा होता है॥ तो उह
पुरुष मार्ग के स्थान देषता जाता भी है॥ पर चित तिस जिल
विषे रहिता है॥ जो एता काल तक उहां पहुंचणा है॥ मार्गि
ग विषे देषता सुंघता भी जाता है॥ पर बंधमान किसी विषे न
ही होता॥ तैसे चित कों आतम पद विषे ल्यावो॥ जो किसी प्रका
र पहुंचणा ही है॥ ऐसा शरीर पाइ कर आतम पद न पाईये
तो कब पावणा है॥ जो आतम पद तें वेमुष हैं॥ सो वृक्षादिक
जन्मों कों पावैगा॥ हे रामजी तातें चित आतम पद विषे राषो॥
अर स्वभाविक इच्छा बिनां चेष्टा भी पडी होवैगी॥ इच्छा ही दुषदा
इक है॥ जब इच्छा नष्ट हूई॥ तब इसी कों ज्ञानवान तुर्यापद क
हते हैं॥ जहां जाग्रत स्वप्न सुषोपत का अभाव होवै॥ सो तुर्याप
द है॥ हे रामजी इह जाग्रत स्वपन सुषोपत जो अवस्था है॥ सो ज
हां न पाईये॥ सो तुर्यापद है॥ जब संवित फुरनें अहंकार कों अ
भाव होवै॥ तब तुर्यापद प्राप्त होवै॥ हे रामजी अहंकार का होव

णाही दुषदाइक है॥ जब इसका अभाव हूया॥ तब ही आनंदरू
पा॥ आतमपद तें इतर जो माया की रचता है॥ तिस साथ मिल
कर जो आपकों जानता है मैं हों एही अनर्थ है॥ तातें अहंका
रकों नास करो॥ जिसकों देषकर फुरता है॥ तिसकौं नस्य अर्थ
की भावना कर नास करो॥ जो आतमपद तें इतर भासता है॥
सो मिथ्या जाणो॥ जो एही नस्य अक्षर का अर्थ है॥ जेता कछु सं
सार भासता है॥ तिसकों स्वप्नमात्र जाणो॥ इस विषे सत जानक
र इछा करणी एही अनर्थ है॥ अर मिथ्या जाण कर इछा त्यक
णी एही कल्याण है॥ हे रामजी मैं ऊंची बांहों कर पुकारता हों।
मेरे वचन सुनता कोऊ नहीं॥ जो इछा ही संसार का कारण है॥
अर इछा तें रहित होवणां परम कल्याण है॥ जब इछा तें रहि
त हूया॥ तब शांतपद कों प्राप्त होता है॥ निरिछित हूयें आत्मा
भासता है॥ जो आनंदरूप है॥ अर सम है॥ अद्वैत है॥ तिस विषे
जगत का अभाव है॥ हे रामजी बडा मोह का महातम है॥ हिर्दै वि
षे जो आत्मरूप चिंतामणि स्थित है॥ तिसकों विस्मरण करके म
र्ष अहंकाररूपी कीच कों ग्रहण करते हैं॥ हे रामजी तुम निर
अभिमान होकर चेष्टा करो॥ जैसे जंत्री की पुतली होती है॥ ति
स विषे अभिमान कछु नहीं॥ अर चेष्टा तिसकी पडी होती है॥
तैसे प्रारब्ध वेग कर तुमारी चेष्टा भी पडी होवेगी॥ इह अभिमा
न तुम न करो॥ जो ऐसे होवे अर ऐसे न होवे॥ जब ऐसा होवें
गा तब शांतपद कों प्राप्त होवेंगा॥ जहां वाणी की गम्य नहीं॥ ऐसे
आनंद कों प्राप्त होवैंगा॥ जब लग इंद्रीया के अर्थों की त्रिस्नां है
तब लग जन्म अर मृत्यु के बंधन सो है॥ तातें पुरुष प्रयतन ए
ही है॥ जो त्रिस्नां कों नास करो॥ कर्मों विषे फलन की त्रिस्नां तें रता
ई न होइ॥ अर कर्म के अकरणे विषे भी तें रताई इछा न होइ
इन दोनों कों त्याग कर स्वरूप विषे स्थिति हो॥ अर ऐसा निष्का
मी होवे नहीं जो मैं त्याग कीया है॥ हे रामजी जिस पुरुष कर्म का
त्याग कीया है॥ अर अहंकार साथ है॥ तो पुन्य अर पाप सब क
छु कीया है॥ अर जिस विषे अहंकार भाव नहीं॥ सो भावैं जैसे क
र्म करै॥ तो भी कछु कीया नहीं॥ अर बंधन कों नहीं प्राप्त होता॥ जो

कर्मो विषे आपको अकर्ता जानता है ॥ अरु अकर्म विषे अभिमा
न सहित है ॥ तिसको कर्म देखते हैं ॥ ऐसे जानता है सो बुधिमा
न है ॥ हे रामजी ऐसे आत्मा को जानकर अहं ममका त्याग करो ॥
इस संवित के त्याग विषे जतन कछु नही ॥ स्मृत तिसकी होती
है ॥ जिसका अनुभव होता है ॥ जिसका अनुभव होइ ॥ तिसका त्या
ग कर्णे सुगम है ॥ अननुभव कहाये मत हृदे देखणे ॥ सो विस्मृते न
स्वरूप विषे नही ॥ जो अनुभव का होवे ॥ इह पदार्थ जो तेरे तांई
भासते हैं ॥ तिनके कारण को जान ॥ इनका कारण अनुभव है ॥ जो
इनका अनुभव ही मिथ्या है ॥ तो तिसकी स्मृत कैसे सत होवे ॥
जैसे जेवडी विषे सर्पका अनुभव होता है ॥ बहुड स्मर्णे कीया ॥ उ
हां सर्प देख्या ॥ जो सर्पका अनुभव ही मिथ्या है ॥ बहुड उसका
स्मर्ण सत कैसे होवे ॥ जो वस्त मिथ्या है ॥ तिसके त्यागणे विषे क्या य
तन है ॥ जब प्रपंच को मिथ्या जाना ॥ तब तुमको कोऊ दृश्या बंध
न न होवैगा ॥ चेष्टा स्वभाविक पडी होवैगी ॥ पर राग चलेता रहेगा
जैसे सतृकी लकीबली सूक जाती है ॥ अरु आकार उसका दृष्ट
आवता है ॥ तैसे तुमारा चित देखणे में आवैगा ॥ अर चितका धर्म
जो राग द्वेष है ॥ सो चलता रहेगा ॥ उह चित सतपद को प्राप्त होवैगा
जब सर्व विस्मर्ण होवैगा ॥ तिसको शिवपद कहते हैं ॥ सो परमपद
है ॥ अरु ब्रह्मपद है ॥ शब्द अरु अर्थतें रहित है ॥ केवल चिन्मात्र अ
द्वैतपद है ॥ अहं अरु ममका त्याग करके तिस विषे स्थिति होवो ॥ इस
को नाम संसार है ॥ जो अहं हो ॥ अरु इह मेरा है ॥ इसको त्याग कर अ
पणे स्वरूप विषे स्थिति होवो ॥ हे रामजी जब लग अहं अरु मम इह
संवित है ॥ तब लग इह दुख मिटते नही ॥ जब इह संवेदन मिटी तब
आनंद है ॥ आगे जौ इछा है सो करो ॥ इति श्री निरवाणप्रकर्णे इछा
चिकित्सा उपदेशो नाम सर्गः ॥ १२७ ॥ श्री वशिष्ठ उवाच ॥ हे रा
मजी आत्मा अद्वैत है ॥ जिस विषे एक अरु दोइ कहणा नही ॥ अपणे
आप स्वभाव विषे स्थिति है ॥ अंतहकर्ण चतुष्टय अरु बाह्य पदार
थ सर्व चैतन्यमात्र है ॥ इतर कछु नही ॥ रूप इंद्रियां अरु मनका फु
णां इस कुल सर्व आत्मारूप ही है ॥ जैसे बालिक माटी की सैना ब
णावता है ॥ अरु हस्ती घोडा राजा प्रजा नाम कल्पता है ॥ सो सर्व मा
टी ही है ॥ इतर कछु नही ॥ तैसे अहं ममादिनी सर्व आतमरूप है ॥ इत
र कछु नही ॥ जैसे माटी विषे हस्ती घोडा आदिक नाम कल्पित हैं ॥ तैं

से आत्मा विषै जगत जीव नाम कल्पित हैं ॥ आतमा तें इतर कछु
नहीं ॥ इस अहंकार का त्याग करो ॥ जो आतम पद तें इतर कछु है
नहीं ॥ हे रामजी रूप अवलोकन मनसकार इह सम्वित्ति व्रिती रूप म
तिका के नाम हैं ॥ मान मेय प्रमाणादिक इह सम्वित ही रूप कल्पिये
तो किस कर किस को सचित कहीये ॥ इह अहं ममादि भी चिदाका
श तें इतर कछु वस्तु नहीं ॥ इन कौं ऐसे जाण कर निह कुर्ण स्थि
त निरसंग हो रहु ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन तुम मो कहा जो अ
हंकार सम्वित का त्याग करो ॥ इह मिथ्या हैं ॥ अहं मम असत हैं ॥
तातें ऐसी भावना करते हैं ॥ इन की सत्ता कछु नहीं ॥ अर असंग हो
वहु इह तुम मो कहा ॥ सो असंग निहकर्म कर होवता है ॥ अथवा स
कर्म कर होवता है ॥ इह कहो ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह
तुंही कहो कर्म क्या हैं ॥ अर अकर्म क्या हैं ॥ अर इन का कारण क
वन है ॥ अर इन का नास कैसे होवे ॥ अर नास होवणे कर सिध क्या
होवेगा ॥ जो तूं जानता है तो कहु ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन जै
से तुम मतें श्रवण कीया है ॥ जैसे समझा है ॥ सो मैं कहता हों ॥ जो वस्तु
नाश करणी होवे ॥ तिस को निश्चे कर के मूल तें नास करीये ॥ त
ब ही तिस का नास होता है ॥ सा पापवृक्ष का देह उस का नाश नहीं हो
ता ॥ तो तें इस का क्रम सुणो ॥ इह जो देह है जो संसार रूपा वन वि
षै वृक्ष रूपा देह है ॥ तिस का बीज कर्म हैं ॥ अर पाप पादोदिक इस
के पत्र हैं ॥ अर राधिर वासनां स्वास इस विषै रस है ॥ अर सुख दुख
रूप इस विषै फुल हैं ॥ अर जाग्रत कर्मवृत्ति रूप जो वासना है ॥ सो इस क
र प्रफुलित होता है ॥ अर पाप कर्म अर सुख दुख रूप इस को सत
काल हैं ॥ तिस कर सक जाता है ॥ ऐसे शरीर रूपी वृक्ष है ॥ बहु
कैसा है ॥ तरनां पार रूप कला है ॥ लोण का लोण सुंदर है ॥ जरा रूप
फल इस को हसते हैं ॥ अर राग द्वेष रूपी बीन तर हैं ॥ सो परे होते
हैं लोण लोण विषै ॥ जाग्रत इस को बसंत रूत है ॥ सुषुप्त हिम रूप
है ॥ वासनां रूप इस कर वपता है ॥ पुत्र कलत्रादिक एह तृण घा
स हैं ॥ तिस का मुंड गांड रूप इंद्रीयां हैं ॥ इन कर शरीर की चेष्टा हो
ती है ॥ अर ज्ञानइंद्रीयां इस के पत्र हैं पंच ॥ इन कर के वृक्ष धारता
है ॥ अर इच्छा इस विषै बेल है ॥ जो अपणे अपणे विषय को च
हती है ॥ अर बटा थंन इस का मन है ॥ सो सर्व को धारता है ॥ अर
पंच प्रमाण इस के रस हैं ॥ प्रत्यक्ष उपमान शब्दादि इनो कर स

र्वकों ग्रहण करते नहीं॥ आगें इनों का बीज जीव है॥ जीव कहीये
चैत उन्मुषत्व चेतन॥ सो इसका बीज है॥ अर जीव का बीज सं
वित जानणा। जो मात्र पद तें उत्थान हूया है॥ तिस संवित का
बीज ब्रह्म है॥ तिसका बीज आगें कोऊ नहीं॥ हे भगवन सम
न का बीज संवित फुरणी है। जब उह संवित हूई॥ तब सम्न कछु
हूया॥ अर जब इसका अभाव हूया॥ तब सर्व का अभाव
हूया॥ शेष आत्मा ही रहा॥ हे भगवन इह तो मैं जानता हों॥ आ
गें कछु कृपा कर तुम कहो॥ हे भगवन जब लग चित साथ सं
बंध है॥ तब लग संसार मों जन्म मरण पावता है॥ अर जब चित
तें रहित हूया॥ तब परम ब्रह्म होता है। सो शिव पद है॥ अप्रतिछो
शांत है। अनंत रूप है॥ चिन्मात्र विषे जो अहं का उत्थान है॥
सो कर्म रूप तिसु वृत्ति का कारण है॥ जब लग अनात्म साथ
मिल कर कहता है मैं हों॥ ऐसे जानता है। सो संसार का कार
ण है॥ इह तुमों नें मेरे तांई कहा है॥ तिसको समझ कर तुमारे
आगें विद्यमान प्रार्थना करी है॥ आगें कछु कृपा कर तुम क
हो॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी इस प्रकार कर्मों का बीज
सूक्ष्म समित है॥ जब लग संवित है॥ तब लग कर्म का बीज ना
श नहीं होता। इह सभ संज्ञा इसी की हैं॥ कर्मों का बीज कहीये
इच्छा कहीये॥ त्रिधर्मी कहीये। अज्ञान कहीये। चित्त कहीये।
इत्यादिक संज्ञा बहूत हैं॥ अवर क्या किसी विषे हेय उपादे
य बुधि करे॥ हे रामजी जब लग अज्ञान है॥ तब लग इच्छा ना
श नहीं होती॥ अर कर्म भी नाश नहीं होते॥ नाश तो दोनों के न
ही होते। परंतु भेद है॥ अज्ञानी कों भासता है। जो इह इछा है॥ इ
ह कर्म है॥ अर ज्ञानवान कों सर्व ब्रह्म ही भासता है॥ तांतें सुषी र
हता है॥ अर अज्ञानी के कर्म विषे कर्म भासता है॥ तांतें बंध
मान होता है॥ अर इसी का नाम त्याग है॥ जो कर्मों तें कर्मत्व बुधि
जावै॥ अर इसका नाम त्याग नहीं॥ जो क्रिया का त्याग करणा॥ हे
रामजी बडी उपाध अहंकार है॥ जिसका अहंकार नष्ट हूया
है॥ उह पुरुष जो कर्म करता है। कबी उस कछु नहीं कीया॥ अ
र जो अहंकार सहित है॥ उह पुरुष जो तूष्णीं हो बैठा है॥ तो भी
सन कर्म करता है॥ इसका त्याग एक का मनां सर्व त्याग है॥ अव

रहूयाके त्यागका नाम सर्व त्याग नहीं ॥ पुरुषप्रयत्न एही है ॥
जो सर्व कर्मों का बीज अहंकार त्यागणां ॥ अरु परम शांत कों प्रा
प्त होवणां ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे कर्म बीज दाह उप
देशो नाम सर्गः ॥ १२८ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इस
संवित का होवणां ही अनर्थ है ॥ जो कछु आपको जानता है ॥ ज
ब इह निवर्त होवे ॥ तब ही इसको आनंद है ॥ हे रामजी ज्ञानी की
चेष्टा अहंकार तें रहित स्वभाविक पडी होती है ॥ जैसे अर्ध नि
द्रित पुरुष होता है ॥ तैसे ज्ञानी अपने स्वरूप विषे घूमें है ॥ जै
से मद करके उनमत्त होता है ॥ तैसे सो ज्ञानवान ब्रह्मलक्ष्मी क
र घूमें है ॥ अरु ज्ञान जैसा कामसन है ॥ जैसे कामी पुरुष को काम
व्यसन होता है ॥ तैसे इह स्वरूप लक्ष्मी को पायकर घूरमरहता
है ॥ काहे ते जो निरहंकार है ॥ सर्व दुःखों का बीज भी अहंकार है ॥
जब अहंकार नष्ट भया ॥ तब आनंद भया ॥ हे रामजी संसार रू
पी विषकी वली है ॥ तिसका बीज अहंकार है ॥ जब अहंकार का
अभाव हूया ॥ तब संसार का अभाव होता है ॥ हे रामजी अहंका
र दुःखों का मूल है ॥ इस संवेदन का विस्मर्ण करणी बडा कल्या
ण है ॥ जो कछु अनात्मा साथ मिलकर आपको मानणां एही
अनर्थ है ॥ श्रीरामोवाच ॥ हे भगवन जो वस्तु असत है ॥ तिस
का होवणां नहीं होता ॥ अरु जो सत है तिसका अभाव नहीं हो
ता ॥ तुम कैसे कहते हो ॥ जो संवित अहंकार का नाश करो इह तो
सत नाशता है ॥ वेदन अवेदन कैसे ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रा
मजी तूं सत न कहता हैं ॥ जो वस्तु असत है तिसका होवणां नहीं
अरु जो सत है तिसका नाश नहीं होवणां ॥ हे रामजी इह अहंका
र रूप जो तेरे तांई भासता है ॥ सो इसका होवणां कदाचित नहीं
मिथ्या कल्पित है ॥ जैसे जेवडी विषे सर्प होता है ॥ तैसे आत्मा वि
षे अहंकार है ॥ जैसे सूर्य की किरणों विषे जल होता है ॥ तैसे आ
त्मा विषे अहंकार शब्द अरु अर्थ है ॥ संवित है इह शब्द है ॥ अरु
मिथ्या अर्थ है ॥ तिसका लक्षण इह ॥ जो मैं हों सो कल्पित है ॥ आ
त्मा केवल शुध रूप है ॥ तिस विषे अहंत्व का शब्द अर्थ कोऊ न
हीं ॥ इह अबोध कर भासता है ॥ बोध कर लीन हो जाता है ॥ अरु
रवेदना का जो अबोध है सो अनर्थ का कारण है ॥ अबोध तम है

होवे

जब इह निर्वाण होवै ॥ तब कर्म का बीज भस्म जातें का रता ॥ हे रामजी
जो कर्मों को त्याग कर ॥ एकांत जाइ बैठता है ॥ जो मैं कर्म नहीं क
ता ऐसे मानता है ॥ सो कर्ता ही है ॥ जो अभिमान सहित है ॥ तो
फल कौ भोक्ता ही है ॥ काहे तें जो अहंकार सहित है ॥ बहुड़ क
रेगा आत्मज्ञान बिना ॥ अनात्मा साथ मिलकर आप कौ मान
ता है ॥ अर जो पुरुष कर्मेंद्रीया साथ चेष्टा करता है ॥ अर आतमा अरथ
कौ लेप नहीं जानता ॥ सो अकर्ता ही है ॥ तिस कौ करणे कर कर्म
सिध नहीं होता ॥ अर अकर्णी करनी नहीं होता ॥ ऐसा जो पुरुष
है ॥ सो परम निर्वाण पद कौ प्राप्त होता है ॥ जिस कौ वाणी की गम्य
नहीं ॥ हे रामजी फुरणे उसका परणामी नहीं ॥ चमत्कार है ॥ चमत्को
र कहीये कूया कछु नहीं ॥ अर नासता है ॥ जैसे बिल की मजा हो
ता है ॥ उह बिल तें इतर कछु वस्तु नहीं ॥ तैसे जगत है ॥ जैसे सोने
तें भूषण भिन्न नहीं ॥ तैसे नत्युज्ञा एक अर्थ है ॥ सो इह भिन्न भि
न्न ज्ञाष्ट अर्थ तब लग भासते हैं ॥ जब लग अहंवेदना का रहे
हे रामजी आतम पद सर्वदा अपने आप विषे स्थित है ॥ जैसे
पत्थर अपणी जड़ता विषे स्थित है ॥ तैसे आतमा अपणी चैत
न्यता घन विषे स्थित है ॥ तिस कौ मुनीश्वर चैतन्य परम सार कहे
ते हैं ॥ तिस अपणे स्वरूप के प्रमाद कर दुख पावता है ॥ हे रामजी
जो पुरुष गृहस्त विषे स्थित है ॥ अर अहंकार तें रहित है ॥ तिस
कौं बनवासी जाणो ॥ सदा एकांती है ॥ अर जो बनवासी है ॥ अरु अ
हंकार सहित है ॥ सो सदा जनों विषे स्थित है ॥ प्रथम एकांत वि
षे था ॥ तिस कौं त्याग कर दूसरी गर्त मों पड़ा है ॥ जो बेष धारता है
अर बनवास लीया है ॥ तिस कौ ईश्वर चाहे तो तिकसे ॥ नहीं तो
बटे कये विषे पड़ा है ॥ हे रामजी जो पुरुष अर्थ त्याग करता है ॥ ए
क अंग कौ त्याग कीया ॥ अर दूसरे का अंगीकार कीया ॥ ऐसा जो
पुरुष है ॥ अर आप कौ निहकामी मानता है ॥ तिस पुरुष कौ उह त्या
गा रूपी पिशाचनी लागता है ॥ हे रामजी निहकर्म इह तब ही होता है
जब इस का अहंवेदना नष्ट होती है ॥ अन्यथा नहीं ॥ तातें कर्मों के मु
ट कों मूल तें उखाड़ ॥ जैसे सरकंड ॥ बलबूटे कों मुंढ तें काढता है
तैसे बाढ ॥ अहंवेदना ही मुंढ है ॥ तिस का मुंढ हीं काटीता है ॥ तबू
नाश होती है ॥ हे रामजी पुरुष प्रयत्न इसी का नाम है ॥ जो अपणे

आपका नाश करणां ॥ अर आपहीं रहिणां ॥ देहसाथ मि
ल्या हूया आपको जानता है ॥ तिसका नाश करणां ॥ अ
रु शिवपदकौं प्राप्त होवणां ॥ जो सर्वदा शांतरूप है ॥ अर
अद्वैत है ॥ तिस विषे स्थिति होवो ॥ इह विश्व जो तिसकूं चम
त्कार है ॥ जैसे बिल्व विषे गडी होता है ॥ तिसके बहुत नाम
राषते हैं ॥ तो बिल तें इतर कछु नहीं ॥ तैसे संसार आत्मा
तें इतर कछु नहीं ॥ जैसे थंभे विषे काष्ट तें इतर कछु नहीं
तैसे संसार नानत्व जो भासती है ॥ सो भी चैतन्यघन आत्मा ही
है ॥ अर नत्य अहोरका अर्थ जो तेरे तांई कहा है ॥ सो भी उही
है ॥ निषेध किसका करीये ॥ अर अंगीकार किसका करीये
सर्व पर्मतत्व है ॥ दूसरा किंचित मात्र भी नहीं ॥ हे रामजी ऐसे
आत्माकौं जाणकर सुषेन विचरो ॥ चेष्टा स्वाभाविक पडी हो
वैगी ॥ जैसे अर्ध निद्रित की होती है ॥ अर जैसे बालिक पंघू
डे विषे होता है ॥ अर अंग उसके स्वाभाविक हलते चलते हैं
तैसे तुमारी चेष्टा पडी होवेगी ॥ अपणां अभिमान तुम न करो
हे रामजी जेते कछु भावाभाव पदार्थ भासते हैं भिन्न भिन्न ॥
सो आत्मा के साक्षात्कार हूये तें पर्मात्म तत ही भासेगा ॥ जब
अहंका उत्थान निवर्त होवैगा ॥ हे रामजी एक अवर जुक्त श्रव
ण कर ॥ जिसकर के आत्मज्ञान होवे ॥ इह जो अहं अहं बिण बि
ण विषे फुरता है ॥ जब न फुरे तब ही तिस बिण विषे जाणीजा मै
नहीं ॥ जब ऐसे धड हूया ॥ तब अहंकाररूपी पिशाच का नास
होवैगा ॥ अर आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होवैगा ॥ जब अहंका
र नष्ट होवै तब आत्मा भासे ॥ अर आत्मा भासे तब जब अहंका
र नास होवै ॥ तां तें अहंकार के नास का यत्न करो ॥ जो न मैं हों ॥ न
जगत है ॥ हे रामजी ज्ञान इसी का नाम है जो अहं मम न रहे ॥ तिस
कौं मुनीश्वर परमब्रह्म कहते हैं ॥ अर समपद कहते हैं ॥ अर जो हो
अहं मम है ॥ तहां अविद्यारूपी तम पडा है ॥ हे रामजी अज्ञानी के हि
रदे विषे ते पदार्थ का भाव स्थित है ॥ देश काल घर नगर मनुष्य प
शु पंछी आदिक का त्रिगुण संसार अज्ञानी के रिदे विषे स्थित है ॥ जब इ
न का अभाव होवे ॥ तब शांतपद की प्राप्त होवे ॥ इति श्री निर्वाण

प्रकर्णे अहंकारनाश विचारो नाम सर्गः ॥१२९॥ श्रीवशिष्ठो
वाच ॥ हे रामजी जिसके मनतें मैं मेरे का अभिमान गया है ॥ तिस
कौं शांति प्राप्त भई है ॥ अरु जिसके हिर्दे विषे मैं देह मेरे संबंधी ग्र
ह आदिक का अभिमान है ॥ तिसकौं शांति कदाचित नहीं ॥ अरु शांति वि
ना सुख नहीं ॥ हे रामजी प्रथम आप बणता है ॥ तब जगत होता है ॥ जो
आप न बणे ॥ तो जगत कहां होवे ॥ इसका होवणा हीं अनर्थ का कार
ण है ॥ जिस पुरुष अहंकार का त्याग कीया है तिन हीं ॥ तिस कछु नहीं
त्यागा ॥ अरु जिसनें रूपा का त्याग कीया है ॥ अरु आपको सर्व त्यागी मा
नता है ॥ सो मिथ्या है ॥ जैसे विषरूपी वृक्ष के टास काटीये ॥ तो बहु
ड उगवता है ॥ नष्ट नहीं होता ॥ तैसे रूपा के त्याग कीये त्याग नहीं होता
त्यागणे योग अहंकार नष्ट नहीं होता ॥ रूपा बहुड उपजता है ॥ ता
तें अहंकार का त्याग करे ॥ तब सर्व त्यागी होवे ॥ जिसका नाम मह
त्याग है ॥ तिसकौं स्वपने में भी संसार न भासेगा ॥ जाग्रत की क्या
कहणी है ॥ तिसकौं संसार का ज्ञान नहीं होता ॥ हे रामजी संसार का
जो बीज है ॥ सो अहंभाव है ॥ तिसी कर स्थावर जंगम जगत भास
ता है ॥ जब इसका नाश हूया ॥ तब जगत भ्रम मिट जाता है ॥ तातें
तिसके अभाव की भावना कर ॥ जब तेरे ताईं अहंभाव फुरे ॥ तब
तूं जाणे कि मैं नहीं ॥ जब इस प्रकार अहं को अभाव हूया ॥ तब पा
छे जो शेष रहेगा ॥ सो आतमपद रहेगा ॥ हे रामजी सर्व अनर्थ का
कारण अहंभाव है ॥ तिसी का त्याग कर ॥ हे रामजी शास्त्र का प्रहा
र जीव सहि रहता है ॥ अवर व्याध रोग कौं सहि रहता है ॥ इस अ
हं के त्यागणे विषे क्या कदर्थना है ॥ हे रामजी अहंका सद्भाव ही
संसार का बीज है ॥ तिसका नाश करणा ॥ संसार का मूल जंतु तें नाश
है ॥ तातें इसके नाश का उपाइ करो ॥ जिसका अहंभाव नष्ट हूया
है ॥ तिसकौं सत्त और आकाशरूप है ॥ उसके हिर्दे विषे जगत की
सत्तता कछु फुरती नहीं ॥ जद्यपि गृहस्त विषे होवे ॥ तिसके हिर्दे
विषे इह प्रपंच सूनवन की अटवी हीं भासता है ॥ अरु जो अहं
कार सहित है ॥ जो बन विषे जाय बैठे ॥ तो जनौं के समूह विषे बै
ठा है ॥ का हेतें जो तिसका अज्ञान नाश नहीं भया ॥ अरु जिसनें म
न सहित षट इंद्रीयां कौं वस नहीं कीया ॥ तिसको मेरे कथा श्रव
ण का अधिकार नहीं ॥ उह पशु है ॥ अरु जिस पुरुष मन कौं जीत्या
है ॥ अथवा जीतणे की इछा करता है दिन दिन प्रति सो पुरुष है ॥

जिसपुरष अहंकार त्याग कीया है ॥ सो सर्वत्यागी हूआ है

218

अरु जो इंद्रीयां विषयां माहि ॥ काम क्रोध लोभ मोह करि संपन्न है सो
पशु है ॥ महा अंधतम को प्राप्त होता है ॥ हे रामजी जो पुरुष ज्ञानवा
की न है ॥ अरु इछा कर्म नी तिस विषे दृष्ट आवता है ॥ तो भी इछा ति
सकी अनिछा ही है ॥ अरु कर्म अकर्म ही है ॥ जैसे चुना चलणे उगव
ता नहीं ॥ अरु आकार तिसका दृष्ट आवता है ॥ तैसे चेष्टा उसकी दृ
ष्ट आवती है ॥ सो देषणे मात्र है ॥ उसके हिदे विषे कछु नहीं ॥ हे राम
जी जो पुरुष कर्म इंद्रीयां साथ चेष्टा करता है ॥ अरु जगत की सत
ता उसको नहीं ॥ तब बंधन कोउ नहीं होता ॥ अरु जो जगत को सत मा
न कर थोडा कर्म करता है ॥ तो लीप सर जाता है ॥ जैसे थोडी अग्नि
जाग कर बहुत हो जाता है ॥ तैसे थोडा कर्म भी उसको जन्म मर्ण
दुख देता है ॥ अरु ज्ञानी को नहीं होता ॥ उसका प्रारब्ध जो षे है ॥ सो नीति दे
विषे नहीं मानता ॥ जो संसार रही की है ॥ आतमा की नहीं ॥ सो नीवे गउ
तरता जाता है ॥ जैसे कुंभार का चक्र होता है ॥ अरु चक्र चलावणे ते
रहि जाता है ॥ तब सनैं सनैं उतरता जाता है ॥ तैसे प्रारब्ध वेग दृह
ता जाता है ॥ बहुड जन्म नहीं होता ॥ काहे ते जो उसको अहंकार रूपी
चक्र नहीं लागता ॥ ताते अहंकार का नास करो ॥ जब अहंकार कु
नाश हूया ॥ तब सर्व की आदि पद को प्राप्त होवैगा ॥ अरु परम निर्वा
ण पद है ॥ तिस विषे निर्वाण भी निर्वाण हो जाता है ॥ हे रामजी जब व
र्षा काल होता है तब बादल होते हैं ॥ जब सरत काल होता है ॥ तब
बादल चलते रहते हैं ॥ हे रामजी जब लग अज्ञान रूपी वर्षा का
ल है ॥ तब लग अहंकार रूपी वर्षा है ॥ जब विचार रूपी सरत काल
आवैगा ॥ तब अहंकार रूपी मेघ चलते रहेंगे ॥ अरु आतम रूपी
आकाश निर्मल भासैगा ॥ हे रामजी जैसे समल आदि रज्जु होता है
२४ तब मुष का प्रतिबिंब उज्वल नहीं आवता ॥ जब मैल निवर्त करीये
तब मुष का प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासता है ॥ तैसे अहंकार रूपी मैल
कर जीव अछादा है ॥ तब लग आतमा नहीं भासता ॥ जब अहंका
र रूपी मैल निवर्त होवै ॥ तब आतमा जिउ का तिउ भासैगा ॥ जैसे स
मुद्र विषे नाना प्रकार के तरंग उठते हैं ॥ अरु सम्यक दरसी को केवल
जल मय दृष्ट आवते हैं ॥ अरु तरंगों विषे सत नहीं भासता है ॥ तैसे ना
ना प्रकार के प्रपंच ॥ तिस सम्यक दरसी को चैतन्य घन आतमा ही दृष्ट
आवता है ॥ आतमा ते इतर कछु नहीं देषता ॥ अवर और रतै पथर बि
लो की न्याई हो जाता है ॥ काहे ते जो अहंकार उसका नष्ट हो गया है ॥

अरु जो अहंकार सहित है ॥ अरु क्रिया को त्याग कर्ता है ॥ अरु आप
कों त्याग कर सुखी मानता है ॥ सो मूर्ख है ॥ जैसे कोऊ जल कूं लेकर
आकाश कों नाश कीया चाहे ॥ तौ नहीं होता ॥ तैसे क्रिया के त्याग क
र सुखी नहीं होता ॥ जब संपूर्ण संसार क्रिया का बीज अहंकार ना
श होवै ॥ तब तिह क्रिया आत्मस्वरूप कों प्राप्त होता है ॥ जैसे तांबा
आपणे तांबत्व भाव त्यागता है ॥ तब स्वर्ण होता है ॥ तैसे जीव आप
णे जीवत्व भाव कों त्यागै ॥ तब आतमा होता है ॥ जैसे तेज की जल वि बेद
खे पाईती है ॥ अरु पसिर जाती है ॥ अरु नाना प्रकार के रंग जल विखे
भासते हैं ॥ तैसे ब्रह्मरूप जल विखे अहंकार रूपी तेज का बूंद ता
नाप्रकार की कलनां दिखाई देती है ॥ आतम अरु ब्रह्म निराका
र अरु निरंजन इत्यादिक नाम अनात्म अहंकार कके शुध विखे क
लपे हैं ॥ सो अफुर केवल सत्ता मात्र है ॥ सत है पर असत की न्यां
ई स्थिति है ॥ हे रामजी संसार रूपी मरचका बूटा है ॥ अरु अहंता
रूपी तिसका बीज है ॥ अरु संसार रूपी फूल है अहंता रूपी तिसकी
सुगंध है ॥ हे रामजी जब अहंता उदे हूई ॥ तब संसार उदय हो
ता है ॥ अरु अहंता के नाश हूये संसार का नाश होता है ॥ छीण
छीण विखे उदय होता है ॥ अरु छीण छीण विखे नाश होता है ॥
अरु अहंकार होवणा ही छीण है ॥ उदय होवणे कों अरु अहंका
री न होवणा नास का छीण है ॥ हे रामजी जैसे मृतका कों जल का
संयोग होता है ॥ तिसकर घट बणता है ॥ तब मृत्तिका घट सं
ज्ञा कों पावती है ॥ तैसे पुरुष कों जब संग होता है ॥ तब संसारी हो
ता है ॥ अरु जीवत्व संज्ञा कों पावता है ॥ अरु देश काल पदार्थ वी प
वतादिक दृश्य कों प्रत्यक्ष देखता है ॥ जब नाश होवै तब सुखी अहं
होता है ॥ जेता कछु नामरूप है ॥ अरु तिसका अर्थ है ॥ सो अहं
ता कके भासता है ॥ जब अहंता कों त्यागै ॥ तब शांत रूप आत
मा होय रहि जावैगा ॥ जैसे पवन ते रहित दीपक प्रकाशता है
तैसे अहंकार रूपी पवन तें रहित अपणे स्वभाव विखे स्थिति
होता है ॥ अरु आनंद पद कौं प्राप्त होता है ॥ अरु अनादि पद अ
पणें कों प्राप्त होता है ॥ अरु सर्व का आपणा आप होता है ॥ अरु दे
श काल वस्तु अपणे विखे देखता है ॥ हे रामजी जब लग अहं
ता का नाश नहीं होता ॥ तब लग मेरे वचन हृदे विखे स्थित न

होवैंगे ॥ हे रामजी जिस पुरुष ने आपणे स्वरूप नहीं जान्या ॥ तिस
कों ब्रह्म का पावणा कठिन है ॥ जैसे रेत विषे तेल निकसणा क
ठिन है ॥ तैसे उसकों ब्रह्म का पावणा कठिन है ॥ अरु आपणे स्वरू
प जानणे बहुत सुगम है ॥ जब अहंता का त्याग करैं ॥ जो मैं नहीं
अरु न जगत है ॥ तब कल्याण होवै ॥ जब अहंता का नास होवे ॥ तब
भ्रम की निवर्त होवैगी ॥ जैसे जेवडी के जान्ये तें सर्प भ्रम निवर्त हो
ता है ॥ जब लग अहंता पडी फुरती है ॥ तब लग उपदेश इस कों
लागता नहीं ॥ जैसे आरसी ऊपर मोती नहीं ठहिरता ॥ तैसे उस
के हृदे विषे मेरे वचन नहीं ठहिरते ॥ अरु जिसका हृदा शुद्ध है
तिस कों मेरे वचन लागते हैं ॥ जैसे तेल की बूंद जल विषे विस्ता
र कों पावती है ॥ तैसे उसकों थोडा वचन भी बहुत होकर लाग
ता है ॥ हे रामजी एक पुरातन इतिहास तिसी परमुनीश्वर क
हते हैं ॥ सो तूं श्रवण कर ॥ अथ इतिहास विद्याधर को
॥ मेरा अरु काकभुसुंड का संवाद है ॥ एक समें सुमेर पर्वत के
शिषर पर मैं गया था ॥ तहां भुसुंड बैठा था ॥ तिस कों मैं प्रश्न
कीया ॥ कि हे भगवन् ऐसा भी कोउ पुरुष है ॥ जिसकी आर्बला
बडी होवै ॥ अरु ज्ञानवान तैसं नर ह्या है ॥ जो तैंने कोउ देख्या होवै तो
कहो ॥ भुसुंड उवाच ॥ हे भगवन एक विद्याधर देवता होता
भया है ॥ उसकी बडी आर्बला थी ॥ अरु विद्या बहुत अधिक
री थी ॥ अरु सत्त कर्मों विषे विचरता था ॥ अरु भोग भी तिस ने वर्जि
तो ग्ये थे ॥ अरु सत कर्मों को करे ॥ पर केवल सहकाम ॥ चतुर जु
ग पर्यंत सहकाम कर्म करता रहा ॥ तप जप नेमादिक कर्म करता
भया ॥ जब चतुर्थ जुग का अंत भया ॥ तब उसकों विचार आन उ
त्पति भया ॥ जे तें भोग सुषरूप जानकर भोगता था ॥ तिन भोगों
तें उसकों वैराग उत्पति भया ॥ तब भोगों कों त्याग कर लोकालोक
पर्वत पर गया ॥ तहां जायकर विचारता भया ॥ जो इह संसार असा
र रूप है ॥ किसी प्रकार इसी तें छूटौं ॥ वारंवार जन्म है ॥ वारंवार
मृत्यु है ॥ पदार्थ सत कोउ नहीं ॥ किसका आश्रय करौं ॥ ऐसे वि
चार करके उह विरक्तात्मा पुरुष सुमेर पर्वत स्वर्न की पुरी तिस
पर उहां मेरे पास आइ प्राप्त भया ॥ अरु शिर नीचे करकर मेरे ताईं

दंडौत करी ॥ अर मैं भी बहुत आदर कीया ॥ तब हाथ जोड करति
सकहा ॥ विद्याधरोवाच ॥ हे भगवन एते काल प्रजंत विषयों
के भोग भोगता रहा हों ॥ पर सांत मेरे तांई प्राप्त नहीं भई ॥ तिस तें
मैं दुषी रहा हों ॥ सांत का उपाइ कृपा कर कहो ॥ हे भगवन मैं चित्र
रथ का जो बाग बनाया हूया है ॥ तिस विषे सदा ही विचरते हों ॥ अ
र कल्पव्रछ भी बहुत हैं ॥ तिस विषे बहुत काल रहा हों ॥ बहुत ड
विद्याधरों के स्वर्ग विषे रहा हों ॥ अर इंद्र के नंदन बन विषे रहा
हों ॥ अर स्वर्ग की कंदरा विषे रहा हों ॥ अर सुंदर अपछरा सा
थ स्पर्श कीया है ॥ अर विवानों पर आरूढ बहुत रहा हों ॥ हे भ
गवन इत्यादिक मैं बहुत स्थान देषे हैं ॥ अर तप भी बहुत की
या है ॥ अर दान जप तप ब्रत बहुत कीये हैं ॥ अर सहस्र वर्षों
के सुंदर रूप देषता रहा हों ॥ जिनकी सुंदरता कहणे विषे नहीं
आवती ॥ तो भी नेत्रों कर त्रिप्त नहीं भई ॥ अर बहुत सुगंधों कर
नासका को त्रिप्त नहीं भई ॥ अर रसना कर भोजन बहुत प्रका
र के षाये हैं ॥ तो भी सांत नहीं भई ॥ तृस्ना वधती गई ॥ अर श्रोत्रों
कर शब्द बहुत प्रकार सुणे ॥ अर त्वचा कर बहुत स्पर्श कीये हैं राग
तो भी सांत न प्राप्त भई ॥ हे भगवन जैसे और मैं सुष जान कर से
सवेश्या करो ॥ तिसी और दुष प्राप्त होवे ॥ जैसे मृग छुधा निवारण
अर्थ घास पाले आवता है ॥ अर राग सुणकर मूर्छा हो जाता
है ॥ अर बधिक उसको पकड लेता है ॥ अर महा दुष पावता है
तैसे मैं सुष घाल कर विषयों को ग्रहण करता था ॥ अर बहु
दुष को प्राप्त भया ॥ हे भगवन मैं चिरकाल तक दिव्य भोग भोगपे
हैं ॥ पांचों इंद्रीयां छटवें मन सहित कछुक कहणे विषे नहीं आव
ते ॥ ऐसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध भोगे हैं ॥ पर मेरे तांई सांत न प्रा
प्त भई ॥ अर तन इंद्री विष हुई ॥ जैसे घृत के अग्नि तृप्त नहीं होती
तैसे त्रिह्नां दिन दिन प्रति वृध होती जाती है ॥ अर अंतर को पडी
जलावती है ॥ जो पुरुष इन के भोग विषे अवस्था तेयलकता है
जो मैं इन कर सुषी होवोगा सो महा मूर्ख हैं ॥ तिस को धिकार है ॥ उ
ह समुद्र विषे ऋग का आश्रय वतता है ॥ अर इह सुष रूप जो आस जबलग
ते हैं ॥ तब लग इंद्रीयां अर विषयों का संयोग है ॥ जब इंद्रीयां ते
विषयों का वियोग हूया ॥ तब महा दुष को प्राप्त होता है ॥ काहे ते जो
त्रिह्नां अंतर रहती है ॥ अर भोग जाते रहते हैं ॥ जो विषय भोगी

तेहैं ॥ सोई दुषदाई होजातेहैं ॥ हे भगवन इसीकरमैं बक्रत दुषपा
याहै ॥ यद्यपि पइंद्रीयांके मलहैं ॥ तौभी सुमेरकीन्याईं कछिन हैं ॥
केमलने भीनासतीहैं ॥ पर ऐसीहै जैसे सर्पनीहोतीहै ॥ जैसे बड़ंग
कीधाराकोमलहोतीहै ॥ स्पर्शकीया अनमारता ॥ बक्रड कैसाहै ॥
जैसे बेडीजलविषे पवनकर भ्रमतीहै ॥ तैसे अज्ञानरूपनदीवि
षेपवनरूप इंद्रीयोंने मेरेताईं दुषदीयाहै ॥ हे भगवन ऐसेभी
मैंने देष्याहै ॥ जोसारादिन मांगतेरहेहैं ॥ अरभोजनषावलेके न
मित एकग्रास नहीं हूया ॥ अरएक ऐसे देषेहैं ॥ जो एकदिन विषे ब्र
ह्मादिक अरकाष्टपर्यंत सभनेभोगोंकोभोग्याहै ॥ तिन दोनोंकोने
स्म होतादेष्याहै ॥ जिसको भोजनमात्र भीदिनदिन विषे प्राप्तनहीं
होता ॥ अरजोसभ इंद्रीयांके विषय इष्टरूप भोगताहै ॥ तिन दो
नोंकोनस्म होतादेष्याहै ॥ नस्म दोनोंकी तुल्यहोजातीहै ॥ विशेष
ताकछुनही ॥ इन इंद्रीयांके बंधन विषे जन्मतेभीहैं ॥ अरमरते
भीहैं वारंवार ॥ अज्ञानीशांतिको नहीं प्राप्तहोते ॥ अरजो तुमकहो x ने
तुमतो सुषी हृष्ट आवतेहो ॥ तेरेताईं कादुषहै ॥ हे भगवं इहदुष
चेकार कहलेविषे नहीं आवते ॥ जैसे चक्रवर्ती राजाहोवै ॥ अर और परचव
रुकलेताहोवै ॥ अर अंतर अध्यात्मतापकरतपताहै ॥ जोमनवि
षेजलनहै ॥ तिसकर जलताहै ॥ अरबाह्यतेसुषीहृष्ट आवता
है ॥ तैसे देषनेमात्रमैंसुषीहृष्ट आवताहो ॥ अर अंतरइंद्रीयां
मेरेताईं जलावतीयांहैं ॥ हे भगवन मैं ब्रह्मावेलोकविषे बद
सुषदेषेहैं ॥ अरतहांभी दुषीरहाहो ॥ काहेते जो सत्य अरअ
सत्तेरहिताहै ॥ तिसकर उहभीपडेजलतेहैं ॥ अरइह
इंद्रीयांजोहैं तेभीकवनघावकरतीयांहै ॥ सोघावक्याहै ॥ जो
संसारकीविषमताभांनांप्रकारकी दिषावतीहैं ॥ अरसवे
दारागद्वेषकेविषेरहताहै ॥ इसकरकेमैं बक्रत जलता
रहिताहो ॥ ताते सो उपावमेरेताईं कहो ॥ जिसकरमैं शांत
कोंप्राप्तहोवों ॥ अरउहकवनसुषहै ॥ जिसकोपायकर बक्र
दुषीनहोवीये ॥ अरजिसकानाशनहीं ॥ आदिअंततेरहितहै
सोकहो ॥ जोउसकेपावनेविषेकष्टहै ॥ तोभीमैं जतनकरताहो
जोकिसीप्रकारप्राप्तहोवै ॥ हे मुनीश्वर इंद्रीयांमेरेताईं बडाकष्ट

दीयाहे॥इहइंद्रीयांकैसीहैं॥गुणरूपीवस्त्रकोंअग्निहैं॥अरुन
गुणोंकोंजलावताहै॥विचारधीर्यअरसंतोषज्ञानतिइत्यादि
कजोगुणरूपीवस्त्रहे॥तिनकेनाशकरणहारीहैं॥हेभगवन
इनमेरेताईदुषदीयाहे॥जैसेमृगकाबचाहोवे॥अरसिंहकेव
शपडे॥तिसकोंमर्दनकर्ताहे॥तैसेइंद्रीयांमेरेताईमर्दनकी
याहै॥हेभगवनजिसपुरुषइंद्रीयांकोंवशकीयाहै॥तिसका
पूजनसर्वदेवतेकर्तेहैं॥अरदर्शनकीइछाकरतेहैं॥अरजि
सनेंमनकोंवसनहींकीया॥तिसकोंदानकरजानतेहैं॥अरजि
सपुरुषइंद्रीयांकोंवसकीयाहै॥सोपुरुषपर्वतकीन्याईअप
नीगंभीरताविषेस्थितिहे॥अरजिसइंद्रीयांकोंवसनहींकीया
सोतृणकीन्याईतुछहै॥अरजिसकोंइंद्रीयोंकेअर्थोंविषेसदा
तृष्णारहतीहै॥सोपशुहे॥तिसकोंमेराधिकारहे॥हेमुनिबडाम
हंतभीहे॥जोइंद्रियउसकेवसनहीं॥तोउहमहानीचहे॥हेमुनि
इंद्रीयांमेरेताईदुषदीयाहे॥जैसेमहासूनउजाडविषेपंथोई
कोंतस्करमुहिलेतेहैं॥तैसेइंद्रीयांमेरेताईमुहिलीयाहे॥अर
इंद्रीयांरूपसर्पणीहे॥अरत्रिष्णारूपीविषहे॥तिसकरइंको
विषेसारीविस्वमोहितदेषीताहे॥अरकोईविरलाएकदोइती
नइकोंतेंबचेहोंवेहिंतो॥इहइंद्रीयांदुष्टहैं॥अपलोंअपलोंवि
षयकोंग्रहणकर्तीहैं॥अवरअवरकोंदेतीनहीं॥इसीतेंअभा
तमनरकहीनीयाहैं॥तुछहैं॥अरजडहैं॥अनहोनीयानेंदुष
दीयाहे॥जैसेबिजलीकाचमत्कारहोताहे॥बडूडछपनहोजा
ताहे॥तैसेइंद्रीयांकेसुषक्षणमात्रदिषाईदेतेहैं॥बडूडछपन
होजातेहैं॥जबलगइंद्रीयांअरविषयकासंयोगहोताहे॥तब
लगसुषभासताहे॥जबइंद्रीयांतेंविषयकावियोगहूया॥तब
दुषउत्पत्तिहोताहे॥काहेतेंजोत्रिष्मांव्यापीहे॥एकसैंनाहे॥तिस
विषेइंद्रीयांकेजोगउमेलहलीहैं॥तिसविषेत्रिष्मारूपारूढी॥अरनानाप्रकारकेविषयघोडे
रहे॥अरइंद्रीयांरूपीरथहैं॥अरतिनकेधारणेहारा
हैं॥अरसंकल्पविकल्परूपीमनउपजाहे॥सोअहंकारसहितज्ञानों
अहंकाररहे॥अरइहजोकृयाहोतीहे॥सोइससैंनाकोंनहींजीता॥सोअभी
केसमहहैं॥हेमुनीश्वरजिसपुरुषइससैंनाकोंनहींजीता॥सोविषेगिडताहे॥अरकष्टपावताहे॥अरजिसजी
हरूपीअंधेक

तिसमों

२२१

221 त्या है॥ सो परमसुख कों प्राप्त होता है॥ हे मुनि इह इंद्रीयां कैसी हैं॥ जो
राज गों की इछ्यारूपी षाही विषे अहंकाररूपी कों डार देती हैं॥ अ
र निकसने कों ठव नहीं पडता है॥ जिस पुरुष इनकों जीत्या है॥ ति
सकों त्रिलोकी विषे जय होती है॥ अरु जिस नहीं जीत्या॥ सो महा
दीनता कों प्राप्त होता है॥ अरु जन्म जन्मांतर कों पावता है॥ इन इं
द्रीयां विषे रजगुण अरु तमोगुण रहता है॥ तब लग दाह कों देती
हैं॥ जब लग रजतम वर्तती हैं॥ इह भी मन की वृत्ती हैं॥ जब इनका
अभाव होवै॥ तब शांति प्राप्त होवै॥ इह सोध देष्या है॥ जो इंद्रीयां
तप करके भी वस नहीं होतीयां॥ न यज्ञों करके वस होती हैं॥ न व्रतों
करके वस होतीयां हैं॥ न तीर्थ अटन करके वस होतीयां हैं॥ न किसी
औषध करके वस होतीयां हैं॥ अवरु अवर उपाय ते भी किसी कर
तम नहीं होतीयां॥ एक संतों के संग करते निर्वासी होवै॥ तो वस होतीयां
हैं॥ तांते मैं तुमारी सरन हों॥ आपदा के समुद्र ते कृपा करके निकासो
जो मैं बूडता हों॥ अरु इस संसार समुद्र विषे दीन हों॥ तांते तुमा
री सरन कों प्राप्त हूया हों॥ तुम पार करो॥ अरु तुमारी महिमा संतों
ते भी सुणी है॥ तुम कृपा करो॥ हे भगवन जो कोऊ आर्बला पर्यं
त विषयों के भोग भोगता रहै॥ अरु इनते त्रिप्ती चाहै॥ तौ न प्राप्त हो
वैगी॥ बडे सुमेरु समान हैं॥ अरु आकास विषे उडने वाले भी
हैं॥ तो भी इंद्रीयां कों वस नहीं कर सकते॥ तांते दीन दुषी रहते हैं
अरु ऐसा भी कोऊ पुरुष होवै॥ जो फूलों की न्याई महा उन्मत्त
हस्ती के दंतों कों चूर्ण करै॥ तो मानीता है॥ पर इंद्रीयां कों अंतर
मुष करणे वडे तेजवान है॥ हे मुन एते काल मैं जलता रहा हों
महा अध्यात्म ताप विषे इन्हों मेरे ताई डारता है॥ मैं डूबा हों॥ तु
म कृपा करि निकासो॥ मैं तुमारी सरणी हों॥ इति श्री निरबाण प्र
करणे विद्याधर वैराग वर्ननं नाम सर्गः॥ १३० ॥ वसिष्ठ उवा
च॥ हे वसिष्ट जी इस प्रकार विद्याधर मेरे आगे प्रार्थना करी॥ त
ब मैं कहा॥ हे अंग तूं धन्य हैं॥ अब तूं जाग्या हैं॥ जैसे कोऊ पुरुष अंध
घेकूप विषे पडा होइ॥ अरु तिस की इछ्या होई जो मैं निकसौं॥ तो जा
णीये जो निकसैगा॥ तांते तूं धन्य हैं॥ हे विद्याधर मैं उपदेश करता हों
सो तूं अंगीकार कर॥ अरु सत जाण॥ अरु मेरे वचनों विषे सरधायन

हीं करणी॥ तो इह उपदेश ऐसे क्यों कीया॥ जो सज्जन के सार व
चन हैं॥ सो तेरे ताई कहता हौं॥ अर मैं जानता हौं॥ जो तूं शीघ्र
हीं अंगीकार करेगा॥ जैसे उज्जल आरसी प्रतिबिंब को ग्रह
ण करती है जतन बिनां॥ तैसे मेरे वचन तेरे रिदे विषे प्रवेश
करेंगे॥ जिसका अंतहकरन शुध होता है॥ तिसको संत उप
देश करें अथवा न करें॥ उनको सहज वचन ही उपदेश हो
लागते हैं॥ जैसे शुध आदर्श यतन बिनां प्रतिबिंब को ग्रह
ण करता है॥ पास पड़े को॥ तैसे मेरे वचनों को तूं धारलेवेगा॥ त
ब तेरे दुख नाश हो जावेंगे॥ अर परमानंद को प्राप्त होवेगा॥ जो
अविनाशी सुख है॥ अर आदि अंत ते रहित है॥ अर इंद्रीयां
के सुख आगमापाई हैं॥ सो दुख के तुल्य हैं॥ इनतें रहित परम सु
ख है॥ हे विद्याधर विबेकदृष्ट जो कछु तेरे ताई सुखरूप दृष्ट
आवै॥ तिसका त्याग कर॥ तब परम सुख प्राप्त होवै तेरे ताई॥ अ
र सर्व दुखों का मूल अहंभाव है॥ जब अहंकार नास कीया॥
तब शांत होवेगी॥ संसार का बीज अहंकार है॥ अर संसार मृ
ग त्रिस्ना के जलवत है॥ अणहोता भासता है॥ तब लग संसार
नष्ट नहीं होता॥ जब लग अहंतारूपी संसार का बीज है॥ जब
अहंता बीज नष्ट हो जावै॥ तब संसार निवृत हो जावै॥ अर
संसार रूपी वृक्ष है॥ सुमेरु पर्वतादिक तिसके पत्र हैं॥ तारा
गण इसके कली फूल हैं॥ अर सप्त समुद्र इसके रस हैं॥
अर जन्म मरण इस साखा वली है॥ अर सुख दुख इसके फल
हैं॥ अर अकाश दसूं पाताल को धार करी स्थिति कीया है॥ अ
र अज्ञानरूपी पृथिवी पर उत्पति कीया है॥ अहंकार इसका
बीज है॥ अर वृक्ष मिथ्या भ्रम मात्र उत्पति कीया है॥ हे असत
अर सत की नाई स्थिति कीया है॥ ताते अहंकार बीज का ना
स करो॥ निरहंकाररूपी अग्नि कर इसको जलावो॥ तब अ
त्यंताभाव हो जावै॥ इह आत्मक रके नूयको देता है॥ ताते निरहं
काररूपी अग्नि कर इसका नास करो॥ इति श्री निरवाण प्र
करणे संसार वृक्षरूप वर्णनं नाम सर्गः॥ १३१॥ वसिष्ठोवाच॥
हे विद्याधर इह ज्ञान जैसे उत्पति होता है॥ सो श्रवण कर॥ प्र
थमे विद्यावान तिनकौं श्रवण करणी॥ अर आत्म मनन का वि
चार करणा॥ तिसकर ज्ञान उपजता है॥ सोई नइ अग्नि॥ तिस

करसंसाररूपीवृक्षकौंजलावौ॥ अरआगेंभीहैनहीं॥ अणहो
ताउदयहूयाहै॥ मनकेसंकल्पकरहूयेकीन्याईस्थितिहै॥ जैसे
पथरविषेसिलपीपुतलीयांकल्पताहै॥ जोएतीपुतलीयांति
कसेगा॥ उहपुतलीयांहूईनहीं॥ तैसेइहविश्वमनरूपीसि
लपीकल्पताहै॥ जबमनकानासकरोगे॥ तबसंसारभीभ
मिटजावेगा॥ आत्मविचारकरकैंपर्मपदकोंप्राप्तहोवहिंगा
अपणेंआपरूपप्रत्यक्षहोवैगा॥ तातैंअहंताकोत्यागक
रअपणेस्वरूपविषेस्थितिहोवो॥ हेविद्याधरइहजोजगत
रूपीवृक्षहै॥ सोअहंतारूपीबीजतेंउपजाहै॥ तिसकोंजबज्ञा
नरूपीअग्निकरजलाईये॥ तबफिरइहजगतनहींउपज
ता॥ जबविचारकरइसकोंदेषीये॥ तबअहंत्वकछूनहींपा
ईता॥ हेविद्याधरइहअहंत्वमिथ्याहैं॥ इनकेअभावकीभा
वनाकर॥ एहीउत्तमज्ञानहै॥ हेसाधजबगुरुकेवचनसुणक
रइसनेंउसकेअनुसारपुरुषार्थकीया॥ तबइहपर्मउंचे
पदकौंप्राप्तहोताहै॥ इसकाजयहोताहै॥ हेविद्यारूपीकंदरा
केधारणेहारेपर्वत॥ अरविद्यारूपीपृथिवीकेधारनहारे
इहसंसाररूपीएकअडंबरहै॥ तिसकेसुमेरजैसेकोईथंभे
हैं॥ अररत्नोंकीपंक्तिसाथजडेहूयेहैं॥ अरबनदिशापहा
डवृक्षकंदरापातालवैतालदेवताआकाशइत्यादिकजो
ब्रह्मांडहै॥ सोतिसकेउपरस्थितिहै॥ अरसूर्यचंदिनअंतप्रानी
अरइनकेजोघरहैं॥ सोचोपिडकेपातेहैं॥ कोऊजैसेकर्मक
तेहैं॥ तिनकेअनुसारसुषदुषभोगतेहैं॥ सोषेलहै॥ ऐसेहीस
र्वप्रपंचहै॥ जोरूयासंयुक्तदिषाईदेताहै॥ सोभीअसिथ
है॥ तातैंमिथ्याहै॥ जैसेस्वप्नकीसृष्टिसंकल्पकरभासतीहै॥ तै
सेइहसृष्टिभीभ्रमकरभासतीहै॥ अज्ञानकीरचीहूईहै॥ आ
त्माकेअज्ञानकरभासतीहै॥ आत्माकेज्ञानकरजातीहोजाती
है॥ जबसृष्टिनथी तबभीपर्मात्मतत्तहीथा॥ अरजबसृष्टिहो
वहिगी॥ तबभीपरमात्मतत्तहीहोवहिगा॥ अबभीतुहीहै॥
अरजोकछुप्रपंचतेरेतांईदृष्टआवताहै॥ सोसंकल्पकाबणाही
है॥ त्रिगुणमयप्रपंचगुणोंकारचाहूयाहै॥ अरअपणेस्वरूप
केप्रमादकरस्थितिहूयाहै॥ अरआत्मज्ञानतेंअंतहोजावेगा

जबगपंच ही सूं न हूया ॥ तब ऽआत्मा ऽअनात्मा का कहणां ही न र
हेगा ॥ पाछे जो शेष रहेगा ॥ सो केवल परम तत्त शुध सो तेरा ऽआप
णां ऽआप है ॥ तिस विषे स्थिति हो ॥ अरु दृश्य का त्याग करो ॥ जो है न
हीं ॥ न मैं हों ॥ न जगत है ॥ जब तूं ऐसा होवहिंगा ॥ तब तेरा जय होवै
गी ॥ तातें ऽआतमा विषे स्थिति हो ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे संसा
र ऽअडंबर उपदेशो नाम सर्गः ॥ १३२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे वि
द्याधर इह प्रपंच भी ऽआत्मा का चमत्कार है ॥ अरु ऽआत्मा शुध चै
तन्य है ॥ जिस विषे जड अरु चेतनता स्थिति है ॥ अरु सत्त का ऽअधि
ष्ठान है ॥ सो ऽआत्मा तेरा ऽआपणां ऽआप है ॥ अरु ऽअहं त्वं ऽआदि ऽअर्थ
तें रहित है ॥ अरु ऽआत्म चमात्र है ॥ अरु सत स्वरूप ही ऽअसत की
न्याई स्थिति है ॥ हे विद्याधर तूं इस जड अरु चैतन्य तें अबोध मा प्रबोध
न हो ॥ जब तूं हूया तब तूं शांत चिद्घन होवहिंगा ॥ अरु इह जो
जड अरु चैतन्य है ॥ सो दोनों जड हैं ॥ परमार्थ चैतन्य ऽआगे इन दो
नों के ऽअंतर रहता है ॥ यद्यपि ऽअदृश्य है तौ उह इस के ऽअंतर ही
रहता है ॥ जैसे समुद्र के ऽअंतर वडवाऽग्नि रहता है ॥ अरु इन ज
ड चेतन्य का जो कारण रूप है ॥ सो उही है ॥ उत्पत्ति भी उसी तें होती है
ऽअरु नास भी उही करती है ॥ जैसे पवन नें ऽअग्नि उपजती है ॥ ऽअ
रु पवन ही करके लीन होती है ॥ हे विद्याधर जब तैं जाना जो मैं चै
तन्य रूप भी नहीं ॥ अरु जड भी नहीं ॥ जब ऐसे भावना हूई ॥ तब पा
छें जो रहेगा ॥ सो तेरा स्वरूप है ॥ जब तेरे ऽअंतर जड अरु चैतन्य इन
दोनों का स्पर्श न हूया ॥ तब वै सर्व के ऽअंतर जो चैतन्य है ॥ उह ब्रह्म ते
रे तांई भासेगा ॥ अरु विश्व भी ऽआत्मा विषे कछु हूई नहीं ॥ जैसे सूर्य
की किरना का चमत्कार जल भासता है ॥ तैसे शुध चित का च
मत्कार विश्व होय भासता है ॥ हे ऽअंग जैसे भीत ऊपर पुतली लिषी
होती हैं ॥ अरु भिंन भिंन भासती हैं ॥ सो भीत तें इतर कछु वस्त नहीं
चित्रेले पुतलीयां लिषी हैं ॥ तैसे संत ऽआकाश विषे चित्त रूपी
चित्रेले पुतलीयां कल्पी हैं ॥ सो ऽआत्मा रूपी भीत तें इतर कछु न
हीं ॥ जैसे स्वर्ण विषे भूषण कल्पीते हैं ॥ सो स्वर्ण तें इतर कछु नहीं ॥
तैसे ऽअनंत ऽआत्मा विषे विश्व देषते हैं ॥ सो ऽआत्मा तें इतर कछु
नहीं ॥ सत ऽआत्म स्वरूप की संज्ञा है ॥ जगत कहीये ॥ ब्रह्म कहीये ॥
ऽआत्मा ऽअनात्मा द्रष्टा काल सत उसी तत्त की संज्ञा है ॥ उही शुध चे

तन्म आकार है ॥ जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है ॥ तिसी तत विषे
स्थित होवो ॥ इह जगत ऐसा है ॥ जैसे दूर दृष्टिकर आकाश वि
षे बदल हाथी के संघट भासते हैं ॥ तैसे इह जगत है ॥ इह जो अहं
त्वंरूप जगत है ॥ सो अबोध कर के भासता है ॥ बोध करले लीन होजा
ता है ॥ जैसे मारुथल विषे सूर्य की किरनों कर जल भासता है ॥ जैं
से गंधर्वनगर ॥ तैसे है ॥ इसका त्याग करो ॥ इति श्री निरवाण प्रक
र्णे चितचमत्कार नाम सर्गः ॥ १२३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे विद्या
धर इह जगत स्थावर जंगम सब आत्मा ते उत्पति हूया है ॥ आत्मा
ही विषे स्थित है ॥ अर आत्मा विश्व विषे स्थित है ॥ जैसे स्वप्न की सृ
ष्ट स्वप्नवाले विषे स्थित है ॥ इतर कछु नहीं ॥ अर आत्मा किसी का
कारण नहीं ॥ काहे ते जो एक अद्वितीय है ॥ जिस विषे दूसरा फुरना
नहीं ॥ हे अंग जो तूं तिस पद पावने की इछा करती है ॥ तब जैसे नि
श्चय कर ॥ मौन मे हो ॥ न इह जगत है ॥ जब तूं ऐसा होवैंगा ॥ तब आ
त्मपद को प्राप्त होवहिगा ॥ जो देश काल वस्तु के परछेद ते रहित
है ॥ अर सर्व उहीं परमात्म तत बडा है ॥ अर विश्व का कर्ता संकल्प
ही है ॥ काहे ते जो संकल्प कर उत्पति होती है ॥ सो संकल्प कर नास
होता है ॥ जैसे पवन कर अग्नि उत्पति होती है ॥ अर पवन हो कर
दीपक निर्वाण ही होता है ॥ तैसे जब संकल्प बाहिर मुख फुरता
है ॥ तब संसार उत्पति होता भासता है ॥ जब संकल्प अंतरमुख हो
ता है ॥ तब आत्मपद को प्राप्त होता है ॥ अर प्रपंच लय हो जाता
है ॥ तातें संसार की नाना प्रकार संज्ञा फुरने कर होती है ॥ न सत है ॥
न असत है ॥ न अन्य है ॥ इह सब कल्पना मात्र है सत असत ॥ अर
सुन हे अंग सब का अभाव हूया ॥ तहां अहं त्वं कहां पाईये ॥ है नहीं ॥ सो
मौन मात्र है ॥ बालक के यक्षवत ॥ हे साधु जहां अहं त्वं न हो गये
हैं ॥ तहां जो सत्ता है सो परम पद है ॥ अर जहां जागत है ॥ तहां विचार क
रने ते लीन हो जाता है ॥ अर वास्तव पूछे तो ब्रह्म अर जगत विषे भेद क
छु नहीं ॥ नाम मात्र दो हैं ॥ जैसे घट कुंभ ॥ तैसे भ्रम कर के नानत्व भास
ता है ॥ जैसे समुद्र विषे आवर्त तरंग उठते हैं ॥ सो जल ते इतर कछु न
हीं ॥ अर पवन के संयोग ते आकार भासते हैं ॥ तैसे आत्मा विषे जगत
है ॥ इतर कछु नहीं ॥ अर संकल्प के फुरने कर के नाना प्रकार जगत भा
सता है ॥ हे अंग इह संकल्प के साथ मिलकर चितवृत्ति जैसी भावना

करता है ॥ तैसा सरूप अपणा देषता है ॥ स्वरूप तें इतर कछु नहीं ॥ प के
भावनां करहोर का होर देषीता है ॥ जैसे सुधमणि निकट कोऊ रंग
राषीये ॥ तौ तैसा रूप भासता है ॥ अर मणि विषे कछु क्रिया नहीं रंग ॥
तैसे चित शक्ति विषे कछु क्रिया नहीं ॥ अर क्रिये की न्याई स्थित है ॥ तौ
तें अपणे स्वरूप को भावनां कर ॥ अर जड चैतन्य को छांड के सुध
चैतन्यघन विषे स्थित हो ॥ जब ऐसे ध्यान के अपणे स्वरूप विषे स्थि
ति होवैगा ॥ तब तेरे ताई इह ध्यान विषे भी विषु अपणा स्वरूप भासेगी
हे विद्याधर इह जगत भी आतमा तें भासता है ॥ जैसे स्थित समुद्र वि
षे तरंग फुरते हैं ॥ कारणरूप जल बिनां तौ नहीं ॥ तैसे ब्रह्म कारण तें
पछिनां जगत नहीं ॥ पर कैसा है ब्रह्मसत्ता जो अकर्ता रूप है ॥ अद्वैत
है अच्युत है ॥ इसी तें कहा जो अकर्ता है ॥ अर जगत अकारणरूप
है ॥ जो जगत अकारणरूप है ॥ तौ न उपजता है ॥ न नास होता है ॥ मारू
थल के जलवत है ॥ इसी तें कहा जो जगत कछु वस्तु नहीं ॥ केवल अ
ज अच्युत शांतरूप आतमसत्ता हीं अषंड तत्स्थित है ॥ शिला को आव
त ॥ अचेत चिन्मात्र है ॥ जिसको चिन्मात्र की अंतर भावनां नहीं ॥ ति
समूरिष साथ हमारा क्या है ॥ हे साध परमीरथ तें कछु बणया नहीं ॥ अनेक
अर जहां जहां इह मन है ॥ तहां तहां ई है जगत है ॥ तृणकाष्ठ भीतादि
क जो हैं ॥ इन सर्व विषे जगत है ॥ जो विचार कर देषीये ॥ तौ उही रूप
है होर नहीं ॥ जैसे स्वर्न के जो भेद रूपे भूषन भी स्वर्न भासता है ॥ तैसे
केवल सत्ता समान पद एक अद्वितीय है ॥ इस तें इतर कछु नहीं ॥ भि
न्न भिन्न संता भी उही है ॥ इति श्री निरवाणप्रकर्णे सर्ग अपि
सान्ति पदेशो नाम सर्गः ॥ १३४ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच ॥ हे विद्या
धर जब इह आतमपद को प्राप्त होता है ॥ तब इसकी अवस्था ऐसे न
सी होती है ॥ जैसे नग्न शरीर होवै ॥ अर तिसपर षडुतन्न शस्त्रों की व
षा होवै ॥ तिसकर दुषी नहीं होता ॥ अर सुंदर अपसरा के साथ
मिलै ॥ तौ तिनकर हर्षवान नहीं होता ॥ दोनों विषे तुल्य ही रहिता है ॥
हे विद्याधर तब लग इह पुरुष आतमपद का अभ्यास करे ॥ जब ल
ग संसार तें सुषुप्तवत नहीं होता ॥ अभ्यास कर आतमपद को प्राप्त
होवैगा ॥ जब आतमपद की प्राप्त भई ॥ तब पंचभूतक शरीर के ज्वर स्प
र्श न करैगा ॥ जद्यपि शरीर विषे प्राप्त भी होवैं ॥ तौ भी तिसके अंतर अवे
श नहीं करते ॥ केवल शांतपद विषे स्थित रहिता है ॥ विद्यमान भी ला
गते हैं ॥ तौ भी स्पर्श नहीं करसकते ॥ जैसे जल विषे कमल को स्प

र्श नहीं होता ॥ हे देवपुत्र जब लग देहादिक विषे अध्यास है ॥ तब
लग इसको आत्मस्पर्श करते हैं ॥ आत्मा के प्रमाद करके ॥ अरु जब
आत्मा का साक्षात्कार हूआ ॥ तब सर्व प्रपंच भी आत्मरूप भासेगा
हे विद्याधर जैसे कोऊ पुरुष विषपान करता है ॥ तो धुष जो है ज
लनता उसको होती है ॥ अरु बासना होती है इह अवस्था विषकी
है ॥ सो विषतें इतर कछु नहीं ॥ पर नाम संज्ञा हूई है ॥ न विष मरता है
न जन्मता है ॥ अरु धुष बासी उस विषे दृष्ट आवती है ॥ तैसे आ
त्मा न जन्मता है न मरता है ॥ अरु गुणों के साथ मिलकर अवस्था
का प्राप्त हूआ दृष्ट आवता है ॥ आत्मा जन्म मरण तें रहित है ॥ अ
रु गुणों संकल्प के साथ मिलने करि जन्मता मरता दृष्ट आवता
है ॥ अंतःकरण अरु देहादिक भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ हे साध इह
जगत भ्रम करि भासता है ॥ हे विद्याधर जो ज्ञानवान पुरुष हैं ॥ सो
इस जगत को गोके पदवत लंघ जाता है ॥ अपने पुरुषार्थ करि
अरु जो अज्ञानी हैं ॥ तिनको अल्प भी है तो भी समुद्रवत हो जाता है
तां ते आत्मपद पावने का यतन करो ॥ जिसके जानने संसार समुद्र
तुच्छ हो जावे ॥ सो आतम कैसा है ॥ जो सर्व विषे अनस्यूत व्याप्या है ॥
अरु सर्व तें अतीत है ॥ बडउ कैसा है ॥ जो जिसके जानने तें अंतर सीत
करण ल हो जाता है ॥ सभ ताप नष्ट हो जाते हैं ॥ हे साध फिर तिसका त्याग
ह अविता करणी बडी मूर्षता है ॥ हे साध इस भ्रम पदार्थ जात ब्रह्म
स्वरूप ही हैं ॥ जो मन ब्रह्मस्वरूप हूआ ॥ तो मन अहंकारादिक कल
क कैसा ॥ सभ तुं ही है ॥ किसी करि किसी को सुष दुष नहीं ॥ हे विद्याधर
जब आत्मपद को जाण्या ॥ तब अंतःकरण भी ब्रह्मरूप भासेगा
जो संकल्प करि भिन्न भिन्न जाणीता है ॥ सो संकल्प के होते भी ब्रह्मस
रूप भासेगा ॥ तां तें निःसंकल्प होकरि स्थित हो ॥ जो न मैं हों ॥ न इह ज
गत है ॥ न इदं त्वं है ॥ इन हूं त्यागि अरु अर्थी तें रहित होकरि स्थित हो
जो संशय सर्व मिट जावैं ॥ हे विद्याधर जब तें अैसे निरहंकार होवे
हिंगा ॥ अरु निःसंकल्प होवेंगा ॥ तब उत्थान काल विषे भी सर्व
आत्मा भासेगा ॥ बुधि बोध जजाल हमी स्मृति जसकी तैं इत्यादिक जो
प्रभुन अप्रभुन अवस्था है ॥ सो सर्व आत्म समबुधि रहेगी ॥ इनके प्राप्त
हूए भी केवल परमार्थ सत्ता तैं इतर न भासैगा नहीं ॥ जैसे अंधकार
विषे सर्प के पेरका षोज नहीं भासता ॥ काहेतें जो है नहीं ॥ तैसे तैं रेतां

ई सर्व अवस्था तुरीया सें गायां ॥ सर्व आत्मा ही भासैगा ॥ जेते
कछु भाव रूप पदार्थ स्थित हैं ॥ सो अभाव हो जावेंगे ॥ हे
अंग ॥ जिस पुरुष विचार कर आत्मपद पावणे का यत्न की
या है ॥ सो पावैगा ॥ अरु जिस कहा मैं मुक्ति होवर होंगा ॥ मेरे ता
ई दया करेंगे ॥ तिस पुरुष कदाचित मुक्ति नहीं होवणी
आतम सरूप विषे स्थिति होवणे को पुरुष प्रयत्न बिनां क
दाचित मुक्ति न होवैगा ॥ आतम सरूप विषे न कोऊ दुष है
न किसी गुण साथ मिल्या हूया सुषी है ॥ केवल शांत रूप है
किसी कर किसी कों कछु सुष दुष नहीं ॥ न सुष है ॥ न दुष है
न कोऊ कर्ता है ॥ न भोक्ता है ॥ केवल केवल सत्ता अपणे आ
प विषे स्थित है ॥ इति श्री निरवाणप्रकर्णे तुरीयार्थ भाव
रूप योग उपदेशो नाम सर्गः ॥ १३५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥
हे विद्याधर जैसे कोऊ कल्पना करे ॥ जो आकाश विषे आका अवर
श स्थित है ॥ सो मिथ्या प्रतीत है ॥ तैसे आतमा विषे जो अहं
का फुरनी है ॥ सो मिथ्या है ॥ जैसे आकाश तें इतर अवर आका
श कछु वस्त नहीं ॥ परमार्थ तत्त ऐसा सूक्ष्म है ॥ जिस विषे आ
काश भी स्थूल है ॥ केवल आत्मत्व मात्र है ॥ जिस विषे सुमेरा अरु असथूल हैं सा
दिक भी सूक्ष्म हैं ॥ अणु रूप हैं ॥ ऐसा स्थूल है ॥ दूसरे तें रहि
त चैतन्य केवल शांत रूप है ॥ गुण अरु तत्तों के क्षोभ तें रहि
त है ॥ हे देवपुत्र अपणे अनन्त रूप चंद्रमा है ॥ अरु अमृत
के श्रवण हारा है ॥ हे अंग आत्म स्वरूप अमृत की भावना कर
जो तूं जन्म अरु मरन के बंधन तें मुक्ति होवैं ॥ जैसे आकाश
विषे दूसरे आकाश की कल्पना मिथ्या है ॥ तैसे निराकार चिदा
त्मा विषे अहं मिथ्या है ॥ जैसे आकाश अपणे आप विषे स्थि
त है ॥ तैसे ही आतम सत्ता अपणे आप विषे स्थित है ॥ अहं ते
आदिक तें रहित है ॥ जब अहं का उत्थान तिस विषे होता है
तब जगत विस्तार होता है ॥ जैसे जल विषे द्रवता कर तरंग प
सरते हैं ॥ तैसे अहं कर जगत पसरता है ॥ जैसे वायु फुरने तें र
हित हूई ॥ आकाश रूप हो जाती है ॥ तैसे संवित उत्थान अहं
तें रहित होई ॥ तब आत्मरूप हो जाती है ॥ जगत भ्रम मिट जा
ता है ॥ फुरने कर जगत फुर आया है ॥ वास्तव जगत कछु नहीं
तां न बान न कों आत्मा ही भासता है ॥ देश काल बुधि लज्जाल हम

स्मृत की रत सन्म आकाश रूप है ॥ अहं रूपी चंद्रमा के प्रका
श करि प्रकाशते है ॥ जैसे धूम बादलों के संयोग करके आ
काश विषे प्राप्त होता है ॥ तैसे प्रमादक के संवित दृश्य भाव
को प्राप्त होती है ॥ पर अंबर कछु नहीं होती ॥ जैसे तरंग करके
जल अंबर कछु नहीं होता ॥ तैसे दृश्यतें दृश्य भिंन नहीं होती
जैसे केले के थंभ विषे अंबर पत्रों बिना कछु नहीं निकसता
पत्र संतन रूप है ॥ तैसे कड रूप जगत भासता है ॥ पर आत्मातें
भिंन कछु नहीं संतन रूप है ॥ श्री रूप भुजा नेत्र चर्नादिक नाना
प्रकार भिंन भिंन भासते हैं ॥ पर सबन संतन रूप केले के पत्रों की
न्याई भासते है ॥ सन्म असार रूप है ॥ हे विद्याधर चित विषे रा
ग रूपी मल नता है ॥ जब वैराग रूपी झाडू करि झारीये ॥ तब इ
सका चित निर्मल होवे ॥ जैसे भीत ऊपर चित्र लिखे होते हैं ॥ तै
से आत्मा विषे जगत भासता है ॥ देवता मनुष नाग दैत्यादि
क सब जगत संकल्प रूपी चित्रे ले मूर्ती लिखा है ॥ स्वरूप के
विचार करि निवर्त होजाती है ॥ जब सनेह रूपी संकल्प फुर
ता है ॥ तब भाव अभाव रूप जगत जो है ॥ सो विस्तार कों पावता
है ॥ जैसे जल विषे तेल की बूंद विस्तार कों पावता है ॥ जैसे भास
ते अग्नि निविस करि भासों को दग्ध करती है ॥ तैसे स्नेह इस
तें उपज करि इसी कों खाता है ॥ आत्मा विषे देश काल पदार्थ
भासते हैं ॥ एही अविद्या है ॥ पुरषार्थ करि इसकों अभाव करो
अर्ध भाग सतसंग अरु कथा श्रवण विषे व्यतीत करो ॥ तृती
आपंही या भाग आपने स्वरूप का विचार करो ॥ चतुर्थ भाग आत्म ज्ञान
को अभ्यास करो ॥ इस उपाय करि अविद्या नष्ट होजावैगी ॥ अ
खण्ड अखण्ड रूप पद की प्राप्त होवैगी ॥ विद्याधरोवाच ॥ हे मु
नीश्वर चार भाग उपाय करि जो पद अखण्ड रूप प्राप्त होता
है ॥ सो समकाल क्या है ॥ नाम अर्थ के ज्ञान कहिये जो प्रकार ह
ता है ॥ वसिष्ठोवाच ॥ हे विद्याधर संसार समुद्र के तरने कें
ज्ञानवानों का संग करणी ॥ जो विरक्त निर्वैर पुरुष है ॥ तिनकी ज
जो प्रकार टहल करणी ॥ तिसकरि अर्ध भाग अविद्या का नष्ट
होवहिगा ॥ उनकी संगत करि ॥ अरु तीसरा भाग मनन करिके ॥ अ
र चतुर्थ भाग अभ्यास करि के नष्ट होवहिगा ॥ अरु जो इह उपाय
न करि सके ॥ तौ इह यत्न करै ॥ जो जिस जिस विषे चित अनिल

बकरके आसक्ति होवै ॥ तिसीकौं त्यागकरै ॥ एक त्याग अ
विद्या इसकर नष्ट होवैगी ॥ तीन त्याग सर्वसंन्यासकर नष्टहो
वहिगा ॥ साधसंग अरसतशास्त्रविचार अर अभ्यास यत्न
होवै ॥ तब एकही बार अविद्या नष्ट होजावैगी ॥ इहसमकाल
कहीये ॥ अरएक एकके सेवनेतें एक एक त्याग निवर्त होता
है ॥ पाछे जो शेष रहता है ॥ तिसविषे नाम अर्थ सने असत्
पहैं ॥ अजर अनंत एकरूप है ॥ संकल्पके उपजे पदार्थ संक
ल्पके लीन हूयें लीन होजाते हैं ॥ हे विद्याधर इहजगत संक
ल्पकर रचा है ॥ जैसे आकाश विषे सूर्य निराधार स्थिति होता
है ॥ तैसे देशकाल की अपेक्षातें रहित इहमनन मात्र स्थि
ति है ॥ तीनों जगत मनके फुर्णेकर फुर आवते हैं ॥ मनके लय
हूयें लय होजाते हैं ॥ जैसे स्वप्नके पदार्थ स्वप्नके जागेतें अ
भाव होजाते हैं ॥ हे विद्याधर जगत्‌रूपी बनविषे एक कल्प
वृक्ष था ॥ तिनाकी अनेक साषा हैं ॥ तिसकी एक साषा साथ
जगतरूपी गूलर का फल है ॥ तिसविषे देवता दैत्य मनुष्य
पष्वादिक मछर रहैं ॥ वासनारूपी रसकर पूर्ण मजापहाड
षे ॥ पंचभूत मुषद्वारा तिसको फलन तिसके णका मारिग है
इत्यादिक सुंदर रचना बणी है ॥ तिसविषे त्रिलोकी का ईश्व
र इंद्र एक होत भया ॥ अथ इंद्रोपाख्यानम् ॥ गुरुके उपदे
शकर तिसका आवर्ण नष्ट होगया ॥ तब इंद्र अरदैत्योंको
युध होवणे लागा ॥ इंद्र आपणी सेनाको लेचल्या ॥ तब इंद्र
को हीनता नई ॥ इंद्र भागा दशो दिशा विषे भ्रमता रहा ॥ जहां
जावै तहां दैत्य चलेजावैं ॥ जैसे पापी परलोकविषे सोना नहीं
पावता ॥ तैसे इंद्र शांति कतहूं नपाई ॥ तब अतिवाहक रूपक
कै सूर्य की त्रिशरेण विषे प्रवेश करगया ॥ जैसे कमलविषे
भ्रमरा प्रवेश करै ॥ तहां युधका वृत्तांत इसको विस्मरण होग
या ॥ तब एक मंदर विषे आपको बैठा देषत भया ॥ जैसे निद्रा
करस्वप्न सृष्ट भास आवै ॥ तहां रत्नमणी साथ षचित नगर दे
ष्या ॥ तिसविषे प्रवेश करतभया ॥ तहां पृथ्वी पहाड नदीयां चं
द्र सूर्य त्रिलोकी इसको भासणे लागी ॥ तिसजगत का आपको
इंद्र देषत भया ॥ जो दिव्यभोग ऐश्वर्य कर संपन्न भये इंद्र स्थिति
हैं ॥ तब कुंद नाम एक बेटा बलीपुत्र हूया ॥ सो इंद्र के तेकाल

परांतशरीरकोंत्यागकरनिर्वाणहूया॥ जैंसेतेलतेंरहित
दीपकनिर्वाणहोताहे॥ तबकुंदनामपुत्रउसकाराजक
रनेलागा॥ तबतिसकाएकपुत्रभया॥ तबकुंदइसीशरी
रकोंत्यागकरपरमपदकोंप्राप्तभया॥ उसकापुत्रराजकरने
लागा॥ बहुडतिसकापुत्रहूया॥ इसीप्रकारसहस्रपुत्रहोयक
रराजकरतेरहे॥ उनकेकुलविषेइहहमाराइंद्रराजकर्त्ता
हे॥ तातेंइहजगतसंकल्पमात्रहे॥ तिसीत्रिसरेणविषेइह
स्थितहे॥ तातेंइसजगतकोंसंकल्पमात्रजाणकरइसकी
आस्थात्याग॥ इतिश्रीनिर्वाणप्रकर्णेइंद्रोपाख्यानेत्रि
सरेणजगतवर्ननंनामसर्गः॥ १३६ ॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥
हेविद्याधरफेरउनकाकुलविषेएकइंद्रहूया॥ बडाश्रीमा
नत्रिलोकीकाराजकरतेभया॥ फेरउहनिर्वाणभया॥ तिसकाघ
रपुत्ररहा॥ तिसकोंबृहस्पतिकेवचनोंकरज्ञानरूपप्रकाश
उदयभई॥ तबइहविदितवेद्यहोयकरस्थितिभया॥ अरय
थाप्राप्तविषेइंद्रहोयकरराजकरे॥ दैत्योंकोंजीत्या॥ तबकिसी
कालविषेकिसीकार्यनिमित्तत्रिसरेणविषेप्रवेशकीया॥
तहांतिसकोंनानाप्रकारकाजगतभासणेलागा॥ तहांइसको
आपणीइंद्रकीप्रतिभाभई॥ तबइछाउपजी॥ जोमेंब्रह्मतत्त
कोंप्राप्तहोवों॥ दृस्यपदार्थकीनांईप्रत्यक्षदेषों॥ एकांतबेठ
करसमाधविषेस्थितिहूया॥ तिसकोंअंतरबाह्यब्रह्मसाक्षा
तकारभया॥ तिसपरमात्माकेउदयहोणेकरएकनिश्चयभ
या॥ जोसर्वब्रह्महीहे॥ अरसर्वओरतेंपूजणेयोग्यहे॥ अरस
र्वपूजतेभीइसीकोंहें॥ अरसर्वहे॥ अरसर्वशब्दतेंरहितहे॥ अर
रूपअवलोकतेंरहितहे॥ अरमननतेंभीरहितहे॥ केवलशुध
आत्मपदहे॥ अरसर्वओरतेंपाणपादउसीकेहें॥ सर्वसीसअ
रमुषउसीकेहें॥ अरसर्वओरतेंतिसीकेश्रवणहें॥ अरसर्वओ
रतेंतिसीकेनेत्रहें॥ अरसर्वकोंआवृतकरकेस्थितिहोरहाहे॥ सर्व
इंद्रीयांअरविषयोंकोंप्रकाशताहे॥ अरसर्वइंद्रीयोंतेंरहितहे॥
अरअसक्तिहूयाभीसर्वकोंधाररहाहे॥ अरनिरगुणहे॥ इंद्रीयों
साथमिलकरगुणोंकाभोक्ताहे॥ अरसर्वभूतोंकेअंतरबाह्य
व्यापरहाहे॥ अरसूक्ष्महे॥ तातेंदुरविज्ञेयहे॥ इंद्रीयोंकाविषयन
हीं॥ अरअज्ञानीकोंअज्ञानकरदूरहे॥ आतमज्ञानीकोंज्ञानकर

निकर है॥ आत्मत्वतें॥ अरु अनंत है॥ सर्वव्यापी है॥ अरु केवलज्ञा
नरूप है॥ जिस विषे दूसरा कोऊ नहीं॥ घट पट कंधा गाइ ब
रा आकाश नरा॥ सन्न विषे उह लखना सता है॥ पर्वत वृक्ष पृथि
वी चंद्रमा सूर्य देश काल वस्तु सर्व ज्ञल ही है॥ अलतें इतर
कछु नहीं॥ हे विद्याधर इस प्रकार इस को ज्ञान हूया॥ अरु जी
वन्मुक्ति हूया॥ जो कछु चेष्टा होवे॥ सो सन करे॥ परंतु अंतस्कर
ण विषे बंधमान न होवे॥ जब केताइक काल बीता॥ तब इंद्र
निर्वाण पद को प्राप्त हूया॥ आकाश भी जिस विषे स्थूल है॥
तिस पद को प्राप्त भया॥ बहुड इंद्र का एक पुत्र सो बडा सूरबी
र था॥ तिस ने सर्व दैत्यों को जीता॥ बहुड देवताऊ को जीता॥ अरु
त्रिलोकी का राज करणे लागा॥ अरु तिस को भी ज्ञान उत्पत्ति भ
या॥ शास्त्र अरु गुरों के वचनों कर॥ अरु केताक काल जब बी
ता॥ तब उह निर्वाण हूया॥ उस का जो पुत्र रहा उह राज करणे ला
गा॥ इस प्रकार के इंद्र हूये॥ तिस विषे राज करते भये॥ अरु अ
नेक विवहार को देषते भये॥ तब तिस का कुल विषे जो कोऊ उ
स का पुत्र था॥ तिस को इह हमारी सृष्टि नास आई॥ उह भी ब्रले
ध्यानी हूया॥ तब उह आइ कर इस त्रिलोकी का राज करणे ला
गा॥ अब लग विश्व का इंद्र उह ही है॥ हे विद्याधर इस प्रकार वि
श्व की उत्पत्ति है॥ सो संकल्पमात्र है॥ सत्य मैं तेरे ताईं कही है॥ उ
स को पहिले त्रिसरेण विषे सृष्टि भासी॥ फेर तिस सृष्टि के एक
तिस की तंत विषे उस को भासी॥ फेर तिस विषे केई वृत्तांत जो
संकल्पमात्र थे उन ऊं तुरत देष्ये अरण विषे॥ उन इह अवस्था
देषीयां॥ हे विद्याधर वास्तव कछु हूई नहीं॥ जैसे आकाश वि
षे नीलता भासता है॥ अरु है नहीं॥ तैसे ही इह विश्व है॥ आत्मा
विषे विश्व का अभाव है॥ इह विश्व अहंभावतें उत्पत्ति हूई है॥
जब अहंभाव फुरता है॥ तब आगे सृष्टि बणती है॥ जब अहं का
अभाव हूया॥ तब विश्व कोऊ नहीं॥ इस विश्व का बीज अहं है॥
तां ते तूं ऐसी भावना कर॥ न मैं हों॥ न जगत है॥ जब ऐसी भावना
करी॥ तब आत्मा ही शेष रहेगा॥ हे विद्याधर इस मेरे उपदेश
को अंगीकार करो॥ इति श्री निरवाण प्रकरणे सकल्प निर्सं
कल्प एकता गति पादनं नाम सर्गः॥ १२८ ॥ श्री वसिष्ठोवाच
हे विद्याधर जब अहं का उत्थान होता है॥ तब आगे विश्व बणी

दृष्ट आवता है॥ जब अहं का अभाव हूया॥ तब विश्व नहीं भास
ता॥ केवल शुद्ध आत्मा ही भासता है॥ हे विद्याधर इंद्र कहा [illegible]
जोमैं हों॥ उस सूर्य की किरणों के अणों विषे उस को अहं अभें से हूया॥
तब उस विषे देख्या अरु कष्ट पाया॥ जो उस को अहं न होता॥ तो
दुख काहे को पावता॥ दुख रूपी वृक्ष का अहं रूपी बीज है॥ अरु आ
तम विचार तें अहं का नाश होता है॥ जब अहं का नास होता है॥ त
ब आतम पद का साक्षात्कार होता है॥ अरु आतम साक्षात्कार
हूये तें अहं ग्रंथि का नास होता है॥ हे विद्याधर आतम रूपी
एक पर्वत है॥ तिस ऊपर आकाश रूपी एक बन है॥ तिस विषे
संसार रूपी एक वृक्ष लागा है॥ अरु वासना रूपी तिस विषे रस है
अरु अज्ञान रूपी भूम तें उत्पति भया है॥ अरु नदीयां समुद्र इस
कीयां नाडी हैं॥ अरु चंद्रमा तारे इस के फल हैं॥ अरु वासना रूपी
जल साथ बधता है॥ अरु अहं रूपी इस वृक्ष का बीज है॥ सुख अ
रु दुख रूपी इस वृक्ष के फल हैं॥ अरु रस इस विषे आत्म पद है॥
अरु टास इस के आकाश है॥ अरु धड इस का पाताल है॥ तुम इ
स वृक्ष को ज्ञान अग्नि कर जलावो॥ अहं रूप जो वृक्ष का बीज है
तिसी का नाश करो॥ हे विद्याधर एक बाही है॥ तिस के जन्म मरण
दोनों कनारे हैं॥ अरु अनातम रूपी तिस विषे जल है॥ अरु वास
नां रूपी तिस विषे तरंग है॥ अरु विश्व रूपी तिस विषे बुदबुदे
हैं॥ होते भी हैं अरु मिट भी जाते हैं॥ अरु शरीर रूपी तिस विषे ऊ
गा है॥ अरु अहंकार रूपी वाय है॥ जब वाय हूई॥ तब तरंग बुदबु
देस न होते हैं॥ जब वाय मिट गई॥ तब केवल स्वछ निर्मल जल
ही भासता है॥ हे विद्याधर जो वाय हूई॥ तब जल तें इतर कछु
न हूया॥ अरु जो न हूई॥ तो भी जल तें इतर कछु नहीं जल ही है॥
तैसे अज्ञान के होते भी॥ अरु निवर्त हूये भी॥ आतम पद जिउं का
तिउं है॥ पर सम्यक दर्शन कर के आत्म पद भासता है॥ अरु अ
ज्ञान कर के जगत भासता है॥ सो अहं का होवणा ही अज्ञान है॥ ज
ब अहं हूया तब ममता भी होता है॥ अरु अहं ममता ही नाम संसार
का है॥ जब अहं ममता मिटी तब जगत का अभाव होता है॥ अहं
के होते दृश्य भासता है॥ अरु दृश्य विषे अहं होता है॥ तातें संवित
को त्याग कर निर्वाण पद को प्राप्त हो॥ हे वशिष्ठ जी जब मैं इस प्र
कार विद्याधर को उपदेश कीया॥ तब समाधि विषे स्थित हूया॥

अरु परम निर्वाण पद कों प्राप्त भया ॥ जैसे दीपक निर्वाण होजा
ता है ॥ तैसे उसका चित्त ज्ञान तें शांत होगया ॥ हे ज्ञानवान उसका
हृदा शुध था ॥ मेरे वचनों ने उसके हृदे विषे शीघ्र ही प्रवेश की
या ॥ जब समाधि स्थित भया ॥ तब मैं उसको जगाय रहा वारंवा
र पर उह न जाग्या ॥ जैसे कोउ जलता जलता शीतल समुद्र विषे
जाइ बैठे ॥ अरु उसकों कहीयें तें निकिस ॥ तो नहीं निकसता ॥ तै
से संसार के ताप कर जलता जो था ॥ अरु आतम समुद्र कों उह प्रा
प्त हूया ॥ तब अज्ञानरूपी संसार के प्रवाह कों नहीं देखता ॥ हे व
शिष्ट जी जिस पुरुष का अंतहकरण शुध होता है ॥ तिस कों थोडा
वचन भी बहुत होलागता है ॥ जैसे एक तेल की बूंद जल विषे पा
इ बडे विस्तार कों पावता है ॥ तैसे जिसका अंतहकरण शुध होता है
तिस कों थोडा वचन भी बहुत होकर लागता है ॥ अरु जिसका अंत
हकरण मलिन होता है ॥ तिसकों वचन नहीं लागता ॥ जैसे आरसी उ
पर मोती नहीं ठहरता ॥ तैसे शास्त्र अरु गुरों के वचन उसकों नहीं
लागते ॥ जब लग विषयों की लाव.नी है ॥ तब लग हृदा मलिन घु
ता ॥ अरु जब विषयों ते वैराग उपजे ॥ तब जानीये जो हृदा शुध
हूया है ॥ हे वशिष्ट जी जब मैं विद्याधर कों उपदेश कीया ॥ तब उ
ह शीघ्र ही आतमपद कों प्राप्त भया ॥ काहे तें जो उसका हृदा शुध
था ॥ हे मुनीश्वर जो तुम्हों मेरे पास पूछा था ॥ सो कहा जो ज्ञानतें रहि
त चिरंकाल जीवता देख्या है ॥ वशिष्ट उवाच ॥ हे रामजी मैं ऐ
से काकभुशुंड तें पूछा था ॥ सो काकभुशुंड मुझ कों कहा ॥ अरु क
हि करतें तूष्णी होगया ॥ जैसे मेघ बर्षा करके तूष्णी होवे ॥ तैसे उह तू
ष्णी भया ॥ अरु मैं नमस्कार करके ॥ उठ के आकाश मार्ग सों अपणे
घर आया ॥ हे रामजी अबणका दशयुग चौकडी बीती है ॥ मेरे अरु
काकभुशुंड के संवाद विषे ॥ हे रामजी काल का नेम नहीं ॥ जो बहुत
काल करता न उपजता है ॥ अरु थोडे काल करता न उपजता है ॥
इह तिदे शुध की बात है ॥ जिसका हृदा शुध होता है ॥ तिसकों गुरु
अरु शास्त्रों का उपदेश शीघ्र ही लागता है ॥ जैसे जल नीचे कों स्वा
विक जाता है ॥ तैसे शुध हृदे विषे उपदेश शीघ्र ही स्थित होता है ॥
हे रामजी एता उपदेश क्रम करके तुज कों कीया है ॥ तिसका तात्पर्यु
इह है ॥ जो फुरनें का त्याग करो ॥ जो नमें होनकों उजागत है ॥ तब पाछे
निर्विकल्प आतमपद रहेगा ॥ जो सर्व का अपणा आप है ॥ तिसका
साक्षात्कार तुज कों होवहिगा ॥ जैसे दर्पण मलिन होता है ॥ तिस विषे मु
ख नहीं देखीता ॥ तैसे आतमरूपी दर्पण अहंकार रूपी मल कर आ

छोड दया है जब इसका त्याग करो तब आत्मपद की प्राप्त होवे
गी ॥ अरु जगत भी अपणा आप नासेगा ॥ काहेतें जो आत्मा तें इ
तर कछु नहीं ॥ केवल आत्मत्वमात्र है ॥ अरु अवर जो कछु भा
सता है ॥ सो मृगतृष्णा के जलवत जाणु ॥ अरु वंध्या के पुत्रवत जा
णु ॥ इह जगत आत्मा के प्रमाद कर भासता है ॥ जैसे आकाश मैं
नीलता भासता है ॥ अरु है नहीं ॥ तैसे जगत प्रत्यक्ष भासता है ॥ पर
है नहीं ॥ जैसे जेवडी विषे सर्प मिथ्या है ॥ तैसे आत्मा विषे जगत मि
थ्या है ॥ जब आत्मा का ज्ञान हूया ॥ तब जगत का अत्यंताभाव होवे
गा ॥ केवल आत्मत्वमात्र ही अपणा आप भासेगा ॥ इति श्रीनिर
वाणप्रकर्णे बसिष्ठ विद्याधर उपदेशो पाख्यान समाप्तं ना
म सर्गः ॥ १३८ ॥ श्रीवशिष्ठोवाच ॥ हे रामजी तूं अहंवेदनां
ते रहित हो ॥ संसाररूपी वृक्ष का बीज अहं ही है ॥ वासना करके अ
नेक जन्म कर्म का सुख दुख फल है प्रफुलित होता है ॥ तातें अहंभा
व कों निवर्त करो ॥ जब अहं फुरता है ॥ तब आगे जगत भासता
है ॥ जब अहं तें रहित होवहिंगा ॥ तब जगत भ्रम मिट जावैगा
सो अहंता आत्मबोध कर नष्ट होता है ॥ आत्मबोधरूपी छै
णी कर उडाया ॥ अहंतारूपी पाषाण जाणीयेगा नहीं जो कहां
गया ॥ पाषाण अरु स्वर्ण तुज को तुल्य हो जावैगा ॥ अरु शरीररू
पी पत्र ऊपर अहंतारूपी अण स्थिति है ॥ जब बोधरूपी पवन
चलेगा ॥ तब न जाणीयेगा जो कहां गया ॥ अरु शरीररूपी पुरा
तन पत्र ऊपर ॥ अहंतारूपी ऐसा बरफ का अण स्थिति है ॥
बोधरूपी सूर्य के उदे हूये न जाणीयेगा जो कहां गया ॥ बोध
बिना अहंता नष्ट नहीं होती ॥ भावें चि[illegible]कर विषे मगन होवे भा
वें पहाड विषे जाइ रहे ॥ भावें घर ही विषे रहे ॥ भावें आकाश वि
षे उडे ॥ भावें थल विषे रहे ॥ भावें जल विषे रहे ॥ भावें स्थूल हो
वे ॥ भावें सूक्ष्म होवे ॥ भावें निराकार होवे ॥ भावें रूपांतर कों प्राप्त
होवे ॥ भावें भस्म होवे ॥ भावें मृत्यु होवे ॥ दूर होवे ॥ अथवा निकट
होवे ॥ जहां रहेगा तहां ही अहंता इसके साथ है ॥ हे रामजी संसा
ररूपी जो बट है ॥ तिसका बीज अहंता है ॥ तिसी तें संसार पस
रता है ॥ सो अनर्थ का कारण अहंता है ॥ जब लग अहंता है तब
लग दुख मिटता नहीं ॥ जब अहंता भाव न होवे ॥ तब परम सिधता की
प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी जो कछु मैं उपदेश कीया है ॥ तिसको नले

वासना करके

प्रकार विचार कर॥ तिसका अभ्यास कर॥ तब संसाररूपी वृक्ष
का बीज जल जावैगा॥ अरु आत्मपद की प्राप्त होवैगी॥ इति
श्री निर्वाणप्रकर्णे अहंतायोगउपदेशो नाम सर्गः॥
॥१३८॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी संसार संकल्पमात्र
है॥ अमुककै स्थिति हूया है॥ आत्मरूप विषे कई सृष्टी पड़ी
वसती हैं॥ अरु कई लीन होती हैं॥ कई उत्पत्ति होती हैं॥ कई उ
पजती हैं॥ कहूं एकगी जाइ होती है॥ कहूं भिन्न भिन्न उपजती हैं
सो मुझको प्रतक्ष भासती हैं॥ उह उपजती जाती हैं तुम नहीं देखो॥
अरु आकाशरूप हैं॥ अरु आकाश ही मों मिलती हैं॥ जैसे के
ले का वृक्ष देखने मों मात्र सुंदर है॥ अरु तिस विषे सार कछु न
हीं होता॥ तैसे विश्व देखने मात्र सुंदर होती है॥ अरु आकाश
रूप हैं॥ बड़ूड कैसी हैं॥ जैसे जल विषे पहाड़ का प्रतिबिंब
पड़ता है॥ अरु हलता भासता है॥ तैसे इह जगत है॥ श्रीरा
मोवाच॥ हे भगवन तुम कहते हो॥ प्रतक्ष सृष्टी उपजतीयां
मुझको दृष्टि आवतीयां हैं॥ तूं भी देख॥ इह तो मैं कछु नहीं
समझा॥ तुम क्या कहते हो॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे रामजी
अनेक सृष्टीं पड़ी उपजती हैं॥ सो श्रवण कर॥ पंचभूतक
शरीर विषे प्राण स्थिति हैं॥ अरु प्राणों विषे चित स्थिति है॥
तिस चित विषे अपणी अपणी सृष्टि है॥ जब इह पुरुष श
रीर का त्याग करता है॥ तब लिंग शरीर जो वासना अरु प्राण
वायु सो उपजता है॥ तिस लिंग शरीर विषे ईश्वर है॥ उह सर्व से
दृष्ट कर मुझको भासती हैं॥ हे रामजी आकाश की जो वायु है
जिसका रूप रंग कछु नहीं॥ उही वायु प्राणों साथ मिली मेरे
ताईं प्रतक्ष दिखाई देती है॥ इसी का नाम जीव है॥ स्वरूप ते
भ्रम करि आया है॥ न जाता है॥ पर लिंग शरीर के संयोग कर
आपको आवता जाता देखता है॥ अरु जन्मता मरता देखता
है॥ आपणी वासनां के अनुसार आत्मा विषे विश्व देखता
है॥ होर कछु बणया नहीं॥ इह वासना मात्र सृष्टि है॥ जैसी वा
सना होती है॥ तैसी विश्व भासती है॥ हे रामजी इह जो पुरुष
हैं॥ सो आत्मस्वरूप हैं॥ पर लिंग शरीर के मिलने करि इनका
नाम जीव हूया है॥ अरु आपकौं प्रछिन्न जानते हैं॥ वास्तव

तें ब्रह्मस्वरूप हैं ॥ देशकालवस्तु के परछेद तें रहित है ॥ सो ब्र
ह्म है ॥ तिसके प्रमाद करकै आपकौं जो कछु जानते हैं ॥ इसी
का नाम लिंगशरीर है ॥ जैसे घटाकाश भी महाकाश है ॥ प
र घट के उपर करके परछिन्न हूया है ॥ तैसे इह पुरुष भी आ
त्मस्वरूप है ॥ अहंकार के संयोग करकै जीव परछिन्न हूया
है ॥ जैसे घट कौं एक देश तें उठाय कर देशांतर विषे जाइ
राष्या ॥ तो क्या ले गया ॥ आकाश तें न कछू गया है ॥ न आया है
उपर कर आवता जाता भासता है ॥ तैसें आत्मा अषंडरूप
है ॥ परप्राण चित कर चलता भासता है ॥ जब अहंकाररूप
चित नष्ट होवे ॥ तब अषंडरूप होवै ॥ जब लग अहंकाररूप
उपर नहीं फुटता ॥ तब लग जगत भ्रम कौं देषता है ॥ अरु वा
सनां करकै नट कूदता फिरता है ॥ अरु वासनां की सृष्टि अपणे
अपणें चित विषे स्थिति है ॥ जब शरीर का त्याग कर्ता है ॥ त
ब आकाश विषे उडता है ॥ प्राण वायु उड कर ॥ जो आकाश
विषे स्पंदनरूप वायु है ॥ तिस विषे प्राण वायु जाइ मिलता है ॥
तहां इसकौं अपणी वासनां के अनुसार सृष्टि भास आवती है
अपणी सृष्टि कौं लेकर इस प्रकार उडते हैं ॥ जैसे वायु गंध कौं
ले जाती है ॥ तैसे इह वासनांरूपी सृष्टि कौं ले जाते हैं ॥ सो उडते
मेरे तौई प्रत्यक्ष भासते हैं ॥ सूक्ष्म दृष्टि करकै ॥ हे रामजी स्थूल दृ
ष्टि करकै लिंगशरीर नहीं दिषाई देता ॥ सूक्ष्म दृष्टि करके देषी
ता है ॥ जिस पुरुष कौं सूक्ष्म दृष्टि लिंगशरीर देषणे की है ॥ अर
लीन तें रहित है ॥ तौ मेरे मत विषे मूर्ष पशु हैं ॥ हे रामजी जब इ
ह पुर्ब वासनां का त्याग कर्ता है ॥ वासनां कहां ये अहंकार जो मैं
हौं ॥ इस होणे का त्याग कर्ता है ॥ तब आगे विश्व नहीं दिषाई दे
ती ॥ केवल निर्विकल्प ब्रह्म ही भासता है ॥ उसके प्राण नहीं उड
ते ॥ तहां ही लीन हो जाते हैं ॥ काहे तें जो उनका चितरूप अचित
हो जाता है ॥ इस कर नहीं उडते ॥ जब लग अहंकार का संयोग है
तब लग विश्व इसके चित विषे स्थिति है ॥ जैसे बीज विषे वृक्ष
स्थिति होता है ॥ जैसे तिलों विषे तेल स्थिति होता है ॥ तैसे इसके
हृदे विषे विश्व स्थिति है ॥ जैसे मृतका विषे वासन वरहो टे ॥
जैसे लोह विषे सई षडग होवे ॥ जैसे बीज विषे वृक्ष ॥ नावे चे

त

तस्य नावे जड होवै ॥ हे रामजी तैंसे इह संकल्प कलनां विषे भेद है
स्वरूप ते कछु नहीं ॥ तैंसे इह जागत है ॥ हे रामजी विश्व संकल्प
मात्र है ॥ काहे तें जो दूसरा अवस्था विषे नाश होजाता है ॥ इह जा
गत जगत जो तुझ कों भासता है सर्व मिथ्या है ॥ जब स्वप्ना आया
तब जागत नहीं रहती ॥ अर जागत आई स्वप्ना नाश होजाता है
जब मृत्यु आवता है ॥ तब सृष्टि का अभाव होजाता है ॥ अर
देश काल पदार्थ सहित वासनां के अनुसार अवर सृष्टि भास
ता है ॥ हे रामजी इह विश्व कैसा है ॥ जैसे स्वप्न नगर होवै तैसे है ॥ जै
से संकल्प पुर होवै ॥ तैसे इह सर्व संकल्प उठते फिरते हैं ॥ सृष्टि
कों लेकर ॥ सो केई परस्पर मिलती हैं ॥ केई नहीं मिलती ॥ पर हैं स
र्व संकल्प रूप ॥ भ्रम कर होर का होर भासता है ॥ जैसे कोऊ पुरु
ष बडा होता है ॥ अर छोटा भासता है ॥ अर जो छोटा होता है ॥ ति
स कों बडा भासता है ॥ जैसे हस्ती के निकिट अवर पशु तुछ भा
सते हैं ॥ अर चीटी के निकिट अवर बडे भासते हैं ॥ तैसे जो ज्ञा
नवान पुरुष हैं ॥ तिसकों बडे पदारथ देश काल संयुक्त विश्व तुछ
भासती है ॥ असत जानता है ॥ अर जो अज्ञानी पुरुष हैं ॥ तिनकों
संकल्प सृष्टि बडी होभासती है ॥ जैसे पहाड बडा होता है ॥ अ
र जिसकी दृष्टि तें दूर है ॥ तिसकों महा लघु तुछ जैसा भासता है
अर चीटी के निकिट तुछ मृतका की ढेली राषी पहाड के समा
न है ॥ तैसे ज्ञानी की दृष्टि तें जो इह जागत अगोचर है ॥ इसकर ब
डा जागत भी उसकों तुछ रूप भासता है ॥ अर अज्ञानी कों तुछ रू
प भी बडा भासता है ॥ हे रामजी इह विश्व भ्रम करकें सिध हूई है ॥
जैसे सिपी विषे रूपा भासता है ॥ अर जेवडी विषे सर्प भासता है
भ्रम करकें ॥ तैसे आत्मा के प्रमाद करकें विश्व भासता है ॥ अर आ
त्मा तें भिन्न कछु नहीं ॥ जैसे अवयवी पुरुष कों अपने अंग नि
द्रा दोष करकें भूल जाते हैं ॥ अर जागे हूये सर्व अंग अपणे भा
सते हैं ॥ तैसे अविद्या निद्रा करकें सोया हूया पुरुष जब जाग
ता है ॥ तब सर्व विश्व अपणां आप दिखाई देता है ॥ जैसे स्वप्ने तें
जागा हूया स्वप्ने की सृष्टि कों अपणां आप ही देषता है ॥ तैसे इ
ह विश्व अपणां आप होजासी ॥ हे रामजी जब इह पुरुष ने

द्रामें सोया होता है ॥ तब स्वप्नात्म विश्व विषे रागद्वेष कछून
हीं होता ॥ अरु जागता है तब इष्ट विषै राग होता है ॥ अनिष्ट विषे
द्वेष होता है ॥ सो जब लग इसकों विश्व विषे हेउपादेय बुधि
है ॥ जो इह सर्वज्ञ भी है ॥ तो भी मूर्ष है ॥ हे रामजी जब इह पुरुष ज
ड होजावै ॥ तब कल्याण होवै ॥ सो जड होवणा इही है ॥ जो दृस्य ते र
हित आत्मा विषे स्थिति होवै ॥ सो आत्मा चिन्मात्र है ॥ आत्मा ते इ
तर जो कछु फुरता है ॥ सत असत्य वा असत जानता है ॥ तब लग स्व
रूप की प्राप्त नहीं होती ॥ जब संवेदन फुरनै तें रहित होवै ॥ तब
स्वरूप का साक्षात्कार होवै ॥ ताते संवेदन का त्याग कर ॥ अरु इह
स्थावर जंगम जगत जो तुज कों भासता है ॥ सो सर्व ब्रह्मरूप है
जब तूं ऐसे निश्चै करेंगा ॥ तब सर्व विश्व का अभाव होजावे
गा ॥ आत्मपद ही शेष रहेगा ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन इ
ह जो जीव तुम्हों कहा ॥ सो जीव का रूप क्या है ॥ अरु जीव आकार
कों ग्रहण कैसे करता है ॥ अरु इसका अधिष्ठान परमात्मा क्यों
है ॥ अरु इसके रहिणे का स्थान कवन है ॥ सो कहो ॥ श्रीवसि
ष्ठोवाच ॥ हे रामजी शुध जो परमात्मतत्व है ॥ अरु निर्विक
ल्प चिन्मात्र पद है ॥ तिस विषे चेतउन्मुखत्व हूया जो मैं हों ॥ ऐ
से चितकला तान रूप फुरी है ॥ अरु तिस कों चित का संबंध
हूया ॥ जो चेतका संयोग हूया ॥ तिस का नाम जीव है ॥ सो जीव
न सूक्ष्म है ॥ न स्थूल है ॥ न सून है ॥ न असत्न है ॥ न थोरा है ॥ न ब
हुत है ॥ केवल आत्मत्वमात्र है ॥ अरु शुध है ॥ न अणुरूप है ॥ न
स्थूल है ॥ अनंत चेतना का रूप है ॥ तिस कों जीव कर कहते हैं
इ स्थूल का स्थूल उही है ॥ सूक्ष्म का सूक्ष्म उही है ॥ अनंत जन
चैतन्य सर्वगाति रूप जीव है ॥ तिस विषे वास्तव शब्द कोऊ न
हीं ॥ जो कीऊ शब्द है ॥ सो प्रतियोगी सापेक्ष निर्वार हूया है ॥ सो
जीव अद्वैत है ॥ जो अद्वैत है ॥ तिस का प्रतियोगी कैसे होवे ॥
इह जीव का रूप है ॥ चेतके संयोग कर जीव हूया है ॥ अरु जी
व का अधिष्ठान परमात्मतत्व है ॥ चैतन्य का जो है ॥ निर्विक
ल्प है ॥ चेतते रहित शुध चित है ॥ तिस विषे जो संवित फुरी है
तिस का नाम जीव है ॥ सो सूक्ष्म ते सूक्ष्म है ॥ स्थूल ते स्थूल वही

हे ॥ सर्वका बीज हे ॥ इसीका नाम वैराट कहते हैं ॥ अरु सरीर ति
सका मनोमय हे ॥ आदि जो पर्मात्मतत्व फुरता हे ॥ अरु अव
र अवस्था को नहीं प्राप्त भया ॥ अवर अवस्था कहीये गु छि
न्नता को नहीं प्राप्त भया ॥ आपको सर्वात्मा जानता हे ॥ इसका
नाम विराट है ॥ गथम शरीर उसका मनोमात्र हे ॥ अरु सुध प्र
काशरूप हे ॥ अरु रागद्वेषरूपी मल ते रहित हे ॥ अरु अन
त आत्मा है ॥ सर्व मनों अरु कर्मों अरु देहों का बीज हे ॥ अरु स
र्वविषे व्यापरहा हे ॥ समन जीवउं का अधिष्ठाता हे ॥ तिसी के
संकल्प कर इह जीव रचे हैं ॥ पंचतत्व ज्ञान इंद्रीया ॥ अरु अहंको
र अरु मन ॥ अरु संकल्प ॥ इन आगों के आकार धारे हैं ॥ अरु
आप ही ग्रहण कीये हैं ॥ पर्मार्थरूप को त्याग कर फुरने तें
जो आकार उत्पति हूये हैं ॥ तिसको ग्रहण कीया इसका ना
म पुर्यष्टका हे ॥ फिर इन इंद्री के छिद्र रचे तातें भया स्थूलरूप
रचकर तिस विषे आत्मप्रतीत करत भया ॥ जैसे पुर्ष सें न
कती हे ॥ अरु जागत शरीर को त्याग कर स्वपन शरीर को अं
गीकार करती हे ॥ तैसे सुध चिन्मात्र निरविकार अद्वैत स्वरू
प को त्याग कर ॥ वासनामय शरीर को अंगीकार कीया हे ॥
नहीं कछु वास्तव स्वरूप का त्याग कीया ॥ स्वरूप तें उह न गि
रता ॥ सुध निर्विकल्प भाव को त्याग कर ॥ विराट भाव होते भ
या ॥ इसी प्रकार आगे तिस पुरुष ने चारों वेद ज्ञान करके र
चत भया ॥ अरु नेत को निश्चे कीया ॥ नेत का कहीये जो इह
पदार्थ ऐसे होवे ॥ अरु एता काल रहे ॥ इह रचना रची ॥ जो जो
संकल्प करत भया ॥ सो सो देश काल पदार्थ द्रशा जल ॥ उसके
आगे होत भये ॥ तिस पुरुष के एते नाम हैं ॥ ईश्वर कहीये ॥ विरा
ट कहीये ॥ आत्मा कहीये ॥ पर्मेश्वर कहीये ॥ इत्यादिक जीव
के नाम हे ॥ सो इस जीव का रूप वासना हे ॥ वासनारूप कछु जी
व नहीं ॥ वासनों के शरीर ग्रहण लेकर वासनारूप कहा हे ॥ वा
स्तव रूप जो हे ॥ सो सुध हे ॥ निरविकार अद्वैत हे ॥ कदाचित
स्वरूप तें आन अवस्था को नहीं प्राप्त भया ॥ सर्वदा ज्ञानरूप
हे ॥ अद्वैत हे ॥ अरु पर्म सुध हे ॥ तिसको अपणे पर्म चैतन्यपनो
बकके चेतका संयोग हूया ॥ तिसकर कहा हे ॥ जो उसका वपु

वासनांरूप है ॥ तिस आदि जीवतें ब्रह्मा विष्णु रुद्र जो हैं इसतें
आदि लेकर ॥ देवतें दैत्य आकाश सप्त पाताल त्रिलोकी उ
त्पत्ति हुई है ॥ जैसे दीपकतें दीपक होता है ॥ अरु जलतें जल
होता है ॥ तैसे समष्टि विराट रूप है ॥ सो विराट कैसा है ॥ महा
आकाश जिसका उदर है ॥ अरु समुद्र जिसका रुधिर है ॥
अरु नदीयां जिसकी नाडी हैं ॥ अरु दिशा जिसकी बघीया
है ॥ अरु जिसके उदर विषे कई ब्रह्मंड सुमेरु पर्वत सहित
समाइ रहे हैं ॥ अरु पवन जिसके मुख हैं ॥ अरु उनचास पव
न जिसके प्राणवायु हैं ॥ चर्म जिसका पृथिवी है ॥ हस्त जिस
के सुमेरादिक पर्वत हैं ॥ तारे जिसकी रोमावली हैं ॥ ऐसा वि
राट है ॥ सहस्र जिसके सीस हैं ॥ अरु सहस्रां ही मस्तक हैं ॥ अ
रु सहस्रां ही नेत्र हैं ॥ अरु अनंत अनादि है ॥ अरु चंद्रमा जि
सका कफ है ॥ जिसतें अमृत स्रवता है ॥ चू तें उपजते हैं ॥ अ
रु सूर्य पित्त है ॥ अरु सर्व का उत्पत्ति करता है ॥ सर्व मनों की
अरु सर्व शरीरों का बीज आदि विराट है ॥ हे रामजी इस चि
त के संबंध करके फुरि आया है ॥ वास्तवतें परमात्म स्वरूप
है ॥ जैसे महा आकाश घटके संयोग करि घटाकाश हुआ
है ॥ तैसे विराट जो परमात्मा है ॥ तिसने फुरने कर प्रपंच रचा है
अरु तिसविषे अहंप्रत्यय करी है ॥ इसतें फुर आया है ॥ सो
इसकौं मिथ्या भ्रम हुआ है ॥ जैसे स्वप्न विषे अपणां मरणां
देखीता है ॥ तैसे आपकौं दृश्य देखता है ॥ सो जे घटता जानी इस
कौं आत्मा की अपेक्षा करहे ॥ दृश्य विषे नहीं ॥ दृश्य विषे वि
राट है ॥ अरु आत्मा विषे इसका अभाव है ॥ हे रामजी इस प्र
कार उस उपजकर प्रपंच रचा है ॥ जैसे इस विराट पुरुष आ
दि निष्पन्न कीया है ॥ तैसा ही अबला है ॥ सोऽहं आपही उ
पजा है ॥ अरु आपही लीन हो जाता है ॥ हे रामजी जिस प्रका
र विराट की आत्मा तें उत्पत्ति हुई है ॥ तैसे ही सब जीवों की हि
इह सभी विराट रूप हैं ॥ पर जो स्वरूपतें उपजकर दृश्य सा
पत रूप हुया ॥ अरु वास्तव स्वरूप जिसको न लागा या ॥ ते जी
वतु कर्म रूप हुये ॥ अरु जो स्वरूपतें उपजकर स्वरूपतें तनि
है ॥ अरु आगे अपणां ही संकल्प रूप विक्षेप देखा प्रमादि हुया
नैं

तिसका नाम विराट आत्मा है ॥ हे रामजी इह जीव चैतन्यरू
प है ॥ अरु निराकार रूप है ॥ इसको जो शरीर का संयोग हूआ
है ॥ सो कलना कर हूआ है ॥ जब आपको दृश्य संयुक्त देख
ता है ॥ तब महा आपदा को प्राप्त होता है ॥ जब निरविकल्प
द्वैत तें रहित होकर देखता है ॥ तब शुद्ध चैतन्य घन आत्मा
पद को प्राप्त होता है ॥ हे रामजी इह विराट कैसा है ॥ सत्त का उत
तिकती है ॥ सो जैसे कई विराट आत्मपद तें उत्पत्ति भये हैं
अरु कई मिट गये हैं ॥ अरु कई आगे होवहिंगे ॥ जैसे समुद्र
ते कई तरंग बुदबुदे उठते हैं ॥ अरु लीन होते हैं ॥ तैसे आत्म
रूपी समुद्र तें कई उठते हैं ॥ कई लीन होते हैं ॥ कई उपजेंगे
ऐसा परमात्मा सत्त का अधिष्ठान है ॥ सत्त के अंतर बाह
पूरण है ॥ तानरूप है ॥ ऐसा तेरा आपणा आप अनुभवरूप
है ॥ हे रामजी इस संवेदन को त्याग कर देख ॥ उही परमात्मस्व
रूप है ॥ इह जो कछु तेरे ताईं दृश्य आवता है ॥ तिसको विचार
करके त्याग ॥ जब तूं इसका त्याग करैंगा ॥ तब अद्वैत चिन्मात्र
जो तेरा रूप है ॥ पर्म शुद्ध स्वप्रकाश तेरे ताईं भासेगा ॥ तिसको
अचेतता आवर्ण है ॥ जैसे सूर्य के आगें बदल्यों का आवर्ण
होता है ॥ जब लग बदल होते हैं ॥ तब लग सूर्य का प्रकाश
ज्यों का त्यों नहीं भासता ॥ जब बदल दूर होवैं ॥ तब स्वच्छ भास
ता है ॥ तैसे जब फुरना निवर्त होवेगा ॥ तब शुद्ध आत्मा ही प्र
काशेगा ॥ इति श्री निर्वाण प्रकरणे विराट आत्मा वर्णनं नाम
सर्गः ॥ १४० ॥ श्री वसिष्ठोवाच ॥ हे रामजी इह पर्मात्मा
पुरुष फुरनें करके जीव संज्ञा को प्राप्त हूआ है ॥ फुरनें विषे जीउ
ही है ॥ परु आपने स्वरूप को जानता नहीं ॥ इसी तें दुख पावता है ॥
जैसे पवन चलता है ॥ अथवा ठहिर जाता है ॥ दोनों पवन के रू
प हैं ॥ जब चलता है तो भी आपको पवन जानता है ॥ तातें तिस
कौं दोनों तुल्य हैं ॥ इह जीव प्रमाद करके दृश्य को कल्पता है ॥
अरु दृश्य कौं आप जानता है ॥ इसी तें दुख पावता है ॥ अरु जो
इसकौं अपणा स्वरूप स्मरन रहे ॥ तो दृश्य विषे भी अपणा स्वरू
प भासे ॥ अरु जो निहसंकल्प होवै ॥ तो भी दृश्य अपणा रूप भासे
विश्व भी इसी का रूप है ॥ परु अविचार तें भिन्न भिन्न भासता है

जब ठहरता है तब भी आपकों पवन जानता है।

जैसे स्वप्ने की विश्व स्वप्ने वाले का रूप है ॥ पर निद्रा दोष कर
जानता नहीं ॥ जब जागता है तब जानता है जो मैं ही था ॥ तैसे
इह विश्व प्रपंच सत्त तेरा स्वरूप है ॥ तूं अपणे स्वरूप विषे
निरहंकार स्थिति होय कर देख ॥ तब बणया कछु नहीं ॥ अ
र जो आत्मा ते इतर प्रपंच प्रछिन्न कछु बणेगा ॥ तब विश्व नी
सैगा ॥ जो आत्म स्वरूप विषे स्थिति होवैं ॥ तो अपणे आप नो
सैगा ॥ प्रपंच का अभाव होवैगा ॥ हे रामजी सूनं जड चेतन
किंचित न किंचित सत्त असत्त सन आत्मा ही पूर्न है ॥ तिसे ध
किसका करीये सत्त उ ही रूप है ॥ हे रामजी ऐसा अनन्त स्वरू
प है ॥ जिस कर सर्व पदार्थ सिध होते हैं ॥ अर ऐसे आत्मा
कौं मूरिख नहीं जानता ॥ जैसे जन्म का अंधा मारिग को नहीं जा
नता ॥ तैसे अज्ञानी महा अंध जागता जो त आत्मा को नहीं जान
ता ॥ जैसे उल्लू आदिक सूर्य उदे हूये नहीं जानते ॥ तैसे वास
ना कर आवर्त हूया आपको जान नहीं सकता ॥ जैसे जाल
विषे पंछी आवर्न होता है ॥ तैसे जीव आवरना हूया है ॥ इसी का
नाम बंध है ॥ जब वासना का वियोग हूया ॥ तब इसी का नाम मु
क्ति है ॥ हे रामजी प्रछिन्नता कर के इसको जीवसता हूई है ॥ ज
ब सम्मूह हूया ॥ तब ब्रह्म है ॥ सो ब्रह्म अहंकार कों त्याग कर
होता है ॥ जैसे षपर के संयोग कर घटाकाश कहीता है ॥ जब
षपर नाश हूया ॥ तब महाकाश होता है ॥ तैसे जब अहंका
र निवर्त हूया ॥ तब आत्म स्वरूप है ॥ हे रामजी अज्ञान कर के ए
क देशी जीव हूया है ॥ जब प्रछिन्नता का वियोग हूया ॥ तब आ
त्म स्वरूप है ॥ हे रामजी अपणा जो वास्तव स्वरूप है ॥ सो निर्गुण
है ॥ तिस विषे गुणों का संयोग उपाधि कर के भासता है ॥ सो अनर्थ
रूप है ॥ जब निर्गुण अर सर्गुण का अंत दूटी ॥ तब केवल अ
द्वैत अपणा आप भासैगा ॥ सो कैसा स्वरूप है ॥ अनामय है ॥
जो दुखों ते रहित है ॥ सत असत ते परे है ॥ ज्ञान रूप है ॥ आदि अं
त ते रहित है ॥ जिसके पाये ते बहुड पावणा कछु नहीं रहता ॥
जिसके जानणे ते अवर जानणा कछु नहीं रहता ॥ ऐसा जो उ
त्तम पद है ॥ तिसकों आत्मत्व कर के प्राप्त होवहिंगा ॥ हे रामजी
इह जो ज्ञान तेरे ताई कहा है ॥ तिसकों अभ्यास कर तुम ज्ञानवान

होवणां॥ ज्ञानबंध नहीं होवणां॥ ज्ञानबंध तें अज्ञानी भी भला
है॥ काहे तें जो अज्ञानी भी साधसंग अरु शास्त्र सुनणे तें
ज्ञानवान होता है॥ अरु ज्ञानबंध मुक्ति नहीं होता॥ जैसे रोगी
होवे अरु कहे मुझको रोग कोऊ नहीं॥ मैं अरोग हों॥ तब वैद्य
का औषध नहीं पाता॥ काहे तें जो आपको अरोगी जानता है
तैसे जो ज्ञानबंध है॥ तिसतें संतों का संग भी नहीं होता॥ अरु
शास्त्रों का श्रवण भी नहीं होता॥ तातें अधतम को प्राप्त होता
है॥ श्रीरामोवाच॥ हे भगवन ज्ञानबंध का लक्षण क्या है॥ अरु
ज्ञानबंध किसको कहते हैं॥ अरु ज्ञान का फल क्या है॥ अरु ज्ञा
नबंध का फल क्या है॥ सो कहो॥ श्रीवसिष्ठोवाच॥ हे रामजी जि
स पुरुष आतमा के विचार शास्त्रों तें श्रवण कीये हैं॥ जो
आत्मा नित्य है॥ अरु शुध है॥ ज्ञानस्वरूप है॥ अरु तीनों शरीरों
तें भिन्न है॥ ऐसे सुणकर आपको मानता है॥ अरु कहता है ब
णा बणा॥ अरु विषय भोगणे की सर्वदा चिंतार रहता है॥ जो
किसी प्रकार इंद्रीयों के विषय पूरे तो ही प्राप्त होवहि॥ ऐसा
जो पुरुष है॥ सो ज्ञानबंध है॥ उह बोध विवर्जित पीहे॥ बहुड कैसा
है॥ जो कर्मफल के विचार तें रहित है॥ जो भला अरु बुरा विचा
र करत नहीं करता॥ तिस विबेक विचरता है॥ अरु मूर्ख तें निरूप
ण करता है॥ फुनै अरु अफुना सो शास्त्र सिखवा है॥ अरु फलों
के अर्थ कर्म करता है॥ एक ऐसा है॥ जो शास्त्रों को आपको उ
त्तम कर मानता है॥ अरु शास्त्रों के अर्थ बहुत प्रकार कहता
भी है॥ अरु पढता भी है॥ अरु पढावता भी है॥ अरु विषयों विषे
बंधमान है॥ सदा विषयों की चितवनी करता है॥ ऐसा जो पुरु
ष है॥ सो ज्ञानबंध कहीता है॥ तिसको अर्थ सिल्पी कहीता है
जो चित्र लीकहणे को समर्थ है॥ अरु धारणे को समर्थ नहीं
हे रामजी एक प्रवर्ति मार्ग कहा है॥ अरु एक निवर्त मार्ग क
हा है॥ प्रवृत संसार मार्ग है॥ अरु निवृत आतमज्ञान मार्ग है॥
अरु जिस पुरुष निवृत मार्ग धारता है॥ अरु प्रवृत मार्ग विषे व
र्तता है॥ प्रवृत कहीये बहिरमुख विषयों की ओर वर्तता है॥
अरु इंद्रीयों के विषयों की वांछा करता है॥ विषयऊं तें उपर
तन नहीं होता॥ तिनकर तुष्टमान होता है॥ अरु स्वरूप का चिंत
वनां नहीं करता॥ ऐसा पुरुष ज्ञानबंध कहीता है॥ हे रामजी

शुभकर्म करता है शुभतोक ॥ रिदै विषे उनके फलों को धार
कर ॥ उह पुरुष ज्ञान के निकट वरता है ॥ तो भी ज्ञानबंध है
और जिसको आतमा विषे प्रीत भी है ॥ और विषयों को चि
तवता है ॥ और आपको उतम मानता है ॥ सो ज्ञानबंध कहा
ता है ॥ और जो आत्मतत्त्व का निरूपण यथार्थ करता है ॥ और
स्थिति नहीं ॥ उह ज्ञानाभ्यास है पर ज्ञान का फल तिसको प्र
तत्त साक्षातकार नहीं ॥ और जिस पुरुष सिधता पाई है ॥ अ
रु ऐश्वर्य पाया है ॥ और तिस कर आपको बडा जानता है ॥ अ
रु आत्मज्ञान ते रहित है ॥ सो ज्ञानबंध होता है ॥ जो आपको
सिधता और ऐश्वर्यवान करके बडा जानता है ॥ हे रामजी ति
दृअभ्यास कर जो ज्ञान को प्राप्त होता है ॥ तिस कर शांतिका भू
वा होता है ॥ जब लग शांति नहीं प्राप्त होती ॥ तब लग आपको
वश मानें नहीं ॥ हे रामजी वश जो होता है सो ज्ञान कर होता है
जब लग ज्ञान नहीं उपजा ॥ तब लग आत्मपरायण होवे ॥ अ
भ्यास यत्न छोड न देवे ॥ और चेष्टा भी शुभ करे ॥ शुभ विचा
र कर उत्तम जीवका को उत्पत्ति करे ॥ शास्त्रों का रहस्य निमित ॥ अ
रु शास्त्रों को जलजन्मा साके अर्थ धारे ॥ और आत्मजिज्ञासा इस
निमित है ॥ जो संसार समुद्र दुखरूप ते मुक्त होवीये ॥ बहुड सं
सारी न होवीये ॥ इस निमित आत्मपरायण होवे ॥ जब आत्मप
रायण होवेगा ॥ तब दुख सब मिट जावेंगे ॥ जैसे सूर्य के उदे हूये
तें अंधकार सब मिट जाता है ॥ तैसे आत्मा के प्राप्त हूये दुख स
ब नष्ट हो जाते हैं ॥ तिसके प्राप्त होवणे का उपाइ इह है ॥ जो सत
शास्त्र हूं ते आत्मा के विचार वर्णे सुणे हैं ॥ तिनको समझ कर वा
रंवार अभ्यास करणी ॥ और अनात्म द्रिश्य ते उपरत होवणी
तिनको मिथ्या जान कर वैराग्य करणी ॥ इस कर आत्मपद की
प्राप्त होती है ॥ इति श्री निरवाण प्रकर्णे ज्ञानबंधजोगे
नाम सर्गः ॥ १४१ ॥ श्री वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ज्ञानी होक
र ज्ञाननिष्ट होइ ॥ जो कछु गुरु अरु शास्त्रों ते आत्म विचार व
र्णन करणा कीये हैं ॥ तिन विषे अहं प्रतीत करणी स्थिति होव
णी ॥ इसी का नाम ज्ञाननिष्ठा है ॥ तिस ज्ञाननिष्ठा कर उचित प
द को प्राप्त होता है ॥ उचित पद कहीये सनक अधिष्ठान पद

है ॥ तिसकों प्राप्त होता है ॥ जब तिस पद कों प्राप्त हूया ॥ तब कर
मों के फल का ज्ञान नहीं रहिता ॥ काहे तें जो अज्ञान कर्मों विषे रा
ग नहीं रहता फल का ॥ अरु अज्ञान कर्मों के फल विषे द्वेष
नहीं रहिता ॥ ऐसा जो पुरुष है सो ज्ञानी कहीता है ॥ शांत चि
त रहिता है ॥ अरु अद्भुत प्रशांत कों प्राप्त होता है ॥ जो किसी वि
षे संबंध करे नहीं ॥ अरु वासना का ग्रंथ टूट जाती है ॥ ऐसा
जो पुरुष है ॥ तिसकों ज्ञानी कहीता है ॥ हे रामजी बोध सोई है
जिसके पाये तें बहुड़ जन्म न पाये ॥ जन्म मरण तैं रहित होवे
तिसकों ज्ञानी कहीता है ॥ जब संसार तें बेमुख हूया ॥ अरु जो
संसार की सतता न भासे ॥ तब जाणीये जो बहुड़ इ जन्म न पा
वैगा ॥ काहे तें जो संसार की वासना नष्ट हो गई है ॥ हे रामजी
जिस कर ज्ञानी की वासना नष्ट होती है ॥ सो श्रवण कर ॥ इह
जो संसार है ॥ तिसका कारण नहीं देषता ॥ जो कारण तें पदा
र्थ उत्पति नहीं हूया ॥ सो सत नहीं होता ॥ ताते संसार मिथ्या है
जैसे जेवडी विषे सर्प भासता है ॥ तिसका कारण कोऊ नहीं ॥
भ्रम कर के सिध हूया है ॥ तैसे इह विश्व कारण विनां दृष्ट
आवता है ॥ ताते मिथ्या है ॥ जो मिथ्या है तो तिसकी वासना
कैसे होवे ॥ हे रामजी जो प्रवाह पतित कार्य आइ प्राप्त होता है
तिस विषे ज्ञानी विचरता है ॥ संकल्प तैं रहित होइ कर ॥ अप
णा अभिमान कछु नहीं करता ॥ जो इस प्रकार होइ ॥ अरु इस
प्रकार न होइ ॥ अरु आकाश वृत्ति दे कर संसार तें न्यारा र
हिता है ॥ अरु फुरने तें सून्य है ॥ ऐसा जो पुरुष है सो पंडित क
हीता है ॥ हे रामजी इह जीव पर्मात्म स्वरूप है ॥ जब अचेतन हो
वे ॥ तब आत्मपद कों प्राप्त होवे ॥ अचेतन ने कहीये संसार के फु
रने तें रहित होवे ॥ जब जड हूया ॥ तब आत्मा है ॥ जैसे अंब का
जो वृक्ष है ॥ अरु फल तें रहित है ॥ तो भी नाम तिसका अंब है ॥
पर निफल है ॥ तैसे इह जीव आत्मस्वरूप है ॥ पर चित संबंध क
र इसका नाम जीव है ॥ जब चित का त्याग करे तब आत्मा होवे ॥
जब अंब कों फल पड्या ॥ तब महा सोभा कर विराजता है ॥ अ
रु सफल कहीता है ॥ तैसे इह जीव पर्मात्मा कहीता है ॥ हे राम
जी जो पुरुष ज्ञानी है ॥ सो कर्म फल की उस्तति नहीं करता

फल कहा ये इंद्रीयां के विषय इष्ट की वांछा नहीं करती। जैसे
जिस पुरुष गंगाजल पान कीया है॥ सो कूप के जल की स्तुति
नहीं करती॥ तैसे जिस पुरुष को आत्मसुख प्राप्त भया है॥ सो विष
यों के सुख की उस्तति नहीं करती। अरु इछा भी नहीं करती। अर
जो किसी संसार के पदार्थ को पाइकर सुख मानते हैं। सो मू
ढ हैं। जैसे कोऊ पुरुष नदी के तट पर स्थित होइ। अरु कहे
जो मैं वंध्यापुत्र के कांधे पर आरूढ होइकर पार उतरता हों
ऐसा जो पुरुष है। सो महा मूढ है। काहे ते जो वंध्या का पुत्र है ही
नहीं। तो तिसके कांधे पर कैसे आरूढ होवेगा॥ तैसे जो पुरुष
कहे संसार के किसी पदारथ को लेकर मुक्त होवेगा॥ सो मू
ढ है॥ हे रामजी ज्ञानते मन जो ऐसा पुरुष है॥ तिसकी इंद्रया
स्थिर नहीं होते॥ अरु शास्त्रों के अर्थ को प्रगट भी करता है॥ अरु
आत्मज्ञान ते रहित है॥ तिसको इंद्रय बलकर गिराय देते
हैं विषयऊं विषे॥ जैसे इक पंछी आकाश विषे उडता भी मां
स को देखकर पृथ्वी पर गिरता है॥ तैसे अज्ञानी विषयऊं को
देखकर ऊर्ध्व ते गिर पडता है॥ तो ते इन इंद्रीयों को मन सहित
वस करो॥ और जुगत होइकर तत्पराइण होवो॥ अंतरमुख
होवो॥ इह जो संवेदन है॥ तिसका त्याग करो। जब संवेदन निव
र्त होवे। तब परमात्मा का साक्षात्कार होवे॥ जब परमात्मा का सा
क्षात्कार भया॥ तब रूपालोक मनस्कार जो त्रिपुटी है॥ ति
सके शब्द अर्थ की भावना जाती रहेगी। केवल आत्मतत्व ही
प्रतक्ष भासेगा। अरु संसार का अभाव हो जावेगा। हे रामजी सं
सार की आदि परमात्म तत्व है॥ अरु अंत भी वही है। जैसे स्वर्न गा
लीये तो भी स्वर्न है॥ अरु जो न गालीये तो भी स्वर्न है॥ तैसे जब
सृष्टि का अभाव होता है। तो भी ब्रह्म आत्मा ही रहिता है। अर
जो उपजी न थी तो भी आत्मा ही था। अरु मध्य भी उही है॥ पर
असम्यक दरसीयों को आत्म सत्ता नहीं भासती। हे रामजी विश्व आ
त्मा का परिणाम नहीं चमत्कार है। जैसे जब स्वर्न गलता है॥ तब
रेणी संज्ञा उसकी रहिती है॥ अथवा सल्ला का कहीता है॥ जदि
पि भूषण तिस विषे कूये नहीं॥ तो भी चमत्कार उसका ऐसा ही
होता है॥ जो भूषण उस ते उपज कर लै हो जाते हैं॥ तैसे विश्व

आत्माका चमत्कार है ॥ बणया कछु नहीं ॥ ज्यों कीत्यों आत्मस
त्ता है ॥ तिसका चमत्कार विश्व होकर स्थित हूई है ॥ जैसे सूर्य की
किरणों जलाभास होभासताया है ॥ हे रामजी जब तुम ऐसे जा
णा ॥ जो केवल आत्मसत्ता है ॥ तब वासनां क्षय हो जावेगी ॥ और
चेष्टा सुभाविक पडी होवेगी ॥ जैसे पवन कर वृक्ष के पत्र पडे ह
लते हैं ॥ तैसे शरीर की चेष्टा प्रारब्ध कर पडी होवेगी ॥ हे रामजी
दृष्ट मात्र तुमारे विषे हूया होवैगी ॥ और अंतर मनन करने नासे
गी ॥ जैसे जंत्र की पुतली संवेद बिना तागे कर चेष्टा करती है ॥ तै
से शरीर की चेष्टा प्रारब्ध कर सुभाविक पडी होवेगी ॥ और तुज
को अभिमान न होवेगा ॥ जैसे कोऊ पुरुष दुग्ध के निमित गुजर
पास बासन लेगया ॥ तिसको दुग्ध चोवणे विषे कछुक बिलंब
है ॥ तब उसकहा जो बासन इहां रहे ॥ तब लग गृह ते कोऊ का
र्य शीघ्र कर आवों ॥ जब वा गृह का कार्य करणे लागा ॥ तब उस
का मन दुग्ध की ओर रहा ॥ जो शीघ्र हो जावें मति आगे चोवता हो
ए ॥ गृह का कार्य कीया ॥ परंतु मन उसका दुग्ध की ओर रहा ॥ तै
से तुमारी क्रिया प्रारब्धवेग कर होवैगी ॥ परंतु मन आत्मतत्त्व वि
षे रहेगा ॥ जब अहंकार ते रहित होवहिंगा ॥ जब लग अहंकार
फुरता है ॥ तब लग प्रछिन्न जीव है ॥ तिसको शरीरमात्र का ज्ञान होता
है ॥ अंतहकर्ण विषे प्रतिबिंब जो है जीव ॥ तिसको न परिछिन्न पर्यं
त शरीर का ज्ञान होता है ॥ और इसी विषे आत्म अभिमान हो आगे
ता है ॥ अपर का ज्ञान नहीं होता ॥ तातें जीव है ॥ और विराट जो तुज
को कहा है ॥ सो ईश्वर है सर्व शरीरों का ॥ और अंतहकर्णों का ज्ञा
ता है ॥ और सर्व लिंग शरीरों का अभिमानी है ॥ और सर्व को अप
णां आप जानता है ॥ तातें ईश्वर है ॥ हे रामजी यद्यपि सर्व विराट
स्वरूप है ॥ तो भी अहंकार कर के तुछ सा भया है ॥ जैसे मेघ तें भि
न हूया एक बादर कहीता है ॥ और घट कर घटाकाश कहीता
है ॥ जैसे बादर भी मेघ है ॥ और घटाकाश भी महाकाश है ॥ तैसे न
अहंकार संवेदं कर परछिन्न हूया है ॥ संवेदन दृश्य विषे हूई
है ॥ और दृश्य संवेदन विषे हूई है ॥ जैसे फल विषे गंध है ॥ और ति
लों विषे तेल है ॥ तैसे संवेदन विषे दृश्य है ॥ हे रामजी आत्मा विषे
क्षुधादिक जो फुरना है ॥ जो मैं हों ॥ जब ऐसे फुरता है ॥ तब आगे
दृश्य होती है ॥ जब अहंकार हूया तब आगें देह इंद्रीयां आदि

कविश्वकोरचताहै ॥ तोसंवेदनविषेहूई ॥ जोअहंकारतें
आदिदेहइंद्रीयांमनआदिकजोदृश्यहै ॥ तिसविषेसंवे
दनहूईहै ॥ अहंप्रत्ययकके ॥ इसीकूरनेकरकेइसकी
जीवसंज्ञाहूईहै ॥ जबसंवेदननष्टहोवै ॥ तबआत्माकासा
क्षात्कारहोवै ॥ अरजन्ममरनगमनआगमनआदिकइनां
विकारोंसंयुक्तप्रपंचभासताहै ॥ तोभीमिथ्याहै ॥ काहेतेंजो
विचारकीयेतेंकछुनहींरहिता ॥ जैसेकेलेकेवृक्षविषेसार
कछुनहीं ॥ तैसेविचारकीयेतेंप्रपंचकछुनहींपाईता ॥ जैसे
स्वप्नविषेजन्ममरणगमनआगमनदिषीताहै ॥ परंतुमि
थ्याहै ॥ तैसेजाग्रतक्रियाभीसर्वमिथ्याहै ॥ हेरामजीजोपर
वरदर्शीहैं ॥ सोएतीअवस्थाविषेनिर्विकल्पहैं ॥ जन्मताभी
हैपरंतुनहींजन्मता ॥ मरताभीहैपरंतुनहींमरता ॥ सर्वक्र
याकर्ताभीहैपरंतुनहींकर्ता ॥ स्वप्नवतस्वरूपतेंकदाचित
कछुनहींहूया ॥ हेरामजीज्ञानीजाग्रतविषेभीऐसेदेष
ताहै ॥ जबइहआत्मपदविषेजागताहै ॥ तबसर्वविकारों
काअभावहोजाताहै ॥ कोउविकारनहींभासता ॥ हेरामजीजो
पुरषइंद्रियांकीचितवनांकर्ताहै ॥ सोबांध्याहूयाहै ॥ काहे
तेंजोअभिलाषहीदुषदाइकहै ॥ जदिपराजाहै ॥ अरअं
तरअभिलाषाहै ॥ सोदारिद्रीहैजाणो ॥ अरजिसपुरषकों
आदनभोजनसेंतकष्टसंयुक्तदेषीताहै ॥ जोभोजनभिही
करहोताहै ॥ अथवाअवरकिसीजतनकरहोताहै ॥ अर
आदनभीनिर्गुणसापहिरताहै ॥ अरसेतकरणेकोंस्था
नभीजैसावैसाहोताहै ॥ अरज्ञानकरसंपन्नहै ॥ तोउसकों
चक्रवर्तीजाणो ॥ दोहडा ॥ सातगांवकेपीनकों ॥ साधनमा
नेसंक ॥ रामअमलमातेफिरेंगनेइंद्रकोंरंक ॥ हेरामजी
तिसकोंचक्रवर्तीतेंभीअधिकजाणो ॥ जदिपआरंभक्रिया
कर्ताभीदृष्टआवताहै ॥ अरसंकल्पतेंरहितहै ॥ तोकर्ताक
छुनहीं ॥ करनीअकरनीकर्मींकाउनयउसकोंतुल्यहै ॥ काहेतें
जोनिराभिमानहै ॥ पुन्नकर्मींकरस्वर्गनहींभोक्ता ॥ तोअपु
न्नकर्मींकरनर्कनहींभोक्ता ॥ तोकोंउनयएकसमानहै ॥ हेरा

मजी ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टा एक समान है ॥ परंतु अज्ञानी अ
हंकार संयुक्त कर्ता है ॥ इसकर दुःख पावता है ॥ तांते तुम अहं
कार त्यागो ॥ अरु आपणां स्वरूप जो है चेतन तें रहित चैतन्य ॥ ति
स विषे स्थिति होवो ॥ संशय सर्व मिट जावैं ॥ अरु जेते कछु जीव
तुमको भासते हैं ॥ सो सर्व संवित स्वरूप हैं ॥ परंतु बहिर्मुख जो
फुरते हैं ॥ तांते भ्रमको प्राप्त हूये हैं ॥ जब अंतर्मुख हूया ॥ तब
केवल शांति रूप है ॥ जहां गुणां अरु तत्त्वां का अभाव है ॥ तिसको
शांतपद कहता है ॥ हे रामजी जैसे विराट का मन चंद्रमा है ॥ तै
से सर्व जीवां का है ॥ अर्थ इह जो मन विराट रूप हैं ॥ परंतु प्र
माद कर वास्तव स्वरूप नहीं भासता ॥ हे रामजी इह संपूर्ण देह
विषे व्यापक है ॥ अरु भासता हृदे कोश विषे है ॥ जैसे संपूर्ण गु
लाब की देही विषे व्यापक सुगंध है ॥ परंतु भासती फूल ही वि
षे है ॥ तैसे चैतन्य सत्ता सर्व शरीर विषे व्यापक है ॥ परंतु भास
ती हृदे विषे है ॥ जो त्रिकोण रूप निर्मल चक्र है ॥ तहां अहं
वृत्ति का उत्थान होता है ॥ तहांतें वृत्ति निकस कर पंच इंद्रियरू
पी छिद्र रचे ॥ तिनतें निकस कर विषयों को ग्रहण कर्ती है ॥ ति
न की इष्ट अनिष्ट प्राप्ति विषे राग द्वेष मानता है ॥ तांते हे राम
जी एता कष्ट प्रमाद वाके है ॥ जब बोध होवै ॥ तब संसार भ्रम
मिट जावै ॥ हे रामजी वासना रूप जो संसार है ॥ तिसका बीज अ
हंभाव है ॥ ग्रस्त हूआ संसार विषे पड़ा फुरता है ॥ जब इसका अ
चिंतन होवै ॥ अरु स्वरूप विषे अहं प्रत्यय होवै ॥ तब संसार भ्रम
मिट जावै ॥ अरु अहं भाव के शांति हूये भी ज्ञानवान यंत्र की पु
तली वत चेष्टा कर्ता है ॥ हे रामजी जो पदार्थ सत है ॥ तिनका अ
भाव कदाचित नहीं होता ॥ अरु जो असत है ॥ सो सत नहीं होता
यद्यपि होवने की भावना करीये तो भी उसका होवणां नहीं
जैसे अग्नि को जाण कर स्पर्श करीये ॥ तो भी जलावती है ॥ अ
रु अजाण स्पर्श करीये ॥ तो भी जलावती है ॥ काहे तें जो सत है ॥ अ
रु जो असत है तिसका सत भावना करीये ॥ तो भी सत नहीं होता
जैसे मृगजल की भावना कर मारूस्थल विषे धावता है ॥ परंतु
जल नहीं पावता ॥ काहे तें जो असत है ॥ अण होती वस्तु कैसे
होवै ॥ जो द्वय की न्याई भासती है ॥ सो भ्रम है ॥ तैसे ही हे रामजी
अहंकार जो फुरता है ॥ सो असत है ॥ भ्रम कर सिद्ध है ॥ विचार

करनेसे हो जावैगा॥ हे रामजी इह अहंकार कलंक उगता है॥ जो निरहंकार होकर देखै तो मुक्तिरूप है॥ अर जो अहंकार संयुक्त है॥ तो बंध है॥ जो निरहंकार होवै॥ तो परम निर्वाण को प्राप्त होवै॥ इह मेरा सिधांत है॥ परमनत्र मिका एही है॥ जैसे पूर्नमासी का चंद्रमा सोभता है॥ तैसे तुम आत्मलक्ष्मी कर सोभैगा॥ हे रामजी ज्ञानवान का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है॥ तां तें अहंकार नहीं रहिता॥ तांके चित्त की चेष्टा फलदायक नहीं होती॥ जैसे भुनी बीज नहीं उगमता॥ तैसे उसको जन्म फल नहीं होता॥ अर अग्यानी का चित्त जन्म मरण का कारण है॥ जैसे बीज उगवता है॥ तैसे अग्यानी की चेष्टा जन्म फल देती है॥ हे रामजी जेते कछु पदार्थ हैं॥ तिन सर्व तें निरस होर हो॥ जो रिदै विषे अभिलाष किसी का न रहे॥ अर न किसी का सद्भाव फुरे॥ पषाण के नाई शुद्ध तुमारा रिदा होवै॥ हे रामजी जिसका रिदा कोमल है॥ सनेह संयुक्त है॥ सो अग्यानी है॥ अर जिसका रिदै पषाण समान है॥ सो ज्ञानी है॥ तां तें निरमनन निरहंकार रूप होकर स्थित होवो॥ इह भोग मिथ्या हैं॥ इनकी इछा विषे सुख नहीं॥ हे रामजी जब संसार तें उपरत होवोगे॥ अर अंतरमुख आत्मपरायण होवोगे॥ तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा॥ अर आत्मप्रकाश होगा॥ जैसे बसंत ऋतु आवती है॥ तब वृक्षों के पुरातन पत्र छुट्टि तिआग होते जाते हैं॥ अर प्रफुलित होता जाता है॥ तैसे जब तुम अंतरमुष होवोगे॥ तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा॥ अर विना तांको प्राप्त होवोगे॥ तुछ जो है अहं प्रत्यय सो जाता रहेगी॥ परम निर्वाण पद पावोगे॥ तां तें एक सचित अहंकार का त्याग करो॥ अवर जतन कछु न करो॥ तुमको एही हमारा उपदेश है॥ इति श्री निरवाणप्रकर्णे सुखेन योगउपदेशो नाम सर्गः॥ १४२॥ श्री वशिष्ठोवाच॥ हे रामजी इह जो वासनारूप संसार है॥ तां को तुम तर जावो॥ जैसे मंकी रिषि तरता है॥ श्री रामोवाच॥ हे भगवन मंकी रिषि किस प्रकार तरता है॥ सो कृपा कर कहो॥ श्री वशिष्ठोवाच॥ अथ कथा मंकी रिषि की लिष्यते॥ हे रामजी मंकी रिषि का वृतांत श्रवण कर॥ मंकी रिष

ती हण तप कीये थे। एक समें तुमारा पिता था जो है। राजा
अज तिसनें मेरा आवाहन कीया। मैं अपणे गृह विषे था।
आकाश मों। तब मैं राजा अज के निमित्त। आकाश मारग
तें उतरया। मारग विषे एक अटवी देषी। तिस विषे अनेक
बनों के समूह। सो महा भयानक मैंनें सून देषे। तिस विषे
न कोउ मानुष्य दृष्ट आवै। न कोउ पसु दृष्ट आवै। सून मानो
एकांत जैसा स्थान है। केते एक जोजनों अंतर मारूथल दृष्ट
आवै। अर मध्यान का समा था। अति तीक्षण धूप पडे रेतउ
रू अजंत तपी हुई। तिस विषे मैं गवेषणा कीया। कई वृक्ष कहूं हो
दृष्ट हूये दृष्ट आये। हे रामजी तिस सूनस्थल विषे एक पे
ढोई अति दुषित आवता मुझ को दृष्ट आया। तिसनें इह वा
का मुष तें निकासा। जो हाय हाय महा कष्ट पाया है। जैसे कि
सा कों दुष्ट जन दुष देते हैं। अर दया नहीं करते। तैसे मुझ कों धु
प अर पैंडे जलाया है। मैं अति दुष कों प्राप्त भया हों। हे रामजी
ऐसे वचन कहता हूया मेरे समीप तें चला जावै। केताइक मा
रिग आगें गया। तब एक ऊंवरों का गांउ तां को दृष्ट आया। तां
में गृह पंच अथवा सप्त थे। तां कों देष कर शीघ्र चल्या। जोई
हां मुज कों शांत प्राप्त होवेगी। मैं जल पान करोंगा। अर छाया
बैठोंगा। हे रामजी तां को देष कर मुज कों दया उपजी। तब मैं
कहा कि हे मारिग के मीत तूं कहां धावता है। जिसकों सुषदा
ई जाण कर तूं धावता है। सो तो दुषदाइक है। जैसे मृग मारू
थल कों नदी जाण कर जलपान के निमित धावता है। जो शां
त पावों। सो अति दुष पावता है। तैसे जिस स्थान कों तूं सुषरू
प जानता है। सो दुषरूप है। हे अंगा इह जो इस गांउ के वासी हैं
तिनका संग कदाचित नहीं करणां। इनका संग दुषरूप है। जो
पुरुष विचारपूर्वक चेष्टा करता है। तां कों दुष नहीं होता। अर
जो विचार बिनां चेष्टा करता है। सो दुष पावता है। इह जो नगर
वासी हैं। सो आप पडे जलते हैं। तो तुज कों सुष कैसे देवेंगे।
जैसे कोउ पुरुष अग्नि कुंड विषे पडा जलता हो। तिसकों क
हीये तें मेरी तपस शांत कर। तो कहनहारा रामरूढ होता है। वह

आपपड़ाजलताहै ॥ अवरकौतसकैसे शांत करेगा ॥ तैसे वह आ
पइंद्रीयांके विषयरूपी ॥ त्रिंदमांरुपी अग्नि विषे पड़े जलतेहैं ॥ तु
जकों कैसे शांत करेगो ॥ हे मारिगके मीत एते कष्ट होइ तो अंगीका
र करीये ॥ परंतु अज्ञानीयोंका संग न करीये ॥ सो कवन दुष होइ
विषै सर्प जो पृथिवी के छिद्र होइ रहिणा ॥ अरु पाषाण की शिला विषै कीट
होइ रहिणां ॥ अरु मारुस्थल का टूंठा मृग होइ रहिणां ॥ एते कष्ट अं
गीकार करीयैं ॥ परंतु अज्ञानीयोंका संग न करीये ॥ जिनकों इंद्री
यों यांके सुषांकी त्रिदमां रहती है ॥ सो इंद्रयसुष कैसे है ॥ जो आपात र
मणीय है ॥ अर्थ इह जो जब लग इंद्री के विषय संग संयोग है ॥ त
बलग सुष है ॥ जब वियोग हूया ॥ तब दुष होता है ॥ विषई जनोंके
मीतनी विषवत है ॥ अरु विचाररूपी बुधिकमलनी के नासक
नेहारी बर्फ है ॥ बहुड इनका संगत कैसा है ॥ जिनके वचनरूपी प
वन करराषड़ दत्ती है ॥ समीपबैठनहारे को नी अंध करदारती
है ॥ तांते इन गांउवासी अज्ञानीयोंका संग नहीं करणा ॥ बहुड़ कैसे
है ॥ विचाररूपी सूर्य बुधके आवर्तके नेहारे बादर हैं ॥ जैसे वली
ऊपर अग्नि डारीये ॥ तो जल जाती है ॥ तैसे वैराग्य कों ग्रहण कर
णहारी जो बुधि है ॥ तिसके नासकनेहारी इनकी संगत है ॥ तांते
इनका संग नही करनी ॥ हे साध तिनका संग कर ॥ जिनके संग कर
तेरा ताप मिटै ॥ उनके संग करि शांत नप पावैंगा ॥ हे रामजी इस प्रक
र जब मैं कहा ॥ तब वह मेरे तिकिट आइ कर बोलत भया ॥ मुं
कारिबोवाच ॥ हे भगवन तुम कवन हो ॥ अरु तुमारा नाम क्या है
तुमारे वचन सुणकर मैं शांतको प्राप्त भया हो ॥ तुम सन्तजैसे दीसत
हो ॥ अरु सर्वके कारके पूरण हो ॥ अरु तुमारा दिव्य प्रकाश मुजकों द
ष्ट आवता है ॥ तुम आदिपुरुष विराट हो ॥ कि कवन हो ॥ अरु तु
म सुंदर दृष्ट आवते हो ॥ हे भगवन जो सुंदर होता है ॥ तिसकों
देषकर राग उपजता है ॥ अरु चित होनकों नी प्राप्त होता है ॥
अरु तुम ऐसे सुंदर रहो ॥ जो तुमारे दर्शन करके मुजकों शांत
आवती जाती है ॥ अरु तुम दिव्य तेजकों धारते हूये दृष्ट आव
ते हो ॥ जेते कछु तेजवान है ॥ देषणे नहीं देते ॥ तिनको तिरसकार
करते हो ॥ अरु तुमारा तेज अमृतका ज्ञारि हृदैकौं शांत उपजावता है ॥ सी
तलप्रकाश है ॥ हे भगवन तुम उन्मत्तवत घूर्मसे दृष्ट आव

ते हो। सो कैसी शांतता को लेकर एकता विषे स्थित हो॥ अरु अप
णे स्वरूप प्रकाश की दया करते दृष्ट आवते हो॥ अरु पृथिवी
परि स्थित भी दृष्ट आवते हो॥ अरु त्रिलोकी के ऊपर विराजमा
न दृष्ट आवते हो॥ अरु एकाएकी दृष्ट आवते हो॥ परंतु सर्वा
त्मा होवकर किंचित अकिंचित तुम ही हो। अरु सर्व नाव पदार्थों
ते संत दृष्ट आवते हो॥ अरु सर्व पदार्थों के अधिष्ठान हो॥ अरु
सर्व पदार्थ तुमारी सत्ता कर प्रकाशते हैं। तुमारे नेत्रों के षोलने क
र उत्पत्ति होती है॥ अरु मूंदने कर लय हो जाती है॥ तातें ईश्वर हो
सकलंक दृष्ट आवते हो परंतु निहकलंक हो॥ अर्थ इह जो क
नीं तुमारे विषे दृष्ट आवता है॥ परंतु अंतर लेस नहीं॥ अरु कि
सी अमृत को पान कर तुम आये हो॥ अरु बडे ऐश्वर्य कर सप
न्न दृष्ट आवते हो। हे भगवन तुम कवन हो॥ अरु जो मुझ ते पूछो
तूं कवन हैं॥ तो मैं शांति लिखि ऋषि के कुल विषे हों॥ अरु मेरा नाम
मंकी है॥ मैं बालक नहीं। अरु तीर्थयात्रा के निमित्त निकस्या था
अरु सर्व दिशा भ्रम आया हों॥ अरु अतिभयानक स्थानों वि
षे जो तीर्थ हैं॥ तहां भी गमन कीया है। परंतु शांति मुझ को न प्रा
प्त भई॥ अरु सीशांत कछू न पाई। जो इंद्रीयां की जलन तें रहि
त होवें॥ अब मैं गृह को चला हों। हे भगवन अब गृह तें भी चित
विरक्त भया है। जो इह संसार ही मिथ्या है। तो गृह किसका है
संसार विषे सुख कछू नहीं। अरु इह प्रान ऐसे हैं॥ जैसे दामि
नी का चमत्कार होता है॥ तैसे इह संसार नष्ट होता दृष्ट आव
ता है। अरु शरीर उपजते भी हैं। अरु नष्ट भी हो जाते हैं॥ दृष्टमा
त्र है। जैसे रात्र आवती है। बहुड जाणीता नहीं जो कहां गई॥ हे
भगवन इस संसार को असार जाणकर मैं उदासीन हूया हों।
जो अनेक जन्म पाये हैं। सो नष्ट हो गये हैं। इसी प्रकार भ्रमता फि
रता हों॥ अब तुमारी शरणि आता हों। अरु जानता हों जो तुमसों मे
रा कल्याण होवैगा॥ अरु तुम कल्याण रूप ही दृष्ट आवते हो
तातें कृपा करकै कहो। जो कवन हो॥ श्रीवशिष्ठोवाच॥ हे मं
की रिषि मैं वशिष्ठ ब्राह्मण हों। अरु मेरा गृह आकाश विषे है।
मुझ को राजे अज स्मरण कीया है॥ तिस निमित्त मैं इस मार्ग क
र गमन करता हों॥ अब तूं सम्यक मति कर। जो तूं ज्ञान मार्ग

कों आया हैं॥ हे रामजी जब ऐसे मैं कहा॥ तब वह मेरे चर्नौं पर गि
र पड़ा॥ और नेत्रों ते जल चलणे लागा॥ जो महा आनंद कों प्रा
प्त भया॥ तब मैं कहा कि हे रिषि तूं संशय मत कर॥ मैं तुझ कों आ
कौंप्राप्त ह्ल तमशांति करके गमन करैंगा॥ जो कछु पूछा चहता है सो
पूछ॥ मैं तुझ कों उपदेश करौं॥ और मैं जाणता हों जो तूं कल्या
ण रूप है॥ जो कछु मैं कहोंगा सो तूं धारैगा॥ तूं कछु संदेह क
र॥ अब तेरे कषाइ परपक्क भये हैं॥ तूं मेरे वचनों का अधिका
री हैं॥ तुझ कौं उपदेश करैंगा॥ अब तूं संसार के तट कों प्रा
प्त भया हैं॥ अब तुझ कों निकासणे का बिलंब है॥ जो तूं
वैराग कर पूर्ण है॥ सो संसार का तट वैराग है॥ तातें संशय म
ति कर॥ इति श्री निरवाणप्रकर्णे मंकीपमवैरागवर्नं
नं नाम सर्गः॥ १४३॥ मंकीयोवाच॥ हे भगवन अब मैं जा
णता हों॥ जो अब मेरा कार्य सिध भया है॥ मुझ कों अज्ञान कर
मोह था॥ तिस के नाश करणे कौं तुम समर्थ हष्ट आवते हो॥
मेरे हृदे के तमनाश करणे कौं तुम समर्थ हष्ट आवते हो॥ मेरे
रिदय के तमनाश करणे कौं तुम सूर्य उदय भये हो॥ हे भग
वन इह संसार असार है॥ और लोकों की बुधि बिषयों की ओ
र ही धावती है॥ जहां तहां दुष ही होते हैं॥ जैसे जल नीचे स्थान
कौं चल्या जाता है॥ तैसे हमारी बुधि नीच स्थानों विषै धावती
है॥ दुःही चाहती है॥ हे भगवन जेते कछु भोग हैं॥ तिन कौं मैं ने
ग्या है॥ परंतु शांति न पाई॥ उलटी त्रिस्नां बधती ही गई॥ जैसे
त्रिषा लागै अर षारा जल पान करीये॥ तौ त्रिषा नहीं मिटती
बढती ही जाती है॥ तैसे बिषयों के भोगणे कर त्रिस्नां शांत कौं
नहीं प्राप्त होती॥ बढती ही जाती है॥ हे मुनिराय जी देह जर्जरी
भाव हो जाता है॥ और दंत गिर पडते हैं॥ अति हीन होता है॥
तो भी त्रिस्नां नहीं मिटती॥ तातें अब मैं दुष कौं चहता हौं॥ सुष
कौ हूं नहीं चहता॥ काहे तें जो जेते संसार के सुष हैं॥ तिनका प
र्णाम दुष है॥ जो प्रथम दुष है॥ तिनका परणाम सुष है॥ तातें मैं
सोई चहता हौं॥ जिसका परणाम सुष होवै॥ इसी तें दुष चहता हौं॥
संसार के सुष नहीं चहता॥ हे भगवन अपणीयां वासनां ही
दुषदाइक हैं॥ जैसे घराकण गुफा बणाय कर मध्य तिस के

आपही फस मरती है ॥ तैसे अपणी वासनां कर आपही बंधा
यमान होता है । हे मुनि जीव रूह काल कब होवहिगा । जो अग्या
न रूपी हस्ती मुझे वस कीया है ॥ तिसका नाशक र्नेहारा ग्यान रू
पी सिंह कब प्रगटेगा ॥ अर कर्म रूपी त्रिलोंका नाशकर्ता
विवेक रूपी अग्नि कब प्रगटेगा । अर वासनां रूपी रात्र तम
का नाश कर्नेहारा ग्यान रूपी सूर्य कब उदय होवहिगा ॥ हे भग
वन वैताल तब लग भासता है ॥ जब लग निशा है ॥ जब सूर्य उ
दय हूया ॥ तब निशा जाती रहेगी ॥ बहुड वैताल न भासेगा ॥ सो
अहंकार रूपी वैताल तब लग है ॥ जब लग अग्यान रूपी रात्र
दूर नहीं हूई ॥ हे भगवन जब सतशास्त्रों अर संतजनों के उप
देश तें आत्म ग्यान रूपी सूर्य प्रगटता है ॥ तब अहंकार रूपी वै
ताल ठहो नहीं विचरता । सतशास्त्रों का देषणां अर संतजनों
का संग चादनी रात्र वत है ॥ तिसकर जब स्वरूप का साक्षात
कार होवै । तब दिन हूया । जब लौ सतशास्त्रों का देषणां न हो
वै । अर संतजनों का संग न होवै । तब लग तम निशा है । हे भगव
न जिसकौं शास्त्रों का श्रवण नी होवै । अर बहुड विषयों कीऐ
रणि है । तब बढा अग्यान जाणीये । सो मैं हों । परंतु अब मैं तुमा
री सरनिकौं प्राप्त भया हों । मेरे रिदे विषे जो अग्यान रूपी कुहीड
है आकास मों ॥ सो तुमारे वचन रूपी सरतकाल कर नष्ट होजा
वेगा ॥ हृदाकाश निर्मल होवहिगा । हे भगवन मैं त्रिदंड साधे
हैं । मन करनी शरीर करनी ॥ अर वाणी करके नी । इह त्रिती
य तप कीये हैं । दीर्घकाल पर्यंत । परंतु आत्म प्रकाश नहीं हू हूया
या ॥ अब मैं तुमारी शरणागति तैरोंगा ॥ तातें कृपा करके उपदे
शा करो । जो मेरे हृदे का तम दूर होवै ॥ इति श्रीवनिर्वाणप्रक
लीमंकी वैराग्य योगो नाम सर्गः ॥ १४४ ॥ श्रीवशिष्ठवा
चा ॥ हे तात संवेदन भावनां वासनां कलनां ॥ इह चतुष्टय अन
र्थ के कारण हैं ॥ जब इनका अभाव होवै । तब कल्याण होवै । श्रु
ध चिन्मात्र पद प्रत्यक चैतन्य अपणे आप विषे जो अहंभाव की
उत्पत्ति है ॥ सो संवेदन है । अर भावनां इह जो कछु बण्या ब
हुड चेतनता । अपणें आप चिन्मात्र स्मरन भया । तब तम मिट जाता
है ॥ अर जो कछु बण्या है ॥ तिसकी भावनां हूई जो मैं इह हों

तब ज्ञावनां कर संसार धड हूया ॥ बहुड तैसे ही वासना धड
होती हैं ॥ अपणे शरीर के अनुसार नाना प्रकार की फुरनां
होती है ॥ बहुड संसार के संकल्प विकल्प पड उठते हैं ॥ सो
एक जलनां है ॥ हे ब्राह्मण इह चतुर्थ अनर्थ के कारण हैं ॥ ज
ब इनका अभाव होवै ॥ तब कल्याण है ॥ जेतेक कुछ शब्द अ
र्थ हैं ॥ तिनका अधिष्टान अत्यक् चेतन्य है ॥ सर्व शब्द उ
सी के आश्रित हैं ॥ अर सर्व उही है ॥ जब तूं ऐसे जाणेगा ॥
तब वासना क्षय हो जावैगी जब अहं संवेदन इसको फुरती
है ॥ तब आगे संसार नासता है ॥ जैसे बसंत रुत आवती है
तब वल्ली प्रफुलित होतीयां हैं ॥ तैसे जब संवेदन फुरती है ॥ त
ब आगे संसार सिध होता है ॥ जब संसार हूया ॥ तब नाना
प्रकार की वासना फुरतीयां हैं ॥ अर संसार नहीं मिटता ॥
हे अंग संसार इसका नाम है ॥ जो पडा संसरता है ॥ जब सस
नें मिट जावै ॥ तब आतमपद ही शेष रहे ॥ सो तेरा अपणा आ
प है ॥ तां ते इस फुरनें को त्याग कर अपणे आप विषे सावधा
न हो सर्व तेरा ही सरूप है ॥ जब लग वासना पड़ी फुरती है ॥ तब
लग इह संसार रूपी वृक्ष धड होता जाता है ॥ जैसे वृक्ष को ज
ल देवीता है ॥ तब बधता जाता है ॥ तैसे वासना रूपी जल दे
लोव कर संसार रूपी वृक्ष धड होता जाता है ॥ तां ते वासना का ना
श करो ॥ नाश करणी एही है ॥ जो संवेदन न फुरे ॥ जब वृक्ष ज
ल ते रहित भया ॥ तब आपे ही जल जाता है ॥ हे पुत्र आत्मा
विषे जगत कछु हूया नहीं ॥ केवल परमार्थ सता है ॥ जैसे जेव
डी विषे सर्प कछु वस्त नहीं ॥ जेवडी के अज्ञान ते सर्प भासता
है ॥ तैसे आत्मा के अज्ञान ते इह विश्व भासता है ॥ जब तूं आ
त्मपद को जाणेगा ॥ तब परमार्थ सता ही भासेगी ॥ जैसे बालि
क अपणी पछावें विषे वैताल कल्पता है ॥ तिस के भय कर दुख पा
वता है ॥ जब विचार कर देखै ॥ तब वैताल कोऊ नहीं ॥ भै दूर हो
जाता है ॥ तैसे आत्मा के अज्ञान कर संसार के राग द्वेष पड़े ज
लावते हैं ॥ अर ज्ञानवान को वासना संयुक्त संसार का अभाव
तें होजाता है ॥ केवल अद्वैत सत्ता ही भासती है ॥ जैसे स्वप्ने [illegible]
जाग्या स्वप्न का प्रपंच वासना संयुक्त अभाव होजाता है ॥ तैसे

जब आत्मा का साक्षात्कार होया ॥ तब वासनां संयुक्त संसा
र का अभाव हो जाता है ॥ काहेतें जो है ही नहीं ॥ जैसे घटादिको
विषे मृत्तिका तें इतर कछु नहीं । तैसे सर्व प्रपंच चिन्मात्र स्वरूप
है ॥ इतर कछु नहीं । जेते कछु शब्द अर्थ हैं । सो सर्व आत्मा है ॥ हे मि
त्र जो कछु आत्मा तें इतर भासता है । तिसको भ्रममात्र जाणि
जैसे आकाश विषे नीलता भासती है ॥ है नहीं ॥ अरु भ्रांति से भास
ती है भ्रम कर । तैसे विश्व असम्यक ज्ञान करके भासती है ॥ सं
म्यक दृष्ट कर सर्व प्रपंच आत्मस्वरूप है । बोध ही त्रिपुटीरूप
हो (कर) स्थित होता है ॥ जैसे स्वप्न विषे एक ही अनुभव त्रिपुटीरूप
हो भासता है ॥ तैसे इह जाग्रत त्रिपुटी आत्मस्वरूप है ॥ हे अंग
जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं ॥ सो सर्व आत्मरूप है ॥ जो
परमात्म स्वरूप न होवै ॥ तो भासै नहीं ॥ दृष्टारूप जो अनुभव क
र्ता है ॥ सो एक अद्वैत आत्मा ही है ॥ अर्थ इह जो सर्व का अपणा
आप एक अनुभव रूप है ॥ तिस स्वरूप के प्रमाद कर त्रिपुटी
भिंन भिंन भासती है ॥ तो भी स्वप्नवत इतर कछु नहीं ॥ जैसे स्व
प्न विषे त्रिपुटी अपणे आप अनुभव स्वरूप कर भासती है
जो अनुभव न होवै तो काहेतें भासे ॥ तैसे इह त्रिपुटी अनुभव
आत्मा कर भासती है ॥ जो तैं भासते हैं ॥ तातें परमात्मस्वरूप है ॥
जो नहीं तो है ही नहीं ॥ काहेतें जो सर्व की एकता परमात्मस्वरूप
विषे होती है ॥ हे रिषीश्वर सजाती वस्तु मिल जाती है ॥ जैसे ज
ल विषे जल की बूंद डारीये तो मिल जाती है ॥ काहेतें जो एक स
रूप है ॥ तैसे बोध करके सर्व पदार्थों की एकता भासती है ॥ का
हेतें जो द्वैत सत्ता है नहीं ॥ जैसे स्पंद अस्पंद दुनय स्वरूप पव
न ही है ॥ जैसे जल तरंग अभेद रूप है ॥ तैसे विश्व परमार्थ स्वरू
प है ॥ तातें ऐसे निश्चै करो जो सर्व ब्रह्म स्वरूप है ॥ अथवा आ
प को उडाइ दे ॥ जो मैं ही नहीं जो तूं ही न हूआ ॥ तो विश्व कहां
तें होवे ॥ हे मंकी रिषि प्रथम जो अहं होता है ॥ तब पाछे ममता
होता है ॥ जो अहं ही न रहेगी ॥ तो ममता कहां रहेगी ॥ इस अहं
का होवणा ही बंधन है ॥ इसके होवणे का अभाव होवे ॥ तब इस
ही का नाम मुक्ति है ॥ हे मित्र इस युक्ति विवेक का यतन है ॥ इह तो
अपणे आधीन है ॥ जो मैं नहीं ॥ जब अहंकार को निवृत्त कीया

अरु द्रष्टा दरसन दृस्य
जो त्रिपुटी भासती है सो
बोधरूप है

तब शेष उही रहेगा ॥ जो सर्व का परमार्थ स्वरूप है ॥ इसी कों त्र
ल्प कहते हैं ॥ हे रिषीश्वर जब अहंकार फुरती है ॥ तब नाना
प्रकार की वासना फुरती है ॥ इनके अनुसार अनेक जन्मों कों
पावते हैं ॥ जो वर्तन कायेन ही जाते ॥ जैसे पवन कर तृण भट
कते फिरते हैं ॥ तैसे वासना के अनुसार जीव भटकते फि
रते हैं ॥ जैसे पर्वत तें कंकर गिड़ा ॥ तब नीचे कों चोटा खाता
चल्या आवता है ॥ तैसे स्वरूप के प्रमाद कर जन्मजन्मांतर
पावते चल्ये जाते हैं ॥ घटीजंत्र की न्याई कबहूं ऊर्ध्व कों कब
हूं अधः कों जाते हैं ॥ अपणी वासना के अनुसार ॥ जैसे खेनें
हस्त कर ताडना कीया कबहूं ऊर्ध्व कों कबहूं अधह कों
जाता है ॥ हे अंग इस संसार का बीज वासना है ॥ जब वासना
निवृत्त होजावैं ॥ तब सर्व की एकता होजाती है ॥ जब लग सं
सार की वासना थूड है ॥ तब लग एकता नहीं होती ॥ जैसे दुग्ध
अरु जल मिलता है ॥ उनका संयोग संबंध होजाता है ॥ तैसे
विश्व अरु आत्मा का संयोग संबंध नहीं ॥ आत्मा केवल अ
द्वैत सत्ता है ॥ अरु सर्व का अपणा आप है ॥ जैसे मृत्तका ही घ
टादिक रूप होय भासती है ॥ तैसे आत्मसत्ता ही जगत रूप हो
भासती है ॥ तातें आत्मा तें इतर कछु वस्तु नहीं ॥ हे साध आ
त्मा अरु दृश्य का संयोग कछु नहीं ॥ काष्ट अरु लाषवत ॥ अ
थवा घट अरु आकाशवत संयोग कछु नहीं ॥ का हेतें जो आ
त्मा अद्वैत है ॥ सर्व दृश्य बोधमात्र है ॥ हे साध जो जड है ॥ सो चै
तन्य नहीं होता ॥ अरु चैतन्य जड नहीं होता ॥ तातें न कोऊ जड
है ॥ न चैतन्य है ॥ चैतन्य आत्मा ही भावना कर जड दृश्य होय भा
सता है ॥ तिसके बोध कर अद्वैता का स्वरूप होजाता है ॥ तो
जाणीता है ॥ जो सर्व वही है ॥ इतर कछु नहीं ॥ हे मित्र अज्ञान क
र नाना प्रकार की दृश्य होय भासती है ॥ जैसे मेघ की वर्षा करता
तो प्रकार के फल अन्न व प्रफुलित होय आवते हैं ॥ तैसे जब अ
हं अैसे नया ॥ तब संसार रूपी वृक्ष का बीज जाणो ॥ अरु वास
ना सुष कर प्रफुलित होता है ॥ जब अहंकार रूपी बीज नष्ट हो
जावै ॥ तब संसार रूपी वृक्ष नी नष्ट होजावैगा ॥ हे अंग जैसे
बांदर चपलता पडा करती है ॥ तैसे आत्मतत्त्व तें बेमुष अहं
कार रूपी बांदर वासना कर चपलता पडा करती है ॥ जैसे

पेनें हस्त के प्रहार कर कंदुक ऊर्धको उछलता है ॥ अ
र पृथिवी पर पटकता कंदुक ऊर्धको उछलता है ॥ तैसे
जीव वासनां के प्रहार कर अधः ऊर्धकों नटकता फि
रता है ॥ तातें वासना का त्याग करो ॥ अरु आत्मपद विषे
स्थिति होवो ॥ हे साध इह संसार रात्रि का पैंडा है ॥ देषते दे
षतें नष्ट होजाता है ॥ इसको देषकर इस विषे प्रीत कर
ती ॥ अरु सत जाननां एही अनर्थ है ॥ तातें संसार को त्या
ग कर आत्मपद विषे स्थिति होवो ॥ चित्त की वृत्ति जो संस
रती है ॥ इसी का नाम संसार है ॥ इति श्री निर्वाण प्रक
रणे मंकी ऋषि बोधनं नाम सर्गः ॥ १४५ ॥ श्री वसिष्ठो
गा८३
वाच ॥ हे राम इह संसार मांहि गहन है ॥ इस विषे जी
व पडे नटकते हैं ॥ इह चेतना वृत्ति जो पडी संसरती है ॥ ए
ही संसार है ॥ जब इह संसरनां मिटे ॥ तब अपणां स्वछ
हीं आपसरूप नासे ॥ चेतना वृत्ति जो बहिरमुष फुरती
है ॥ तो इसी का नाम बंध है ॥ अवर बंधन कोऊ नहीं ॥ हे साध
इह जगत वासनां कर बांध्या है ॥ जैसे बसंत रुत कर रस
पसरता है ॥ तैसे वासनां कर जगत पसरता है ॥ बडा आ
श्चर्य है ॥ जो मिथ्या वासनां कर जीव भटकते फिरते हैं ॥
अरु दुषों को भोगते हैं ॥ अरु वार वार जन्म मृत्यु पावते
हैं ॥ बडा आश्चर्य है ॥ जो वासनां विषमरूप है ॥ इसके वस
जीव हूये ॥ अविद्यमान जगत को भ्रम कर सत पडे जान
ते हैं ॥ हे साध जो इस वासनां रूप संसार कों तरगाये हैं ॥ सो धं
न्य हैं ॥ वह मनुष्य चंद्रमा के समान हैं ॥ जैसे चंद्रमां अमृत
रूप शीतल प्रकाशवान प्रसन्न करता है ॥ तैसे ज्ञानी पुरु
ष है ॥ तातें तूं धंन्य हैं ॥ जिसकों आत्मपद की इच्छा हूई है ॥
हे राम इह संसार त्रिष्णां कर पडा जलता है ॥ जिनकी चे
ष्टा त्रिष्णां संयुक्त है ॥ तिनकों तूं बिलाड जान ॥ जैसे बिला
त्रिष्णां कर चूहे कों ग्रहण करता है ॥ तैसे इह जीव भी अप
णी त्रिष्णां कर चेष्टा करते हैं ॥ इस मनुष्य शरीर विषे
एही विशेषता है ॥ जो किसी प्रकार आत्मपद कों प्राप्त हो
वहि ॥ अरु जो नरदेह पाय कर भी आतमपद पावणे की

इछ्या न करैं। तो पशु समान हैं। जैसे पशु तैसे मानुष्य। हे मित्र मू
ढ जीव ऐसी चेष्टा करते हैं॥ जो प्राणों के अंत पर्यंत भी त्रिष्णा
करतै रहते हैं॥ हे अंग ब्रह्मलोक तैं आदि लेकर काष्ट पर्यंत जो
ते कछु इंद्रीयों के विषय हैं॥ तिनके भोगणे कर शांति नहीं
प्राप्त होती। काहे तें जो आपातरमणीय हैं॥ इन विषे सुख क
दाचित नहीं। जो ज्ञानवान पुरुष हैं॥ तिनको शांति ऐसी है।
जैसे चंद्रमा विषे है॥ अर सूर्यवत प्रकाशते हैं॥ अर विषयों
की त्रिष्णा कदाचित नहीं करते। जैसे किसी पुरुष अमृत
पान कीया होइ॥ तिस कर तृप्त हूया वह षल षाणे की इछ्या
नहीं करता॥ तैसे जिस पुरुष को आत्मानंद प्राप्त हूया है॥ सो
विषय भोगणे की इछ्या नहीं करता॥ तातें इसी वासना का त्या
ग कर॥ अर वासनां का बीज अहंकार है॥ तिसीको निवर्त क
र॥ जो मैं नहीं। काहे तें जो तेरा होवणां ही अनर्थ है। हे साध श्रे
ष्ठ चिन्मात्र निराकार पद विषे जो कछु तूं आपको प्रछिन्न जा
नता हैं॥ जो मैं ब्राह्मण हों। अथवा किसी गकित साथ मिल
कर आपको जानता हैं॥ जो मैं इह हों। एहा अनर्थ है॥ हे रिषे
तेरे नेत्रों के खोलणे कर संसार उत्पति होता है॥ अर नेत्रों के
मूंदणे कर जगत नष्ट हो जाता है॥ सो नेत्र क्या हैं। अहंकार
का फुरणां आगे विश्व सिध होती है॥ तेरा होवणां ही अनर्थ है॥
हे अंग जैसे जेवड़ी विषे सर्प भ्रम मात्र उदय होता है॥ तैसे आ
त्मा विषे अहंकार उदय हूया है॥ इसके अभाव भये शांति
होती है॥ जब अहंकार हूया॥ तब आगे स्त्री कदंब धनादिक
होते हैं॥ सो इसको बंधन हैं॥ इसका चमत्कार ऐसे है॥ जैसे दा
मिनी का चमत्कार क्षण विषे उदय होइ कर नष्ट हो जाता है
तातें इन विषे बंधायमान न होइ॥ हे अंग जब तूं कछु बण
या॥ तब संपदा तुझे आय प्राप्त होवहिंगी। अर जब तूं
अपणा अभाव जाणे॥ तब पाछे ही आतमपद शेष रहता है
सो परमशांति रूप है॥ जिसकी अपेक्षा कर चंद्रमा भी अग्नि व
त जाणीता है। सो परमसंत है॥ अर सर्व पदार्थों की सत्ता वही है
सो आकाशरूप है॥ हे मित्र इस मेरे वचन को धार जो मोह तेरा
नष्ट हो जावे। इह विश्व कछु हूई नहीं। जैसे आकाश विषे दु
तीय चंद्रमा भासता है॥ अर है नहीं। तैसे विश्व है नहीं। आत्मा

कोइसीकर

के प्रमाद कर भासता है ॥ हे रिषीश्वर तूं तिसी को जाण जिस
के अज्ञान कर विश्व भासता है ॥ अर तिसी के ज्ञान कर लय हो
जाता है ॥ हे मंकी सून्यमात्र जैसे आकाश है ॥ स्पंदमात्र जैसे पव
न है ॥ जलमात्र जैसे तरंग हैं ॥ तैसे संवितमात्र जगत है ॥ तिस संवि
त आकाश तैं जो इतर भासता है ॥ सो भ्रममात्र जाण ॥ जैसे जल
पहाड रूप भासै असम्यक दृष्ट कर ॥ तैसे असम्यक अवलो
कन कर जगत भासता है ॥ अर सम्यक अवलोकन कर परमा
र्थसत्ता ही भासती है ॥ तिस के अज्ञान कर विश्व भासती है ॥ तिस
को ज्ञानवान ब्रह्म दृष्ट कर कहिते हैं ॥ तिस ब्रह्म दृष्ट के आ
गें अहंकार ही विघ्न है ॥ सो ज्ञानवानों का नष्ट भया है ॥ तां तैं
सर्व का अधिष्ठान वही परमार्थ रूप एक देषते हैं ॥ तिसी विषे
तूं एकत्र हो ॥ जैसे आकाश अनेक घटों के संयोग तैं भिन भिन
भासता है ॥ अर जो घटों को फोडीये तो सर्व एक ही हो जाते हैं ॥
तैसे अहंकार रूपी घट फोडीये तो सर्व पदार्थ एकत्र हो जाते
हैं ॥ हे अंग सर्व को परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद है ॥ सो कैसा है ॥ अ
जन्मा है ॥ अच्युत है ॥ अनंत है ॥ शांतिरूप है ॥ निर्विकल्प अ
द्वैत है ॥ सर्व का अधिष्ठान है ॥ तिस विषे स्थिति हो ॥ जो सिलाव
त आत्मसत्ता तैं इतर कछु न फुरे ॥ तो तेरे को बोध होजा
वै ॥ हे मंकी रिष इह जो पदार्थ तुज को भासते हैं ॥ दुष अर सुष
के देवणहारे ऐसे जो दृष्ट अर्थ हैं ॥ सो आकाश के फूल हैं ॥
तां तैं रीक मति कर ॥ जो सर्व परमार्थसत्ता ही है ॥ जैसे पुरुष ति
ना कार है ॥ तिस का भावना कर अंगों का संयोग होता है ॥ तैसे
विश्व भी इस की भावना कर होता है ॥ जैसी जैसी संसार की भा
वना दृढ होती है ॥ तैसे स्वरूप आगे दृष्ट आवते हैं ॥ जो विश्व उ
पादान कर हूई नहीं ॥ तो अरेन परणाम कर बणा कछु नहीं
जैसे इह बिना उपादान है ॥ तैसे भव ता कर है मित्र शुध आ
त्मा का जो पावणा है ॥ सो साध्य है ॥ अर विश्व निरउपादान है ॥
सो शाब्द है ॥ अर आत्मा अद्वैत है ॥ सो इस का हेत है ॥ अर अच्युत
है ॥ इसी तैं विश्व निरउपादान है ॥ जो दृष्टांत भी चाहीये तो जैसे
स्वप्न सृष्ट निरउपादान होती है ॥ अर उपादान मृत्तका कर जैसे
घट कार्य बणता है ॥ आत्मा विश्व का उपादान अैसे भी नहीं ॥
काहे तें जो मृत्तका परणाम कर घटाकार होता है ॥ अर आत्मा अ

चुत है। जैसे भित बिनां चित्र होवै सो है हां नहीं। तैसे इह विश्व
आकाश विषे चित्र है। जैसे स्वप्न विषे नाना प्रकार की विश्व आ
धार भीत बिनां होती है। तैसे इह विश्व आकाश विषे चित्र हूई
है। इसी तें आत्मा अकर्ता है। अर विश्व जो दृष्ट आवती है। सो
निरउपादान है। तिसका शोक क्या कहीये। अर हर्ष का कहीये
इह प्रपंच आत्मस्वरूप है। प्रमाद कर जाण्या नहीं जाता। हे
साध संवेदन जो अहंकार फुरती है। तब विश्व भान होता है। जैं
से स्वप्न विषे जो वाछु बणता है। सो अपने स्वरूप तें भिंन हो भा
सता है। अर तिस विषे रागद्वेष भासते हैं। तैसे जब संवेदन तउ
ठगाई। तब सर्व विश्व अपणा आप हो जाता है। इह अहंका
र का होवणा ही विश्व है। जब अहंकार का नास होवै। तब सर्व
शब्द अर्थ जो हैं। मैं सुखी हों। मैं दुषी हों। इह नर्क है। इह स्वर्ग है
इत्यादिक शब्द पदार्थ भासता ही विषे पड़े फुरते हैं। सर्व का अ
धिष्टान आत्मा ही है। तातें सर्व आत्मस्वरूप ही है। सो कैसा है। दृ
स्य तें रहित द्रष्टा है। ज्ञेय तें रहित ज्ञाता है। अर निरबाध
बोध है। इछा तें रहित इछा है। अद्वैत अरु नाना भी वही है। नि
राकार अकार भी वही है। किंचित अर किंचित भी वही है। अ
क्रय अर सर्व क्रया वही करती है। ऐसे आत्मज्ञान को पायक
र आत्मवेता विचरते हैं। अर जगत का भान तिनकों किंचित
भी नहीं। जैसे स्वर्न के भूषण जल के तरंग होते हैं। तैसे सर्व वि
श्व तां कों आत्मस्वरूप भासती है। ऐसे जाणकर सर्व चेष्टा क
रते हैं। जैसे जंत्री की पुतलीयां विषे संवेदन नहीं फुरती। तैसे उ
नकों जगत सतता नहीं भासती। काहे तें जो निरहंकार भये हैं।
हे मंकी रिष जैसे स्वर्ण विषे भूषण बण आये हैं। तैसे आत्मा
विषे विश्व फुर आई है। अहंकार फुर आया है। तातें इसके न
होवणे की भावना कर। निरहंकार होकर चेष्टा कर। जैसे पंघु
डे विषे बालिक के अंग सहजे ही विकल्प पड़े हलते हैं। तैसे ज्ञानी की
निरवेदन चेष्टा होती है। हे रिष जब तें इस मेरे उपदेस कों धा
रैगा। तब सुखे ही आत्मपद की प्राप्त होवैगा। इह विश्व ही आ
त्मस्वरूप भासैगी। हे रामजी जब मैं इस प्रकार कहा। तब मं
की रिष परम निर्वाण पद कों प्राप्त भया। परम समाध विषे स्थि

जो कछु वस्तु भासती है सो सभ आतम स्वरूप ही है

तिहोगया ॥ सोवर्षप्रजंतसमाधविषेस्थितिरहा ॥ सोकैंसीस
माधजोशिलावतफुरेकछुनही । हेरामजीजिसप्रकाररामकी
रिषस्वरूपकेप्राप्तभयाहे ॥ तैसेतुमभीस्थितिहोवो ॥ इति
श्रीनिरबाणप्रकर्णेपंकरिषनिर्बाणप्राप्त नामसर्गः ॥
॥ १४६ ॥ श्रीवशिष्टोवाच ॥ हेरामजीइहविश्वआत्माका
चमत्कारहे ॥ सर्वब्रह्माकास्वरूपहे । चिन्मात्रस्वरूपहे । हेरा
मजीमेराआशीर्वादहे ॥ जोतुमचिन्मात्रस्वरूपकोप्राप्तहो
वो ॥ तुमाराअपणाआपहे ॥ तिसकोंअपणांआपजाणो जो
तुमारेदुषनष्टहोजावैं । हेरामजीतुमनिर्वाणशांतात्माहो
वउ ॥ अरयथालाभविषेसंतुष्टरहो । अरसतह्रयाअस
तकीन्यांईस्थितिहोवो । अररागद्वेषकारंगतुमकोस्पर्शीन
करैफटकमणवत । हेरामजीइहसर्वजगतएकहीविषे
स्थितिहे । अरवास्तवएकविषेस्थितिकछुनही । आदिअं
तसेंरहितएकचिदाकाशस्थितिहे । अपणेआपविषे । सो
शरीरादिककेनासविषेभीअषंडरूपहे ॥ तिसकाइह
जगतचमतकारहे ॥ उपजउपजकरलैहोजाताहे ॥ जलत
रंगवत । हेरामजीध्याताध्यानध्येयत्रिपुटीज्ञानमात्रसि
धहूईहे ॥ अरजोकहीयेद्रष्टादर्शनदृस्यसर्ववहीरूप
हे ॥ उसतेंइतरकछुनहीं । सर्वात्मस्वरूपहे ॥ अरसदाएक
रसहै ॥ कदाचितक्षोभकोंनहीप्राप्तभयो । जदिपइहदृशा
होवै । जोअमावस्याकाचंद्रमादृष्टआवे । अरप्रलैकालवि
षेप्रलैकीवायुचलै । तोभीआत्माकोंक्षोभनहीहोता । आ
त्मपदसदाज्योंकात्योंहे । हेरामजीऐसेआत्माकेप्रमाद
करजीवदुषपावतेहैं ॥ जबआत्माकाप्रमादहोताहे ॥ तब
इसकोंप्रतक्षदेहइंद्रीयांअपणेविषेदृष्टआवतेहैं ॥ तो
भीहैंनही । जैसेरेततैंतेलनहीनिकसता ॥ अरआकाशवि
षेबननहीहोता । अरचंद्रमाकेमंडलविषेदामिनीनही
होती । तैसेदेहइंद्रीयांआत्माविषेकदाचितनही । हेराम
जीइहसर्वजीवआत्मस्वरूपहैं । तातेइनकोदेहइंद्रीयाका
संबंधकछुनहीं । परंतुइनकीक्रियाविषेजोअभिमानक
तेहे ॥ तातेबंधायमानहोताहे ॥ हेरामजीजैसेबेडीपरपुरु

पवैवता है ॥ तिसकों भ्रांतकर नदीतटके वृक्ष चलते भास
ते हैं ॥ तैसे मनके भ्रमकर आत्माविषे चित्त देह इंद्रीयां भा
सती हैं ॥ अरवास्तवतें चित्त देह इंद्रीयां कछु भिन वस्तु नहीं
इहभी आत्मस्वरूप हैं ॥ निषेध किसका करीये ॥ हे रामजी
इनमनादिक इंद्रीयां कौं कछु अपणी सत्ता नहीं ॥ भ्रांतक
के भासते हैं ॥ जैसे पर्वतपर उजल मेघ होता है ॥ तिसविषे व
र्षा बुद्धि निफल होती है ॥ तैसे देहादिकविषे अहंकार नि
फल है ॥ तांतें हे रामजी एक अखंड आतमतत्त ही है ॥ अवर
द्वैत कछु नहीं ॥ जब तुमों नें असे धारा ॥ तब तुम शुध निरंज
नरूप हो ॥ हे रामजी इह सर्व सरीर चित्तके फुर्णें विषे गठे
हैं ॥ जैसे चित्तके फुर्णें विषे शरीर हैं ॥ तैसे जीव विषे चित्त है
तैसे परमात्मा विषे जीव हैं ॥ हे रामजी इस प्रकार फुरणमात्र
इह सृष्टि हूई ॥ तो द्वैत तो कछु न हूया किंतु ॥ इस प्रकार विचार
पूर्वक दृश्यभ्रमकौं त्यागो ॥ और स्वरूपविषे स्थिति होवो ॥ हे
रामजी असें धारकर सुखेन विचरो ॥ जो कछु चेष्टा नेतककें
आइ प्राप्त होवे तिसकों करो ॥ परंतु अपणा अभिमान मति
करो ॥ जब अपणा अहंकार भाव दूर हूया ॥ तब स्पंद होवे
अथवा अस्पंद होवे ॥ समाधि स्थिति होवें ॥ अथवा राजकी
स्थिति अरहो न तुमको उभय तुल्य हो जावेंगी ॥ जब अपनी अ
भिलाष दूर हूई ॥ तब जैसे चेष्टा आइ प्राप्त होवे ॥ तैसे ही होवे
वह फुरने भी अफुर है ॥ जैसे समुद्र के जाण्यै तें तरंग बुदबुदे
भी जल ही भासते हैं ॥ तैसे स्पंद अस्पंद तुमको तुल्य हो वहिगं
तरंग अरसौम्य जल तुल्य भासेगा ॥ जीवन्मुक्ति होवें ॥ अथवा
विदेहमुक्ति होवें ॥ समाध होवे ॥ अथवा राज होवे ॥ उभय तुम
कों तुल्य हैं ॥ हे रघुकुल आकाश के चंद्रमा रामजी ॥ इसकों
अपणी अभिलाष ही बंधन करती है ॥ जब अभिलाष मिटी
तब कर्म करो ॥ अथवा न करो ॥ बंधन कछु नहीं ॥ काहे ते जो क
र्तीविषे आत्माकों अकर्तृ देखता है ॥ अर प्रथमही आत्माकें
नकर्तीविषे भी अकर्तृ जानता है ॥ द्वैत भावना तिसकी निवर्त
हो जाता है ॥ तांतें तिसकों देह चित्त इंद्रीयां दिक सर्व पदार्थ आ

तमस्वरूपहीभासतेहैं॥ हेरामजीमैंजाणताहोंजोतुमारेह
देकामोहनिवर्तभयाहे॥ अबतुमजागेहो॥ अरजोकछुतु
मकोसंशयरह्याहोवै। तोबहुडप्रश्नकर। जोमैंउत्तरदे
वों॥ इतिश्रीनिरवाणप्रकर्णेसुछेनयोगउपदेशोना
मसर्गः॥१४८॥ श्रीरामउवाच॥ हेभगवनएकसंशयमु
जकोंहे॥ तिसकोंतुमनिवर्तकरो। एककहतेहैंजोबीजतें
अंकुरहोताहे॥ अरएककहतेहैंअंकुरतेंबीजहोताहे
अरएककहतेहैं॥ जोकछुकर्ताहैसोदेवहीकर्ताहे॥ अर
एककहतेहैंजबकर्मकरतेहैं॥ तबजन्मपावतेहैं॥ कर्म
हीकरसभकछुहोताहे॥ अवरकिसीकेअधीननहीं॥ अर
एककहतेहैं॥ जबदेहहोताहे॥ तबकर्मकरीतेहैं॥ एककह
तेहैंकर्मोंतेदेहहोताहे॥ एककहतेहैंदेहतेंकर्महोतेहैं॥ इ
हअर्थहे॥ अरएकपुरुषप्रयत्नमानतेहैं॥ सोजैसेहैतैसे
तुमकहो॥ श्रीवशिष्टउवाच॥ हेरामजीएकएकमैंतुम कर
कोंक्याकहों॥ कर्मतेंआदिलेंअरदेवपर्यंतघटतेंआदि
आकाशपर्यंतजेताकछुदृश्याकर्मद्रव्यहे॥ सोइहविक
ल्पघालसर्वभ्रांतमात्रहे॥ केवलआतमसरूपअपणे
आपविषेस्थितिहे॥ द्वैतकछुदृश्यानहीं। हेरामजीजब
संवेदनफुरताहे॥ तबसभकछुभासताहे॥ अरनिसंवेद
नदृश्येकछुनहीं। कर्मपुरुषप्रयत्नसभदेवसभेतुआ
त्माकेपर्यायहैं॥ जैसेसीतलस्वेतादिकबर्फकेपर्यायहे
तैसेएसर्वआतमाकेपर्यायहैं॥ देवपुरुषहे॥ अरपुरुष
देवहै॥ कर्मदेहहे॥ अरदेहकर्महैं। बीजअंकुरहे॥ अर
अंकुरबीजहै॥ देवहीकर्महैं। अरकर्महीदेवहे। सोपुरु
षप्रयत्नहै॥ जोइनविषेभेदमानतेहैं। सोपंडितेविषेप
शुहैं॥ काहेतेंजोइनकाबीजअहंकारहे। जबअहंकारन
या। तबसभकछुसिधकूया। जैसेबीजतेंवृक्षहोताहे। फू
लफलटाससर्वबीजतेंहोतेहैं॥ अरजोबीजहीनहोवे। तो
वृक्षकैसेउपजे। हेरामजीइनकाबीजसंवेदनहे। अहंका
रकहीये। संकल्पकहीये। संवेदनकेपर्यायहैं॥ जबफुर

णां हूआ। तब कर्म देह दैव सब सिध होते हैं॥ जब फुरनी मिट
गया। तब कछु नहीं भासता। इसी को ज्ञान अग्नि कर जलावे।
जो फुरले फुरन का नास जल जावैं। इह जो संवेदन फुरता है॥ जो
मैं हों। एहा संसार का बीज है॥ ज्ञान रूपी अग्नि कर जलावो
जब अहंकार नष्ट भया॥ तब द्वैत कछु न भासैगा। हे राम
जी इह जो प्रपंच भासता है॥ तिसका बीज संवेदन है॥ अरु सं
वेदन का बीज शुध संवित तत है। तिसका बीज अवर को
ऊ नहीं॥ दैव अरु कर्म पुरुष प्रयत्न क्या है॥ सो श्रवण कर
आदि जो स्पंद संवेदन फुरता है॥ तिसका नाम दैव है। काहे
तें जो कर्म तें आदि ही फुरता है॥ बहुड़ जो आगे क्रिया करीती
है। सो कर्म है॥ इसी का नाम पुरुष प्रयत्न है॥ अरु वह जो क
र्म तें आदि दैव रूप स्पंद का है॥ सो क्या रूप है॥ इसी का जो प्र
कितु कर्म कीया हूया है॥ तिसी का नाम दैव कर कहते हैं। इ
न सर्वों का जो बीज है॥ सो संवेदन है॥ हे रामजी जो स्वतह पुरु
ष चिन्मात्र पद एक ही था। जब तिस तें विकार संयुक्ति उथ्था
न हूया॥ तब आगे प्रपंच द्रिष्ट आवणे लागा। बहुड़ जब उ
थ्थान का अभाव होवे। तब प्रपंच का भी अभाव हो जाता है। हे
रामजी जब कछु इह बणता है। तब सर्व आपदा इसकौं प्रा
प्त होतीयां हैं। जैसे जब सूई वस्त्र मों प्रवेश करती है। तब पा
छें तिसके तागा चला जाता है॥ अरु जो सूई प्रवेश न करै। तौ
तागा काहे तें जावै। तैसे जब अहंकार प्रवेश कीया। तब स
र्व आपदा आवती हैं। जब निर्हंकार हूया। तब सर्व विश्व आ
नंद रूप अपरोक्ष आप भासता है॥ तां तें अहंकार का अभाव
करो। काहे तें जो विश्व भी तिसकर सिध हूई है॥ आगे कछु नहीं
अथवा सर्वात्म स्वरूप है॥ हे रामजी वासना मात्र विश्व है। ज
ब वासना नष्ट हो जावे। तब परम कल्याण है। जिस प्रकार इ
सकी वासना क्षय होवे। सोई युक्ति श्रेष्ट है। जब युक्ति कर वा
सना क्षय हो वहैगी। तब चेष्टा भी पड़ी होवे। परंतु बहुड़ ज
न्म कौं न देवैगी। हे रामजी ज्ञानी अरु अज्ञानी की चेष्टा तुल्य द्रिष्ट
आवती है॥ परंतु ज्ञानी का संकल्प दग्ध बीजवत है॥ बहुड़
जन्म नहीं देता। अरु अज्ञानी का संकल्प कच्चे बीजवत है॥

जो बकुड जन्म देता है। अरु वास्तव दे षीये तो न कोऊ जन्म
ही पावता है। न कोऊ नहीं पावता। केवल अपणे आपे भाव
विषे स्थिति है। भ्रांति करके भिन्न भिन्न पडे भासते हैं। सम
पते सर्व अपणां आप ही है। द्वैत कछु हूया नहीं। अरु जो भा
सता है सो मिथ्या है। जैसे केले के थंभ विषे सार कछु नहीं हो
ता। तैसे प्रपंच सर्व मिथ्या है। इस विषे सार कछु नहीं। तातैं
इसकी भावनां त्याग कर। अपणे आप विषे स्थिति होवो। हे
रामजी जिस प्रकार तुमारी वासनां निर्मूल होवे। सोई यत्न
करके निर्मूल करो। तो श्रीघ्र परमसिद्धि व पद हो रहेगा। हे रामजी
जब पुरुष प्रयत्न कर निर्हंकार होवोगे। तब वासनां आ
पही क्षय हो जावेगी। वासनां क्षय [illegible] बिनां पुरुष प्रयत्न अ
वर उपाय कोऊ नहीं। तातें हे रामजी पुरुषार्थ करके इस
एक देव परायण होवो। कर्म देवादिक वो ही पुरुष हो कर
भासता है। अरु कछु हूया नहीं। जैसे पुरुष एक ही देवन
रौं का सांग धारै। हे रामजी इस प्रकार वीचारपूर्वक सर्व इ
च्छणां कों त्याग कर स्वरूप विषे स्थिति होवो॥ इति श्री वसि
ष्ठ रामायणे निर्वाणप्रकर्णे निरस योग उपदेशो नाम सर्ग
॥१५८॥ लेषिक लेषिन आतमा रूपा ही का गति जो इ
अपनों गुन आवे कि हे पढे सुने जो कोइ । रूपा ही का नी
श्च से है का गति लेषिन हार वक्ता श्रोता आदि ले
सर्व जन सनिरधार॥ उम् उम् उम् उम् उम्

نسخه جهت ناسور مفید برگ درخت جاجون سایده قرص سازند و بر تابه آهنی بپزند چون پخته شود
شود بطرف دویم قدری سنگ جراحت سایده بر زخم ناسور بنهند و بالای آن زفاده ببندند
اما اول که بیاید چند زخم را بشوید بعده استعمال ادویه بکنند فقط طلا بید با کیان باید شسته یکجا
کرده بگذارند تر و خفیف طلا کنند قوت عظیم بخشد طلا مغز خفاش را که تازه بود بر کف پای درد
کربالی بپر هند بلکه که برای انمرد سیر برار و عصای او حالی فقط طلا خون سیر برآید که کنند و ایزد را بندد و حاکم
ان باشد آهسته اهمیت بر دیگر طلا کنند دمی صحت نمایند مانده شود و ابزار قطع و دیگر آزاد کرد فقط
طلا در سوختگی آتش اگر پیاز و نمک سوخته شیم خون آدمی کمک بعد لشکر زده بیرون آرند خون گرم بر سوختگی
طلا کنند در حال صحت یابد مجرب است هذا فی کتاب لب المجربات معجون باقلا تالیف بقراط العصر
مهی و مقوی جهته مزاج حاره و خشک مفید مغز بادام باقلا مغز فندق مغز تخم خربوزه از هر یک پنج درم
تخم خرفه مغز تخم خیار از هر یک دوازده درم مغز تخم کدو مغز تخم هندوانه خشخاش سفید از هر یک هفت درم
همه را در آب کدو تازه و آب تخم تازه هر یک اثار بمالند و بشیره برآرند پس خشک و شاه و در شیر بمالد
پرورده از هر یک هفت درم مغز پسته پنج درم شقاقل ده درم ثعلب ده درم تنهمن سفید ۳ مثقال
هلیله زرد هلیله سیاه بلیله آمله کتیرا صندلین از هر یک ۳ درم زعفران یکدرم طباشیر ۳ درم
دارچینی دو درم تخم اسپست پنجدرم لب ۳ جلدات شکری که در شیره مذکور قوام کرده باشند معجون سازند
و کلاب هم داخل نماید

در فواید السالکین آورده است
ان فی ذکر الجهر عشرة فواید
صفاء القلب و تنبیه الغافلین
و اظهار الدین و صحت البدن ولذت الروح
و نفی خطرات الشیطان و خطرات نفسانیت و توجها الی الله و التعرض نحو الله
و رفع الحجب بین العبد و بین الله
از فقیر عبد الخالق شاه نوشاهی
۱۲